द्वितीय खड

भाग १

भाग २

तृतीय खड

चतुर्थ खड

विज्ञापन सहयोग

प्रथम खण्ड

भारंडपखी

संयम-साधना

निर्लिप्तता का मार्ग

❀ आचार्य श्री नानेश

इस अवसर्पिणी काल मे अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर के शासन मे उनकी आत्मोद्धारक वाणी पर अधिकाधिक चिन्तन आवश्यक है। उनकी वाणी का चरम लक्ष्य है—सभी प्रकार के बन्धनो से आत्मा की मुक्ति। यह मुक्ति ही आत्मा की समाधि का चरम बिन्दु है, लेकिन आत्मा की समाधि का आरम्भ मुक्ति मार्ग पर चलने के सकल्प से ही हो जाता है। सूत्र समाधि से आत्मज्ञान का प्रकाश फैलता है तो विनय-समाधि ज्ञान के धरातल पर कठिन आचरण की सफल पृष्ठभूमि का निर्माण करती है। फिर आचार-समाधि एव तपस्या-समाधि आत्मा को मुक्ति मार्ग पर गतिशील और प्रगतिशील बना देती है।

आत्मसमाधि का यह मार्ग एक प्रकार से निर्लिप्तता का मार्ग है। सासारिकता से निर्लिप्त बनकर जितनी आत्माभिमुखी वृत्ति का विकास होगा, उतनी ही अधिक शान्ति मिलेगी और मुक्ति-माग पर गतिशीलता बढेगी।

निर्लिप्तता का मूल मत्र

सम्यक् आचरण ही निर्लिप्तता का एव उसके माध्यम से आत्म-समाधि का मूल सूत्र है। शुद्ध आचार के बिना जीवन शुष्क तथा प्रगतिहीन ही रहता है। शुद्ध आचार एव व्यवहार की स्थिति सम्यक् ज्ञान एव सम्यक् श्रद्धा के साथ सुदृढ बनती है। ज्ञान एव क्रिया का भव्य समन्वय बनता है, तब मुक्ति-दायिनी निर्लिप्तता का मार्ग प्रशस्त होता है।

लेप दो प्रकार का होता है। यहा लेप से अभिप्राय किसी शारीरिक लेप से नही है, बल्कि उस प्रकार के आत्मिक लेप से है, जो आत्मा पर चढकर आत्मस्वरूप को मलिन बनाता है। यह लेप दो प्रकार का इस रूप मे होता है कि पहली बार तो विषय एव कषाय की कलुषित वृत्तिया जब मन मे उठती हैं तो उनका विषला धुआ मानस को अधकार से घेर लेता है। एक तो लेप का यह रूप होता है, फिर दूसरा रूप तब प्रकट होता है, जब उन कलुषित वृत्तियो की उत्तेजना मे कर्मबध का लेप आत्मस्वरूप पर चढता है। यह लेप तब तक नही उतरता या घटता है, जब तक सम्यक् आचरण को जीवन मे नही अपनाया जाता है।

इस प्रकार सासारिक पदार्थो के प्रति जितनी ममता है और उस ममता के आवरण मे जितनी कलुषित वृत्तियो की उत्तेजना पैदा होती है उन सबके

कारण यह लेप गाढा और चिकना होता जाता है । तो लेप है वह ममता और जितने अ शो मे ममता का त्याग होता है—सम्यक आचरण की आराधना होती है, उतने ही अ शो मे जीवन मे समता का विकास होता जाता है । जितनी समता आती है—उतनी ही निर्लेपता या निर्लिप्तता आती है, यह मानकर चलिये।

लेप उतरता है, लेप चढ़ता है

मानसिक वृत्तियो एव कर्मो का यह लेप जहा आत्मस्वरूप पर चढता है तो आचार की शुद्धता से वह उतरता भी है । आचरण जब अशुद्ध होता है तो उसका कारण अज्ञान होता है एव उस अज्ञानमय अशुद्ध आचरण के फलस्वरूप मन और इन्द्रियो पर कोई नियन्त्रण नही रहता । वैसी दशा म मनुष्य का मन और उसकी इन्द्रिया अशुभ वृत्तियो एव प्रवृत्तियो मे इतनी बेभान होकर भटकने लग जाती हैं कि यह लेप आत्मस्वरूप पर चढता ही रहता है और वह गाढा होता जाता है । जितना अधिक गाढा लेप होता है, उतनी ही सज्ञाशून्यता आत्मा मे समाती जाती है । इसी स्थिति को समझकर प्रभु महावीर ने आचार को प्रथम धर्म बताया और आचार को सम्यक बनाये रखने पर बल दिया ।

आचार मे जब सम्यक् रूप से शुद्धता आती है तो उसका निर्देशक सम्यक् ज्ञान होता है । सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान,मन तथा इन्द्रियो को अनुशासित बनाकर उन्हे सम्यक आचरण मे स्थिरतापूवक नियोजित करते हैं इस नियोजन से उनका भटकाव रुक जाता है तथा इनका योग व्यापार शुभत्व की दिशा मे क्रियाशील बन जाता है। तब ममता के बन्धन टूटते रहते हैं एव मन, वचन व काया की वृत्ति-प्रवृत्तिया समत्व मे ढलती जाती हैं । अन्त करण की समतामय अवस्था मे लेप पर लेप नही चढता और पहले का चढा हुआ लेप भी उतरता जाता है । ज्यो-ज्यो यह लेप पतला पडता है, जीवन मे निर्लिप्तता आती रहती है तथा आत्मा का मूल स्वरूप चमकने लगता है । यह लेप या आवरण ही आत्मस्वरूप को ढकने और मन्द बनाने वाला होता है । अत निर्लिप्तता का मार्ग वास्तव मे आचार-शुद्धि तथा आत्मोन्नति का मार्ग है । निर्लिप्तता मे ही आत्मसमाधि समाहित होती है ।

आचार समाधि की स्थिरता एव निर्लिप्तता

जिस जीवन म आचार समाधि स्थिरता को प्राप्त कर लेती है, उस जीवन मे निर्लिप्तता का उदभव हो जाता है क्योकि आचार की आराधना से लिप्तता के बन्धन टूटते जाते हैं । सम्यक् आचरण के अनुपालन से आत्मा म ऐसी शान्ति की अनुभूति होती है कि आचरण की उच्चता तथा शान्ति की अनुभूति म आगे से आगे बढने की जैसे एक होड शुरु हो जाती है । आत्मिक शाति का रसास्वादन आचार-निष्ठा को स्थिरता प्रदान कर देता है । फिर आचार

समाधि का यही प्रभाव दिखाई देता है कि जितनी अधिक निष्ठा, उतनी अधिक कमठता और जितनी अधिक कमठता, उतनी ही अधिक शान्ति । आत्मिक शांति तब अडिग बन जाती है ।

आचार समाधि से जीवन मे कितनी शान्ति, कितनी निर्लिप्तता, कितनी समता एव कितनी त्यागवृत्ति का विकास होता है—यह आचार-साधक का अपना ही अनुभव होता है । किन्तु सामान्य रूप से तो आप भी समय-समय पर अपने अन्दर का लेखा-जोखा लेते रहे कि आप कितनी ममता छोडते है, कितना लेप हटाते हैं अथवा कितनी रागद्वेप व अह की वत्तियो का परित्याग करते हैं तो आप भी आचार समाधि के यत्किंचित् शुभ प्रभाव मे परिचित हो सकते हैं । सन्त और सतीवृन्द प्रभु महावीर की आज्ञाओ वे प्रति समर्पित होकर चल रहे हैं तथा अपने समग्र जीवन को तदनुसार ढालने का प्रयत्न कर रहे हैं, उनका कुछ न कुछ अनुसरण आप भी कर सकते हैं ।

शास्त्रकारो ने सकेत दिया है कि यदि तुम आचार समाधि मे स्थिरता प्राप्त करना चाहते हो तो ज्ञान एव क्रिया के भव्य समन्वय की दृष्टि से अपने जीवन मे परिवतन लाओ । सन्त सतीवृन्द के लिये तो विशेप निर्देश है कि वे अपने जीवन मे आचार एव विचार की प्राभाविकता को अक्षुण्ण बनाये रखें । इस प्राभाविकता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये ही उनके लिये जनपद विहार का विधान है । केवल चातुर्मास मे वे एक स्थान पर ठहरते हैं, अन्यथा ग्राम-नगरो मे विचरण करते रहते है । चार माह चातुर्मास काल मे एक स्थान पर रह कर जनता को प्रतिबोध लाभ देना एव स्वय की आत्मसाधना करना तथा तदुपरान्त ग्रामानुग्राम विहार करते रहना, यह आचार–समाधि की स्थिरता के रूप मे रखा गया है ताकि साधु निर्लिप्त बना रह सके । एक स्थान पर पडा हुआ पानी जिस प्रकार गन्दा हो जाता है, लेकिन वही पानी बराबर बहता रहता है तो वह निर्मल बना रहता है । उसी प्रकार साधु एक स्थान पर अधिक ठहरे तो वह वहा के किसी न किसी मोह से लिप्त बन सकता है, परन्तु उसके निरन्तर विहार करते रहने से उसकी निर्लिप्तता अभिवृद्ध होती रहती है ।

साधु–जीवन की निर्लेप वृत्ति

चातुर्मास काल के अन्दर उपदेश के मिलसिले मे तटस्थ भावना से वस्तु स्वरूप के प्रतिपादन के प्रसग आये, उनमे भी सभी प्रकार की भावनाए मैं व्यक्त करता रहा एव सकेत देता रहा, लेकिन किन आत्माओ ने क्या ग्रहण किया—उनके चित्त की यह बात तो ज्ञानी जन ही जान सकते हैं । बडे रूप मे मत्रीजी ने तपश्चर्या का चिट्ठा पेश किया है । इसके अतिरिक्त इस चातुर्मास की अन्य उपलब्धियो का उल्लेख भी किया गया है । अवशेप स्थिति की दृष्टि से कपाय प्रवृत्ति का जो प्रसग भूरा परिवारो मे चल रहा था—मामले कोर्ट कचहरियो तक

पहुचे हुए थे और धनाढ्य परिवार अपनी-अपनी खीचातानी के लिये हजारो रुपये खर्च करने को हठ लेकर बैठे हुए थे—उन्होने अन्तिम समय म उदारता दिखाई और चातुर्मास समापन के वक्त अपने वैमनस्य को कम कर लिया । खीचते गये तब तक मनमुटाव खिचता रहा, किन्तु हतोत्साही नही हुए तो आप दृश्य देख हा चुके है । वैसा ही दृश्य सरदारशहर के लोगो का भी आप सुन चुके हैं । अच्छे काम के लिये सद् प्रयत्न करते रहे और स्वय की निर्लेप वृत्ति प्रखर बनाये रखें तो उसका बराबर अच्छा प्रभाव पडता ही है ।

मेरा मन्तव्य तो यह है कि साधु-जीवन की निर्लेप वृत्ति प्रभावपूर्ण होनी चाहिये । उसके आचार धर्म एव उसकी चारित्र्यशीलता का यह सुप्रभाव होना ही चाहिये कि सम्पर्क मे आने वाला सहज रीति से अपनी विषय-कषाय की वृत्तियो का परित्याग कर ले । विहार के कुछ क्षणो पहले मैं फिर कह रहा हू कि कही कुछ आडा-टेढ़ा हो तो अपना-अपना अवलोकन करके चातुर्मास की समाप्ति के प्रसग से उसे सीधा करले—इसी मे आपका हित है । आप यह न सोचें कि पहल करेंगे तो उन्नीस हो जायेंगे । आप उन्नीस नही होंगे बल्कि जो पहले अपने हृदय की उदारता दिखायेगा, वह इक्कीस ही होगा और उसकी वाह वाही होगी । यह आत्मशुद्धि का प्रसग है और इसमे किसी को पीछे नही रहना चाहिये ।

मैं देशनोक सघ की स्थिति को अपनी स्थिति मे अवलोकन करता हुआ अवश्य कहूगा कि देशनोक सघ मे सघ की हैसियत से अथवा पचायत की हैसियत से जो कुछ प्रसग सन्त-समागम से समाहित हुए, उनके रूपक जनमानस के लिये आदश ,बनते हैं । साधु-जीवन के सम्पक मे आकर आप भी निर्लेप वृत्ति से शिक्षा ग्रहण करें तथा अपने जीवन में उस प्रभाव का समावेश कर—यह सराहनीय है ।

चारित्र्य की आराधना से सत्य की साधना

प्रभु महावीर की सम्यक् चारित्र्य रूपी जो आत्म-समाधि है, उसी के सहारे चतुर्विध सघ सुव्यवस्थित रूप से चल सकते हैं एव इस प्रकार के चतुर्विध सघ तथा व्यक्तिश साधु-साध्वी अथवा श्रावक-श्राविका जनता के लिये आकर्षण के केन्द्र बिन्दु बनते हैं । इस समाधि की प्राप्ति मे जो भी सहयोग करता है, उसे भी आत्मशान्ति मिलती है । महाराज हरिश्चन्द्र का सम्पूर्ण चरित्र आपने सुन लिया है और आपने हृदय मे उतारा होगा कि उन्होंने सत्य पर आचरण किया तो सत्य की कसौटी पर वे खरे उतरे । कठिन से कठिन कष्ट उनके सामने आये, लेकिन सत्य की साधना से वे विचलित नही हुए । अन्त मे श्मशान मे ऐसा भव्य दृश्य बना कि सारी काशी की जनता उमड पडी देवगण भी उपस्थित हुए तथा विश्वामित्र ने पश्चात्ताप किया । जनता महाराजा और महारानी को अयोध्या

मे ले गई, किन्तु वे ता सत्य के साधक वन चुके थे अन रोहित को राज्य देकर उन्होने भागवती दीक्षा अ गीकार कर ली । वहा तप सयम की सुन्दर आराधना करते हुए उन्होने आचार-समाधि की उपलब्धि की तथा केवल ज्ञान प्राप्त किया। अन्त मे वे सत्य साधक मुक्तिगामी हुए ।

आप भी हरिश्चन्द्र-चरित्र से सद्गुणो को ग्रहण करे और यह समझ ल कि चारित्र्य की आराधना करते हुए जो सत्य की सफल साधना करता है, वह निर्लिप्तता के माग पर आगे वढ जाता है । सत्य को आप चारित्र्य की रीढ की हड्डी मान सक्ते ह जो तभी सीधी और स्वस्थ रह सकती है, जबकि निर्लेप वृत्ति का उसमे समावेश हो जाय । सत्य की साधना से सभी आत्मिक गुणो का श्रेष्ठ विकास होता है ।

निर्लिप्त बनकर समता के साधक बनिये

चारित्र्य और सत्य की आराधना से आत्मस्वरूप पर चढे हुए लेप उतरते है और आत्मा मे एक प्रकार का सुखद हल्कापन आने लगता है । यह हल्कापन निर्लेपन वृत्ति अथवा तटस्थ वृत्ति का होता है । मोह ममता के भाव कम होते हैं—विषय कषय की वृत्तिया पतली पडती है तो मन मे निर्लिप्तता का समावेश होता है । निर्लिप्त बनने के बाद मे ही समता के साधक बन सकने का सुअवसर उपस्थित होता है । यदि आप दृढ सकल्प ले लें तो समता-दशन की साधना क्रमश चार विभागो मे कर सकते हैं, जो इस प्रकार है— (१) समता सिद्धात दर्शन (२) समता जीवन दशन (३) समता आत्म दशन तथा (४) समता परमात्म दशन । इस रूप मे यदि समता की साधना करेंगे तो अपने परिवार एव समाज से भी आगे बढ़कर राष्ट्र एव विश्व मे आप सच्ची शान्ति फैलाने वाले वन सकेंगे । जहा तक हो सके, आप चारित्र्य एव सत्य के धरातल पर समता के साधक बनें तथा अपने निर्लिप्त जीवन से दूसरो को भी आत्माभिमुखी बनावें।

याद रखिये कि समता की साधना मुख्यत निर्लिप्तता पर आधारित होती है । जितनी मन मे ममता है, उतना ही रोष, विक्षोभ और अस तोष है तथा इन भावनाओ से मन मे क्लेश तथा कष्ट भरा हुआ रहता है । जिन-जिन व्यक्तियो अथवा पदार्थों के प्रति ममता होती है, उनकी चिन्ता से हर समय मन मे व्याकुलता बनी रहती है । पहले चि ता उनको सुख देने की कामना से होती है तो बाद मे चिन्ता उनके कृतघ्न बन जाने मे होती है कि उन्होंने वापिस आपको सुख पहुचाने की चेष्टा नही की । इस प्रकार मोह, ममता मे सर्वत्र कष्ट और दु ख ही सामने आते हैं—सुख का क्षण तो शायद आता ही नही है और जिस सुख का कभी आपको आभास होता है तो वह आभास झूठा होता है । निर्लिप्त होने का यही अभिप्राय है कि आप इस ममता से अपना पीछा छुडावें

तथा हृदय मे तटस्थ वृत्ति धारण करें । तटस्थ वृत्ति के आ जाने पर समता की साधना सहज हो जायगी ।

जहां निर्लिप्तता वहां आनन्द

जितना दुःख और कष्ट, जितनी चिन्ता और व्यग्रता हृदय को सताती रहती है, वह ममता के कारण ही । जब ममता छूट जाती है और हृदय समता का साधक बन जाता है, तब जीवन मे निर्लिप्तता का प्रवेश हो जाता है । निर्लिप्तता की अवस्था मे सहज भाव से समदर्शिता की वृत्ति आ जाती है । सबका कल्याण हो और सबके कल्याण के लिये तटस्थ भाव से प्रयास किया जाय—यह भावना बन जाती है । उस समय मे कर्त्तव्य की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति की हित साधना के लिये काम किया जाता है किन्तु मोहजन्य व्याकुलता का वहा अभाव रहता है । वहा तो कर्त्तव्य करते रहने तथा सत्य, समता को साधने की पवित्र भावना के कारण आनन्द ही आनन्द व्याप्त हो जाता है ।

जहा निर्लिप्तता आ जाती है, वहा आनन्द ही आनन्द आ जाता है—वहा सच्चा आनन्द जो सर्वथा सुखद और स्थायी होता है । यह आनन्द एक बार जब आत्मा का अपनी गहराई मे डूबो देता है तो आत्मा फिर उस आनन्द से बाहर निकल जाने की कभी इच्छा तक नही करती है । यह चिर आनन्द ही आत्मा को प्रिय होता है, कारण यह आनन्द सत् और चित् से प्राप्त होता है तभी आत्मा को सच्चिदानन्द का पावनतम स्वरूप प्रदान करता है । सच्चिदानन्द बन जाना ही इस आत्मा का चरम लक्ष्य है, अत जो भी आत्मा इस लक्ष्य की ओर गति करने मे अपना पुरुषार्थ करेगी, उसका जीवन आनन्दमय बनता जायगा ।

समता रा दूहा

❀ डॉ नरेन्द्र भानावत

(१)
सरदी-गरमी सम हुवै, पाणी परसै बीज ।
सोनो निपजै खेत मे, राख्या सयम धीज ॥

(२)
समता जीवन रो मधु, समता मीठी दाख ।
मन री थिरता ना डिगै, चावै कोडी-लाख ॥

(३)
घटना घट सू ना जुडै, सुख-दुख व्यापै नाय ।
ममता री जड जद कटै, समता-वेल छवाय ॥

(४)
सवद, परस, रस, गध मे, भीगै नी मन-पाख ।
शुद्ध चेतना सू सदा, लागी रेवै आख ॥

(५)
कूप, नदी, सर, बावडी, न्यारा-न्यारा रूप ।
सब मे पण जल जो लहै, एकज तत्त्व अनूप ॥

(६)
तन री वाबी मे वसै, अद्‌भुत आतम-साप ।
मारो, पीटो दुख नही, भीतर सुख अणमाप ॥

(७)
कूडा-करकट सब जलै, समता शीतल आग ।
वजर भू पण पागरै, सांस-सांस मे वाग ॥

(८)
समता सू जडता कटै, जागै जीवन-जोत ।
अन्तस मे फूटै नवा, सुख-सम्पता रा स्रोत ॥

(९)
समता-दीवो जगमग, अधियारो मिट जाय ।
विण वाती, विण तेल रै, घट-घट जोत समाय ॥

(१०)
जतरा दीवा सब जलै, पसरे जोत अनन्त ।
वा'रै वरखा, डूज पण, भीतर समता सन्त ॥

—सी-२३५ ए, तिलकनगर, ज 3

सयम का फल–

निष्कर्म अवस्था की प्राप्ति

❀ श्रीमद् जवाहराचार्य

जिसका मन एकाग्र होता है उन्ही का सयम शोभायमान होता है और जिनमे सयम है उन्ही के मन की एकाग्रता सार्थक होती है। अत सयम के विषय मे भगवान् से प्रश्न किया गया है—

प्रश्न–सजमेण भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उत्तर–सजमेण अणण्हयत्त जणयइ।

प्रश्न–भगवन् ! सयम से जीव को क्या लाभ होता है ?

उत्तर–सयम से अनाहतपन (अनाश्रव–आते हुए कर्मों का निरोध) प्राप्त होता है।

सयम के विषय मे भगवान् ने जो उत्तर दिया है, उस पर विचार करने से पहले देखना चाहिये कि सयम क्या है ?

शास्त्र मे सयम के विषय मे विस्तृत विवेचन किया गया है। उस सब का यहा विवेचन किया जाये तो बहुत अधिक विस्तार होगा। अतएव सयम के विषय मे यहा सक्षेप मे ही विवेचन किया जायेगा।

आजकल सयम शब्द पारिभाषिक बन गया है। मगर विचार करने से मालूम होगा कि सयम का अर्थ बहुत विस्तृत है। शास्त्र मे सयम के सत्तरह भेद बतलाये गये हैं। इन भेदो मे सयम के सभी अर्थों का समावेश हो जाता है। सयम के सत्तरह भेद दो प्रकार से बतलाये गये हैं। पाच आस्रवो को रोकना, पाच इन्द्रियो को जीतना, चार कषायो का क्षय करना और मन, वचन तथा काय के योग का निरोध करना, यह सत्तरह प्रकार का सयम है।

दूसरी तरह से निम्नलिखित सत्तरह भेद होते है—(१) पृथ्वीकाय सयम (२) अपकाय सयम (३) तेउकाय सयम (४) वायुकाय सयम (५) वनस्पतिकाय सयम (६) द्वीन्द्रियकाय सयम (७) त्रीन्द्रियकाय सयम (८) चतुरिन्द्रियकाय सयम (९) पचेन्द्रियकाय सयम (१०) अजीवकाय सयम (११) प्रेक्षा सयम (१२) उपेक्षा सयम (१३) प्रमार्जना सयम (१४) परिस्थापना सयम (१५) मन सयम (१६) वचन सयम (१७) काय सयम। इस तरह दो प्रकार से सयम के सत्तरह भेद हैं। सयम का विस्तारपूर्वक विचार करने मे सभी शास्त्र उसके अन्तर्गत हो जाते हैं।

जीवन भर के लिये पाच आस्रवो से, तीन करण और तीन योग द्वारा निवृत्त होना सयम स्वीकार करना कहलाता है। किसी भी प्राणी की हिंसा न करना असत्य न बोलना, मालिक की आज्ञा विना कोई भी वस्तु ग्रहण न करना, ससार की समस्त स्त्रियो को माता-वहिन के समान समझना और भगवान् की आज्ञा के अनुसार ही धर्मोपकरण रखने के सिवाय कोई परिग्रह न रखना, इस प्रकार पाच आस्रवो से निवृत्त होना और पाच महाव्रतो का पालन करना और पाच इन्द्रियो का दमन करना। पाच इन्द्रियो को दमन करने का अर्थ यह नही है कि आख बन्द कर लेना या कान मे शब्द ही न पडने देना। ऐसा करना इन्द्रियो का निरोध नही है वल्कि इन्द्रियो को विपयो की ओर जाने ही न देना इन्द्रिय-निरोध कहलाता है। प्रत्येक इन्द्रिय का उपयोग करते समय ज्ञानदृष्टि से विचार कर लिया जाये तो अनेक अनर्थो से बचा जा सकता है।

जब तुम्हारे कान मे कोई शब्द पडता है तो तुम्हे सोचना चाहिये—मेरा कान मतिज्ञान, श्रुतज्ञान वगैरह प्राप्त करने का साधन है। अतएव मेरे कान मे जो शब्द पडे हैं वे मेरा अज्ञान बढाने वाले न हो जाए, यह बात मुझे ख्याल मे रखनी चाहिये। जब तुम्हारे कान मे कटुक शब्द टकराते है तब तुम्हारा हृदय काँप उठता है। मगर उस समय ऐसा विचार कर निश्चल रहना चाहिये कि यह तो मेरे धम की कसौटी है। यह कटु शब्द शिक्षा देते है कि समभाव धारण करने से ही धर्म की रक्षा होगी। अतएव कटुक शब्दो को धम पर स्थिर करने मे सहायक मानकर समभाव सीखना चाहिए।

इसी प्रकार कोई मनुष्य तुम्हें लम्पट या ठग कहे तो तुम्हे सोचना चाहिए कि मैं एकेन्द्रिय होता तो क्या मुझे यह शब्द सुनने को मिलते? और उस अवस्था मे कोई मुझे यह शब्द कहता। कदाचित् कोई कहता भी तो मैं उन्हें समझ ही न सकता। अब जब मुझे समझने योग्य इन्द्रिया प्राप्त हुई हैं तो इस प्रकार के शब्द सुनकर मेरा क्या कर्त्तव्य होता है? वह मुझे लम्पट और ठग कहता है। मुझे सोचना चाहिये कि क्या मुझमे ये दुगुण है? अगर मुझमे ये दुगुण हैं तो मुझे दूर कर देना चाहिये। वह वेचारा गलत नही कह रहा है। विचार करने पर उक्त दुर्गुण अपने मे दिखाई न दें तो सोचना चाहिए—हे आत्मा! क्या तू इतना कायर है कि इस प्रकार के कठोर शब्दो को भी नही सहन कर सकता? कठोर शब्द सुनने जितनी भी सहिष्णुता तुझमे नही! यह कायरता तुझे शोभा नही देती। जो व्यक्ति अपशब्द कहता है उसे भी चतुर समझ। वह भी अपशब्दो को खराब मानता है। इस प्रकार तेरा और उसका ध्येय एक है। इस प्रकार विचार करके अपशब्द सुनकर भी जो स्थिर रहता है, उसी ने श्रोत्रेन्द्रिय पर विजय प्राप्त की है।

इसी प्रकार सुन्दरी स्त्री का रूप देखकर ज्ञानीजन विचार करते हैं—इस स्त्री को पूर्वकृत पुण्य के उदय से ही यह सुन्दर रूप मिला है। अपने सुन्दर

रूप द्वारा यह स्त्री मुझे शिक्षा दे रही है कि अगर तूं पुण्य का सचय करेगा त सुन्दरता प्रदान करने वाले पुद्गल तेरे दास बन जाएगे ।

किसी सुन्दर महल को देखकर भी यह साचना चाहिए कि यह मह पुण्य के प्रताप से ही बना है । मेरे लिए यही उचित है कि मैं इस महल कं ओर दृष्टि ही न डालू । फिर भी उस पर अगर मेरी नजर जा ही पडती तो मुझे मानना चाहिए कि यह महल किसी के मस्तिष्क की ही उपज है मस्तिष्क से यह महल बना है, लेकिन यदि मस्तिष्क ही बिगड जाये तो कितनं बडी खराबी होगी ? तो फिर सुन्दर महल देखकर मैं अपना दिमाग क्यं बिगाडू ? अगर मैंने अपना मन और मस्तिष्क स्वच्छ रखकर सयम का पालन किया ता मेरे लिए देवो के महल भी तुच्छ बन जाएगे ।

महाभारत मे व्यास की झोपडी और युधिष्ठिर के महल की तुलना की गई है और युधिष्ठिर के महल से व्यास की झोपडी अधिक अच्छी बतलाई गई है । इसका कारण यह है कि जहा निवास करके आत्मा अपना कल्याण-साधन कर सके, वही स्थान ऊचा है और जहा रहने से आत्मा का अकल्याण हो, वह स्थान नीचा है । जहा रहने से भावना उन्नत रहे वह स्थान ऊचा है और जहा रहने मे भावना नीची हो जाये वह स्थान नीचा है। अगर तुम इस बात पर विचार करोगे तो तुम्हारा विवेक जागृत हो जायेगा ।

गुरु के प्रताप मे हम लोग सहज ही अनेक पापो से बचे हुए हैं । जो श्रावक अपना श्रावकपन पालन करता है वह भी पहले देवलोक से नीचे नही जाता । मगर एक-एक पाई के लिए भी झूठ बोलना कोई श्रावकपन नही है । क्या मैं तुमसे यह आशा रखू कि तुम असत्य भाषण न करोगे ? मगर कोई यह कहता है कि झूठ बोले बिना काम नही चलता तो उससे कहना,चाहिए कि असत्य के बिना काम नही चलता होता तो तीर्थंकर भगवान् ने असत्य बोलने का निषेध क्यो किया होता ? क्या वे इतना भी नही समझते थे ?वास्तव में यह समझ ही भ्रमपूर्ण है । इस भूल को भूल मानकर असत्य का त्याग करो और सत्य का पालन करो । सत्य की आराधना करने मे कदाचित् कोई कष्ट आ पडे तो उन्हें प्रसन्नतापूर्वक सहा, मगर सत्य पर अटल रहो । क्या हरिश्चन्द्र ने सत्य का पालन करने में आये हुए कष्ट सहने म आनन्द नही माना था ?फिर आज सत्य का पालन करने आये हुए कष्टो मे क्यो घबराते हो ? आज लाग व्यवहार साधने मे ही लगे रहते हैं और समझ बैठे हैं कि असत्य के बिना हमारा व्यवहार चल ही नहीं सकता । मगर यह मानना गम्भीर भूल है । दरअसल तो सत्य के आचरण से ही व्यवहार सरल बनता है । असत्य के आचरण से व्यवहार में वक्रता आ जाती है । भगवान् ने सत्य का महत्त्व बतलाते हुए यहाँ तक कहा है कि 'त सच्च खु भगव ।' अर्थात् सत्य ही भगवान् है । ऐसी दशा मे सत्य की उपेक्षा करना कहां

तक उचित है ? सत्य पर अटल विश्वास रखने से तुम्हारा कोई भी काय नही अटक सकता और न कोई किसी प्रकार की हानि पहु चा सकता है ।

कहने का आशय यह है कि इन्द्रियो को और मन को वश मे करने के साथ व्यवहार की रक्षा भी करनी चाहिए । निश्चय का ही आश्रय करके व्यवहार को त्याग देना उचित नही है । केवली भगवान् भी इसलिए परिषह सहन करते हैं कि हमे देखकर दूसरे लोग भी परिषह सहने की सहिष्णुता सीखें । इस प्रकार केवली को भी 'व्यवहार की रक्षा करनी चाहिए' ऐसा प्रकट करते हैं । अतएव केवल निश्चय को ही पकड कर नही बैठा रहना चाहिए ।

इन्द्रियो और मन को वश मे करने के साथ चार कषायो को भी जीतना चाहिए और मन, वचन तथा काय के योग को भी रोकना चाहिए । यह सत्तरह प्रकार का सयम है ।

इस तरह सत्तरह तरह के सयम का पालन करने वाले का मन एकाग्र हो जाता है जिसका मन एकाग्र नही रहता, वह इस प्रकार के उत्कृष्ट सयम का पालन नही कर सकता । शास्त्र मे कहा है—

अच्छवा जे न भु जन्ति न से चाइत्ति वुच्चइ ।

—दशवैकालिक सूत्र

अर्थात्—जो मनुष्य पदार्थ न मिलने के कारण उनका उपभोग नही कर सकता, फिर भी जिसका मन उन पदार्थो की ओर दौडता है, उसे उन पदार्थो का त्यागी नही कह सकते, वह भोगी ही कहा जायेगा । इसके विपरीत जो पुरुष पदाथ मौजूद रहने पर भी उसकी ओर अपना मन नही जाने देता, वह उन पदार्थो का भोगी नही वरन् त्यागी कहलाता है ।

तुम इस बात का विचार करो कि हमारे अन्दर सयम है या नही ? अगर है तो उसका ठीक तरह पालन करते हो या नही ? आज बाहर के फैशन से, बाहर के भपके से और दूसरो की नकल करने से तुम्हारे सयम की कितनी हानि हो रही है, इसका विचार करके फैशन से बचो और सयममय जीवन बनाओ तो तुम्हारा और दूसरो का कल्याण होगा ।

सयम के फल के विषय मे भगवान् ने कहा है—सयम से जीव मे अनाहतपन आता है । साधारणतया सयम का फल आस्रवरहित होना माना जाता है पर यह साक्षात् अर्थ नही है । सयम के साक्षात् अर्थ के विषय मे टीकाकार कहते हैं—सयम से जीव ऐसा फल प्राप्त करता है, जिसमे कम की विद्यमानता ही नही रहती । सयम से आश्रवरहित अवस्था प्राप्त होती है और यह अवस्था प्राप्त होने के बाद जीव निष्कम दशा प्राप्त कर लेता है । सूत्रसिद्धान्त बीज रूप मे ही कोई बात कहते हैं । अत उसका विस्तार करके विचार करना आवश्यक है ।

सयम का फल निष्कम अवस्था प्राप्त करना कहा गया है। इस पर प्रश्न उपस्थित होता है कि निष्कर्म अवस्था तो तप द्वारा प्राप्त होती है। अगर सयम से ही कर्मरहित अवस्था प्राप्त होती हो तो तप के विषय मे जुदा प्रश्न क्यो किया गया है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि वरणन करने मे एक वस्तु ही एक वार आती है। तप और सयम सम्बन्धी प्रश्न अलग-अलग हैं परन्तु दोनो का अथ तो एक ही है। चारित्र का अथ करते हुए वतलाया गया है कि 'चय' का का अथ 'कमचय' होता है और 'रित्र' का अथ रिक्त करना है। अर्थात् कमचय को रिक्त (खाली) करना चारित्र है। चारित्र कहो या सयम कहो, एक ही वात है। अत चारित्र का फल ही सयम का फल है। चारित्र का फल कमरहित अवस्था प्राप्त करना है और सयम का भी यही फल है।

कोई कम पुराना होता है और कोई अनागत-आगे आने वाला-होता है। कोई ऋण पुराना होता है और कोई आगे किया जाने वाला होता है। पुराने कर्मों की तो सीमा होती है मगर नवीन कम असीम होते हैं। इस कथन का एक उद्देश्य है। जो लोग कहते हैं कि सयम का फल यदि अकम अवस्था प्राप्त करना है तो तप का फल अलग क्यो वतलाया गया है ? यदि तप और सयम का फल एक ही है तो दोनो का अलग-अलग प्रश्न रूप मे वर्णन क्या किया गया है ? अगर दोनो का वर्णन अलग-अलग है तो तप और सयम मे क्या अन्तर है ? इन प्रश्नो का, मेरी समझ मे यह उत्तर दिया जा सकता है कि सयम आगे आने वाले कर्मो को रोकता है और तप आगत अर्थात् सचित कर्मो को नष्ट करता है। सचित कर्मो की तो सीमा होती है पर अनागत कर्मों की सीमा नही होती है। सयम नवीन कम नही वढने देता और तप पुराने कर्मो का नाश करता है। सयम असीम कर्मो को रोकता है, अतएव सयम का काय महान् है। इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि सयम से निष्कम अवस्था प्राप्त होती है। जो महान् काय करता है, उसी का पद ऊचा माना जाता है।

इस कथन मे यह विचारणीय हो जाता है कि जो भूतकाल का ख्याल नही करता और भविष्य का ध्यान नहीं रखता, सिफ वतमान के सुख मे ही डूबा रहता है वह चक्कर मे पड जाता है। अतएव प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह भूतकाल को नजर के सामने रखकर अपने भविष्य का सुधार करे। इतिहास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि पहले जो लोग युद्ध मे लडने के लिए जाते थे और अपने प्राणो की भी वलि चढा देते थे, क्या उन्हें प्राण प्यारे नही थे ? प्राण तो उन्ह भी प्यारे थे मगर भविष्य की प्रजा परतन्त्र न वने और कायर न हो जाये, इसी दृष्टि से वे राजपाट छोडकर युद्ध करने जाते थे और अपने प्राणों को तुच्छ समझते थे।

इस व्यावहारिक उदाहरण को सामने रखकर सयम के विषय मे विचार

करो । जैसे योद्धागण अपने राजपाट और प्राणो की ममता त्याग कर लडने के लिए जाते थे और भविष्य की प्रजा के सामने पराधीनता सहन न करने का आदर्श उपस्थित करते थे, उसी प्रकार प्राचीनकाल के जो लोग राजपाट त्याग कर सयम स्वीकार करते थे, वे भी आत्मकल्याण साधने के साथ, इस आदश द्वारा जगत् का कल्याण करते थे । उनकी सतान सोचती थी—हमारे पूवजो ने तृष्णा जीती थी तो हम क्यो तृष्णा मे ही फसे रहे ? प्राचीनकाल के राजा या तो सयम पालन करते-करते मृत्यु से भटते थे या युद्ध करते-करते । वे घर मे छटपटाते हुए नही मरते थे । आजकल क लाग तो घर मे पडे-पडे, हाय-हाय करते हुए मरण के शिकार बनते हैं । ऐसे कायर लोग अपना अकल्याण तो करते ही हैं, साथ ही दूसरो का भी अकल्याण करते ह । इसीलिए शास्त्रकार उपदेश देते हैं—हे आत्मा ! तू भूत-भविष्य का विचार करके सयम को स्वीकार कर । सयम आत हुए कर्मों को रोकता है और निष्कम अवस्था प्राप्त कराता है ।

कोई कह सकता है कि क्या हमे सयम स्वीकार कर लेना चाहिए ? इसका उत्तर यह है कि अगर पूर्ण सयम स्वीकार कर सको तो अच्छा ही है, अन्यथा ससार के प्रति जो ममता है उसे ही कम करो ! इतना करोगे तो भी बहुत है । आज लोग साधन को ही साध्य मानने की भूल कर रहे हैं । उदाहरणार्थ—धन व्यावहारिक काय का एक साधन है। धन के द्वारा व्यवहारोपयोगी वस्तुए प्राप्त की जा सकती हैं । मगर हुआ यह कि लोगो ने इस साधन को ही साध्य समझ लिया है और वे धनोपाजन करने मे ही अपना सारा जीवन व्यतीत कर देते ह । जरा विचार तो करो कि धन तुम्हारे लिए है या तुम धन के लिए हो ? कहने को ता झट कह दोगे कि हम धन के लिए नही हैं, धन हमारे लिए है । मगर कथनी के अनुकूल करनी है या नही ? सबसे पहल यही सोचो कि तुम कौन हो ? यह विचार कर फिर यह भी विचार करो कि धन किसके लिए है ? तुम रक्त, हाड या मास नही हो । यह सब धातुए तो शरीर के साथ ही भस्म होने वाली है। यह बात भली-भाति समझकर आत्मा को धन का गुलाम मत बनाओ । यह बात समझ लेन वाला धन का गुलाम नही बनगा, अपितु धन का स्वामी बनगा । वह धन को साध्य नही, साधन मानकर धनोपाजन मे ही अपना जीवन समाप्त नही कर दगा । वह जीवन को सफल बनाने का प्रयत्न भी करेगा ।

अगर आप यह मानते हैं कि धन आपके लिए है, आप धन के लिए नही हैं तो मैं पूछता हू कि आप धन के लिए पाप तो नही करत ? असत्य भाषण, विश्वासघात और पिता-पुत्र आदि के बीच क्लेश किसके लिए हाते हैं ? धन के लिए ही सब हाता है । धन से ससार म क्लेश-कलह होना इस बात का प्रमाण है कि लोगो ने धन को साधन मानने के बदले साध्य समझ लिया हैं । लोगो की इस भूल के कारण ही ससार मे दु ख व्याप रहा है । धन को साध्य मानने के बदले साधन माना जाये और लोकहित मे उसका सद्व्यय किया जाये तो कहा

जा सकता है कि धन का सदुपयोग हुआ है । इसके बदले आप साधनसम्पन्न हो
पर भी यदि किसी वस्त्रविहीन को ठण्ड से ठिठुरता देखकर भी और भूख प्यास
से कष्ट पाते देखकर भी उसकी सहायता नही करते तो इससे आपकी कृपणता
ही प्रकट होती है । धन का सदुपयोग करने मे हृदय की उदारता होना आवश्यक
है । हृदय की उदारता के अभाव मे धन का सद्व्यय नही हो सकता । धन तो
व्यवहार का साधन मात्र है । वह साध्य नही है । यह बात सब को सवदा स्म-
रण रखनी चाहिए । धन के प्रति जो मोह है उसका त्याग करने मे ही कल्याण
है । 'वित्तेण ताए न लभे पमत्ते' अर्थात् धन प्रमादी पुरुष की रक्षा नही कर
सकता । शास्त्र के इस कथन को भलीभाति समझ लेने वाला धन को कदापि
साध्य नही समझेगा । वह धन के प्रति ममत्व का भाव भी नही रखेगा । धन के
प्रति इस प्रकार निमल बनने वाला भाग्यवान् पुरुष ही सयम के माग पर अग्र-
सर हो सकता है ।

धन की भाति शरीर को भी साधन ही समझना चाहिए । शरीर को
आप अपना मानते हैं, मगर क्या हमेशा के लिए यह आपका है ? अगर नहीं
तो फिर यह आपका कैसे हुआ ? श्री भगवती सूत्र मे कहा है—कर्मों का बध
अकेले आत्मा से होता है और न अकेले शरीर से ही होता है । अगर अकेले
शरीर से कमबध होता तो उसका फल आत्मा क्यो भोगता ? अगर अकेले
आत्मा से बध होता तो शरीर को फल क्या भोगना पडता ? आत्मा और शरीर
एक दृष्टि से भिन्न-भिन्न हैं—और दूसरी दृष्टि से अभिन्न अभिन्न भी हैं
अतएव कम दोनो के द्वारा कृत हैं । ऐसी स्थिति मे शरीर का साधन समझकर
उसके द्वारा आत्मा का कल्याण करना चाहिए । जो शरीर को साधन समझेगा
वही सयम स्वीकार कर उसका फल प्राप्त कर सकेगा जिस वस्तु के प्रति ममत्व
का त्याग कर दिया जाता है, उस वस्तु का सयम करना कहलाता है । अत
बाह्य वस्तुओ के प्रति जितने परिमाण मे ममता त्यागोगे, उतने ही परिमाण मे
आत्मा का कल्याण साध सकोगे ।

भगवान् ने सयम का फल निष्कम अवस्था की प्राप्ति बतलाया है
कमरहित अवस्था प्राप्त करना अपने ही हाथ मे है । सयम किसी भी प्रकार
दु खप्रद नही वरन् आनन्दप्रद है और परलोक मे भी आनन्ददायक है ।

संयम में पुरुषार्थ

□ आचार्य श्री विजयवल्लभ सूरि

भगवान महावीर के द्वारा बताई गई चौथी दुलभ वस्तु पर कुछ कहना है। वह दुलभ वस्तु है–सयम मे पुरुपार्थ। उन्होने अपने अनुभव रस से परिपूर्ण वाणी मे कहा–

सुई व लद्ध सद्ध च वीरिय पुण दुल्लह।
बहवे रोयमाणा वि णो य ण पडिवज्जइ॥

—उत्तराध्ययन अ ३ गा १०

"कदाचित् धम श्रवण प्राप्त करके व्यक्ति श्रद्धा भी करले, लेकिन सयम मे शक्ति लगाना तो वडा दुलभ है। क्योकि वहुत से व्यक्ति किसी श्रेयस्कर वस्तु पर रुचि कर लेते हैं, लेकिन उसे जीवन मे उतारना स्वीकार नही करते।"

सयम मे पराक्रम दुलभ क्यो ?

प्रश्न होता है, जब व्यक्ति किसी चीज को सुनकर, जान कर, महत्त्व समझ कर उस पर श्रद्धा कर लेता है, तब भी उसका आचरण उसके लिए दुर्लभ क्यो हो जाता है ? श्रद्धा और आचरण के वीच खाई क्यो पड जाती है ? जहा तक हमारा व्यावहारिक अनुभव है, इन तीनो मे धर्म श्रवण करने वाले सबसे ज्यादा मिलेंगे, उससे कम दृढ श्रद्धा वाले मिलेंगे तथा उसमे कम मिलेंगे धर्माचरण करने वाले। कहा भी है—

परोपदेशे पाण्डित्य, सर्वेषा सुकर नृणाम्।
धर्मे स्वीयमनुष्ठान कस्यचित् महात्मन॥

"दूसरो को उपदेश देने मे पाण्डित्य दिखाना सबके लिए सुलभ है। लेकिन धम मे अपनी सर्वस्व शक्ति लगा देने वाले विरले ही महान् आत्मा होते हैं।"

सयम मे पुरुषार्थ की दुलभता के कारण

जिन कारणो को लेकर मनुष्य सयम मे पुरुपाथ नही कर पाता, उनमे मुख्य कारण ये प्रतीत होते हैं—(१) भोग का वोलवाला, (२) धन की अधिकता, (३) सत्ता की प्राप्ति, (४) इन्द्रिय विपयो की रमणीयता, (५) कपायो और वासनाओ मे शीघ्र प्रवृत्ति, (६) पुनजन्म, परलोक आदि पर अविश्वास, (७) सुसस्कारो का अभाव, (८) सतत, दीघकाल तक टिके रहने मे अधीरता।

आज ससार के सभी राष्ट्रो मे अधिकाश लोगो की रुचि सासारिक पदार्थों के अधिकाधिक उपभोग की ओर है। जहा देखो वही भोग-विलास के

सयम मे पुरुपाथ की दुर्लभता मे सातवा कारण सस्कारो का अभाव है। इसी कारण अच्छे कुल या उत्तम खानदान का बडा महत्त्व समझा जाता है और सबध जोडते समय उत्तम खानदान और पवित्र कुल का विचार किया जाता है। क्योकि उत्तम खानदान मे सुन्दर सस्कार कूट-कूट कर भरे होते हैं। कितने ही भयो या प्रलोभनो के आने पर भी सुसस्कार प्रेरित व्यक्ति कभी असयम के रास्ते पर नही जाता परतु सुसस्कार भी विरले लोगो को ही मिलते हैं।

सयम मे पुरुपार्थ की दुलभता म आठवा कारण सयम माग की मर्यादा पर सतत दीर्घकाल तक दृढ न रहना है। मनुष्य का सामान्यतया यह स्वभाव होता है कि वह एक ही चीज पर बहुत लम्बे समय तक टिका नही रहता, उससे ऊब जाता है, या थक जाता है अथवा हताश हो जाता है जैसे भोजन मे भी एक ही चीज आए तो आप उससे अरुचि करने लगते हैं, वैसे ही मनुष्य साधना म भी नये स्वाद को अपनाने के लिए लालायित रहता है। सयममाग वैसे तो नीरस नही है, परन्तु भौतिकता की चकाचौध से मनुष्य उसे नीरस और रूखा समझने लगता है और यहा तक कहने लगता है कि अब कहा तक इस सयम की रट लगाते रहेंगे। इस कारण कई वष तक मनुष्य सयममाग की मर्यादा पर चल कर फिर उसे छोड बैठता है। इसी कारण को लेकर सयम मे पुरुपाथ पर टिके रहना बडा दुलभ बताया है। कोई भी साधना तब तक आनन्ददायक या सफल नही होती जब तक कि दीघकाल तक आदर और श्रद्धापूवक निरतर उसका सेवन न किया जाय। योगदशन मे महर्षि पतन्जलि ने कहा है—

स तु दीघतर–नरन्तर्य–सत्कारासेवितो दृढभूमि ।

"चितवतिनिरोधरूप योग तभी सुदृढ होता है, जबकि दीघकाल तक निरन्तर सत्कारपूवक उसका सेवन किया जाय।"

भाग्यशालियो! सयम मे पुरुपार्थ की दुर्लभता के इन कारणो पर गहराई से विचार करें। सयम का जीवन मे तो अनिवार्य स्थान और महत्त्व है, उसे समझकर, आदरपूवक यदि उसे जीवन का अग बना लेंगे तो आपके लिए सयम नीरस नही सरस बन जायगा, दुर्लभ नही, सुलभ हो जायगा। सयम जीवन के लिए अमृत है। असयम नैतिक मृत्यु है। जिसकी आत्मा सहज सयम मे स्थिर हो जाता है, उसके लिए सयम मे पुरुपाथ सरल हो जाता है। बल्कि सयम मे पुरुपाथ को वह स्वाभाविक और असयम मे रमण को अस्वाभाविक समझने लगता है।

सयम मे पुरुपाथ का रहस्य

सयम मे पुरुपाथ का मतलब कोई यह न समझ ले कि सबका घर-बार, धन-सपत्ति छोडकर साधु बन जाना है। साधु जीवन की साधना तो उच्च सयम की साधना है ही, लेकिन गृहस्थ जीवन मे भी सयम की आवश्यकता होती है।

सयम का अर्थ केवल ब्रह्मचर्य पालन कर लेना भी नही है । ब्रह्मचर्य, चाहे वह मर्यादित हो चाहे पूण, सयम का प्रधान अग जरूर है, लेकिन इतने मे ही सयम की इति, समाप्ति नही हो जाती । अत चाहे वह ब्रह्मचारी हो, गृहस्थ हो, वानप्रस्थ हो या सन्यासी, साधु हो, प्रत्येक अवस्था मे सयम मे पुरुपाथ की जरूरत रहती है, फिर वह चाहे अपनी-अपनी भूमिका के अनुसार ही क्यो न हो । और सयम का वास्तविक अथ यहा पाचो इन्द्रियो, मन, वचन, काया, चार कपाय, हाथ-पैर तथा सासारिक पदार्थो, यहा तक कि पट् काया (सृष्टि के सभी प्राणियो) के प्रति सयम से है । स्वेच्छा से भली-भाति इन्द्रिय, मन आदि पर अकुश रखना, नियत्रण रखना सयम है ।

श्रोत्रेन्द्रिय सयम का अथ यह नही है कि कानो से आप सुनें ही नही या कान की श्रवणशक्ति को खत्म कर दें । अपितु काना के द्वारा गदी, निन्दात्मक या अश्लील वात या गायन न सुनें । अगर कभी कानो मे पड भी जाय तो उस पर से आसक्ति या राग-द्वेष न लावें । फिल्मी गीत सुनने हो तो आपके कान सदैव तैयार रहे और आध्यात्मिक सगीत सुनने मे अरुचि दिखाए तो समझना चाहिए कि श्रोतेन्द्रिय सयम नही है । दूसरे की निन्दा की वातें या अपनी प्रशसा की वातें सुनने के लिए आपके कान सदा तैयार रहे और अपनी निन्दा और दूसरो की तारीफ हो रही हो, वहा मन मे द्वेपभाव भडक उठे तो समझना चाहिए श्रोतेन्द्रिय सयम नही है ।

चक्षुरिन्द्रिय सयम का अर्थ है—आखो से किसी वस्तु या व्यक्ति को देखकर राग या द्वेप की भावना न लावे । आखो पर सयम कैसे होता है, इसके लिए रामायण का एक भव्य उदाहरण लीजिये—

रामचन्द्रजी जव १४ वप के लिए अयोध्या छोडकर वनवास को गए तव सीताजी तो साथ मे थी ही, लक्ष्मण भी साथ मे थे । एक वार जव रावण मर्यादा का उल्लघन करके पतिव्रता सती सीता को वलात् अपहरण करके ले जाने लगा तो सती सीता ने अत्याचारी रावण के पजे से छूटने का वहुतेरा उपाय किया । लेकिन जव वह इसमे सफल न हुई तो वह जिस रास्ते से विमान द्वारा ले जाई जा रही थी, उस रास्ते मे एक-एक करके अपने गहने उतार कर डालती गई, ताकि भगवान राम उस पथ को जान सकें । इधर जव राम और लक्ष्मण पचवटी को लौटे और कुटिया को सूनी देखा तो सीता के विरह मे राम व्याकुल हो उठे । अपने भाई लक्ष्मण को साथ लेकर वे सीता की खोज मे चल पडे । रास्ते मे जव वे विखरे हुए गहने मिले तो राम ने लक्ष्मण से कहा—"भाई ! मेरा मन इस समय सीता के वियोग मे व्याकुल हो रहा है, दृष्टि पर अधेरा छाया हुआ है, अत मैं देखकर भी निणय नही कर पा रहा हू कि आभूपण किसके हैं ? अव तू ही भली भाति जाच-परख कर वता कि ये आभूपण तेरी

भाभी के ही हैं या अन्य किसी के ?" यह सुनकर लक्ष्मण ने जो कुछ कहा वह आखो पर सयम का ज्वलन्त उदाहरण है—

केयूरे नैव जानामि, नैव जानामि कुण्डले ।
नूपुरे त्वभिजानामि, नित्य पादाभिवन्दनात् ।।

"हे भाई ! मैं बाजूबन्दो को भी नही पहिचान सकता और न इन दोनो कुण्डलो को पहिचान सकता हू । लेकिन मैं इन दोनो नूपुरो को तो जानता हू क्योकि मैं भाभी के चरणो मे प्रतिदिन वन्दन करने जाता था तो मेरी दृष्टि नूपुरो पर तो सहज ही पड जाती थी ।"

यह है नेत्र सयम का पाठ । आज लोगो का आखो पर सयम बहुत ही दुर्लभ हो रहा है । उसकी नजर चलते-चलते सिनेमा की सुन्दरियो के चित्रो पर दौडेगी । इतना ही नही सिनेमा की तारिकाओ को देखने के लिए भीड उमडेगी पर सन्तो के दर्शन के लिए या भगवान के दर्शन के लिए ? वहा तो समय के अभाव का बहाना बनाया जाएगा । भक्त तुकाराम ने आखो पर सयम के लिए भगवान् से प्रार्थना की है—

पायाली वासना न को दाउ डोला ।
त्याहून आधला बरा च मीं ।।

अर्थात्—"हे प्रभो ! मुझ पर तेरी ऐसी कृपा हो कि मेरी आखो मे पाप की वासना न आए । अगर इतना न कर सका तो मेरा अन्धा बन जाना अच्छा है ।"

रसनेन्द्रिय सयम का अर्थ है, अपनी जिह्वा पर नियत्रण रखना । जीभ से दो काम होते हैं, बोलने का और चखने का । इन दोनो कामो मे सावधानी बरती जाय । बोलने के समय ध्यान रखें कि "मैं जीभ से असत्य, कर्कश, कठोर हिंसाकारी, छेदभेदकारी, फूट डालने वाला, मर्मस्पर्शी, पापवर्द्धक, कामोत्तेजक, अनर्गल वचन तो नही कह रहा हू ।" कई लोग वचन से दूसरो को गाली देकर निन्दा करके, चुगली खा कर असयम मे प्रवृत्त होते हैं । वचन ही आपस मे कलह और युद्ध करवाता है । अत वचन पर काबू रखना बडा कठिन है । सम्प्रदायो, जातियो, समाजो, राष्ट्रो में अगर वचन का विवेक आ जाय तो आपस मे लडना-भिडना बद होकर राग-द्वेष शान्त हो जाय । परन्तु वचन पर असयम तो आज धडल्ले से बढता जा रहा है ।

जीभ से दूसरा काम होता है चखने का, खाने का काम मुह और दातो का है । जबान का काम केवल उसे चखना है कि वह खाना ठीक और पथ्य है या नही ? लेकिन जबान इतनी चटोरी बन जाती है कि चखने का काम छोडकर चटपटी, मसालेदार, स्वादिष्ट, मीठी चीजो के खाने के चक्कर मे पड जाती है, मन को आर्डर देने लगती है कि फला चीज बडी स्वादिष्ट है, वह चीज लाओ ।

यह चीज तो कडवी, कसायली या फीकी है, नहीं चाहिए। इस प्रकार जीभ जब अपनी मर्यादा का उल्लघन करके अपने उत्तरदायित्व को छोड बैठती है, तब असयम मे ले जाकर मनुष्य का सवनाश करा बैठती है।

इसी प्रकार घ्राणेन्द्रिय (नाक) पर सयम रखना भी जरूरी है। नाक पर सयम न रखने के कारण ही मनुष्य आज हजारो फूलो को कुचल कर,निचोड कर बनाए गए सुगन्धित इत्र का उपयोग करता है। इसी प्रकार स्पर्शेन्द्रिय सयम का अर्थ है—कोमल,कामोत्तेजक, गुदगुदाने वाली वस्तुओ का स्पर्श न किया जाय, ऐसी चीजो का उपभोग न किया जाय।

मन पर सयम का रहस्य यही है कि पाचो इन्द्रिया कदाचित् असयम की ओर ले जाने लगें, लेकिन मन उस समय जागृत रहे और उन पर अकुश लगा दे तो मनुष्य जगत् को जीत सकता है। गणधर गौतम स्वामी इसी रहस्य को प्रगट कर रहे हैं —

एगे जिए जिया पच, पच जिए जिया दस।
दसहा उ जिणित्ताण सव्वसत्तु जिणामह ॥

उत्तराध्ययन अ २३ गाथा ३६

एक मन को जीत लेने पर पाचो इन्द्रिया जीती जा सकती हैं। और पाचो इन्द्रियो पर विजय पा लेने के बाद पाचो प्रमाद और पाचो अव्रतो पर विजय पाई जा सकती है। इस प्रकार इन्द्रियो और मन को शिक्षित बना लेने पर इन दसो पर विजेता होकर मैं सब शत्रुओ को जीत लेता हू।"

अन्य बातों पर भी सयम आवश्यक

पाचो इन्द्रियो और मन के अलावा हाथो, पैरो और शरीर पर भी सयम आवश्यक है। हाथो से किसी के थप्पड, घूसा आदि न मारना, चोरी व छीना-झपटी न करना, किसी को धक्का न देना, किसी का बुरा न करना हाथो का सयम है। पैरो से किसी के ठोकर लगाना, किसी को कुचलना, रौंदना, दबाना और लात मारना पैरो का असयम है। उसे रोकना सयम है। इसी प्रकार अपने शरीर से गलत चेष्टाए करना, दूसरे पर बोझ रूप होना, शरीर को गलत प्रवृत्तियो मे लगाना शरीर का असयम है। उस पर काबू रखना शरीर सयम है। इसी प्रकार पृथ्वीकायादि पर सयम भी जीवन मे जरूरी है। जरूरत से अधिक मिट्टी का उपयोग न करना, अग्नि के इस्तेमाल पर कट्रोल करना, हवा का उपयोग भी जरूरत से ज्यादा न करना और वनस्पतिजन्य चीजो का इस्तेमाल भी केवल जीवन-निर्वाह के अतिरिक्त न करना पृथ्वीकाय आदि का सयम है।

इसके अलावा कषायो और वासनाओ पर भी सयम रखना बहुत जरूरी है। यह सयम मन से सबध रखता है। अगर मनुष्य अपने मन और इन्द्रियो पर स्वेच्छा से सयम कर ले तो काफी चीजो पर सयम हो जाता है।

भाग्यशालियो ! काफी विस्तार से मैं आपको सयम मे पुरुषार्थ के बारे मे कह चुका हू । आप अपने जीवन मे सयम को स्थान देंगे तो उससे भौतिक और आध्यात्मिक दोना प्रकार के लाभ होंगे, इसमे कोई सन्देह नही । सयमी जीवन स्वय ही अमृतमय, सुखमय और सतोपमय होता है । अत मन मे दृढ निश्चय कर ले—असजम परियाणामि सजम उवसपवज्जामि—असयम के परिणामों को भलीभाति जानकर मैं सयम को स्वीकार करता हू ।

सयम : पारदर्शी दोहे

❀ छदराज पारदर्शी

(१)

मन्दिर-मस्जिद चच सब, इस तन को ही मान ।
सयम से उपयोग कर, तू खुद ही भगवान ।। १ ।।

(२)

मन उलट नम जायगा, पाएगा आशीष ।
सयम से ससार मे, मिल जाते जगदीश ।। २ ।।

(३)

जीव अनेको जगत मे, पैदा हो मर जाय ।
सयम रख जनहित करें, वे ही अमर कहाय ।। ३ ।।

(४)

सुख-दुःख मे समता रहे, करें भले सब काम ।
सयम मे जीवन रमा, सन्त उसी का नाम ।। ४ ।।

(५)

तन-धन की तकरार है, रूप-मोह बेकार ।
भावना मे भगवान हो, कोई नाम पुकार ।। ५ ।।

(६)

मरना सबको आयगा, जीना-जीना जान ।
आत्मा तो मरती नहीं, अमर बना पहचान ।। ६ ।।

(७)

मरघट पर सब देख लें, समता की तस्वीर ।
एक साथ ही जल रहे, राजा-रक-फकीर ।। ७ ।।

—२६१ ताम्बावती मार्ग, उदयपुर

दीक्षाधारी अकिचन सोहता

ॐ आचार्य श्री आनन्दऋषि जी म सा

साधु वेषधारक भारतवर्ष मे आज लगभग ७० लाख हैं परन्तु इनमे सच्चे साधु या मुनि–दीक्षाधारी कितने हैं ? यह गम्भीर प्रश्न है। अगर सच्चे दीक्षाधारी साधु अल्पसख्या मे भी होते तो वे अपने और समाज के जीवन का कायाकल्प, सुधार या उद्धार कर पाते । परन्तु आज जहा देखें, वहा तथाकथित साधुओ मे सम्पत्ति और जमीन जायदाद के लिए झगडा हो रहा है, आये दिन अदालतो मे मुकदमेबाजी होती है। कही जातीय कलह है तो कही गाव का, तो कही स्थान का है, उनके पीछे तथाकथित साधुओ का हाथ है । ये सब झझट अपना घर-बार और जमीन-जायदाद छोडकर साधुदीक्षा लेने वाले के पीछे क्यो होते हैं ? इन सबका एकमात्र हल क्या है ? इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न को हल करने के लिए महर्षि गौतम ने स्पष्ट शब्दो मे कहा है–

अकिंचणो सोहइ दिक्खधारी

'दीक्षाधारी साधु तो अकिंचन ही सोहता है ।'

साधु की शोभा निस्पृहता है

अब हम इस पर गहराई से विचार करें कि दीक्षाधारी साधु सच्चे माने मे कौन है ? वह किस उद्देश्य से दीक्षित होता है ? उसका अकिंचन रहना क्यो आवश्यक है ? साधुदीक्षा लेने के बाद अकिंचन साधु किस तरह परिग्रह या सग्रह की मोहमाया मे फस जाता है ? अकिंचन बने रहने के उपाय क्या हैं ? तथा अकिंचनता के लिए आवश्यक गुण कौन-कौन से हैं ?

सच्चा दीक्षाधारी साधु–जीवन स्वीकार करते समय अपने घर–बार, जमीन–जायदाद, कुटुम्ब–परिवार एव सोना–चादी आदि सभी प्रकार के परिग्रह को हृदय से छोडता है । वह इसलिए इन सबको छोडता है कि इन सबसे सब–धित ममत्व–बन्धन, आसक्ति और मोह न हो तथा इन दोषो के उत्पन्न होने के साथ ही लडाई-झगडे, कलह, क्लेश, अशान्ति, बेचैनी, चिन्ता आदि पैदा न हो । यह निश्चित है कि जब दीक्षाधारी साधु परिग्रह के प्रपचो मे पड जाता है, तब उसकी मानसिक शान्ति, निश्चिन्तता, सन्तोषवृत्ति एव निममत्व भावना समाप्त हो जाती है, और वह स्व–परकल्याण साधना नही कर सकता । भले ही उसका वेश साधु का होगा, परन्तु उसकी वृत्ति से साधुता, निर्लोभता, निममत्व, शाति और निश्चिन्तता पलायित हो जाएगे ।

साधु जीवन अगीकार करने का जो उद्देश्य था–ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप की साधना द्वारा कर्मक्षय करके मोक्ष प्राप्त करने का, वह इस प्रकार की

परिग्रहवृत्ति—ममत्वग्रन्थि आ जाने पर लुप्त हो जाता है। अत अगर सक्षप में सच्चा दीक्षाधारी कौन है ? यह बताना हो तो हम कह सकते हैं—जो निग्र न्थ है, अपरिग्रही है, वही वास्तव मे सच्चा दीक्षाधारी साधु है, और उसकी शोभा अकिंचन बने रहने मे है। वही जिसके जीवन मे बाह्य और आभ्यन्तर किसी प्रकार के परिग्रह की ग्रन्थि न हो, वही सच्चा गुरु है, सच्चा दीक्षित मुनि या श्रमण है।

केवल घर-बार छोडने या धन-सम्पत्ति का त्याग कर देने मात्र से कोई सच्चा साधु नही माना जा सकता, जब तक कि उसके अन्तर से त्यागवृत्ति न हो, उन वस्तुओ—सचित्त या अचित्त पदार्थों के प्रति उसकी आसक्ति, मोह या लालसा न छूट, उसके मन से इच्छाओ, कामनाओ का त्याग न हो। यहा तक कि अपने धर्मस्थान, शरीर, शिष्य तथा विचरण-क्षेत्र, शास्त्र, पुस्तक आदि पर भी उसके मन मे ममत्व, स्वामित्वभाव या लगाव न हो। दशवैकालिक सूत्र में स्पष्ट कहा है—

> लोहस्सेस अणुप्फासो, मन्ने अन्नयरामवि।
> जे सिया सन्निहिकामे, गिही पव्वइए न से ॥

'निर्ग्रन्थ-मर्यादा का भग करके जिस किसी वस्तु का सग्रह करने की वृत्ति को मैं आन्तरिक लाभ की झलक मानता हू। अत जो सग्रह करने की वृत्ति रखते हैं, वे प्रव्रजित-दीक्षित नही, अपितु सासारिक प्रवृत्तियों मे रचे-पचे गृहस्थ हैं।'

दीक्षा ग्रहण करने से पहले साधु ने जिन मनोज्ञ रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि विषयभोगो की मनोहर, प्रिय वस्त्र, अलकार, स्त्रीजन, शय्या आदि को स्वेच्छा से छोडा है, उन्ही मनोज्ञ,प्रिय एव कमनीय भोग्य वस्तुओ की मन-मे लालसा रखना,उनकी प्राप्ति हो सकती हो या न हो सकती हो, फिर भी उनके लिए मन मे कामनाए सजोना, त्यागी का लक्षण नही है, वह अत्यागी है।

> वत्थगधमलकार इत्थीओ सयणाणि य।
> अच्छदा जे न भुजति, न से चाइत्ति वुच्चइ ॥

—दशवैकालिक अ० २

दीक्षित साधु के समक्ष धन का ढेर लगा होगा, सुन्दर-सुन्दर वस्तुए पडी होगी, अच्छे-अच्छे खाद्य पदार्थ सामने धरे होगे, तो भी वह उनको लेने के लिए मन मे विचार नही करेगा। जैसे कमल कीचड मे पैदा होते हुए भी उससे अलिप्त रहता है वैसे ही सच्चा दीक्षाधारी साधु पक-सम ससार और समाज में रहते हुए भी उनकी प्रवृत्तियो से अलिप्त रहेगा। वह अपने मन में ससार नहीं बसाएगा।

निष्कर्ष यह है कि दीक्षाधारी साधु अपरिग्रही, निममत्व, अनासक्त, निर्लेप, निग्रन्थ एव अकिंचन होना चाहिए । सासारिक बातो का किसी प्रकार रग या लेप उस पर नही होना चाहिए । त्यागी बनकर जो उस त्याग की मन-वचन-काया से अप्रमत्त एव जागरुक होकर साधना करता है, वही सच्चा दीक्षाधारी है, वही स्व-पर-कल्याणसाधक सच्चा साधु है । जो स्वय ससार की मोह-माया मे पड जाता है, वह साधु-जीवन के उद्देश्य के अनुसार कमबधन से मुक्त नही हो सकता और न ही ससार की मोहमाया मे पडे हुए तथा कमबन्धनो मे लिपटे हुए लोगो को सच्चा मागदशन दे सकता है । साधुदीक्षा ग्रहण करके पुनः सासारिक प्रवृत्तियो मे पडने वाला व्यक्ति 'इतोभ्रष्टस्ततो भ्रष्ट' हो जाता है ।

दीक्षा रा दूहा

डॉ नरेन्द्र भानावत

(१)

दीक्षा तम मे जोत ज्यू, खोलै हिय री आख ।
जीवन-नभ मे उडण नै, ज्ञान-क्रिया री पाख ।।

(२)

विषय-वासना पर विजय, दीक्षा शक्ति अनन्त ।
तन-मन री जडता मिटै प्रगटै ज्ञान वसन्त ।।

(३)

भव-नद उलझ्या जीव-हित, दीक्षा निरमल द्वीप ।
गुण-मोती उपजै सदा, विकसै मन री सीप ।।

(४)

करम-लेवडा उतरै, तप सयम रो लेप ।
आतम वै परमातमा, मिटै बीच रो 'गैप' ।।

(५)

भटक्या नै मारग मिलै, अटक्या नै आधार ।
मझधारा नै तट मिलै, उतरै भव रो भार ।।

परिग्रहवृत्ति—ममत्वग्रन्थि आ जाने पर लुप्त हो जाता है । अत अगर समप
सच्चा दीक्षाधारी कौन है ? यह बताना हो तो हम कह सकते है—जो निग्रन्थ
अपरिग्रही है, वही वास्तव मे सच्चा दीक्षाधारी साधु है, और उसकी शो
अकिंचन बने रहने मे है । वही जिसके जीवन मे बाह्य और आभ्यन्तर कि
प्रकार के परिग्रह की ग्रन्थि न हो, वही सच्चा गुरु है, सच्चा दीक्षित मुनि
श्रमण है ।

केवल घर-बार छोडने या धन-सम्पत्ति का त्याग कर देने मात्र से क
सच्चा साधु नही माना जा सकता, जब तक कि उसके अन्तर से त्यागवृत्ति
हो, उन वस्तुओ—सचित्त या अचित्त पदार्थों के प्रति उसकी आसक्ति, मोह
लालसा न छूटे, उसके मन से इच्छाओ, कामनाओ का त्याग न हो । यहा त
कि अपने धर्मस्थान, शरीर, शिष्य तथा विचरण-क्षेत्र, शास्त्र, पुस्तक आदि प
भी उसके मन मे ममत्व, स्वामित्वभाव या लगाव न हो । दशवैकालिक सूत्र
स्पष्ट कहा है—

लोहस्सेस अणुप्फासो, मन्ने अन्नयरामवि ।
जे सिया सन्निहिकामे, गिही पव्वइए न से ॥

'निग्रन्थ-मर्यादा का भग करके जिस किसी वस्तु का सग्रह करन
वृत्ति को मैं आन्तरिक लोभ की झलक मानता हू । अत जो सग्रह करने
वृत्ति रखते हैं, वे प्रव्रजित-दीक्षित नही, अपितु सासारिक प्रवृत्तियो में रचे-प
गृहस्थ है ।'

दीक्षा ग्रहण करने से पहले साधु ने जिन मनोज्ञ रूप, रस, गन्ध, स्प
आदि विषयभोगो की मनोहर, प्रिय वस्त्र, अलकार, स्त्रीजन, शय्या आदि को स्
च्छा से छोडा है, उन्ही मनोज्ञ, प्रिय एव कमनीय भोग्य वस्तुओ की मन मे लालस
रखना, उनकी प्राप्ति हो सकती हो या न हो सकती हो, फिर भी उनके लिए मन
कामनाए सजोना, त्यागी का लक्षण नही है, वह अत्यागी है ।

वत्थगधमलकार इत्थीओ सयणाणि य ।
अच्छदा जे न भु जति, न से चाइत्ति वुच्चइ ॥

—दशवकालिक अ०

दीक्षित साधु के समक्ष धन का ढेर लगा होगा, सु दर-सुन्दर वस्तुए
पडी होगी, अच्छे-अच्छे खाद्य पदार्थ सामने धरे होंगे, तो भी वह उनको लेने
लिए मन मे विचार नही करेगा । जैसे कमल कीचड मे पैदा होते हुए भी उससे
अलिप्त रहता है वैसे ही सच्चा दीक्षाधारी साधु पक-सम ससार और समाज मे
रहते हुए भी उनकी प्रवृत्तियो से अलिप्त रहेगा । वह अपने मन मे ससार नही
बसाएगा ।

निष्कप यह है कि दीक्षाधारी साधु अपरिग्रही, निममत्व, अनासक्त, निर्लेप, निर्ग्रन्थ एव अकिंचन होना चाहिए । सासारिक वातो का किसी प्रकार रग या लेप उस पर नही होना चाहिए । त्यागी बनकर जो उस त्याग की मन-वचन-काया से अप्रमत्त एव जागरुक होकर साधना करता है, वही सच्चा दीक्षाधारी है, वही स्व-पर-कल्याणसाधक सच्चा साधु है । जो स्वय ससार की मोह-माया मे पड जाता है, वह साधु-जीवन के उद्देश्य के अनुसार कमवन्धन से मुक्त नही हो सकता और न ही ससार की मोहमाया मे पडे हुए तथा कमबधनो मे लिपटे हुए लोगो को सच्चा मागदर्शन दे सकता है । साधुदीक्षा ग्रहण करके पुनः सासारिक प्रवृत्तियो मे पडने वाला व्यक्ति 'इतोभ्रष्टस्ततो भ्रष्ट' हो जाता है ।

दीक्षा रा दूहा

डॉ नरेन्द्र भानावत

(१)

दीक्षा तम मे जोत ज्यू, खोले हिय री आख ।
जीवन-नभ मे उडण नै, ज्ञान–क्रिया री पाख ॥

(२)

विपय-वासना पर विजय, दीक्षा शक्ति अनन्त ।
तन-मन री जडता मिटै प्रगटै ज्ञान वसन्त ॥

(३)

भव-नद उलझ्या जीव-हित, दीक्षा निरमल द्वीप ।
गुण-मोती उपजै सदा, विकसै मन री सीप ॥

(४)

करम-लेवडा उतरै, तप सयम रो लेप ।
आतम वै परमातमा, मिटै बीच रो 'गैप' ॥

(५)

भटक्या नै मारग मिलै, अटक्या नै आधार ।
मझधारा नै तट मिलै, उतरै भव रो भार ॥

धर्म-साधना मे जैन साधना की विशिष्टता

❀ आचार्य श्री हस्तीमल जी म सा.

साधना का महत्त्व और प्रकार

साधना मानव जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग है । ससार मे विभिन्न प्रकार के प्राणी जीवन-यापन करते हैं, पर साधना-शून्य होने से उनके जीवन का कोई महत्त्व नही आका जाता । मानव साधना-शील होने से ही सब मे विशिष्ट प्राणी माना जाता है । किसी भी कार्य के लिये विधि पूर्वक पद्धति से किया गया कार्य ही सिद्धि-दायक होता है । भले वह अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष मे से कोई हो । अर्थ व भोग की प्राप्ति के लिये भी साधना करनी पडती है । कठिन से कठिन दिखने वाले कार्य और भयकर स्वभाव के प्राणी भी साधना से सिद्ध कर लिये जाते हैं । साधना मे कोई भी कार्य ऐसा नही जो साधना से सिद्ध न हो । साधना के बल से मानव प्रकृति को भी अनुकूल बना कर अपने अधीन कर लेता है और दुर्दान्त देव-दानव को भी त्याग, तप एव प्रेम के दृढ़ साधन से मनोनुकूल बना पाता है । वन मे निर्भय गर्जन करने वाला केशरी सर्कस मे मास्टर के सकेत पर क्या खेलता है ? मानव की यह कौन-सी शक्ति है, जिससे सिंह, सर्प जैसे भयावने प्राणी भी उससे डरते हैं । यह साधना का ही बल है । सक्षेप में साधना को दो भागो मे बाट सकते हैं—लोक साधना और लोकोत्तर साधना । देश-साधना मन्त्र-साधना, तन्त्र-साधना, विद्या-साधना आदि काम निमित्तक की जाने वाली सभी साधनायें लौकिक और धर्म तथा मोक्ष के लिये की जाने वाली साधना लोकोत्तर या आध्यात्मिक कही जाती हैं । हमे यहा उस अध्यात्म-साधना पर ही विचार करना है, क्योकि जैन साधना अध्यात्म साधना का ही प्रमुख अंग है ।

जैन साधना आस्तिक दर्शनो ने दृश्यमान् तन-धन आदि जड जगत से चेतना सम्पन्न आत्मा को भिन्न और स्वतन्त्र माना है । अनन्तानन्त शक्ति सम्पन्न होकर भी आत्मा कर्म सयोग से, स्वरूप से च्युत हो चुका है । उसकी अनन्त शक्ति पराधीन हो चली है । वह अपने मूल धर्म को भूल कर दु खी, विकल और चिन्तामग्न दृष्टिगोचर होता है । जैन दर्शन की मान्यता है कि कर्म का आवरण दूर हो जाय तो जीव और शिव मे, आत्मा एव परमात्मा मे कोई भेद नही रहता ।

कर्म के पाश मे बधे हुए आत्मा को मुक्त करना प्राय सभी आस्तिक दर्शनो का लक्ष्य है, साध्य है । उसका साधन धर्म ही हो सकता है, जैसा कि सूक्ति मुक्तावली मे कहा है—

> त्रिवर्ग ससाधनमन्तरेण, पशोरिवायु विफल नरस्य ।
> तत्राऽपि धर्म प्रवर वदन्ति, नत विनोयद् भवतोर्थकामो ।

धर्म, अर्थ और काम रूप त्रिवग की साधना के विना मनुष्य का जीवन पशु की तरह निष्फल है। इनमे भी धम मुख्य है क्योकि उसके विना अर्थ एव काम सुख रूप नही होते। धम साधना से मुक्ति को प्राप्त करने का उपदेश मब दर्शनो ने एक–सा दिया है। कुछ ने तो धर्म का लक्षण ही अभ्युदय एव निश्रेयस,माक्ष की सिद्धि माना है। कहा भी है—'यतोऽभ्युदय निश्रेयस सिद्धि रसौ धम' परन्तु उनकी साधना का माग भिन्न है। कोई 'भक्ति रे कैव मुक्तिदा' कहकर भक्ति को ही मुक्ति का साधन कहते है। दूसरे 'शब्दे ब्रह्मणि निष्णात ससिद्धि लभते नर' शब्द ब्रह्म मे निष्णात पुरुष की सिद्धि बतलाते हैं, जैसा कि साख्य आचार्य न भी कहा है—

पच विंशति तत्वज्ञो, यत्र तत्राश्रमे रत
जटी मु डी शिखी वाऽपि, मुच्यते नाम सशय ।

अर्थात् पच्चीस तत्त्व की जानकारी रखने वाला साधक किसी भी आश्रम में और किसी भी अवस्था मे मुक्त हो सकता है। मीमासको ने कम काण्ड को ही मुख्य माना है। इस प्रकार किसी ने ज्ञान को, किसी ने एकान्त कर्म काण्ड-क्रिया को तो किसी ने केवल भक्ति वो ही सिद्धि का कारण माना है। परन्तु वीतराग अर्हन्तो का दृष्टिकोण इस विषय मे भिन्न रहा है। उनका मन्तव्य है कि—एकान्त ज्ञान या क्रिया से सिद्धि नही होती, पूण सिद्धि के लिये ज्ञान, श्रद्धा और चरण-क्रिया का सयुक्त आराधन आवश्यक है। केवल अकेला ज्ञान गति हीन है तो केवल अकेली क्रिया अन्धी है, अत काय-साधक नही हो सकते। जैसा कि पूर्वाचार्यो ने कहा है—'हय नाण क्रिया हीण हया अन्नाणओ क्रिया'। वास्तव मे क्रियाहीन ज्ञान और ज्ञानशून्य क्रिया दोनो सिद्धि मे असमर्थ होने से व्यर्थ है। ज्ञान से चक्षु की तरह माग-कुमाग का बोध होता है, गति नही मिलती। बिना गति के, आखों से रास्ता देख लेने भर मे इष्ट स्थान की प्राप्ति नही होती। मोदक का थाल आंखो के सामने है फिर भी बिना खाये भूख नही मिटती। वैसे ही ज्ञान से तत्वातत्व और माग-कुमाग का बोध होने पर भी तदनुकूल आचरण नही किया तो सिद्धि नही मिलती। ऐसे ही क्रिया है, कोई दौडता है पर मार्ग का ज्ञान नही तो वह भी भटक जायगा। ज्ञान शून्य क्रिया भी घाणी के बैल की तरह भव-चक्र से मुक्त नही कर पाती। अत शास्त्रकारो ने वहा है—'ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्ष'। ज्ञान और क्रिया के सयुक्त साधन से ही सिद्धि हो सकती है। बिना ज्ञान की क्रिया–बाल तप मात्र हो सकती है, साधना नहीं। जैनागमो मे कहा है—

नाणेण जाणइ भाव, वसणेण य सद्दहे ।
चरित्तेण निगिण्हाइ, तनेण परिसुज्झइ ।

अर्थात्—ज्ञान के द्वारा जीवाजीवादि भावो को जानना, हेय और उपादेय को पहचानना, दर्शन से तत्वातत्व यथाथ श्रद्धान करना। चारित्र से आने वाले

रागादि विकार और तज्जन्य कर्म दलिको को रोकना एव तपस्या से पूर्व सचित कर्म का क्षय करना, यही सक्षेप मे मुक्ति मार्ग या आत्म-शुद्धि की साधना है।

आत्मा अनन्त ज्ञान, श्रद्धा, शक्ति और आनन्द का भडार होकर भी अल्पज्ञ, निबल, अशक्त और शोकाकुल एव विश्वासहीन बना हुआ है। हमारा साध्य उसके ज्ञान, श्रद्धा और आनन्द गुण को प्रकट करना है। अज्ञान एव मोह के आवरण को दूर कर आत्मा के पूण ज्ञान तथा वीतराग भाव को प्रकट करना है। इसके लिये अन्धकार मिटाने के लिये प्रकाश की तरह अज्ञान को ज्ञान से नष्ट करना होगा और बाह्य-आभ्यान्तर चारित्र भाव से मोह को निर्मूल करना होगा। पूर्ण द्रष्टा सन्तो ने कहा—साधको ! अज्ञान और राग-द्वेषादि विकार आत्मा में सहज नही है। ये कम-सयोग से उत्पन्न पानी मे मल और दाहकता की तरह विकार हैं। अग्नि और मिट्टी का सयोग मिलते ही जैसे पानी अपने शुद्ध रूप मे आ जाता है। वैसे ही कर्म-सयोग के छूटने पर अज्ञान एव राग-द्वेषादि विकार भी आत्मा से छूट जाते हैं, आत्मा अपने शुद्ध रूप मे आ जाता है। इसका सीधा, सरल और अनुभूत माग यह है कि पहले नवीन कम मल को रोका जाय, फिर सचित मल को क्षीण करने का साधन करें। क्योकि जब तक नये दाप होते रहगे—कम-मल बढता रहेगा और उस स्थिति मे सचित को क्षीण करने की साधना सफल नही होगी। अत आने वाल कम-मल को रोकने के लिये प्रथम हिंसा आदि पाप वृत्तियों से तन-मन और वाणी का सवरण रूप सयम किया जाय और फिर अनशन, स्वाध्याय, ध्यान आदि बाह्य और अन्तरग तप किये जाय तो सचित कर्मो का क्षय सरलता से हो सकेगा।

आचार-साधना शास्त्र मे चारित्र-साधना के अधिकारी भेद से साधना के दो प्रकार प्रस्तुत किये गये हैं—१ देश विरति साधना और २ सव विरति साधना। प्रथम प्रकार की साधना आरभ-परिग्रह वाले गृहस्थ की होती है। सम्पूण हिंसादि पापो के त्याग की असमथ दशा मे गृहस्थ हिंसा आदि पापो का आंशिक त्याग करता है। मर्यादाशील जीवन की साधना करते हुये भी पूण हिंसा आदि पापो का त्याग करना वह इष्ट मानता है, पर सासारिक विक्षेप के कारण वैसा कर नही पाता। इसे वह अपनी कमजोरी मानता है। अर्थ व काम का सेवन करते हुये भी वह जीवन मे धम को प्रमुख समझकर चलता है। जहाँ भी अथ और काम से धम को ठेस पहुँचती हो वहाँ वह इच्छा का सवरण कर लेता है। मासिक छ दिन पौषध और प्रतिदिन सामायिक की साधना से गृहस्थ भी अपना आत्म-बल बढाने का प्रयत्न करे और प्रतिक्रमण द्वारा प्रात साय अपनी दिनचर्या का सूक्ष्म रूप मे अवलोकन कर अहिंसा आदि व्रतो मे लगे हुए, दोषो की शुद्धि करता हुआ आगे बढने की कोशिश करे, यह गृहस्थ जीवन की साधना है।

अन्य दर्शनो मे गृहस्थ का देश साधना का ऐसा विधान नही मिलता, उसके नीति धर्म का अवश्य उल्लेख है, पर गृहस्थ भी स्थूल रूप से हिंसा, असत्य,

अदत्त ग्रहण, कुशील और परिग्रह की मर्यादा करे ऐसा वणन नही मिलता। वहा कृषि-पशुपालन को वैश्य धम, हिंसक प्राणियो को मार कर जनता को निर्भय करना क्षत्रिय धर्म, कन्यादान आदि रूप से ससार की प्रवृत्तियो को भी धर्म कहा है जबकि जैन धम ने अनिवाय स्थिति मे की जाने वाली हिंसा और कन्यादान एव विवाह आदि को धर्म नही माना है। वीतराग न कहा—मानव ! धन-दारा-परिवार और राज्य पाकर भी अनावश्यक हिंसा, असत्य, और सग्रह से बचने की चेष्टा करना, विवाहित होकर स्वपत्नी या पति के साथ सन्तोष या मर्यादा रखोगे, जितना कुशील भाव घटाओगे, वही धर्म है। अथ-सग्रह करते अनीति से वचोगे और लालसा पर नियन्त्रण रखोगे, वह धर्म है। युद्ध मे भी हिंसा भाव से नही, किन्तु आत्म रक्षा या न्याय की दृष्टि से यथाशक्य युद्ध टालने की कोशिश करना और विवश स्थिति मे होने वाली हिंसा को भी हिंसा मानते हुए रसानुभूति नही करना अर्थात् मार कर भी हर्ष एव गर्वानुभूति नही करना, यह धर्म है। घर के आरम्भ मे परिवार पालन, अतिथि तपण या समाज रक्षण काय मे भी दिखावे की दृष्टि नही रखते हुए अनावश्यक हिंसा से वचना धम है। गृहस्थ का दण्ड-विधान कुशल प्रजापति की तरह है, जो भीतर मे हाथ रख कर बाहर चोट मारता है। गृहस्थ ससार के आरम्भ-परिग्रह मे दशक की तरह रहता है, भोक्ता रूप मे नही।

'असतुष्टा द्विजानष्टा, सन्तुष्टाश्च मही भुज' की उक्ति से अन्यत्र राजा का सन्तुष्ट रहना दूषण वतलाया गया है, वहाँ जैन दशन ने राजा को भी अपने राज्य मे सन्तुष्ट रहना कहा है। गणतन्त्र के अध्यक्ष चेटक महाराज और उदायन जैसे राजाओ ने भी इच्छा परिमाण कर ससार मे शान्ति कायम रखने की स्थिति मे अनुकरणीय चरण वढाये थे। देश सयम द्वारा जीवन-सुधार करते हुए मरण-सुधार द्वारा आत्म-शक्ति प्राप्त करना गृहस्थ का भी चरम एव परम लक्ष्य होता है।

सर्वविरति साधना सम्पूर्ण आरम्भ और कनकादि परिग्रह के त्यागी मुनि की साधना पूण साधना है। जैन मुनि एव आर्या को मन, वाणी एव काय से सम्पूर्ण हिंसा, असत्य, अदत्त ग्रहण, कुशील आर परिग्रह आदि पापो का त्याग होता है। स्वय किसी प्रकार के पाप का सेवन करना नही, अन्य से करवाना नही और हिंसादि पाप करने वाले का अनुमोदन भी करना नही, यह मुनि जीवन की पूर्ण साधना है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति जैसे सूक्ष्म जीवो की भी जिसमे हिंसा हो, वैसे काय वह त्रिकरण त्रियोग से नही करता। गृहस्थ अपने लिए आग जला कर तप रहे हैं, यह कह कर वह कडी सर्दी मे भी वहाँ तपने का नही वैठता। गृहस्थ के लिए सहज चलने वाली गाडी का भी वह उपयोग नही करता, और जहाँ रात भर दीपक या अग्नि जलती हो वहा नही ठहरता। उसकी अहिंसा पूर्ण कोटि की साधना है। वह सवथा पाप कम का त्यागी होता है।

फिर भी जब तक राग दशा है, साधना की ज्योति टिमटिमाते दीपक

की तरह अस्थिर होती है। जरा से झोंके मे उसके गुल होने का खतरा है हवादार मैदान के दीपक की तरह उसे विपय-कपाय एव प्रमाद के तेज झटक भय रहता है। एतदथ सुरक्षा हेतु आहार-विहार-ससग और सयम पूण दिनच की काच भित्ति मे साधना के दीपक को मर्यादित रखा जाता है।

साधक को अपनी मर्यादा मे सतत जागरूक तथा आत्म निरीक्षक हो चलने की आवश्यकता है। वह परिमित एव निर्दोष आहार ग्रहण करे, अपन हीन गुणी की सगति नही करे। साध्वी का पुरुष मण्डल से और साधु का स जनो से एकान्त तथा अमर्यादित सग न हो क्योंकि अति परिचय साधना मे वि का कारण होता है। सव विरति साधको के लिए शास्त्र मे कहा है—"गि सथव न कुन्जा, कुज्जा साहुहि सथव"।

साधनाशील पुरुष ससारी जनों का अधिक सग-परिचय न करे। साधक जनो का ही सग करे। इससे साधक को साधना मे बल मिलेगा स ससार के काम, क्रोध, मोह के वातावरण से वह बचा रह सकेगा। साधना आगे बढने के लिए यह आवश्यक है कि साधक महिमा, पूजा और अहकार दूर रहे।

साधना के सहायक—जैनाचार्यों ने साधना के दो कारण माने हैं, अ न्तरग और बहिरग। देव, गुरु, सत्सग, शास्त्र और स्वरूप शरीर एव शान्त, एका स्थान आदि को बहिरग साधन माना है। जिसको निमित्त कहते हैं। बहिर साधन बदलते रहते हैं। प्रशान्त मन और ज्ञानावरण का क्षयोपशम अन्तर साधन है। इसे अनिवाय माना गया है। शुभ वातावरण मे आन्तरिक साधन अनायास जागृत होता और क्रियाशील रहता है। पर बिना मन की अनुकूलता के वे काय कारी नही होते। भगवान महावीर का उपदेश पाकर भी कूणिक अपनी बढी हुई लालसा को शान्त नहीं कर सका, कारण अन्तर साधन प्रशान्त मन नही था। सामान्य रूप से साधना की प्रगति के लिए स्वस्थ-समथ-तन, शान्त एकान्त स्थान, विघ्न रहित अनुकूल समय, सबल और निमल मन तथा शिथिल मन को प्रेरित करने वाले गुणाधिक योग्य साथी की नितान्त आवश्यकता रहती है। जैसा कि कहा है—

> तस्सेस मग्गो गुरुविद्ध सेवा, विवज्जणा बाल जणस्स दूरा।
> सज्झाय एगत निसेवणाय, सुत्तत्थ सचितणया धिईय॥

इसमे गुरु और वृद्ध पुरुषों की सेवा तथा एकान्त सेवन का बाह्य साधन और स्वाध्याय, सूत्राथ चिन्तन एव धम को अन्तर साधन कहा है। अधीर मन वाला साधक सिद्धि नहीं मिला सकता। जन साधना मे साधक को सच्चे सैनिक की तरह विजय-साधना में शका, काक्षा रहित, धीर-वीर, जीवन-मरण मे निस्पृह और दृढ सकल्प बली होना चाहिये। जसे वीर सनिक, प्रिय पुत्र, कलत्र या स्नेह

भूलकर जीवन-निरपेक्ष समर भूमि मे कूद पडता है, पीछे क्या होगा, इसकी उसे चिन्ता नही होती । वह आगे कूच का ही ध्यान रखता है । वह दृढ लक्ष्य और अचल मन से यह सोचकर बढता है कि—"जितो वा लभ्यसे राज्य, मृत स्वर्ग म्वप्स्यसे । उसकी एक ही धुन होती है—

"सूरा चढ़ सग्राम मे, फिर पाछो मत जोय ।
उतर जा चौगान मे, कर्ता करे सो होय ।।"

वैसे साधना का सेनानी साधक भी परिषह और उपसग का भय किये बिना निराकुल भाव से वीर गजसुकुमाल की तरह भय और लालच को छोड एक भाव से जूझ पडता है । जो शकालु होता है वह सिद्धि नही मिलाता । विघ्नो की परवाह किये बिना 'कार्यं व साधवेय देह वापात येयम्' के अटल विश्वास मे साहस पूर्वक आगे बढते जाना ही जैन साधक का व्रत है । वह 'कखे गुणे जाव सरीर भेओ' वचन के अनुसार आजीवन गुणो का सग्रह एव आराधन करते जाता है ।

साधना के विघ्न —साधन की तरह कुछ साधक के बाधक विघ्न या शत्रु भी होते हैं, जो साधक के आन्तरिक बल को क्षीण कर उसे मेरु के शिखर से नीचे गिरा देते हैं । वे शत्रु कोई देव, दानव नही पर भीतर के ही मानसिक विकार हैं । विश्वामित्र को इन्द्र की दैवी शक्ति ने नही गिराया, गिराया उसके भीतर के राग ने । सभूति मुनि ने तपस्या से लब्धि प्राप्त कर ली, उसका तप बडा कठोर था । नमुचि मन्त्री उन्हें निर्वासित करना चाहता पर नही कर सका, सम्राट, सनत्कुमार को अन्त पुर सहित आकर इसके लिये क्षमा याचना करनी पडी, परन्तु रानी के कोमल स्पर्श और चक्रवर्ती के ऐश्वय मे जब राग किया तब वे भी पराजित हो गये । अत साधक को काम, क्रोध, लोभ, भय और अहकार से सतत जागरूक रहना चाहिये । ये हमारे भयकर शत्रु है । भक्तो का सम्मान और अभिवादन रमणीय-हितकर भी हलाहल विप का काम करेगा ।

संयम-जीवन में निर्ग्रन्थ

❀ साध्वी डॉ मुक्तिप्रभा

आत्मा के चारित्र गुण के विकास मे बाधक बनने वाली ग्रथिया आत्म-न्नति मे गति और प्रगति नही करने देती अत इन बाधक ग्रथियो को तोडने वाला ही निग्रन्थ कहलाता है ।

ग्रथि अर्थात् गाठ । गाठ वस्त्र की होती है, डोरी की होती है, रस्सी की होती है, साकल की होती है और मन की भी होती है । वस्त्र, डोरी इत्यादि की गाठ स्थूल है, पर मन की गाठ सूक्ष्म है, जो इन्द्रियातीत है । मन की गाठें अनेक प्रकार की हैं—जैसे अज्ञान की ग्रथि, वैर की ग्रथि, अह की ग्रथि, ममत्व की ग्रथि, माया-कपट की ग्रथि, लोभ-लालच की ग्रथि, राग-द्वेष की ग्रथि इत्यादि अनेक प्रकार की ग्रथिया मन मे होती रहती हैं जो इतनी सूक्ष्म होती हैं कि जीव खोलने में असमथ हो जाता है और ससार परिभ्रमण का आवत वधमान होता रहता है ।

ये सारी ग थिया निग्रन्थ सत—मुनि महात्माओ की साधना म बाधक होने मे साधक अपनी आत्मोन्नति के लिए पराश्रित हो जाता है । पराश्रय स्वाव लम्बी साधक के लिए सबसे बडी समस्या है, दुविधा है, कलक है । इन दुविधाओ मे साधक जिस प्रवृत्ति मे प्रवृत्तमान रहता है, वह सारी प्रवृत्ति बाधक रूप ही है। अर्थात् प्रवृत्ति ही पराश्रय है । "पर" अर्थात् जिससे नित्य सम्बन्ध नही है । जो पदार्थ स्वय नित्य नही उसका आश्रय नित्य कैसे हो सकता है ? अत निग्रन्थ अनित्य के आश्रित नही होता पर पदाथ का उपयोग मात्र स्वीकार करता है । पदार्थ के अभाव का महत्व नही है, पदार्थ के त्याग का महत्व है । पदार्थों की सम्पूर्ण उपलब्धि होने पर भी पदार्थ के प्रति जो ममत्व है उसके अभाव का महत्त्व है ।

अज्ञान, विपरीत ज्ञान, सशय, कदाग्रह की ग्रथिया आत्मा के दर्शन गुण पर आवरण करती रहती हैं । फलत उन ग्रथियो द्वारा साधक सम्यक् दशन को प्राप्त करने मे असमथ रहता है ।

विषय-कषायात्मक ग्रथियां चारित्र गुण पर आवरण करती हैं फल-स्वरूप विशुद्धि प्रगट होने नही देती ।

इन ग्रथियो द्वारा साधक का आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक तीनो प्रकार से पतन होता रहता है । वह दु ख, वैर, मत्सरभाव का बोझा ढोता रहता है ।

श्रमण के लिए सतत जागरूकता अपेक्षित है। "आचाराग सूत्र" मे कहा है कि—

"सुत्ता अमुणी सया, मुणिणो सया जागरति।"

साधक असत् प्रवृत्तियो से स्वय को बचाता हुआ जागरूक अवस्था मे सहज समाधिपूर्वक जीवन यात्रा सम्पन्न करे।

सहज समाधि का उपाय है—तीनो योगो को वश मे करके शुभ और शुद्ध प्रवृत्तियो मे सलग्न हो जाना। जो साधक प्रवृत्ति करते समय जाग्रत होता है, वह प्रवृत्ति मे प्रवृत्तमान होने पर भी निवृत्त रहता है जैसे—

"जय चरे जय चिट्ठे, जयमासे जयसये,
जय भुञ्जन्तो भासतो, पाव कम्म न बधई॥"

निवृत्त साधक उठते, बैठते, सोते, खाते प्रत्येक प्रवृत्ति करने मे जागृत होने के कारण पाप कर्मो से मुक्त रहता है, इसे सहज निवृत्ति कहा जाता है। सहज निवृत्ति अर्थात् समिति-गुप्ति। श्रमण अपनी योग्यता, क्षमता और परिस्थिति के अनुसार ही समिति-गुप्ति की साधना मे सफलता प्राप्त कर सकता है।

चित्त विशुद्धि ही विकास केन्द्र है। जिस बिन्दु पर एकाग्रता टिकी हुयी है। वही अशुभ प्रवृत्तियो का शमन और शुभ एव शुद्ध प्रवृत्तियो का प्रादुर्भाव करती है। शुभ और शुद्ध प्रवृत्तियो के आचरण से, अशुभ और अशुद्ध प्रवृत्तियो के उपशम से समिति और गुप्ति का विधान किया गया है।

गुप्तिया योग की अशुभ प्रवृत्तियो को रोकती हैं और समितिया चारित्र की शुभ प्रवृत्तियो मे साधक को विचरण कराती हैं। इन समिति गुप्तियो की प्रतिपालना श्रमणो के लिए आवश्यक ही नही, अनिवार्य है। क्योकि श्रमण के महाव्रतो का रक्षण और पोषण इन्ही से होता है।

सामान्यत मन को असद् एव अशुभ विकल्पो से बचाना मनोगुप्ति है। वाणी-विवेक, वाणी-सयम और वाणी-विरोध ही वचनगुप्ति है। इसी प्रकार बाह्य प्रवृत्ति तथा इन्द्रियो के व्यापार मे काययोग का निरोध कायगुप्ति है।

मन कभी खाली नही रहता, कुछ न कुछ प्रवृत्ति करना उसका स्वभाव है। बाह्य और आन्तरिक दोनो प्रवृत्ति और निवृत्ति वह करता ही रहता है। अत साधक समय-समय पर अशुभ प्रवृत्तियो से हटता रहे और शुभ एव शुद्ध प्रवृत्तियो मे प्रवर्तमान होता रहे जिससे आत्म-परिणाम मे विशुद्धियो का प्रकर्ष होता रहे और मलिनता विनष्ट होती रहे। यही साधक जीवन का चरम लक्ष है।

विकल्प जनित अशुद्धियो से साधक का मन विक्षिप्त होता है। विक्षिप्त मन राग-द्वेष, वैर-विरोध, मान-सम्मान इत्यादि मे गहरे सस्कार जमा करता रहता है, वे ही सस्कार ग्रथियो का रूप धारण करते हैं—जैसे अमोनिया पर

जल की धाराए वहायी जाती हैं तो वह बर्फ बन जाती है, पानी जम जाता है। मनोग्रथियो की भी यही स्थिति है। आत्मतत्त्व मे जिन परिणामो का परिणमन होता है उसका प्रभाव चेतन पर पडता है, चेतन में जो अध्यवसाय होते हैं वे ही शुभाशुभ के अनुरूप लेश्या, योग और वध का रूप धारण करते हैं। इस प्रकार जो भी सवेदनाए प्रवहमान होती हैं, वे सभी ग्रथियो का रूप धारण करती रहती हैं और मन मे गाठ जमती रहती है।

साधक मात्र के लिये ग्रथियो का उपयोग जानना आवश्यक है। उसका लक्ष्य क्या है ? उस लक्ष्य की प्राप्ति का साधन क्या है ? लक्ष्य उसे कहते हैं जिसकी प्राप्ति अनियाय हो। यह मानव मात्र का प्रश्न है कि वास्तविक जीवन क्या है ? उस जीवन का निरीक्षण करना, परीक्षण करना, खोजना, पाना इत्यादि इस जीवन का परम पुरुषार्थ है। सामान्य जन की अपेक्षा साधक जीवन का यह जीवन अनिवार्य होता है। क्योकि साधक अपनी साधना द्वारा पर पदार्थों से विमुख होता है और स्वान्त मे सम्मुख होता जाता है। उसे मानसिक, वाचिक, कायिक प्रवृत्तियो मे बुद्धि, इन्द्रिया, मन, पद, प्रतिष्ठा, सामर्थ्य, योग्यता इत्यादि परिस्थितियों से अपने आपको असग रखना अनिवार्य है। इस असगता से ही वास्तविक जीवन की अभिव्यक्ति हो सकती है।

आचाय हरिभद्र ने 'योग बिन्दु' मे अधिकारी साधको की दो कोटिया बताई हैं—१ अचरमावर्त्ती और २—चरमावर्त्ती।

प्रथम कोटि के साधक की प्रवृत्ति भोगासक्त, ससाराभिमुख तथा विप अनुष्ठान रूप होती है अत ऐसा साधक साधना भी करता है तो उसकी वृत्ति क्षुद्र, भयभीत, ईर्षालु और कपटी होती है। इसम आतरिक विशुद्धि का अभाव रहता है। जो भी अनुष्ठान वे करते हैं तथा अन्यो को करवाते हैं वे सारे लौकिक कामना की पूर्ति हेतु करवाते हैं जिसका आकपण-केन्द्र भी भाग का ही होता है। ऐसे साधक अध्यात्म सम्मुख कभी नही हो सकते।

दूसरी कोटि के साधक चरमावर्ती हैं। ऐसा साधक स्व-स्वभाव मे ही स्थिर रहता है। जो स्व मे स्थिर है उसे पर मे पराश्रित होने की आवश्यकता नही है, पर पदाथ मात्र सहायक है। इस प्रकार की उसे वास्तविक अविचल आस्था अनिवाय होती है।

दूसरी कोटि का साधक ही ग्रथि-भेद की प्रक्रिया मे समथ होता है वह राग-द्वेष-मोह आदि मनोविकार-ग्रथियो से सघप करता है। वह अपने परिणाम का इतना विशुद्ध करता है कि आवेग और उत्तेजना की स्थिति मे वह सम-सवेग और निर्वेद के प्रवाह मे प्रवहमान हो जाय।

निर्ग्रन्थ की सफलता का प्रथम चरण है समभाव और शान्ति। समभाव

का अर्थ है अनुकूल और प्रतिकूल दोनों ही परिस्थितियो मे तन और मन को सतुलित बनाये रखना ।

शान्ति का अभिप्राय है मानसिक सकल्पो-विकल्पो मे न उलझना । भौतिक सुख-भोग का सकल्प साधक को शाति से विमुख कर देता है ।

शान्ति मे सामर्थ्य और स्वाधीनता है, समता मे सब दु खो की निवृत्ति और अमरत्व है । इस दृष्टि से प्रत्येक श्रमण के लिए शान्ति, समता, स्वाधीनता और अमरत्व का अनुभव अनिवाय है । शाति के अभाव मे समता का, समता के अभाव मे स्वाधीनना का, स्वाधीनता के अभाव मे अमरत्व का प्रादुर्भाव नही होता । शान्ति सर्वतोमुखी विकास भूमि है । इस उर्वराभूमि मे अनावश्यक सकल्पो की निवृत्ति स्वत हो जाती है और निर्विकल्प दशा की प्राप्ति हो जाती है ।

सकल्प-विकल्प मे आबद्ध मानव न तो अपने ही लिए उपयोगी होता है न समभाव और शान्ति का उपयोग कर सकता है । अत श्रमण का द्वितीय चरण है सकल्प-विकल्प रहित निर्विकल्प अवस्था मे जितने समय टिका रहे, उतनी स्थिरता अनिवाय है । यह मात्र शान्ति के प्रभाव से ही साध्य है ।

शुभाशुभ सकल्पो के द्वद्व से मुक्त होने का उपाय समभाव और शान्ति साधक का सहज स्वभाव है । जो स्वभाव है, विद्यमान है, उसी की अभिव्यक्ति होती है । पर विभाव दशा मे अ तरग प्रवृत्ति भी ग्र थियो का ही कारण बनती है । साधक का आचरण बाह्य या ऊपर ही ऊपर रहता है और राग-द्वेष की विभिन्न ग्र थिया जड जमाकर बैठी ई, वहा धम कैसे स्थान पा सकता है ? धम तो चेतना के ऊपरी स्तर तक ही रह जाता है, धार्मिक मिद्धा तो का दोहराना मात्र रह जाता है ।

अन्तर म भरी राग-द्वेष की तरह तरह की ग्र थिया भले ही ऊपर से सज्जनता का रूप धारण करती हो पर इससे मन विक्षिप्त, विपमता और अशाति रूप हो जाता है फलत न तो वह व्यावहारिक जगत मे सफल होता है और न आध्यात्मिक क्षेत्र मे । इस प्रकार असन्तुष्ट जीवन जीने वाला व्यक्ति समभाव और शाति कैसे प्राप्त कर सकता है ? वह अह मे जीता है और उसकी तुष्टि न होने पर उसका व्यक्तित्व विखडित होने लगता है । उसे स्वय अपने आप पर भी विश्वास नही रहता । वह आये दिन विभिन्न प्रकार के विरोधियो का चक्रव्यूह, अखाडा तैयार करता रहता है । राग और द्वेष का आधार स्वाथबुद्धि पर निभर होता है । स्वाथ अपना भी होता है और पराया भी होता है । स्वाथ होने से अपने पर राग भी होता है और क्रोध भी होता है । जैसे अपने, स्वजन के प्रति आत्मीयता होने से वहा मेरी बात नकारात्मक नही हो सकती, अगर होती है तो उसका क्रोध रूप मे परिणमन हो जाता है । यह परिणमन रागात्मक ग्र थि का होता है पर पराया तो पराया ही है । उसके प्रति आत्मीयता का अभाव है,

फिर भी वह टकराता है—वहा द्वेष की ग्रथि बन जाती है। इस प्रकार अपन पराये, राग-द्वेप, अहकार-ममकार रूप आधार को समाप्त किये बिना ग्रथिभेद नही हो पाता।

वैज्ञानिको ने आविष्कार तो प्रचुर मात्रा मे किये हैं, सुख-सुविधाओ के साधन भी प्रचुर मात्रा मे प्रादुर्भूत हुए है, किन्तु वास्तविकता मे उपहार स्वरूप मिली है उनको विभिन्न प्रकार की मनोग्रथिया/मनोवैज्ञानिको ने इस विषय पर शोध करके निष्कर्ष निकाला है कि मानव इन ग्रथियो का अन्तर-मानस मे प्रति क्षण प्रादुर्भाव करता है और विशेष रूप में उसका सचय करता रहता है। फलत इससे मत्सर भाव का विशेष प्रयोग देखा जाता है।

इस प्रकार व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक क्षेत्रो मे भी ये ग्रथिया अपना प्रभाव दिखाती रहती हैं।

सयमी श्रमण साधक के लिए इन ग्रथियो का ग्रथिभेद हितकर और श्रेयस्कर है। कोई भी श्रमण निर्ग्रन्थ तब कहलाता है जब वह ग्रथिभेद मे ऊपर उठता है। ग्रथि-भेद से निर्ग्रथ की चेतना का प्रवाह सहज हो जाता है। किसी भी प्रकार की रूकावटें अब मार्ग मे प्रवेश नही हो सकती। ऐसा साधक बहिरात्मदशा से अन्तरात्मदशा मे निरन्तर प्रवृत्तमान रहता है। विशुद्ध चित्त वृत्ति होने के कारण साधक क्रमश अप्रमत्तदशा मे अपनी साधना मे सलग्न रहता है।

इस प्रकार ग्रथि-भेद से साधक निग्रन्थ बनता है और निग्रन्थ की सहज साधना से मुक्ति-पथ का पथिक बनता है।

भेद-विज्ञान

❀ श्री लोकेश जैन

महात्मा मसूर का जल्लाद जब सूली की ओर ले जाने लगे, तब उन्होने कहा कि यह सूली नही, स्वर्ग की सीढी है। जब विरोधियो ने उन पर पत्थर बरसाये तो बोले—"आप लोग मुझ पर फूल बरसा रहे हैं।" जब उनके दोनो हाथ काट डाले गये, तब बोले—"मेरे भीतरी हाथ कोई नही काट सकता, जिनसे मैं अमरता के रस का प्याला पी रहा हू।" जब उनके दोनो पाव काट डाले गये तब उन्होंने कहा—"जिन पावो से मैं इस पृथ्वी पर चलता हू, उन्हे तो काट दिया गया है, परन्तु जिन पावो से मैं स्वर्ग की ओर बढ रहा हू, उन्हें कोई नही काट सकता।" हाथो से बहने वाले खून को चेहरे पर लगाते हुए जड-चिन्तन के भेद के ज्ञाता मसूर ने आश्चर्य मे पडे लोगो से कहा—लोगो को हाथ पाव से रहित मेरा चेहरा भद्दा न लगे, इसलिये मैं इसे लाल रग से रग रहा हू।

—७०६, महावीर नगर, टोक रोड, जयपुर-३०२०१५

सयम : नीव की पहली ईट

❀ आचार्य श्री विद्यानन्द मुनिजी

सयम का जीवन मे वहुत ऊ चा स्थान है । धम के क्षमा, आजव, मादव, आदि सभी अ ग सयम पूवक ही पालन किये जा सकते है । जसे क्षमा मे क्रोध का सयम किया जाता है, मादव मे कठोर परिणामो का सयम किया जाता है, आजव मे मायाचार का सयम निहित है वैसे ही सत्य मे मिथ्या का नियमन आवश्यक है । साराश यह है कि जैसे माला के प्रत्येक पुष्प मे सूत्र पिरोया होता है वैसे ही धम के सभी अ गो मे सयम स्थित है । मन, वचन और काय के योग को सयम कहते ह और कोई भी सत्काय त्रि-योग सभाले विना नही होता । काय की सुचारुता तथा पूणता त्रि योग पर निभर है और त्रि-योग का किसी पवित्र लक्ष्य पर एकीभाव ही सयम है । इसी को साकेतिक अभिव्यक्ति देत हुए 'इन्द्रियनिरोध सयम'—कहा गया है ।

इन्द्रियो की प्रवृत्ति बहुमुखी है । जीवन मे सफलता प्राप्त करने के लिए सभी इन्द्रियो के धम (स्वभाव) सहायक होते है तथापि क्रिया-सिद्धि के लिए उन्हे सयत तथा केन्द्रित रखना आवश्यक होता है । यदि काय करत समय इन्द्रिय-समूह इधर-उधर दौडता रहेगा, तो यह स्थिति ठीक वैसी ही होगी जसी रथ मे जुते हुए विभिन्न दिशाओ मे दौडने वाल अश्वो से उत्पन्न हो जाती है । ऐसे रथ मे वैठा हुआ यात्री कभी निरापद नही रह सकता । नीतिकारो ने तो यहा तक कहा है कि यदि पाचो इन्द्रियो मे से किसी एक इन्द्रिय मे भी विकार हो जाए तो उस मनुष्य की वुद्धि-बल-शक्ति वैसे ही क्षीण हो जाती है जैसे छिद्र होने पर कलश में से पानी निकल जाता है । 'पचेन्द्रियस्य मत्यस्य' छिद्र चेदेकमिन्द्रियम, ततोऽस्य स्रवति प्रज्ञा हते पात्रादिवोदकम्'—फिर जिन मनुष्यो की इन्द्रिय-क्षुधा इतनी बढी हुई हो कि रात-दिन पाचो इन्द्रियो से भोगो का आस्वादन करते रहे उनमें विनाश के चिह्न दिखायी दें, पतन होने लगे तो क्या आश्चर्य ? इसी को लक्ष्य कर सयम की स्थूल परिभाषा करत हुए इन्द्रिय निरोध को महत्त्वपूण बताया गया है । सस्कृत भाषा, जिसका यह शब्द (सयम) है, वडी वैज्ञानिक भारती है । 'यभ्' धातु का अथ मैथुन या विषयेच्छा है और 'यम्' धातु का अथ दमन या सयम है । 'भ' के पश्चात 'म' वण आता है । 'यभ' में जो फस गया उसका उद्धार नही और जो 'यम' तक पहु च गया, उसे यम का भय नही । अग्नि, अग्नि का जला नही सकती और यम को यम मार नही सकता । इसी आशय से वैदिको न कहा कि 'काल कालेन पीडयिन्'—काल को ऋषि काल से ही पीडित करते थे । जो स्वय सयमशील नही हैं, उन्हे ही यम का भय है । सयमी

व्यक्ति तो घोषणा करता है कि 'न मृत्यवे अवतस्थे कदाचन'—मैं कभी मृत्यु लिए नही बना । सयम-पालन से इच्छा-मृत्यु होती है ।

शास्त्रकारो ने कहा है कि 'व्रतसमितिकषाणाणा दण्डाना तथेन्द्रिय पचानाम् । धारणपालननिग्रहत्याग जया सयमो भणित ।' अर्थात् व्रतो का धार समितियो का पालन, कषायो का निग्रह, दण्डो का त्याग तथा पाचो इन्द्रियों जीतना उत्तम सयम कहा गया है । इस पर विचार किया जाए तो सम्पूर्ण मु चर्या सयम के अन्तर्गत परिलक्षित होती है । मुनि के मूल गुणो की रक्षा स से ही सम्भव है ।

सयम का पालन अपने आध्यात्मिक कोष का सवधन है । जसे स मे लोग आर्थिक उपार्जन कर 'बक-बैलेंस' बढाते हैं, वैसे ही सयमी अपनी आ को शुभोपयोग मे लगाने वाले द्रव्य को परिवर्धित करते हैं । जो लोग अपने व बल, पराक्रम, बुद्धि तथा वीय को ससार मे लगाते हैं, वे मानो अपनी पूजी जुए मे हार रहे हैं । इन्द्रिय-विषयो ने रूप-राग की जो चौपड बिछा रखी उस पर उनके सद्गुण, सद्वित्त दाव पर लग रहे हैं, परन्तु आश्चय इस बात का है कि विषय-द्यूत मे अपनी वीय-रूपी उत्तम पूजी को हार कर भी, गवा भी लोग दुखी नही होते । साधारण जुए मे तो पराजित को दुख होता द जाता है, परन्तु जो सयमी हैं उनका धन सुरक्षित रहता है ।

सयम से जो शक्ति प्राप्त होती है, सचय होता है वह मानव-जीवन ऊचा उठाता है । असयम और सयम मे यही मुख्य भेद है । असयम सीढिया नीचे उतरने का मार्ग है और सयम ऊपर जाने का । 'उन्नत मानस यस्य भा तस्य समुन्नतम्'—जिसका मन ऊचा होता है उसका परिणाम शुभ होता है, अ मन की उच्चता परिणामो पर निभर है । ससार के प्राणियो को सचय परिग्रह की आदत है, परन्तु सयम-रूप सुपरिग्रह का सचय करने की ओर उन ध्यान नही है । यदि हम सयम का सचय करने लगें तो आज के बहुत से अभा की दुष्ट अनुभूति से बच सकते हैं ।

सयम के विरोधी गुणों का वर्गीकरण करें तो पता चलेगा भोग, लोभ, व्यभिचार, अब्रह्मचय, मिथ्याभाषण इत्यादि गलत ऐसे दुर्व्यसन जिन्होने आज के मानव-जीवन को दबोच रखा है । सयम न रखने वाले इन बहुत दुखी हैं । यदि सयम धारण करलें तो, इन दुर्व्याधियो से मुक्त हो सक हैं । अनावश्यक खाने-पहनने की वस्तुओ का सचय करने से मनुष्य पर आर्थि भार बढता है और यही सारे अनर्थो की जड है । आज के मानव ने अपन आवश्यकताए इतनी असगत बना ली है कि वह अपने ही बुने जाल मे फस गा है । इनसे त्राण का मार्ग सयम है । परिग्रह-परिमाण भी सयम का ही अग है

जैसे सुरक्षित धन सकट के समय काम आता है, वैसे ही सयम मनुष्य-जीवन की प्रगति मे सदैव सहायता करता है। जिसने सयम को अपना मित्र बना लिया है, उसके सभी मित्र बनने को तैयार रहते हैं, क्योकि सयमी की आवश्यकताए सीमित होती हैं, उसके साहचय से कोई परेशान नही होता।

सयम के बिना जो सुखपूर्वक ससार से पार उतरना चाहता है, वह बिना नौका के समुद्र तैरने की अभिलाषा रखता है। सयम महान् तपस्या है, महान् व्रत है और पुरुष के पौरुष की परीक्षा है। सयम-मणि को बलवान् ही धारण करते हैं, दुबलो के हाथ से उसे विषय-भोगरूप दस्यु छीन ले जाते हैं। सयम का नाम ही उत्तम चरित्र है। मनुष्य को मन सयम, वाक्सयम और काय-सयम रखना चाहिये। मन सयम से इन्द्रिय-निरोध होता है। वाक्-सयम से मिथ्याभाषण दोष तथा कायसयम से असन्मार्ग-गामिता की निवृत्ति होती है। सयम के बिना जप, तप, ध्यान, सामायिक व्यथ हैं। सयम-साधना से ही उत्तम मोक्षसिद्धि प्राप्त होती है।

—श्री वीर निर्वाण विचार सेवा, इन्दौर के सौजन्य से

शाति का पाठ

❀ नोरू श्रीश्रीमाल

एक महात्मा से पूछा गया—आप इतनी उम्र तक असग, सहनशील और शात कैसे बने रहे ?

महात्मा ने कहा—जब मैं ऊपर की ओर देखता हू तब मन में आता है कि मुझे ऊपर की ओर जाना है, तब यहा पर किसी के कलुषित व्यवहार से खिन्न क्यो बनू ? नीचे की ओर देखता हू, तब सोचता हू कि सोने, उठने, बैठने के लिए मुझे थोडे स्थान की आवश्यकता है, तब क्यो सग्रही बनू ? आस-पास देखता हू तो विचार उठता है कि हजारो ऐसे व्यक्ति हैं जो मुझसे अधिक दु खी हैं, व्यथित और व्यग्र हैं। इन्ही सब को देखकर मेरा मन शात हो जाता है।

अष्ट प्रवचन माता–मुक्तिदाता

❀ साध्वी डॉ दिव्यप्रभा

"माँ" यह कितना मधुर शब्द है ! याद आती है कभी आपको अपनी माता की ! माँ का वात्सल्य कितना मधुर होता है । उसकी गोद में जाते ही वह अपना वात्सल्यमय हाथ फैलाती है, मस्तक पर हाथ रखकर सब कषायों से मुक्त करती है, पीठ पर हाथ फिराकर सर्व पापो का क्षय करती है !!! अहा ! एक मीठा चुम्बन करके लोकाग्र की सिद्धावस्था का आनद प्रदान करती है। माँ माँ वह स्मित देकर दु ख मुक्त करती है। आँखो से आँखें मिलाकर आत्म दर्शन जगाती है ।

माँ, सब मुनियो की माँ—"अट्ठपवयण माया" अष्टप्रवचन माता ! उसे एक ही चिन्ता है—मेरा वत्स कब मुक्ति का सम्राट बने ! मैं कब राजमाता बन जाऊँ ! हर पल, हर क्षण वह अपने बेटे की सुरक्षा मे अपना सर्वस्व अर्पित करती है । कही मेरा लाल कोई पाप न कर डाले । मन से, वचन से, काया से आश्रा ! सवकरण, सवयोग—सर्वत्र उपयोग, सर्वत्र सुरक्षा !

माँ धन्य है तेरे को ! यदि तू न रहती तो न जाने मेरा क्या होता ? कौन मेरी रक्षा करता ? कौन मुझे जिनवाणी का दुग्धपान कराता ? माँ ! माँ ! मैंने तेरे वात्सल्य को नही समझा है । वत्स हू तेरा, पर निलज्ज हू ! मैंने तुझे कद से नापा, रूप से देखा पर पर तेरा वात्सल्य नही समझा ! माफ कर दे—माफ तो माँ ही करती है । माँ ! मुक्ति दे दे । तेरे उपकारो को तेरा वत्स नही भूल सकता । अब तेरी पाँच इन्द्रियाँ रूप पाँचो महाव्रतो को मुझ मे एक रूप कर दे, तेरी चार आज्ञा बाहु और ... गदन रूप पाँचो समितियो से मुझे आलिगन दे दे ... चरण ... ...ण मातृ स्वरूप तीनो योगो मे मैं नत मस्तक हू ... । कर ... क्ति का दान दे । तेरा वत्स अब तेरा विश्वासघात ... ।

"माँ" की सार्थक सज्ञा का विशद और विलक्षण रूप है—पाच समिति रूप पचाग और तीन गुप्ति रूप रूपत्रय । इसका पालन ही माँ का अनुपम दर्शन और आत्मावलोकन है, इससे ही सयम की सफलता पाना है । उससे प्रकटते-झलकते तथ्यो का पालन करने वाला पावन हो जाता है ।

अष्टप्रवचन माता का निखरता अनुपम रूप इस प्रकार है—

पांच समिति

१– ईर्या समिति –ज्ञान-दशन-चारित्र की प्राप्ति या वृद्धि के लिए उपयुक्त अवसर मे युगपरिमाण भूमि [चार हाथ प्रमाण] को एकाग्र चित्त से देखते हुए प्रशस्त पथ मे यतनापूवक गमनागमन करना ईर्या समिति है ।

वस्तुत श्रमण धम गुप्ति प्रधान धर्म है । उत्सर्ग मार्ग मे काया का गोपन सवर प्रधान माना है, प्रथम ईर्यासमिति कायगुप्ति का अपवाद है ।

प्रश्न होता है कि कायगुप्ति मे काया का गोपन होता है तो फिर साधु को चलने की क्या आवश्यकता ?

इस प्रश्न का समाधान करते हुए पूज्यपाद तिलोक ऋषि जी म सा ने ईर्या के महत्त्वपूर्ण चार कारण प्रस्तुत किये हैं ।[1]

१– गुरु वन्दन   २– विहार
३– आहार   ४– निहार

चलने की क्रिया जब शास्त्र विधानयुक्त होती है तब उसे ईर्या कहते हैं । निम्नलिखित आगमोक्त निर्देशो के अनुसार चलने वाले श्रमण का चलना ही निर्दोष चलना माना गया है –

१– श्रमण को चलते समय असम्भ्रान्त रहना चाहिए, क्योकि भ्रान्त अवस्था मे चित्त अशान्त रहता है अत चलते समय जीव रक्षा नही कर सकता ।

२– श्रमण को अमूर्छित–आसक्ति त्यागकर चलना चाहिए, क्योकि आसक्त व्यक्ति का मन किसी अभिलषित वस्तु मे लगा रहता है, अत वह जीव रक्षा मे उपयोग नही लगा सकता ।

३– श्रमण को मन्द गति से चलना चाहिए, क्योकि शीघ्र गति से चलने वाला जीवरक्षा करता हुआ नही चल सकता ।

---

१ मुनि चाले चिउ कारणे, गुरु वन्दन अय गामेजी ।
आहार निहारने कारणे ते जावे अय ठामेजी ॥

—अष्ट प्रवचन माता–ढाल १, पद–४

—तिलोक काव्य कल्पतरु–भाग ४, पृ ४४७

४– श्रमण को चलते समय 'अनुद्विग्न'–प्रशान्त रहना चाहिए, क्योंकि–उद्विग्न अवस्था मे व्यक्ति भयभीत रहता है अत वह विवेकपूवक नही चल सकता।

५– श्रमण को 'अव्याक्षिप्तचित्त' से चलना चाहिए, क्योकि—विक्षिप्त चित्त, चचल चित्त वाला व्यक्ति माग पर दृष्टि रखकर नही चल सकता।[1]

६– श्रमण को दौडते हुए नही चलना चाहिए, क्योकि दौडने वाला जीवों को बचाता हुआ नही चल सकता।

श्रमण धीर और साहसी होता है अत उसका दौडना व्यावहारिक दृष्टि मे भी अच्छा नही माना जाता, क्योकि अधीर या भयभीत व्यक्ति ही प्राय दौडते हैं।

७– श्रमण को चलते समय बातें नही करनी चाहिए, क्योकि जब मन बातचीत करने मे लगा रहता है तब वह जीव रक्षा करने मे दत्तचित्त नही हो सकता।

८– श्रमण को चलते समय हसना भी नही चाहिए, क्योंकि हसते हुए मार्ग पर दृष्टि रखकर नही चल सकता। इसी प्रकार गाते हुए, खाते हुए या ऐसी ही कोई अन्य क्रिया करते हुए नही चलना चाहिए।[2]

९–श्रमण को गवाक्ष, गली, स्नानगृह आदि पर दृष्टि डालते हुए नहीं चलना चाहिए, क्योकि गवाक्ष आदि की ओर देखते हुए चलने वाला रास्ते के जीव-जन्तुओ को नही देख सकता। गवाक्ष आदि की ओर देखते हुए चलने से श्रमण की साधुता के सम्बन्ध मे शका उत्पन्न होती है। अत श्रमण को माग पर दृष्टि रखते हुए ही चलना चाहिए।[3]

१०– श्रमण को क्रुद्ध होकर नही चलना चाहिए, क्योकि क्रुद्ध मानव का मन अशान्त होता है, अत वह विवेकपूवक नही चल सकता।[4]

११–श्रमण चलते समय अपने साथी–श्रमणादि को पहाड पर, समभूभाग पर या सरोवर आदि के किनारे पर चरते हुए पशु तथा पक्षी आदि की ओर अगुली निर्देश करके या हाथ लम्बा करके न दिखावे। ऐसा करने से पशु-पक्षी भयभीत होते हैं।

१२– श्रमण चलते समय अपने साथी श्रमणादि को पहाड पर बने किले आदि की ओर सकेत करके न दिखावे, ऐसा करने से किले आदि के रक्षको को श्रमण के प्रति गुप्तचर होने की आशका होती है।

---

१ दशवैकालिक अ ५, उद्दे १, गाथा १-२

२ दशवैकालिक अ ५, उद्दे १, गाथा १४

३ दशवैकालिक, अ ५, उद्दे १, गाथा १५

४ दशवैकालिक, अ ८, गाथा २५

१३– श्रमण को मनोहर शब्द सुनते हुए नही चलना चाहिए ।

१४–श्रमण को मनोहर रूप देखते हुए नही चलना चाहिए ।

१५–श्रमण को चलते समय सुगन्ध या दुर्गन्ध के सम्बन्ध मे राग-द्वेप भरे सकल्प रखकर नही चलना चाहिए ।

१६–श्रमण को मनहर रसास्वादन करते हुए नही चलना चाहिए ।

१७–श्रमण को सुखद स्पश का सवेदन करते हुए नही चलना चाहिए ।

इस प्रकार प्रथम ईर्या समिति साधक आत्मा के लिए परम विशुद्धि का कारण है । परन्तु ईर्या की विशुद्धि के भी चार महत्वपूर्ण कारण आगम मे निर्दिष्ट हैं—

१– आलम्बन २– काल ३– मार्ग और ४– यतना ।

आलम्बन–यहा आलम्बन का अथ सहारा, उद्देश्य और लक्ष्य है । साधक जीवन मे जितनी आवश्यक क्रियाएँ हैं उनका प्रधान लक्ष्य रत्नत्रय की उपलब्धि है अत ईर्या समिति के आलम्बन ज्ञान-दर्शन-चारित्र हैं ।

२– काल—ईर्या समिति के काल के सम्बन्ध मे दो विभाग हैं—दिन और रात । ईर्या समिति का पालन दिन मे हो सकता है, रात्रि मे नही । अत साधक श्रमण-श्रमणियो को रात्रि मे नही चलना चाहिए ।

आगम के अनुसार वर्षाकाल के चार मास ह—श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक । इन चार मासो मे श्रमण-श्रमणियो को ग्रामानुग्राम विहार नही करना चाहिए ।[1] किन्तु आगमोक्त पाच कारण उपस्थित होने पर आत्मरक्षा के लिए वर्षावास क्षत्र को छोडकर अन्यत्र जा सकते हैं । यथा—

१–अराजकता फैलने पर या सुरक्षा-व्यवस्था समीचीन न होने पर ।

२–दुष्काल होने पर या भिक्षा दुलभ होने पर ।

३–किसी के व्यथा पहुँचाने पर ।

४–बाढ आने पर ।

५–अनार्यों का उपद्रव होने पर ।[2]

---

१ जे भिक्खू वासावास पज्जोसवियसी दूइज्जइ, दूइज्जय वा साइज्जइ ।

—निशीथ, उद्दे १०, सू ६४१

२ क– जो कप्पई निग्गथाण वा, निग्गथीण वा पढमपाउससि गामाणुगाम दुइज्जित्तए ।

ख– पचहि ठाणेहि कप्पइ, त जहा—१ भयसो वा, २ दुब्भिक्खसि वा, ३ पव्वहज्जे वा ण कोइ ४ दग्रोघमि वा एज्जमाणसि, ५ महाय वा अणारिएसु ।

—स्थानाग, म ५ उद्दे २, सूत्र ४१२

३–मार्ग—माग दो प्रकार के हैं—द्रव्यमाग और भावमार्ग। स्थलमाग, जलमाग और नभमाग मे चलना द्रव्यमार्ग है और अपनी चित्तवृत्ति मे लगे हुए सस्कारो मे प्रवृत्त रहना–चलना–विचरना ईर्या मे भावमाग है।

४–यतना—यतना का अथ है—प्रत्येक क्रिया को विवेकपूवक करना। यतना के चार प्रकार हैं—

१– द्रव्ययतना २– क्षेत्रयतना
३– कालयतना ४– भावयतना

१– द्रव्ययतना—दिन मे आखो से देखकर चलना। रात्रि मे रजोहरण से प्रमाजन करके चलना।

२– क्षेत्रयतना—चार हाथ प्रमाण क्षेत्रो को देखते हुए चलना।

३– कालयतना—जितने समय तक चलना उतने समय तक विवेकपूवक चलना।

४– भावयतना—सदा उपयोग पूवक चलना। भावयतना से श्रमण के सयम की रक्षा होती है। सयम की रक्षा का अर्थ है—स्वय श्रमण की रक्षा और अन्य प्राणियो की रक्षा। श्रमण के भाव, विचार-सयम से विचलित न हो, यही भावयतना है।

२– भाषा समिति—माग मे चलते हुए मुनि मौन रहे। अत्यावश्यक होने पर जो मर्यादा पूवक बोला जाता है वह भाषा समिति है,। इस कारण दूसरी समिति का नाम भाषा समिति कहा जाता है। वचन गुप्ति उत्सर्ग है पर भाषा समिति उसका अपवाद है। मुनि मौनधारी, गुण-ज्ञान का सग्रह करने वाले, कुलीन और आत्मध्यान मे लीन गुप्तिवान और उत्सग युक्त होते है। इन सब दृष्टिया से वचन योग आश्रव स्वरूप है फिर भी पर के कारण, आत्महित के उपदेश हेतु अनुपम उपदेश निर्जरा का कारण बन जाता है। इसी कारण उत्सग रूप वचन गुप्ति का भाषा समिति अपवाद है।

अकारण साधु बोलता नही अत बोलने के कारण पर विशेष स्वरूपी भाषा का प्रयोग स्पष्ट करने हेतु इस समिति मे भाषा के प्रकारो द्वारा उसका स्वरूप बताया है। भाषा के विविध प्रकार–स्वरूपो का वणन करते हुए सोलह, दस और चार प्रकार की भाषाएँ बताई हैं।

१– साधु द्वारा नही बोली जाने वाली १६ प्रकार की भाषाएँ निम्न हैं–

१– ककश	२– कठोर	३– छेदक	४– भेदक
५– पीडाकारी	६– हिंसाकारी	७– सावद्य	८– मिश्र
९– क्रोधकारी	१०– मानकारी	११– मायाकारी	१२– लोभकारी
१३– रागकारी	१४– द्वेषकारी	१५– विकथा	१६– मृषकथा

२– भाषा के दस दोष टालकर साधु को बोलना चाहिए—

१– कुबोल दोष	२– सहसाकार दोष
३– असदारोपण दोष	४– निरपेक्ष दोष
५– सक्षेप दोष	६– क्लेश दोष
७– विकथा दोष	८– हास्य दोष
९– अशुद्ध दोष	१०– मुणमुण दोष

३– भाषा के चार प्रकार इस प्रकार हैं—

१– सत्यभाषा	२– असत्यभाषा
३– सत्यासत्यभाषा	४– असत्याऽमृषा [व्यवहार भाषा]

इनमे २ और ३ नम्बर स्पष्टत साधु के लिए निषिद्ध है। एक और चार नम्बर की भाषा के प्रयोग का निषेध भी है और विधान भी है।

३– एषणा समिति—जिसने ईर्या समिति के गुणगान किए है और जो भाषा का भेद स्वरूप जानता है, उसे यह समझना आसान है कि वेदनीय कर्म के उदय से जीव को भूख की सज्ञा या सवेदना जगती है। इस वेदनीय कर्म के उपशमन हेतु साधु को एषणा समिति का स्वरूप भेद जानना चाहिए। एषणा समिति अनशन तप उत्सर्ग का अपवाद है।

निज गुण को ग्रहण करने वाले आत्मा का अपना चैतन्य स्वरूप निश्चय से गत्यातर मे अनाहारी है, फिर भी काया योग से युक्त होने से उसे व्यवहार से आहार के पुद्गल ग्रहण करने पडते हैं। जड काया के साथ चैतन्य का यह कैसा नेह–प्रीति है। "इस आत्मा ने देह से प्रीति कर अनन्त पुद्गल स्कन्ध ग्रहण किये फिर भी उसे तृप्ति क्यो नही होती ?" ऐसा सोचकर गुणीजन सत आत्मा को वश मे कर पुद्गल स्कन्ध को ग्रहण नही करते हैं। परन्तु काया को रखने मे अशनादि–आहारादि ही कारण सम्बन्ध रूप है। आत्मतत्त्व अनन्त शुद्ध स्वरूप होने पर भी वह ज्ञान के बिना जाना नही जा सकता और आत्मा के उस ज्ञान स्वरूप का प्रकट करने मे सूत्रा का स्वाध्याय ही परम उपाय रूप है और यह उपाय देह के बिना नही होता, अत देह से ही काम लेना है यह सोचकर गुण–वान आत्मा काया को आहार देकर उसकी सुरक्षा करते हैं।[1]

निरुपाय ऐसे मुनि को आहार लेना ही पडता है लेकिन उसकी भी विशेष विधि है—

साधु आहार तो करे लेकिन वह आहार ४७ दोष से रहित होना चाहिए और भ्रमर जैसे पुष्प को बिना किलामना उपजाए एक-एक फूल पर से रस पीता

---

१ अष्टप्रवचनमाता—ढाल ३, पद २-६

है वैसे साधु भ्रमरवत् भिक्षा ग्रहण करे और गृहीत भिक्षा भी रूक्ष होनी चाहिए। रूक्ष आहार भी स्वाद लिए बिना और मूर्च्छा भाव से रहित ग्रहण करे। इतना ही नहीं, कभी भिक्षा मे आहार शीघ्र मिल जावे तो हर्ष न करे और न मिले तो शोक भी न करे।

'आचाराग' सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कध मे इसे पिंडेषणा कहा है। इसी प्रकार यहा पाणैषणा, शय्यैषणा, वस्त्रैषणा, सस्तारक एषणा, पायपुछण एषणा, रजोहरण एषणा आदि एषणा के विविध प्रकार बताये हैं।

४– आदान भांड मात्र निक्षेपणा समिति—ईर्या समिति, भाषा समिति और एषणा समिति का समाधिपूर्वक पालन करने वाले गुणवान् साधु को अन्य समितियो का पालन करने हेतु उपधि आदि की आवश्यकता रहेगी, क्योंकि बिना उपधि आहारादि किसमे ग्रहण किया जाय। इसी कारण ज्ञानी महापुरुषों ने भव्य जीवो को निर्वाण सुख प्राप्ति के परम उपाय स्वरूप आदान भाड मात्र निक्षेपणा समिति का भावपूर्वक कथन किया है।

पाच सवर की भावना युक्त मुनि प्रमाद का त्याग कर सब परिग्रह से मुक्त हो एकान्त मोक्ष माग की आराधना में सलग्न रहता है अत वह पर-भाव से मुक्त होता है तो उसे किसी प्रकार के उपकरण की क्या आवश्यकता है ? उसे तो देह की ममता का त्याग कर [ज्ञान-दशन-चारित्र रूप] तीन रत्नो का सन्निधि की सुरक्षा करनी होती है। यह जो कथन है वह उत्सग स्वरूप है। अब जो अपवाद माग का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है वह उपधि के उपयोग का स्वरूप होने पर भी विवथा प्रमादो आदि के निवारण रूप है।

साधु के प्रत्येक उपकरण के पीछे महत्त्वपूण कारण रहे हुए हैं। प्रत्येक का विधान अपने रहस्य के साथ प्रस्तुत है। जिनवर ने उपदेश प्रदान करते हुए इन सर्व रहस्यो को प्रधानता दी है—

१– रजोहरण—अहिंसा पालन हेतु, याने हिंसा का निरोध करने हेतु।

२– पात्र—आहार ग्रहण हेतु।

३– मु हपत्ति—अहिंसा पालन हेतु याने वायुकाय रूप जीवो की हिंसा-प्रतिषेध हेतु।

४– वस्त्र—नग्न साधु का देखकर जगत के स्त्री-पुरुष साधु की दुगछा करते हैं। अत वस्त्र परिधान सयम सुरक्षा मे सहायक बन सकता है।

इस प्रकार पुद्गल को ग्रहण करना और छोड देना ऐसा जिनवर प्रदत्त अपवाद मार्ग बहुत श्रेष्ठ है क्योंकि पुद्गलो का ग्रहण करना सहज है। ग्रहण करते समय ममत्व-त्याग और यतना मे विवेक तथा निरुपयोगिता के समय सर्वथा त्याग, यही इस व्यवहार समिति की विशेषता है।

साधु का निश्चल ध्येय कम से मुक्ति पाना है और उस हेतु उसे सर्व-उपधियो का त्याग कर मुक्ति से प्रीति वाधकर सव आचारो को जीतकर अरणगार वनना है । अत सयमी-आत्मा को उपधि के प्रति ममत्व का त्याग कर श्रेणी पर आरूढ हो तत्त्व ज्ञान के परम रस मे निमग्न होना चाहिए ।

५– परिष्ठापनिका समिति—साधु अन्तर-वाह्य कोई भी उपधि का ग्रहण करेगा, अन्त मे वह त्याज्य ही है अत वीतराग ने मुक्ति के भाव सुख प्रधान मगलधाम की प्राप्ति के उपायो मे समिति प्रकरण मे पाँचवी परिष्ठापनिका समिति का उपदेश दिया है । पूज्यपाद तिलोक ऋषि जी म सा ने इस समिति का नाम अभयव्रत भी दिया है ।[1]

साधु को देह से ममत्व नही बढाना चाहिए, क्योकि देह से ममता बढाने से चारो कपाय हमे प्रिय हो जाते हैं। कपायो के प्रिय हो जाने पर देह का ममत्व और स्नेह वढता है और चचनता भी वढती है । अत उत्सग माग पर चलने वाले शरीर की ममता का त्याग करते हैं । परन्तु अपवाद माग पर चलने वाले ज्ञानादि हेतु काया का पोपण करते हैं । काया जहा है, वहा मल अवश्य है। आत्मा निर्मल है, शरीर तो मलयुक्त है । अत काया-पोपण के साथ इस उत्सर्ग को प्रक्रिया भी यदि यतनापूवक की जाय तो साधक केवलज्ञान की स्थिति प्राप्त कर सकता है । निष्कर्ष मे यतना ही कैवल्य की दायिनी है ।

कल्पो से रहित जिनकल्पी ऋषि, मुनि वस्त्र, पात्र, आहार, शिक्षा आदि को कम-वधक और सयम-वाधक द्रव्य मानकर उन्हे भी दूर परठा देते हैं, मन के भीतर उत्पन्न कपाय रूप मैल का विसर्जन कर वे किसी भी प्रकार की उपधि से युक्त नही होते हैं ।

अपवादमार्गी स्थविरकल्पी मुनि अपवाद माग पर चलते हुए भी किस प्रकार मोक्ष ध्येय को पूण कर सकते हैं, यह इस समिति मे समझाया गया है ।

स्थविरकल्पी साधु द्रव्य से दिन मे परिष्ठापनिका भूमि मडल को देखकर और रात को उसी दर्शित भूमि पर प्रस्रवणादि परठाते हैं परन्तु भाव से तो राग-द्वेप रूप भाव-मल का त्याग करते हैं ।

परिष्ठापना हेतु 'उत्तराध्ययन सूत्र' मे दस लक्षण युक्त निम्न दस विधान वताये है—

१ जहा कोई आता नही और देखता भी नही ।

---

१ पचमी सुमति जाणो काइ तस नाम परठावणी मानो हो ।
अभय व्रत वधावो जी, जयणासु परिठावो हो मुनिवर
समिति सदा सुखकारिणी रे .. ॥

तिलोक काव्य कल्पतरु, भाग ४, पृ ४५७

२ जहा पर परठाने योग्य पदार्थ परठने से किसी व्यक्ति को आघात न पहुँचे ।

३ परठने की भूमि सम हो ।

४ पोलार रहित अर्थात् तृणादि से आच्छादित व दरारो से युक्त न हो।

५ कुछ समय पहले ही अचित्त हुई हो ।

६ विस्तीर्ण हो (कम से कम एक हाथ लम्बी-चौडी) ।

७ बहुत गहराई (कम से कम चार अगुल नीचे) तक अचित्त हो ।

८ ग्रामादि से कुछ दूर हो ।

९ मूषक, चीटियाँ आदि के बिलो से रहित हो ।

१० त्रस प्राणियो एव बीजो से रहित हो ।[1]

तीन गुप्ति

१ मनोगुप्ति—समिति श्रेष्ठ है साथ-साथ सरल भी है परन्तु गुप्ति अतीव दुष्कर है । उसके धारण करने वाले मुनि, निज गुणों को प्रकट कर निज स्वरूप का ज्ञाता हो अष्टकर्म से रहित सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर सकता है ।

मन-वचन-काया रूप तीनो योगो में भी मनोयोग की गति अति तीव्र है। मन को स्थिर करना अति दुष्कर होने से तीन दण्ड मे मनोदण्ड को ही बड़ा माना गया है । मन रहित (असज्ञी) जीव क्रूर कर्म करता भी है तो वह मन रहित होने मे प्रथम नरक से आगे (दूसरी, तीसरी आदि मे) नही जाता है। सज्ञी जीव जिसकी अवगाहना मात्र अगुल के असख्यात भाग की हो, (वह देह से क्रूर कर्म न भी कर सकता हो तो भी मन से क्रूर कर्म कर)वह सातवी नरक मे उत्पन्न हो सकता है । (असज्ञी) मत्स्य की काया सहस्र योजन लम्बी-चौडी हो और क्रोड पूर्व स्थिति का उसका आयुष्य हो तो भी वह प्रथम नरक से आगे नहीं जा सकता है । यही मन का गम्भीर रहस्य है । इसी कारण भव्यात्मा मुनि मनगुप्ति की आराधना कर मन की तीव्र गति को वश मे करता है तो आत्मा (जन्म-मरण रूप) रोग से मुक्त होता है ।

योग के द्वारा ही पुद्गल सचय होता है और योग के द्वारा ही कर्मों के साथ आत्मा की सदा नवीन सधि होती है ।

इन्ही कारणों को जानकर मुनि ! तू निज आत्मगुण मे लीन हो शीघ्र निर्विकल्पक स्थिति को प्राप्त कर । सविकल्पक गुण अपवाद मार्ग मे साधु का अवश्य है परन्तु उत्सर्ग मार्ग का ज्ञाता हो ज्ञान पर निर्विकल्पक मुनि को क्षण

---

१ उत्तराध्ययन, अ २४, गा १७-१८

ग्रौर भी ग्रपवाद के प्रति ग्रश मात्र भी रुचि नही होती। शुक्लध्यान के ग्रालवन को धार कर वह मुनि ध्यानलीन हो ग्रात्म स्वरूप दशन मे स्थिर हो जाता है।

२ **वचन गुप्ति**—ग्रागम के ग्रनुसार मनोयोग की ग्रपेक्षा वचन योग की ग्रधिकता बताई गई है। पन्नवणा[1] सूत्र मे दो सौ उनचालीस (२३९) वें बोल मे वचन योग के स्वरूप मे कहा है कि भापा का सठाण वज्र जैसा है।[2] त्रस प्राणी द्वारा बोली जाने वाली इस भापा को ग्रहण करते समय शास्त्रोक्त ग्राठ—ककश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध ग्रौर रूक्ष स्पश मे से चार विरुद्ध स्पर्शो को जीव फरसता है[3] ग्रौर प्रगट करते समय ग्राठो को फरसता है।

भापा या ऋद्धियुक्त वचन ये नामकम के प्रभाव से ही हैं। ऐसे वचन-योग का गोपन वचन गुप्ति है।

भापा वर्गणा के पुद्गलो के ग्रहण निसग की[4] उपधि जो ग्रात्मवीर्य को प्रेरित करती है, ग्रात्मा उसे क्या ग्रहण करती है, इसके उत्तर मे कहा है—यह करने का कारण भी ग्रात्मा को शुद्ध करना ही है। इस शुद्धि के साधन १२ प्रकार के तप हैं। इन साधनो के द्वारा काया का गोपन कर ग्रात्मा कर्मो के घातिक वग मे मुक्त हो सकता है।

वचन गुप्ति का प्रारम्भ कौन-से गुण-स्थानक से होता है ग्रौर कौन-से गुणस्थानक तक वह रहती है इत्यादि समाधान हेतु कहा है—

वचन गुप्ति का उदय सम्यक्त्व (चौथे) गुणस्थानक से होता है ग्रौर वह ग्रयोगी (१४वें) गुणस्थान तक उपादान रूप स्थिर रहता है। ग्रत जिन मुनियों के मन मे चित्तशुद्धि पूवक गुप्ति मे रुचि रमणता ग्राती है उनके मन मे समिति प्रपच रूप ग्रौर गुप्ति निश्चय सम्यक्त्व रूप प्रतीत होती है।

३ **कायगुप्ति**—योगो मे काया योग तीसरा योग है। इसका कपन स्वभाव

---

१ भापा पद—पद ११ वाँ सूत्र ८५८

२ पन्नवणा सूत्र—पद ११, सूत्र १५ की वृत्ति

३ पन्नवणा सूत्र—पद ११, सूत्र ८७७

४ विज्ञान ने इस वात को प्रायोगिक रूप प्रदान किया है। भ्राज भी ग्राकाशवाणी म प्रथम शब्दों के ग्रहण निसग के समय ग्राफ के रूप मे वे तरगो के रूप से प्रकट होते दिखाई देते है। विशेप स्पष्टीकरण हेतु ग्रागम मे इनका मोनोग्राफ इस प्रकार है—

ग्र ग्र ग्र ग्र ग्र ग्र ग्र ०

० नि नि नि नि नि नि नि

देखिये—पन्नवणा सूत्र, पद—११ सूत्र ८७९

है, इसे स्थिर करना अत्यत दुष्कर है । जिस प्रकार जब जोर से पवन चलता हो उस समय नाव को स्थिर करना मुश्किल है, वैसे ही कपन स्वभाव के कारण काया को स्थिर करना दुष्कर है ।

कपन के प्रकारो के बारे मे गौतमस्वामी और भगवान महावीर का प्रस्तुत सवाद द्रष्टव्य है—

गौतम—भन्ते ! एजना कपन कितने प्रकार की कही गयी है ?

इसके उत्तर मे प्रभु कहते हैं—हे गौतम ! एजना पाँच प्रकार की कही गई है । योग द्वारा आत्म-प्रदेशो का कपन होना या पुद्गल द्रव्यो का चलना इसका नाम एजना है । इस प्रकार एजना कपनादि रूप होती है । कपनादि रूप यह एजना द्रव्यादि के भेद से पाँच प्रकार की है ।

जैसे—द्रव्यएजना—द्रव्यो की एजना नरकादि जीव सपृक्त पुद्गल द्रव्यो का—शरीरो का कपन ।

क्षेत्रैजना—नरकादि क्षेत्रो मे वतमान जीवो की अथवा जीव सपृक्त पुदगल द्रव्यो की जो एजना कपन है वह क्षेत्र एजना है ।

कालेजना—नरकादि काल मे वतमान जीवों की अथवा जीव सपृक्त पुदगल द्रव्यो की जो एजना है वह कालएजना है, ।

भावेजना—नरकादि भव मे वतमान जीवो की अथवा जीव द्रव्य सपृक्त पुद्गलो की जो एजना है वह भावेजना है ।[1]

मोक्ष प्राप्ति तक काया तो रहती ही है फिर यह कपन वहाँ तक रहता है ? इस प्रश्न का समाधान करते हुए कहा है—

१४ वें गुणस्थानक में शैलेशी अवस्था का प्रारम्भ हो जाता है। 'भगवती-सूत्र' मे गौतम स्वामी के यह पूछने पर कि क्या शैलेशी अवस्था प्राप्त होने पर भी कपन होता है ?

परमात्मा ने कहा—"नोइणट्ठे समट्ठे, नऽन्नत्थेण परप्पयोगेण" ।[2]

पूव कमक्षय हेतु आत्मा प्रयास करता रहे पर जीवात्मा यदि नवीन कर्मो का बधन करता ही रहे तो फिर मोक्ष कब हो सकता है ? इस प्रश्न के उत्तर मे कहा है—

यदि देह को ही स्थिर कर दिया जाय तो नवीन कम बधन का कारण ही नही बनता, क्योकि काया के स्थिर करने पर माया अपने आप स्थिर होती

---

१ भगवती सूत्र, शतक—१७, उद्देशक—३, सु २–४, पृ ७८१

२ भगवती सूत्र, शतक—१७, उद्देशक—३, सु १ पृ ७०१

है और विषयो के रस-भोग अपने आप समाप्त हो जाते है। मन का योग भी न रहने से क्रिया के साथ कर्म भी रूक जाते हैं।

प्रस्तुत विवरण के बाद आत्मा ने यह स्वीकार तो किया कि काया को गुपित करना अत्यावश्यक है, यह श्रेष्ठ भी है, मोक्ष का कारण है परन्तु यह गुप्ति की कैसे जाय ?

अष्टप्रवचनमाता अपने वत्स की सुरक्षा के लिए समाधान देती है—

जीव का स्वरूप चैतन्य निराकार स्वरूप है, उसका स्वभाव सदा उप-योगी है। यह देह जड पुद्गल के द्वारा कर्म ग्रहण करता है। अत यह निश्चय से ध्यान रखना कि इसे छोडे विना तुझे सुख की प्राप्ति नही होगी। इसके लिए तुझे तप के वारह प्रकारो को जानकर, सयम को १७ प्रकार से समझकर, दस प्रकार के मुनिधर्म का आलम्बन लेकर उसका मन-वचन-काया से पालन कर, २२ परिषह पर विजय प्राप्त करनी होगी। मुक्ति-प्राप्ति का यही एक उपाय है, ऐसा समझकर हे भव्यात्मा! मन-वचन-काया को वश मे कर समिति के पाच प्रकार स्वरूप इस जघन्य ज्ञान आराधना द्वारा तू शीघ्र ही भव-जल ससार से पार हो जा।

इस प्रकार अष्टप्रवचन माता का आशीर्वाद प्राप्त करने वाला साधक शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करता है।

अवसर आने पर तुम भी ऐसा ही करना

❀ श्री मनोज आचलिया

एक वार गाधीजी रेल से कही जा रहे थे। तव तक वह महात्मा नही वने थे। उनके डिब्बे मे एक ऐसा व्यक्ति भी वैठा था जो वार-२ फर्श पर थूक रहा था। वापू ने उससे कुछ नही कहा। कागज के टुकडे मे थूक को पोछ कर फर्श को साफ कर दिया। उस व्यक्ति ने यह सव देखा तो समझा कि यह सफाई-कर्मचारी मुझे नीचा दिखाना चाहता है। वस, उसने फिर थूक दिया। गाधीजी ने पहले की तरह फिर पोछ दिया। अब तो वह व्यक्ति वार-२ थूकने लगा लेकिन गाधीजी तनिक भी विचलित नही हुए। जैसे ही वह थूकता वे विना वोले फर्श को साफ कर देते। अन्त मे स्टशन आ गया। लोग गाधीजी की जयजय-कार करने लगे। यह देखकर उस व्यक्ति का पसीना छूटने लगा। उसने लपक कर गाधीजी के चरण पकड लिए। वार-२ क्षमा मागने लगा। वापू वोले—"क्षमा की कोई वात नही है। मैंने अपना कर्तव्य पालन किया है। अवसर आने पर तुम भी ऐसा ही करना।"

—सुन्दर स्पोटर्स, चेटक सर्किल, उदयपुर

हो जाये सबसे पार

❀ महोपाध्याय श्री चन्द्रप्रभसागर म

जीवन का वहिरग भौतिक साधनो से जुडा है और अन्तरग अ।
साधनो से। इसलिये वहिरग विज्ञान है और अन्तरग अध्यात्म है। विज्ञान प्रयोग है और अध्यात्म ध्यान योग है। विज्ञान का शास्त्र शुरू होता है पर और अध्यात्म का शास्त्र शुरू होता है खुद से। अध्यात्म और विज्ञान में तो है, पर वह जीवन के अन्तरगीय और वहिरगीय जितना ही। दोनो मे प्रति और प्रतिस्पर्धा तो है, पर राम-रावण जैसा कोई प्रतिद्वन्द्वी-भाव नही है। वैसे ही है, जैसे विद्यालय मे प्रतियोगिताए होती हैं। दस लडके गीत गाते कोई एक पुरस्कार पाता है। प्रथम वह जरूर आया, पर प्रथम आने से लडके उससे दुश्मनी नही रखेंगे।

जीवन का अन्तरग और वहिरग, अध्यात्म और विज्ञान भी भिन्न तो हैं, पर दोनो ही जीवन के अग हैं, मानवीय मस्तिष्क की उपज हैं। दोनो मे विरोध और द्वन्द्व नही है। व्यतिरिकी तो है, पर मित्र हैं परस्पर।

वैसे अध्यात्म और विज्ञान दोनो ही विज्ञान है। अध्यात्मक का आत्मा विज्ञान है और विज्ञान प्रकृति का। अध्यात्म अन्तरग की धारा का प्रतिनिधि है और विज्ञान वहिरग धारा का। विज्ञान चलता है अणु से लेकर खगोल-भूगोल आदि के प्रयोगो पर और अध्यात्म चलता है अन्तरग की गहराइयो पर, चेतना की शक्तियो पर। इसलिए बाहर को समझने के लिए विज्ञान सहयोगी है तो भीतर का समझने के लिए अध्यात्म। दोनो पूरकता लिए है।

विज्ञान मे तथ्य को समझा जाता है और अध्यात्म म ध्यान से तथ्य का अनुभव किया जाता है। विज्ञान अपने से बाहर की यात्रा है और अध्यात्म बाहर से भीतर की यात्रा है। विज्ञान बाहर की खोज करता है, अध्यात्म-ध्यान भीतर की खोज करता है। विज्ञान परकीय तथ्यों को उभारता है, अध्यात्म स्वकीय तथ्यो को उजागर करता है। वास्तव मे अध्यात्म शुद्धात्मा मे विशुद्धता को आधारभूत अनुष्ठान है।

सूत्रकृतागसूत्र मे कहा है कि जैसे कछुआ अपने अगो को अपनी देह मे समेट लेता है, वैसे ज्ञानी लोग पापो को अध्यात्म के द्वारा समेट लेते हैं।

> जहा कुम्मे सअगाई, सए देहे समाहरे।
> एव पावाइ मेहावी, अज्झप्पेण समाहारे॥

अध्यात्म अर्थात् ध्यान। यह वह साधना है जो स्वय पर लगे हुए परदा

को, ऊपरी आवरणो को, अन्तर-स्रोत की चट्टानो को, घूघट का हटा देती है। वह घूघट किसी का भी हो सकता है। मन का भी हो सकता है, चिन्तन-वचन का भी हो सकता है, शरीर का भी हो सकता है। मन, वचन और शरीर के इन तीनो घूघटो को हटाने के बाद ही आत्मा-परमात्मा के सौन्दर्य का दर्शन होता है अन्यथा कोई कितना भी सुन्दर क्यो न हो, यदि वह घूघट मे है, किसी से आवृत्त है, तो उसका सौन्दय ढका हुआ ही रहेगा। आइस्टीन जैसो ने किये होगे आविष्कार पर आविष्कार, पर सारे के सारे परकीय पदार्थों का आविष्कार हुआ। दीपक तले तो अधेरा ही रह गया। स्वय का आविष्कार कहा हुआ?

यदि हम केवल विज्ञान को महत्त्व देंगे, तो बडी भूल करेंगे। क्योकि बहिरग ही सब कुछ नही है। जैसे अन्तरग से सभी को जुडा रहना पडता है, वसे ही अध्यात्म से जुडा रहना पडेगा। जैसा अन्तरग होगा, वैसा ही बहिरग होगा। बहिरग के अनुसार अन्तरग नही हो सकता। जैसा बीज, वैसा फल, जैसा अडा वैसी मुर्गी। अन्तरग शुद्ध है, तो वहिरग भी शुद्ध होगा। जो भीतर से अशुद्ध है, वह बाहर से भी अशुद्ध होगा। पर बाहर से अशुद्ध ही हो यह कोई जरूरी नही है। बगुला बाहर से शुद्ध, किन्तु भीतर से अशुद्ध रहता है। इसीलिए यह कहावत प्रसिद्ध है कि "मुख मे राम, बगल मे छुरी।" बाहर कुछ भीतर कुछ, कथनी कुछ करनी कुछ—दोनो मे अन्तर जमीन-आसमान जितना अन्तर।

आज का युग विज्ञान-प्रभावित युग है। आदमी बहिर्मुखी होता जा रहा है। जो लोग आत्ममुखता की चर्चाए करते है गहराई से देखें तो लगेगा कि उनके जीवन मे भी बहिर्मुखता है। बहिर्मुखता प्रधान हो जाने के कारण आत्ममुखता गौण होती जा रही है। यदि कोई आत्म-मुखी होने के लिए प्रयास भी करता है, तो बाहरी वातावरण उसे वैसा करने मे अवरोध खडा कर देता है। बहिर्मुखता या बहिरग से मेरा मतलब केवल बाहरी सुख-वभव आदि से नही है, अपितु हमारा शरीर भी, हमारा वचन भी, हमारा मन भी बहिरग ही है। और सत्य तो यह है कि ये ही सबसे अधिक बहिरगीय पहलू हैं, जिनसे आदमी जुडा रहता है और आकाश मे फूल खिलाता रहता है। ये मन, वचन, शरीर ही हमे अपने से, आत्मा से बाहर ले जाते हैं। मरीचिका के दर्शन से जल पाने के लिए हमारे भीतरी हरिण को सारे ससार के वन मे दौडाते हैं। मन, वचन, काया के योग से अयोग होना ही ध्यान का लक्ष्य है।

मन, वचन और शरीर ये ही तो अन्तरात्मा की मूर्ति को ढके हैं, आवृत्त किये हुए हैं। ध्यान इसे अनावृत्त करता है, आवरणो को हटाता है, पर्दो को हटाता है। ध्यान की प्रक्रिया वास्तव मे आत्मा के स्व-भाव को ढूढना है। यह शरीर है, शरीर के भीतर वचन है, उसके भीतर मन है और इन तीनो के पार है आत्मा। तीनो के पार तो है मगर सम्बन्ध तीनो से जुडा है, क्योकि आत्मा

शरीरव्यापी है। पर लोग हैं ऐसे, जो शरीर को ही आत्मा समझ बैठते हैं।
कायाध्यास हो जाता है, कार्योत्सर्ग की भावना मन से निकल जाती है। इस
लिए मन, वचन, शरीर वास्तव मे बाधाएं हैं और हमे ध्यान द्वारा इन पर्दों
काटना है। हमे समझना है, पर्तादर पर्तो को, जिनसे आत्म-स्रोत रुधा पड़ा है

शरीर स्थूलतम हैं। वचन शरीर से सूक्ष्म शरीर है और मन, व
से सूक्ष्म शरीर है। तीनो ही पदार्थ हैं, तीनो ही अणुसमूह हैं। ये तीना
माणविक, पौद्‌गलिक, भौतिक सरचनाएं है। मजे की बात यही है कि इन
मे मन सबसे सूक्ष्म है। पर वही इन तीनो मे प्रधान है। शरीर और वचन
का राजा मन ही है, मन के ही काबू मे हैं ये दोनो। मन जहा कहता है,
वही रुक जाता है। जिसके मन ने कहा चलो धर्मस्थल मे, वे वहा पहुच गये।
जिसके मन ने कहा, वहा जाने से कोई लाभ नही है, चलो दुकान मे।
आदमी दुकान चला जाता है। शरीर की सारी चेष्टाएं मन के आदेश से
हैं। वचन बेचारा है। मन ने चाहा कि मैं जैसा हू, वैसा ही वचन हो,
वचन को वैसा ही होना पडता है। मन ने चाहा, कि मैं जैसा हू वसा व
अगर मुह से न निकला, तो इसमे मेरी बेइज्जती होगी, मेरी हानि होगी तो वि
वचन को मन की चाह के अनुकूल होना पडता है।

इसीलिए जो मन मे है वही वचन मे होगा। जो हमारे वचन मे
वही शरीर में घटित होगा। मन तो बीज रूप है, वचन अकुरण है और शरी
फसल है। फसल से प्राप्त होने वाले अनाज ही उसका अभिव्यक्त रूप हैं।

यद्यपि बहिर्दृष्टि से शरीर प्रथम है किन्तु अन्तरदृष्टि से मन प्रथम है
पर योजित तो हम होते ही हैं, चाहे बाहर से हो या भीतर से। हम योजि
होते ही हैं, यानी हमारी आत्मा योजित होती है, हमारा अस्तित्व योजित हा
है। जैसे भूख लगने पर हम कहते हैं—मुझे भूख लगी है। अब आप सोचि
कि भूख किसे लगती है? भूख का सम्बन्ध इस पेट से है, शरीर से है, कि
हम कहते हैं मुझे भूख लगी है। तो हमने शरीर से जुडने वाली चीज को आत्म
से जोड लिया। इसीलिए क्योंकि शरीर के साथ तादात्म्य है। इसी तरह क्रो
उठा। क्रोध विचारो मे आया, किन्तु हम कहगे मुझे क्रोध आया। यह विचार
के साथ आत्मा का तादात्म्य है। वासना जगी। वासना मन मे जगती है, प
कहते हैं—मैं कामोत्तेजित हू। हमने मन के साथ 'मैं' को जोडा, आत्मा व
जोडा, पर के साथ स्वय को जोडा।

यद्यपि मन, वचन, शरीर ये तीन नाम हैं, किन्तु तीना अलग-अलग नहं
है। तीनो का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। तीना एक दूसरे के पूरक है
अन्योन्याश्रित हैं। बीज, अकुर और फसल कोई अलग अलग स्वरूप नही है
तीनो का अपना-अपना स्वरूप होते हुए भी एक दूसरे मे जुडे-पनप हैं। तारप

भी मूलत परमाणु हैं। आत्मा इन तीनो से स्वतन्त्र है। उसका अपना स्वरूप है। आत्मा तो निरभ्र आकाश है। मन, वचन, काया के योग के बादल ही उसे ढके हैं। अगर ध्यान का, अध्यात्म का सूर्य उग गया, तो आकाश निरभ्र होते देर न लगेगी।

जो लोग सत्य के गवेषक/अन्वेषक हैं, आत्मा मे प्रवेश करना चाहते हैं, सत्य की खोज करना चाहते हैं, उन्हे शरीर, वचन और मन की गलियो से गुजरना होगा। ये गलिया कोई सामान्य नही है। अ धियारे से भरी हुई और काटो से सजी हुई है। इसीलिए साधक की शोध-यात्रा/शोभा-यात्रा ऐसे-ऐसे रास्तो से गुजरती है जो बीहड है। पर आत्मा की किरण इसी शरीर मे मे फूटेगी। जो लोग अपने शरीर को ही सर्वस्व समझ बैठे हैं, उन्हें उस किरण की झलक नही मिल सकती।

बहुधा होता यही है कि या तो व्यक्ति ध्यान करता नही है और कर भी लेता है तो शरीर का ही ध्यान करता है—शारीरिक ध्यान, इसे ही कहते हैं हठयोग। वास्तविक साधना हठयोग से सिद्ध नही होती। हठयोग के द्वारा शरीर को काबू में किया जाता है। योगासन भी इसी की देन है। बाहुबली खडे रहे ध्यान मे, पर उनका ध्यान हठयोग से जुडा था। अहम् एव कुण्ठा की दुवह ग्रथि उनके अन्तरतम मे अटकी थी। वे अहकार के मदमाते हाथी पर बैठे थे, तो ध्यान फल कैसे दे पायेगा? घोर तप करने के बावजूद सत्य को उपलब्ध न कर पाये। जैसे ही अहम् टूटा कि सत्य मे साक्षात्कार हो गया। वास्तव मे ध्यान तो सत्य की खोज है, हठयोग नही।

प्रसन्नचन्द्र भी तो हठयोग की मुद्रा मे खडे थे, साधु का वेश, योगासन की मुद्रा, पर मन मे जो भावो के गिरते-बढते आयाम थे, उसी के कारण नरक-स्वर्ग गति के झूले मे झूलते रहे। शरीर तो सधा, पर शरीर से सधने से यह कोई जरूरी थोडे ही है कि विचारो की आधी शान्त हो जाये। शरीर से हटे, तो विचारो मे जाकर उलझ गये। जैसे ही उपशम-गिरि पर चढे कि सिद्ध-बुद्ध बन गये।

हठयोग जरूरी तो है, पर वह साधना का अन्तिम रूप नही है। चूकि साधना का पहला सोपान शरीर है और व्यक्ति इससे बहुत अधिक जुडा है, अत शरीर की साधना भी बहुत जरूरी है। पर उसे साधने के लिए लोग ऐसे-ऐसे तरीके अपना बैठते हैं, जिससे शरीर तो शायद सध जाए, पर मन न सधे। शरीर को मैथुन से दूर कर लिया पर मन मे विषय-वासना की आधी उठ सकती है। इसीलिए मैंने कहा कि मन ही प्रधान है। यदि मन मे वासना ही नही है तो शरीर द्वारा वासना की अभिव्यक्ति कैसे होगी? शरीर तो स्वयमेव सध गया।

घी बनाने के लिए मक्खन पकाते हैं वर्तन में, आग पर। हमारा उद्देश्य मक्खन को पकाना है, न कि वर्तन को तपाना। पर क्या करें ? जब तक नहीं तपेगा, तब तक मक्खन पकेगा भी कैसे ? वैसे हमारा उद्देश्य आत्मा पाना है, विचारो को शान्त करना है। शरीर को शान्त करना हमारा उद्देश्य नही है। पर क्या करें ? विचारो को शात करने के लिए शरीर का भी विचार के अनुकूल बनाना पडता है। जो लोग केवल शरीर को सूखाते हैं, शरीर दमन करते हैं, वे तपस्वी और ध्यानी, योगी कैसे हो गए ? जिन्होने केवल शरीर के साथ अपनी साधना को जोडा, उनके कारण ही 'गफ को कहना पडा कि देह-दडन है। बुद्ध को भी तप का विरोध करना पडा। महावीर के अनुसार तो यह अज्ञान-तप है। इसीलिए कमठ जैसे तपस्वी का पार्श्व ने विरोध किया, क्योंकि उसने तप को, साधना को केवल शरीर से जोडा। पचाग्नि जलाकर उसके बीच मे बैठना—यह जान बूझकर कष्ट झेलना है। कष्ट सिर पर आ गिरे तो उसे परिषह है। आपत्ति आ जाये, तो उसका स्वागत करना तप है। जान-बूझकर सकटो को पैदा करना तो समझदारी नही है। "इच्छानिरोधस्तप" इच्छाओ पर ब्रेक लगाना तप है, अपने मन को काबू मे करना सयम है, केवल शरीर को शोपना, दबाना, न तो तप है, न सयम है, यह तो मात्र हठ-योग है।

हठ-योग है ऐसा, जिसमे शरीर को मुख्यता दी जाती है शरीर को साधा जाता है, शरीर को अपने काबू मे किया जाता है, विविध आसना, विविध मुद्राओं द्वारा। ध्यान को साधने के लिए यह जरूरी है कि शरीर भी सुगठित हो, बलवान हो, सशक्त हो, स्वस्थ हो। कारण स्वस्थ शरीर मे ही स्वस्थ मन रहता है। मन की निमलता के लिए शरीर की निमलता, खून की निर्मलता आदि भी सहायक हैं। जिसके शरीर मे बल है, उसके मन मे भी बल होगा। बलवान तन मे बलवान मन निवास करता है। इसलिए गहन ध्यान-साधना के लिए हमारा शरीर यदि सयमित, सुगठित हो, तो साधना मे आलस्य या प्रमाद के जहरीले घूट नही पीने पडते।

शरीर के भीतर एक और सूक्ष्म शरीर है, जिसका नाम है वचन, विचार, कोन्सियस माइन्ड। विचारो को साधने के लिए मन्त्र-योग काम देता है। विचार वह स्थिति है, जब साधक दीखने मे लगता है साध्य-स्थित, किन्तु भीतर मे विचारो की आधी उडती रहती है। हाथ मे तो माला रहती है किन्तु मनवा कही और रहता है। कबीर का दोहा है—

> माला फेरत जुग भया, गया न मन का फेर।
> कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर॥

हाथ मे तो माला के मणियें हैं, पर मन मे मणियां कहा है ? सामायिक तो ले ली, पर विचारो मे, मन मे समता कहां आयी ? प्रतिक्रमण के सूत्र ता मुह से बोल दिये, पर क्या पापा मे हट ? अन्तरात्मा स जुडे ? मन्दिर तो गये, पर क्या मन मे भगवान बसे ?

साधना के लिए शरीर को साधना मुख्य है, पर उससे भी मुख्य विचारो का साधना है, अन्तरमन को साधना है । क्योकि साधना का सम्बन्ध बाहर से उतना नही है, जितना भीतर से है । प्रवृत्ति मे भी निवृत्ति हो सकती है और निवृत्ति मे भी प्रवृत्ति हो सकती है ।

बाहर से कोई व्यक्ति हिंसा न करते हुए भी हिंसक हो सकता है । हिंसा और अहिंसा कर्त्ता के अन्तर भावो पर, मन पर, विचारो पर अवलम्बित है, क्रिया पर नही । यदि बाहर से होने वाली हिंसा को ही हिंसा माना जाय, तब तो कोई अहिंसक हो नही सकता । क्योकि ससार मे सभी जगह पर जीव हैं, और उनका घात होता रहता है । इसलिए जो व्यक्ति अपने मन से, अपने विचारो से अहिंसक है, वही अहिंसक है ।

अत मूल तत्त्व हमारा अन्तरमन है, अन्तर-विचार है । कहा जाता है "जो मन चगा तो कठौती मे गगा ।" अत मेरे विचारो से साधना मे शरीर से भी मुख्य हमारे वचन हैं, मन है । आजकल जो नये-नये से नामो से ध्यान की शैलिया प्रचलित हुई हैं, उन सबका एक ही लक्ष्य है कि विचार शान्त हो, मन केन्द्रित हो । समीक्षण-ध्यान, प्रेक्षा-ध्यान, विपश्यना-ध्यान, सहजयोग-ध्यान ये सभी विचारो की अग्नि को ठडा करना सिखाते हैं ।

चू कि आज ससार भौतिकता से जुडा है अत विचार भी उसी से जुडे रहत हैं । ध्यान करने तो बैठ गये, पर मन टिकता नही । वह कभी तो बाजार मे जाता है, कभी घर का चक्कर लगाता है, तो कभी विचारो मे किसी अप्सरा का, मेनका का रूप उभरता है । इसे कहते हैं—विचारो मे बहना । जिसके मन मे जैसे भाव होते ह, जैसे विचार होते हैं, वह व्यक्ति वैसा ही बन जाता है ।

शारीरिक क्रियाए वास्तव मे आन्तरिक विचारो की अभिव्यक्तिया हैं । क्रोधी मन मे विचार भी क्रोधी होगे । कामुक मन के विचार भी कामुक होगे । जो विचारों मे है, वही शारीरिक क्रियाओ द्वारा प्रकट-होता है ।

जब व्यक्ति देह मे रहकर, देहातीत होकर वैचारिक ध्यान में समर्पित हो जाता है, तो उसके शरीर द्वारा वैसी क्रियाए होने लगती हैं, जो उसके विचारो मे थी । जब व्यक्ति विचारो मे खोया रहता है तो उसे पता भी चलता कि शरीर मे या शरीर के बाहर कुछ हो रहा है या नही ? बहुत बार ऐसा होता है कि कोई हमे आवाज देता है । पाच बार आवाज देता है, मगर वह आवाज हमारे कानो को छू कर भी लौट जाती है । क्योकि हम, हमारी चेतना, हमारे चैतसिक सारे व्यापार—सभी किसी विचार मे लगे हुए थे । जब अचानक चेतना लौटती है, उस आवाज को पकडती है, तो हम हक्के-बक्के रह जाते हैं ।

जब आदमी विचारो मे, अन्तर-विचारो मे ही रमने लग जाता है, तो महर्षि रमण बन जाता है । उसे पता नही चलता है कि मैं शरीर हू । उसका

जितेन्द्रियता और सेवा

❀ स्वामी शरणानन्द

अपना निर्माण करने, अर्थात् अपने को सुदर वनाने के लिए इन्द्रिय
लोलुपता से जितेंद्रियता की ओर, स्वाथ से सेवा की ओर, विपय-चिन्तन तथा
व्यर्थ-चिन्तन से भगवत्-चितन तथा साथक चितन की ओर एव असत्य से सत
की ओर गतिशील होना नितान्त आवश्यक है। कारण कि जब तक प्राणी अपन
पर अपना शासन नही कर लेता, अपनी वनायी हुई पराधीनताओ का त्याग करके
स्वाधीन नही हो जाता, निरर्थक चिन्तन और चेष्टाओ से रहित नहीं होता, अपन
को सहृदय और उदार नही वना लेता, सत्य के प्रति प्रियता नही उत्पन्न कर लता
तब तक वह अपने को सुदर नही वना सवता—यह निर्विवाद सत्य है ।

इन्द्रिय-लोलुपता अविवेक-सिद्ध है । यदि मानव प्राप्त विवेक के प्रका
मे शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि आदि समस्त दृश्य मे अपने को असग म
तो वहुत ही सुगमता पूवक जितेन्द्रियता प्राप्त हो सकती है, अर्थात् भोग से भाक्ता
का मूल्य बढ जाता है, जिसके वढते ही भोग की रुचि तत्त्व की जिज्ञासा मे
अथवा प्रेमास्पद की प्रियता मे परिवर्तित हो जाती है । इस दृष्टि से शरीर आ
वस्तुओ से असग होना अनिवाय है । असगता किसी अभ्यास मे सिद्ध नहीं होता,
अपितु निज विवेक के आदर मे ही साध्य है, कारण कि समस्त अभ्यास शरी
के तादात्म्य से ही किये जाते हैं । करने की रुचि ने ही देहाभिमान को पोषित
किया है और देहाभिमान से ही सुख मे प्रलोभन तथा दुख का भय उत्पन्न होत
है । इसका अर्थ यह नही है कि प्राणी प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग न करे
करने के फलस्वरूप कुछ पाने का जो प्रलोभन है उसी से प्राणी मे देहाभिम
पोषित होता है, जिसके होते ही उत्पन्न हुई वस्तुओ मे सत्यता, सुन्दरता ए
सुखरूपता भासती है, जो इन्द्रिय-लोलुपता की भूमि है। अत यह निर्विवाद सिद्ध
है कि विवेकपूर्वक तीनो शरीरो से असग होने पर ही वास्तविक जितेंद्रियता की
अभिव्यक्ति होती है ।

देहाभिमान रहते हुए बलपूवक जितेंद्रियता प्राप्त करने का प्रयास
विषयाशक्ति के नाश मे समय नही होता, अपितु तप-पूर्वक अल्प काल के लि
विषयासक्ति दब जाती है, नष्ट नही होती । इस कारण विषयासक्ति का ना
एकमात्र विचार से ही सम्भव है। विचार-रूपी सूर्य का उदय होते ही विषयासक्
रूपी अन्धकार स्वत नष्ट हो जाता है । इस दृष्टि से तप और त्याग दोनो
के द्वारा जितेन्द्रियता सिद्ध होती है । तप से शक्ति का सम्पादन होता है

ाग से निर्वासना आती है, जिससे सर्वांश मे समस्त आसक्तियो का अन्त हो
ता है, जो वास्तविक जितेन्द्रियता है ।

इन्द्रिय-लोलुपता परिवर्तनशील सुख की ओर तथा जितेन्द्रियता हित की
ार प्रेरित करती है । सुख और हित मे एक बडा अन्तर यह है कि सुख का
ागी वस्तुओ, व्यक्तियो, अवस्थाओ एव परिस्थितियो के अधीन हो जाता है,
र्थात् उसकी स्वाधीनता पराधीनता मे वदल जाती है । इतना ही नही, उसमे
क्तिहीनता, हृदयहीनता और परिच्छिन्नता आदि अनेक निबलताएँ अपने आप
ा जाती हैं । इसके विपरीत हित को अपनाने पर पराधीनता-स्वाधीनता मे,
दयहीनता सहृदयता मे, परिच्छिन्नता म और निवलता सवलता मे वदल जाती
, क्योकि हित हमे 'पर' से 'स्व' की ओर प्रेरित करता है । हित का अभिलाषी
ाणी 'यह' से 'है' की ओर अग्रसर होता है, अर्थात् वह दृश्य से विमुख होकर
व के प्रकाशक मे प्रतिष्ठित हो जाता है । फिर विषय इन्द्रियो मे, इन्द्रियाँ मन
, मन बुद्धि मे और बुद्धि उसमे लीन हो जाती हैं जो सबसे अतीत हैं । इस
कार बुद्धि के सम होने पर मन मे निर्विकल्पता आ जाती है, फिर इन्द्रियाँ
ापय-विमुख होकर मन से अभिन्न हो जाती हैं—बस यही जितेन्द्रियता का वास्त-
वक स्वरूप है । जितेन्द्रियता प्राप्त होते ही शक्तिहीनता और पराधीनता का
न्त हो जाता है, क्योकि इन्द्रिय-जय से आवश्यक शक्ति का विकास स्वत होने
ागता है ।

पर जव तक स्वार्थ-भाव निमू ल नही हो जाता तव तक जितेन्द्रियता की
उत्कट लालसा जाग्रत नही होती, जिसके विना हुए मानव सत्पथ पर अग्रसर
ाही हो सकता । इस दृष्टि से स्वार्थ-भाव का अन्त करना अनिवार्य है । स्वार्थ—
भाव गलाने के लिए सुखासक्ति का नाश अनिवार्य है, जो एकमात्र सेवा से ही
साध्य है । सेवा की अभिव्यक्ति दु खियो को देख करुणित और सुखियो को देख
प्रसन्न होने मे ही निहित है । सेवा के विना सुखासक्ति निमू ल नही होती, कारण
कि सुख का सद्व्यय सेवा द्वारा ही सम्भव है । सेवा-भाव उदित होते ही प्राणि-
मात्र से एकता हो जाती है, जिसके होते ही दु खियो को देख सेवक का हृदय
करुणा से परिपूर्ण होता है और फिर सेवक प्राप्त सुख आदरपूर्वक दु खियो को
भेंट कर देता है । ऐसा करते ही सुख की दासता शेष नही रहती, यही विकास
का मूल है । प्राकृतिक नियमानुसार शरीर और विश्व का विभाजन सम्भव नही
है । इन्द्रिय-दृष्टि से भिन्नता प्रतीत होने पर भी जिस प्रकार शरीर और शरीर
के अवयवो मे एकता है उसी प्रकार समस्त विश्व के साथ एकता स्वत सिद्ध है ।
एकता दु खियो को देखने पर करुणा और सुखियो को देखने पर प्रसन्नता प्रदान
करती है । करुणा सुख-भोग की रुचि को खा लती है और प्रसन्ता निष्कामता
से अभिन्न करती है । भोग की रुचि का नाश होते ही योग और निष्कामता
आते ही असगता स्वत प्राप्त होती है । योग से सामर्थ्य और असगता से स्वा-

धीनता स्वत प्राप्त होती है । इस दृष्टि से सेवा-भाव बडे ही महत्व की
है । इतना ही नही, सेवा सेवक को सेव्य से अभिन्न कर देती है, अथवा यों
कि सेवक का अस्तित्व सेवा से भिन्न और कुछ नही रहता । सेवा सेव्य का म
भाव और सेवक का जीवन है । सेवा से सेव्य को रस मिलता है और जगत
हित होता है । सुन्दर समाज का निर्माण एकमात्र सेवा मे ही निहित है । ०
से जीवन जगत् के लिए, अपने लिए एव सेव्य के लिए उपयोगी सिद्ध होता है
सेवा-भाव जाग्रत होते ही प्राप्त वस्तु, सामर्थ्य तथा योग्यता का सद्व्यय
होने लगता है, जो जगत् के लिए उपयोगी है । सेवा से प्राप्त वस्तु आदि
ममता और अप्राप्त वस्तु आदि की कामना शेष नही रहती । सेवा से पराधी
स्वाधीनता मे, जडता चिन्मयता मे एव मृत्यु अमरत्व मे विलीन हो जाता है
इस दृष्टि से सेवा अपने लिए उपयोगी सिद्ध होती है । सेवा सेव्य मे आत्मी
जाग्रत करती है । आत्मीयता म ही अगाध, अनन्त, नित नव प्रियता निहित
जिससे सेव्य को रस मिलता है । अतएव सेवा सेव्य के लिए भी उपयोगी
होती है । मानव जिसमे अविचल आस्था स्वीकार करता है वही उसका सेव्य
और उसी के नाते सेवा की जाती है । सेवा भौतिकवादियो को विश्व प्र
अध्यात्मवादियो को आत्मरति एव भक्तो को प्रभु-प्रेम प्रदान करने मे समर्थ है
प्रम का आरम्भ किसी के प्रति हो, अन्त मे वह विभु हो जाता है, कारण
दर्शन अनेक होने पर भी वास्तविक जीवन एक है । उसमे अभिन्नता मानव
की सेवा द्वारा हो सकती है ।

卐

- जो अपने मुख और जिह्वा पर सयम रखता है, वह अपनी आत्मा को सतापो से बचाता है । —बाइबिल
- सयम मे पहला कदम है विचारो का सयम । —महात्मा गाधी
- सौन्दर्य शोभा पाता है शील से और शील शोभा पाता है सयम से । —कवि नान्हालाल
- जो अपने ऊपर शासन नही करेगा, वह हमेशा दूसरो का गुलाम रहेगा । —महाकवि गेटे
- जिसका मन और वाणी सदा शुद्ध और सयत रहती है, वह वेदान्त शास्त्र के सब फलों को प्राप्त कर सकता है । —महर्षि मनु
- सयमी पुरुष सदा हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म भोग लिप्सा और लोभ का परित्याग करे । —भगवान महावीर

व्रत की जरूरत

⊛ महात्मा गाधी

जीवन को गढने के लिये व्रत कितने जरूरी हैं, इस पर यहा सोचना मुनासिब लगता है ।

ऐसा एक सम्प्रदाय है, और वह बलवान भी है, जो कहता है—"अमुक नियमो का पालन करना ठीक है, लेकिन उनके बारे मे व्रत लेने की जरूरत नही है। इतना ही नही, वह मन की कमजोरी बताता है और नुकसान करने वाला भी हो सकता है और व्रत लेने के बाद ऐसा नियम अडचन रूप लगे या पाप रूप लगे तो भी उससे चिपके रहना पडे, यह तो सहन नही हो सकता" वे। कहते हैं—मिसाल के तौर पर शराब न पीना अच्छा है । इसलिए शराब नही पीनी चाहिये । लेकिन कभी पी ली गयी तो क्या हुआ ? दवा के तौर पर तो उसे पीना ही चाहिये । इसलिये उसे न पीने का व्रत लेना तो गले मे फदा डालने के बराबर है । और जैसा शराब के बारे मे है,वैसा और चीजो के बारे मे भी है । भले ही हम झूठ भी क्यो न बोलें ?

मुझे इन दलीलो मे कोई वजूद मालूम नही होता । व्रत का अर्थ है—अडिग निश्चय । अडचनो को पार करने के लिए ही तो व्रतो की आवश्यकता है । अडचन बर्दाश्त करते हुए भी जो टूटता नही, वही अडिग निश्चयी माना जायेगा । ऐसे निश्चय के बगैर मनुष्य [illegible]तार ऊपर चढ ही नही सकता, ऐसी गवाही सारी दुनिया का अनुभव दे [illegible] जो [illegible] पापरूप हो,उसके निश्चय को व्रत नही कहा जायेगा । [illegible] । और जो निश्चय पहले पुण्यरूप लगा हो [illegible] छो[illegible] का धर्म जरूरी हो जाता है, [illegible] [illegible]र न लेना चाहिये । [illegible] कोई [illegible] इमे आदत नही पडी है, उसके [illegible]

[illegible] । सच

कहने से [illegible] नही

बैठेगा । [illegible] से [illegible] है

ऐसा वि[illegible]

दवा के

लेने के

पर

रहेगी

दूसरे ही क्षण किसी और कारण मे छूट गई तो उसकी जिम्मेवारी किसके होगी ? इससे उल्टा देह छूट जाय तो भी शराब न पीने की मिसाल का की लत मे फसे हुए लोगो पर चमत्कारी असर होगा, यह दुनिया का ॰ वडा फायदा है ? देह छूटे या रहे, मुझे तो अपना धर्म पालना ही है–ऐसा शानदार निश्चय करने वाला मनुष्य ही किसी समय ईश्वर की झाकी सकता है ।

व्रत लेना कमजोरी की निशानी नही है, वल्कि बल की निशानी है अमुक वात करना ठीक हो तो फिर उसे करना ही है, इसका नाम है व्रत। ० ताकत है, फिर उसे व्रत न कहकर किसी और नाम से पहचानें तो उसमें ह हर्ज नही । लेकिन "जहा तक हो सकेगा करूगा" ऐसा कहने वाला अपनी ॰ जोरी का या अभिमान का दर्शन कराता है, भले वह खुद उसे नम्रता कहे उसमे नम्रता की गध भी नही है । "जहा तक हो सकेगा" ऐसा वचन ॰ निश्चयों में जहर जैसा है , यह मैंने तो अपने जीवन मे और दूसरे बहुतों ' जीवन में देखा है । "जहा तक हो सकेगा वहा तक" करने के मानी है पह ही अडचन आने पर गिर जाना । "जहा तक हो सकेगा वहा तक सच्चाई ॰ पालन करूगा" इस वाक्य का कोई अर्थ नही है । व्यापार मे "हो सका तो ॰ तारीख को फला रकम चुकाने की" किसी चिट्ठी का कही भी चेक या हु डा ' रूप मे स्वीकार नही होगा । उसी तरह जहा तक हो सके वहा तक सत्य ॰ पालन करने वाले की हु डी ईश्वर की दुकान मे नहीं भुनाई जा सकती ।

ईश्वर खुद निश्चय की, व्रत की सम्पूर्ण मूर्ति है । उसके कायदे में ॰ एक अणु, एक जर्रा भी हटे तो वह ईश्वर न रह जाय । सूरज बडा व्रतधारी ॰ इसलिए जगत का काल तयार होता है और शुद्ध पचाग (जत्री) बनाये ज सकते हैं । सूर्य ने ऐसी साख जमाई है कि वह हमेशा उगा है और हमेशा उग रहेगा और इसीलिए हम अपने को सलामत मानते हैं । तमाम व्यापार ॰ आधार एक टेक पर रहता है । व्यापारी एक-दूसरे से बधे हुए न रहें तो व्यापार चले ही नही । यो व्रत सर्वव्यापक, सब जगह फैली हुई चीज दिखाई देता है, फि जहा अपना जीवन गढने का सवाल हो, ईश्वर के दर्शन का प्रश्न हो, वहा व्र के वगैर कैसे चल सकता है ? इसलिए व्रत की जरूरत के बारे मे हमारे दिल में कभी शक पैदा ही न होना चाहिये ।

समभाव मे स्थित होना ही सयम है

⚛ श्री गणेश ललवानी

"आपकी अग्नि क्या है ! अग्नि कुण्ड क्या है ? दर्वि क्या है ? अग्नि प्रज्वलन की करीष क्या है ? आप का यज्ञ-काष्ठ क्या है ? शान्ति मत्र क्या है ? और आप किस प्रकार होम के द्वारा अग्नि मे हवन करते है ?"

ब्राह्मणो के इन प्रश्नो के उत्तर मे मुनि हरिकेशी बल कहते हैं—"हमारी तपस्या ही अग्नि है, प्राणी है अग्निकुण्ड, मन, वचन, काया का योग दर्वि, शरीर करीष, कर्म काष्ठ व सयमाचरण शान्तिमत्र है । ऋषियो के योग्य श्रेष्ठ होम के द्वारा हम हवन करते हैं ।"

इसका तात्पर्य यह है कि प्राणीमात्र अग्निकुण्ड है एव मन, वचन, काया के शुभ व्यापार रूप घृत से शरीर रूप करीष के द्वारा तपस्या रूप अग्नि को हम प्रज्वलित कर अष्ट कर्म रूप ईंधन को भस्मसात करते हैं । इससे आत्मा निर्मल हो जाती है और (सतरह प्रकार[1] के) सयम द्वारा शान्ति को प्राप्त करती है । हम ऋषिगण इस प्रकार के प्रशस्त यज्ञ का अनुष्ठान करते है ।

सयम हमारा शान्ति मत्र है । सयम धारण कर हम शान्ति प्राप्त करते हैं । सयम को धर्म भी कहा गया है—

धम्मो मगल मुक्किट्ठ, अहिंसा सजमो तवो ।
अर्थात् धर्म उत्कृष्ट, मगल है । अहिंसा, सयम व तप वह धर्म है ।

धर्म क्या है ? 'तत्वार्थ सूत्र' मे इसका उत्तर देते हुए कहा गया है—

'वत्थु स्वभावो धम्म' ।

वस्तु का जो स्वभाव है, वही उसका धर्म है । जल का स्वभाव शीतलता है, अन्य द्रव्य के सस्पर्श मे आकर ही वह उष्ण होता है । इसी भाति जीव का स्वभाव अहिंसा, सयम व तप है । जीवो मे जो अन्य भाव देखा जाता है, वह हिंसा, असयम और अ तप का परिणाम है । अत जीवो का धर्म होता है, अहिंसा, सयम व तप मे प्रतिष्ठित होना ।

---

१ हिंसा झूठ चौर्य, अब्रह्म और परिग्रह इन पाच आश्रवो का परित्याग, इन्द्रियो के पाचों विषय यथा—शब्द, रूप, रस, गध, स्पर्श में आसक्त न होना, क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारो कषायो का त्याग करना, मन, वचन काया की अशुभ वृत्तियों का दमन करना, यही सतरह प्रकार का सयम है ।

सत्य की यात्रा

❀ श्री जी एस नरवानी

किसी विद्वान् ने लिखा है कि यदि किसी व्यक्ति ने धन खो दिया तो मानो कुछ नहीं खोया, स्वास्थ्य खो दिया तो समझो कुछ खोया और यदि चरित्र चला गया तो मानो सर्वस्व ही खो दिया। वर्तमान युग मे नैतिक पतन, चरित्र की अवनति आखिर क्यों ? कहा गए भारतीय सस्कृति के उच्च सोपान ? क्या हुआ भारत के ऋषि-मुनियो के आदर्शों का ? क्या हाल हुआ अध्यात्मवेत्ताओ और धर्मगुरुओ के देश का ?

इसका कारण क्या ? कोई शिक्षा-नीति को दोष देता है कि अध्यात्म शिक्षा को सामान्य शिक्षा से हटा देने के कारण चरित्र का ह्रास हुआ है। पुरानी पीढी दोष देखती सिनेमा, टी वी, पाश्चात्य पॉप डांस का जिससे युवक पूर्णतया प्रभावित हैं। परन्तु क्या शिक्षाविदो एव पुरानी पीढी के ठेकेदारो ने अपने अन्तरमन मे झाक कर भी देखा है ? बच्चे तो वैसा ही विचार और व्यवहार करेंगे, जैसा उन्होंने अपने माता-पिता या, पास-पडोसियों का या धर्म गुरुओ का देखा है। उनके सीखने का स्रोत तो उनका घर और समाज ही है।

क्या पुस्तको मे आदर्श पढाने से व्यक्ति आदर्श बन सकता है ? क्या रोज माला फेरने व पूजा-पाठ करने वाले सभी आदर्श इसान है ? क्या सभी पंडित, मुल्ला, पादरी सरलता, सादगी सच्चाई, के ज्वलत उदाहरण है ? यदि नही, तो युवको को दोष क्यो देते हैं हम ?

जब तक हमारी आखें बाहर की ओर देखती हैं, स्वभाववश वे दूसरों के ही दोष ढूढती हैं और वे दोष स्वय के अन्दर भरती जाती हैं। यदि वही दृष्टि अन्तर की ओर, मन की ओर मोड दी जाए, तो वे ही आखें स्वय के दोष देखें, उन पर विचार व मनन करें एव अन्दर का मैल साफ करने का सकल्प करने लगेंगी। सकल्प मे महान् शक्ति है। दृढ सकल्प करते ही अन्तर्मुखी मन शुद्ध और पवित्र होने लगता है। स्वय के दोष दूर भागते जाएगे और ईश्वरीय गुण स्वत अपने अन्तर मे भरने लगेंगे। मन दर्पण है, जसे-२ साफ होगा, अपना रूप दिखेगा, दुर्गुण दूर होंगे, चरित्र चमकना शुरू होगा। सत्य कहीं बाहर नही है, वह अपने अन्तर में ही है। केवल उस पर गन्दगी का आवरण आ गया है उसे हटाना होगा।

यदि इस प्रक्रिया में किसी का सहारा मिल जाए, सत का सत्सग प्राप्त हो तो साबुन रूपी सत्सग से मल जल्दी साफ हो जाएगा। सत्य तो निरा-

कार है, उसे देख सकते हैं तो सतो के अ तर मे, उनके व्यवहार व विचार मे क्योकि वे सत्य के नजदीक होते है या कोई-२ तो सत्य का स्वरूप ही होते हैं ।

सत कौन है ? जिनके पास आते ही मन शात व शीतल होने लगे, अपनी वासनाए व दुर्गुण दिखाई न देवें,आतरिक प्रस नता व आनन्द महसूस हो, उनके पास से उठने की इच्छा ही न हो, उनके अमृत रूपी वचन सुनने से कान तृप्त न हो, उनकी मनमोहनी मुस्कराती छवि वरबस आकर्षित किए रखे तो समझो हम सत्य के स्वरूप के अत्यन्त निकट बैठे है । जब वह छवि मन मे समा जाती है, बरबस इन्द्रिया सिमट कर अ तमु खी होकर उसी के गुणो का चिंतन करने लगती हैं, तो वे गुण ही अपने अ तर मे भरने लगते हैं । मनुष्य पशुता मे मनुष्यत्व की ओर, मनुष्यत्व से देवत्व की ओर, देवत्व से ईश्वरत्व की ओर अग्रसर होता रहता है और अन्त मे स्वय ही सत्य स्वरूप हो जाता है, यदि सत्य की यात्रा जारी रखे ।

यह सत्य की यात्रा क्या है ? यदि हम किसी शिशु को देखें तो कितना मुक्त, स्वच्छद, आनदित, आकर्षक व मनमोहक होता है । वह सत्य के अत्यन्त निकट होता है । उसके रूप एव व्यवहार को देखकर मन आकर्षित हो उठता है । मन स्वत उससे प्रेम करने लगता है । उसके स्पर्श मे आनन्द का अनुभव होता है । माता पिता पडोसी सभी बच्चों के साथ आतरिक प्रसन्नता प्राप्त करते हैं ।

परन्तु ससार का रग, विषयो का मैल, पारिवारिक मोह एव राग-द्वेष उसके सत्य स्वरूप पर मैल और आवरण तथा विक्षेप चढा देते हैं । इससे मन-दर्पण मैला होता जाता है । बचपन का सत्य स्वरूप ढक जाता है । मनुष्य मे कटुता आ जाती है, राग-द्वेष, स्वार्थ उसकी सच्चाई पर पर्दा डाल देते है । चरित्र मे ह्रास होता चला जाता है ।

नैतिक उत्थान का एक ही तरीका है, मन-दर्पण के ऊपर के मैल और आवरण हटाना, उसे सत्सग के साबुन से साफ कर उज्ज्वल बनाना, सतो के पास बैठकर अ तर मे दृढसकल्प व शक्ति प्राप्त करना ताकि उज्ज्वलता को कायम रख सकें, पुन सद्मार्ग से विचलित न हो ।

इस सत्य की यात्रा की भी एक विधि है । सत का सहारा, स्वाध्याय व सत्सग, अभ्यास एव वैराग्य । हमारी शक्ति सीमित है, ज्ञान सीमित है, सामर्थ्य भी सीमित है, इसलिए किसी एक का सहारा लो, जिससे आपका मन स्वत नतमस्तक हो जाए । किसी के कहने से नही, अपने मन से । सत्य की यात्रा तभी सफल होगी जब मन चाहेगा । अनचाहे मन को सौ बहाने मिल जायेंगे, कई रुकावटें दिखेंगी सत्य की यात्रा मे ।

जिस एक का सहारा लो, खूब सोच समझकर, ठोक बजाकर तय करो। एक बार दृढ निश्चय कर लो, तो फिर डिगना नही ।

सत के गुण ऊपर बता चुके हैं । भाग्य से जब सत्य स्वरूप सत मन में बैठ जाए, तो वृत्तिया अ तमुखी करके सत्य के गुणो का चिंतन करें । शुद्ध एवं निर्मल, पवित्र, ज्ञान स्वरूप, प्रकाश रूप, सरल सत्य स्वरूप, आनन्द स्वरूप अपने मन में ही देखना होगा । चोर भागने लगेंगे । रोशनी आते ही अन्धेरा रोशनी मे बदल जाता है । अन्धेरा जाता नही, बदल जाता है । विचार जाते नहीं उनका रूपांतरण हो जाता है । गदा नाला जब गगाजी मे मिलता है तो वहं गगा मे ही रहकर, बदलकर गगाजल बन जाता है । यही यात्रा मन की है । यह सत्य की यात्रा है ।

पर कोई चाहे कि यह यात्रा एक दिन मे पूरी हो तो कैसे सम्भव है? अभ्यास की आवश्यकता है । जैसे पानी महिने भर का या वर्ष भर का इकट्ठा नही पिया जा सकता, रोटी रोजाना खानी होती है, इसी तरह सत्य की खुराक रोजाना खानी होती है । सत्य की खुराक खाने मे धैर्य से काम लेना होगा। सत्य की शक्ति एकदम अन्दर भर लेने मे खतरा है । अ तरमन की सामर्थ्य अनुसार, पुराने जन्म के सस्कारो अनुसार, अपने कर्म और शक्ति अनुसार ही सत्य को अपने अ तर मे समाहित करना होगा । सीधे पावर हाऊस से बल्ब नहीं जुड़ सकता । उसे ट्रासफार्मर के जरिए, सत के सहारे प्राप्त करते-करते निरंतर अभ्यास द्वारा सत्य की यात्रा करनी होगी ।

स्वाध्याय भी करते रहना है, अपने अ तरमन का, अपनी चेतना का, अपने विवेक का, अपने सत्य की यात्रा की प्रगति का । यदि जीवन मे सरलता, सादगी, सच्चाई, नम्रता आ रही है, सेवा एव प्रेम बढ़ रहा है, द्वेष एव दोष देखने की प्रवृत्ति समाप्त हो रही है, दु खी व्यक्ति को देखते ही मन मदद को दौड़ता है, परोपकार से आनन्द प्राप्त होता है, स्वार्थ कोसो दूर चला गया है, आतरिक प्रसन्नता है, सदा मन निर्मल शुद्ध एव पवित्र रहता है, उसका सत्य से लगाव हो गया है, तो मानो हमारी सत्य की यात्रा सही चल रही है । पर यदि जीवन मे स्वार्थ और बहुरूपियापन अभी बाकी है, तो समझो सच्चे सत या सत्सग का सहारा नही मिल पाया है । आत्म-सयम, आत्म अनुशासन, आत्म अनुभव, सयम-साधना इसी सत्य की यात्रा के ही अभिन्न अ ग हैं ।

—कलेक्टर एव जिला मजिस्ट्रेट, सिरोही (राज०)

समभाव आत्मा का स्वभाव है।

❀ श्री उदयलाल जारोली

वत्थु सहाओ धम्मो–वस्तु का स्वभाव उसका धर्म है। मिश्री मे मिठास, मिर्ची मे चरकास, नमक मे खारास, अग्नि मे उष्णता, जल मे शीतलता उसका स्वभाव है। स्वभाव वह है जो उसमे सर्वांग मे समाहित रहे, उससे पृथक् नही किया जा सके। यदि मिश्री मे से मिठास गुण को निकाल दे तो मिश्री ही न रहे। गुण के अभाव मे गुणी का अभाव आता है। गुणो के समूह से ही गुणी की पहचान होती है। उसी प्रकार आत्मा का स्वभाव है समभाव। विभाव है विषमभाव। दया, करुणा, मैत्री, शान्ति, समता, क्षमा, सरलता, संतोष आदि आत्मा के स्वाभाविक गुण है। क्रोधादि कषाय भाव, रागद्वेष, हिंसादि आत्मा के वैभाविक भाव है। स्वभाव भाव नही है। आत्मा के भाव होते हुए भी निमित्ताधीन होने से, पर के आश्रय से, पर के निमित्त मिलने, पर के कारण ही होने पर भाव कहलाते है। कर्मो के निमित्त मे होते है। ये विषम भाव आत्मा के स्थायी भाव नही होते। राग सदैव नही रहता। क्रोध हर समय नही हो सकता। क्षणिक होता है। आता है जाता है। उसमे भी विभिन्न समयो मे विभिन्न तरतमता लिए होता है। तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम, मंद, मंदतर और मंदतम ऐसे छ मोटे विभागो मे बाटा जा सकता है। परन्तु समभाव, समताभाव, वीतराग-भाव सदा बना रहता है। जितने अंश मे प्रकट हुआ उतने अंश मे बना रहता है और विषमभाव पूरी तरह नष्ट होने पर, रागद्वेषादि पूरी तरह नष्ट होने पर पूर्ण वीतरागता प्रकट होती है। एक बार वीतरागता आई कि फिर जाती नही। वह क्षय को प्राप्त नही होती। वह वीतरागता भी आत्मा मे ही रहती है। त्रिकाल रहती है। मोहवशात् रागद्वेष रूप परिणामभाव से दबी रहती है। प्रबल पुरुषार्थ से प्रकट हो सकती है।

जल का स्वभाव शीतलता है। अग्नि के संसर्ग से अग्नि रूप होता है। जला देता है परन्तु जल का स्वभाव, जल का कार्य तो जलाना कभी नही होता। जलाने का कार्य अग्नि का है। अग्नि का संपर्क हटने पर जल स्वत स्वभाव मे आ जाता है। इसी प्रकार आत्मा का स्वभाव तो समभाव है। द्रव्यकर्म के संसर्ग से, ज्ञानावरणादि के निमित्त से तद्रूप परिणमनकर विषमभाव करता है। रागादि करता है। आवरण हटते ही, मोहादि नष्ट होते ही सहज स्वरूप मे स्थित होते ही समभाव मे आ जाता है। वह सहज स्वरूप कही बाहर से नही आता। आत्मा तो सहज स्वरूप ही है। समता स्वरूप ही है। सम ही है। पर निमित्तो के हटते ही शुद्ध स्वरूप प्रकट हो जाता है। समतामय हो जाता है। वह समता तो उसका सहज स्वभाव ही है।

जो समो सव्वभूवेसु, थावरेसु तसेसुवा ।
तस्स सामाइग ठाई, इंदि केवलिसासणे ।।

आत्मा को आत्मा की स्वभावदशा का ज्ञान होते ही विषमता जाती रहती है । अनादि मिथ्या मान्यता से आत्मा स्वय के बारे मे ही भ्रान्त दशा मे पड़ा रहता है । मोहादिवशात् स्व को स्व और पर को पर रूप जान नही पाता है। पर म स्व की कल्पना करता है । पर ही स्व रूप भासित होता है । शरीर, कुटुम्ब, धनसम्पदा, पद-प्रतिष्ठा को स्व और स्व रूप ही मानता है । इसी कारण बाह्य पर राग करता ह । इन्हें अपना मानता है । इन्हे क्षति पहुचाने वाले पर द्वेष करता है । क्रोध करता है । हिंसादि पर उतारु हो जाता है । क्लेश पाता है । कर्मबध करता है । उनके परिपाक पर पुन रागादि रूप परिणमन कर पुनः नवीन कर्मबध करता है और ऐसे दुष्चक्र मे अनादि से फसा हुवा है ।

जिस क्षण स्व का ज्ञान हो जाता है । स्व स्वभाव का ज्ञान हो जाता है, भ्रांति टूट जाती है । स्व-पर का भेद स्पष्ट हो जाता है । तब समभाव आ जाता है । सब जीवो के प्रति, सब भावो के प्रति अखड एकरस वीतराग भाव आ जाता है । लोक मे स्थित समस्त त्रस और स्थावर जीवो को समभाव से देखता है । अपने समान जानता है । सिद्ध समान जानता है । पर्याय से दृष्टि हटकर शुद्ध आत्मद्रव्य दृष्टि मे आ जाता है । तब न माता-पिता दिखते हैं, न भाई-बहन-पत्नी-पुत्रादि, न एकेन्द्रिय यावत् पचेन्द्रिय दिखते हैं, न देव नारक, तिर्यंच मनुष्य अपितु उनके साथ रही हुई अजर-अमर अविनाशी चैतन्य स्वरूपी अखड आत्मा दृष्टिगोचर होती है । भेद-पर्याय दृष्टि मे पड़ता है । इसी कारण रागद्वेषादि परिणाम होते हैं । द्रव्य दृष्टि होते ही सब जीवो के प्रति सब भावों के प्रति समभाव आ जाता है । केवली के शासन मे वही स्थायी सामायिक है ।

समभावो सामाइय, तण कचण सत्तुमित्तविसओत्ति ।
निरभिसगमचित्त, उचियपवित्तिपहाण च ।।

समभाव ही सामायिक है । तृण हो या कंचन, शत्रु हो या मित्र, उसका चित्त निरभिष्वंग हो, उचित प्रवृत्तिप्रधान हो जाता है । जब दृष्टि द्रव्य की ओर, शुद्ध द्रव्य की ओर हो जाती है तब तृण और कचन समान दिखते हैं । दोनों ही पुद्गल परमाणुओ के पिंड दिखते हैं—सडन, गलन, विध्वसनरूप पुद्गल । फिर न तृण के प्रति तुच्छ भाव और न काचन के प्रति लालसा भाव । दोनों ही विनाशीका आत्म द्रव्य से पूर्णत भिन्न । फिर न कोई शत्रु, न कोई मित्र । अपितु सर्वत्र, सभी आत्मा ही आत्माए दिखाई देती हैं । शत्रु भी मित्र लगता है । कर्मों का ऋण चुकाने मे सहायक लगता है । धन्य हैं और धन्य हो गए गज- सुकुमाल मुनि जिन्होंने ऐसा मानकर परमपद पा लिया ।

सामायिक मे चित्त उचितप्रवृत्तिप्रधान और निरभिष्वग हो जाता है ।

फिर कोई कितने ही उपसग दे, कितने ही परीषह आजाए, विषमभाव नही आते, क्रोधादि परिणाम नही होते । फिर चाहे एक ही रात मे २०-२० परीषह आ जाए, चाहे कोई कान मे कीलें ठोके, चाहे कोई डक मारे, चाहे कोई शरीर का मास नोचे, सामायिक नही टूटती, विषमता लेशमात्र भी नही आती । अडोल, अकप आत्म ध्यान मे, समभाव मे लीन रहते ह । ऐसा कैसे सभव है ? हमे तो कोई जरासी गाली देने आ जाए, क्रोधावेश मे आ जाते हैं, हानि पहुचाने आ जाए हिंसादि पर उतर आते हैं, हमारे जीवन मे यह विषम भाव क्यो ? उन आत्माओ के ऐसी सामायिक क्यो हुई, हमारी ऐसी क्यो नही होती ? कारण ? कारण है अज्ञान दशा । उन महान आत्माओ की दृष्टि शुद्ध आत्म द्रव्य पर थी । पर्याय से दृष्टि हट गई थी ।

प्रथम देह दृष्टि हती, तेथी भास्यो देह ।
हवे दृष्टि थई आतमना, गयो देह थी नेह ।।

देह तो उनके भी थी परन्तु आत्म दृष्टि हो जाने से देह से नेह नष्ट हो गया । धधकते अगारो से सिर जल रहा है पर ध्यान कहा है ? सिर पर ? सडन, गलन रूप पुद्गल परमाणुओ के पिड शरीर पर ? नही । इसलिए समता आ गई । परम वीतरागता आ गई । स्वभाव दशा प्रकट हो गई । केवलज्ञान, केवलदशन हो गया । धन्य ह ऐसी सम-स्वभाव दशा मे प्रवतने वाली आत्माए । धिक्कार है हमे । जरासा विपरीत, चेतन या अचेतन, निमित्त पाकर भारी विषमदशा मे आने वालो को । वह दिन धन्य होगा जब हम भी उन महान् आत्माओ की ज्ञान दशा, चारित्रदशा के निमित्त से उनका अवलोकन और चिंतवन कर अपने सहज स्वरूप को जानकर, मानकर स्वरूप सहज समभाव मे स्थित हो जाएगे ।

—जारोली भवन, नीमच (म प्र)

☐ मनुष्य प्रात काल उठकर पानी से स्नान करता है । उससे जीवन मे कुछ स्फूर्ति आती है । मगर उसी समय सद् विचारो से मानसिक स्नान कर लिया जाय तो चिर स्थायी जीवन विकाम की स्फूर्ति प्राप्त हो सकती है ।

☐ अतीत अवस्था का स्मरण, वर्तमान का अनुभव, भविष्य का चित्रण सामने रखकर प्रवृत्ति करने वाला व्यक्ति जीवन मे हमेशा सफलता का अनुभव करता है ।

☐ समता-दर्शन केवल मस्तिष्क रूप से न होकर आन्तरिक अनुभूतियो मे प्रस्फुटित होना चाहिए । —आचाय नानेश

शांति तो है हमारे अन्दर

✽ श्री सुन्दरलाल जी मल्हारा

प्रत्येक व्यक्ति शान्ति चाहता है। वह आनन्द से रहना चाहता है, वह निश्चिन्तता और सुरक्षितता चाहता है, पक्षियों की तरह स्वतन्त्रता में उड़ान भरना चाहता है, गाना चाहता है, सरिता सा उमड़ता घुमड़ता बहना चाहता है ताकि वह क्षण-क्षण स्वतन्त्रता का अनुभव कर सके, गरिमा से, शान से जी सके।

वस्तुतः उसकी शांति की खोज की यात्रा उतनी ही पुरानी है, जितना कि वह स्वयं। वह शान्ति से रह सके, इसके लिये उसने आवास बनाये, वह शांति से जी सके, इसके लिये उसने धान्य उगाये, वस्त्र बनाये। इसी शांति के लिये हजारों वैज्ञानिक आगे आये। उन्होंने मानवी जीवन को अधिक सुखी बनाने के लिये हजारों-हजारों आविष्कार किये।

परन्तु शांति की यह खोज क्या पूरी हुई? बड़े-बड़े विचारकों ने बड़े ग्रन्थ लिखे, काव्य-महाकाव्य लिखे, सौन्दर्य शास्त्र लिखे। ग्रन्थों के ढेर लग गये, पर शान्ति की खोज पूरी नहीं हुई। फिर व्यक्ति ने वैचारिक मंथन करना शुरू किया, दर्शन का जन्म हुआ। दर्शन शास्त्र बने। सम्प्रदायों ने जन्म लिया, पर फिर भी मानव को शांति नहीं मिली।

फिर इंसान ने मन्दिर बनाये, गिरजाघर बनाये, प्रार्थना मन्दिर बनाये, गुरुद्वारे बनाये, मठ और देवालय बनाये। पूजा पाठ प्रारम्भ हुए, प्रार्थना अर्चना शुरू हुई, व्रत-उपवास होने लगे, भक्ति की धाराएं बहने लगी, कथाएं-प्रवचन होने लगे। फिर भी शांति की खोज चलती ही रही। शांति के लिये मानव भटकता ही रहा।

आज मानव के पास धन है दौलत है, आलीशान घर है, भरपूर खाने और पहनने को है, उसके पास दूर-संचार के एक से बढ़कर एक साधन हैं, मनोरंजन के बेतहाशा उपकरण हैं। सुरक्षा के लिये अत्यन्त शक्तिशाली अस्त्र-शस्त्रों के ढेर लगे हैं। उसकी पहुंच आज चांद सितारों तक है। वह आज समूचे भौतिक विश्व का सम्राट बना बैठा है।

पर फिर भी क्या उसकी शांति की खोज पूरी हो पायी? क्या वह सही अर्थों में स्वतन्त्र और सुरक्षित हो सका? क्या उसका मन निर्द्वन्द्व और क्या वह सम्पूर्ण आनन्दित और गरिमाशाली हो सका? क्या वह पक्षी की भांति स्वतन्त्रता से उड़ान भर सका? पुष्प की भांति प्रातःकालीन मलयज का जी भरकर आस्वाद ले अपनी समग्रता से मुस्करा सका? क्या वह सरिता सा बह सका?

ऐसा लगता है हजारो-हजारो वर्षो की शाति की खोज अभी तक भी यशस्वी नही हो पायी है । शाति के लिये आज भी वह भटक रहा है । वह दु खी है, परेशान है, अशात और भयभीत है । सुरक्षा के हजारो साधनो के बावजूद भी वह आज भयकर रूप से असुरक्षित है । इतनी समृद्धि और इतने-इतने वैज्ञानिक अविष्कारो के बावजूद भी वह आज निराश और असहाय बना हुआ है । क्या यह सच नही है ? क्या हम अपने ही जीवन मे इसका अनुभव नहीं कर रहे हैं ?

ऐसा क्यो ? मनुष्य की यह इतनी लम्बी यात्रा सफल क्यो न हो पायी? क्यो आज इतनी अभूतपूव समृद्धि के होत हुए भी मानव इतना दु खी और परेशान है ? लगता है कि कोई गहरी भूल हो गयी है । वह भूल कौनसी है ? वह भूल है स्वय को उपेक्षित रखने की, अपने अ तर को भूल जाने की । दूसरे शब्दों मे अपने आपके बारे मे, अपनी ही आत्मा के बारे मे अज्ञात रहने की ।

वस्तुत बाहरी समृद्धि से भी अन्दर की समृद्धि ज्यादा महत्त्वपूर्ण है । यदि वृक्ष की जड़ें स्वस्थ ह तो वह बाहर लहलहाएगा ही । ठीक इसी तरह यदि व्यक्ति का अ तर स्वस्थ है, स्वच्छ है तो वह बाहर की समृद्धि का, उसके सौन्दय का गहरायी से अनुभव कर सकेगा । उसे सही अथ दे सकेगा । तब शक्ति सृजन मे लगेगी, विनाश मे नही । तब विज्ञान मानवता के लिये सही अर्थो मे वरदान सिद्ध होगा, अभिशाप नही ।

लेकिन हम तो बाहरी यात्रा को ही सब कुछ समझ बैठे । यह ऐसा ही हुआ जैसा एक मालिक अपने जलते हुए मकान से धन-सम्पत्ति तो बचा लेता है पर अपने इकलौते पुत्र को बाहर निकालना भूल जाता है । वस्तुत बाहरी समृद्धि की ही तरह आतरिक समृद्धि भी उतनी ही बल्कि उससे भी ज्यादा जरूरी है । यदि हमारी चेतना जागृत है, वह मुक्त और स्वस्थ है तो हम बाहरी समृद्धि का सही रूप मे मूल्याकन कर सकेंगे । हमारी विकसित चेतना हमे सत्य, शिव और सौन्दय का साक्षात्कार करा सकेगी । इसी सुसम्पन्न आत्मा मे ही प्रेम, आनन्द और शाति के फूल खिलते हैं ।

अब प्रश्न यह उठता है कि यह आतरिक समृद्धि कैसे उपलब्ध हो ? भौतिक समृद्धि के लिये बाहर की तो आतरिक समृद्धि के लिये अन्दर की यात्रा करनी होती है । यह अ तर की यात्रा क्या है ? इस यात्रा का अथ है—अपने आपको जानना, समझना, अपने अ तर की परतो को एक-एक कर उघाड़ते चले जाना, उन्हें समझते चले जाना । जिन-जिन मानवो ने इस शाति को प्राप्त की है, उन्हें यह सब करना ही पडा है । यदि नीव ही कमजोर है तो उस पर मजबूत इमारत भला कैसे बनेगी ? इस अ तर की यात्रा को चाहे आप ध्यान कह लीजिए, चाहे आत्म-रमण या सामायिक ।

यह यात्रा क्यो जरूरी है ? यह इसलिये कि हमारे अ तर में बहुत कुछ कूडा-कचरा, वासना, हिसा, द्वेष, क्रूरता, पक्षपात, आग्रह, दुराग्रह, मान्यता, धारणा, अहकार, मान, अपमान आदि का कचरा सैकडो हजारो वर्षों से भरा पडा है । उसने हमारी चेतना को उसी तरह ढक रखा है, जैसे हीरे को गुदडी ने या सूरज को बादलों ने । यह ढकी बुझी-बुझी सी चेतना भला हमें किस प्रकार बाहरी जगत को उसके वास्तविक रूप मे देखने मे मदद कर सकेगी ।

अत शाति के लिये आवश्यक है अपने अ तर को सारे कूडे कचरे से मुक्त करना । और यह तभी सम्भव है जब हम उसकी खोज-खबर लें, उसे समझें, उसमे प्रवेश करें और अ तत उससे मुक्त हो जाय । दूसरे शब्दो में हमारा अतर स्वच्छ हो जाए । इस अ तर के स्वच्छ होने के साथ ही चेतना मुक्त हो जाती है । यही मुक्त चेतना हमे शाति और आनन्द के स्रोत तक ले जा सकती है ।

यह ध्यान की प्रक्रिया ऐसी ही है, जैसे कि एक नन्ही सी कली का विक-सित होते-होते पूर्ण फूल बन जाना और फिर उसका बिखर जाना, समाप्त हो जाना । यदि हम अपने विचारो को, सस्कारो, आग्रहो, अहकारो का प्रतिदिन थोडा समय निकालकर समभाव से देखें, उन्हे समझें, उनमे प्रवेश करें तो हमें यह देखकर बडा आश्चय होगा कि वे स्वय ही अपनी मौत मर रहे हैं, जसे कि फूल अ तत झर जाता है । इस कूडे-कचरे के विसजन के साथ ही हमारा अन्तर आलोकित हो उठता है ।

इस प्रकार जब ध्यान की कुदाली से हम हमारे अ तर की परतें खोदते ही चले जाएगे तो एक दिन अचानक हम देखेंगे कि हमारे सामने आतरिक समृद्धि के द्वार खुले है और शाति-चिर तन शाति हमारी राह देख रही है ।

—६४, जिला पेठ, जी पी ओ के सामने, जलगाव-४२५००१

- प्रशसा जहरीले सप के समान है । अगर इसका विष तुझे चढ़ गया तो तू नष्ट हो जायेगा ।
- ब्रह्मचय जीवन का मूल है । इसी से जीवन की सारी रौनक है । आधुनिकता के भुलावे मे आकर इसकी उपेक्षा नही करनी चाहिए । इसकी उपेक्षा करना सारे जीवन की महत्ता को तिलां-जलि देना है ।
- आवेश दिल की कमजोरी का सूचक है । आवेश मे आकर किया जाने वाला कार्य त्रुटिपूर्ण होता है । अत सत्यान्वेषक को आवेश से दूर रहना चाहिए ।

—आचार्य जिनेश

सयम की अवधारणा

❀ डॉ महेन्द्रसागर प्रचडिया

आचाय कार्तिकेय ने 'बारस अनुपेक्खा' नामक कृति मे धम की परिभाषा स्पष्ट करते हुए लिखा कि 'वत्थु सहावो धम्मो । वस्तु का स्वभाव ही धम है । धम के दश लक्षण कहे गए हैं क्षमा, मार्दव, आजव, सत्य, शौच, सयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य । धम का चर्यापरक एक लक्षण विशेष सयम है । 'धवल' नामक ग्र थराज मे सयम की परिभाषा करते हुए स्पष्ट किया है—'सयमन सयम अर्थात् सयमन को सयम कहते हैं । सयमन अर्थात् उपयोग को पर-पदाथ से मुक्त कर आत्मोन्मुखी करना या होना वस्तुत सयम है ।

धम की चर्चा जिस क्षेत्र मे सम्पन्न होती है वहा साधको के बीच मे तीन शब्दो के प्रयोग प्रचलित हैं यम, नियम और सयम । यहा इन शब्दो को बडी सावधानी के साथ समझना आवश्यक है ।

यम और नियम शब्द क्रिया परक हैं और कम का सीधा सम्बन्ध इन्द्रिय-व्यापार पर आधृत है । इन्द्रिया पाच कही गई है—स्पशन, रसना, घ्राण, नेत्र और श्रवण । कम करने की एक प्रक्रिया है । इस प्रक्रिया मे मन की भूमिका महत्त्वपूण है । इन्द्रिय और आत्मा को मिलाने वाला एक माध्यम है—मन । मन का व्यापार दो प्रकार से होता है—जब वह इन्द्रियो के साथ सक्रिय होता है तो उसे द्रव्य मन-इन्द्रिय कहते हैं और जब वह आत्मा की मूल शक्ति के रूप मे है तब भाव–मन की सज्ञा प्राप्त करता है ।

ससार का ससरण मन-इन्द्रियो के सक्रिय व्यापार पर निभर करता है । इन्द्रियो को जब यम और नियम-तन्त्र मे प्रशासित किया जाता है तब इन्द्रिय-मन विशेष रूप से सक्रिय रहता है । यह विधि-विधान के अधीन इन्द्रिय-व्यापार को सचालन करने की योजना को असफल करने की प्रेरणा प्रदान करता है । इन्द्रिय व्यापारो के निग्रह को यम कहते हैं और विधि-विधान के अनुकूल नियत्रण को नियम कहते हैं । यही बात इस प्रकार भी कही जा सकती है कि वह सकल्प जिसका सदा निर्वाह किया जाता है, वस्तुत नियम कहलाता है । यम और नियम का सम्बन्ध जब मन-इन्द्रिय के साथ सक्रिय होता है तब ससार का व्यापार वद्धमान होता है । और यम-नियम पूवक जब सयम का सम्बन्ध भाव-मन के साथ होता है, तब आध्यात्मिक अभ्युदय होता है ।

मन की माग वस्तुत असयम है । और जब मन की माग मिट जाती हैं तब सयम के द्वार खुल जाते हैं । इच्छा का जब निरोध होता है तब तप के

सस्कार नतते हैं, परिपक्व होते हैं। तब वस्तुत सयम को जगाने का r
करता है।

किसी भी साधक को सयमी बनने के लिए जो माग चुनना होता
उसे वस्तुत दो भागो मे विभक्त किया जाता है, यथा—

(१) प्राणी-सयम
(२) इन्द्रिय-सयम

छह काय के जीवो के घात तथा घातक भावो के त्याग को वस्तु
प्राणी सयम कहा जाता है, जबकि पचेन्द्रियो के व्यापारों और मन के सहयत
त्याग को इन्द्रिय-सयम की सज्ञा प्रदान की गई है।

विचार कीजिए सयम-प्राणी और इन्द्रिय—शब्द शास्त्रीय परिवेश
चर्चित किया गया है। हमारी दैनिक चर्या (Routine) मे इसका प्रयोग
उपयोग किस मात्रा मे किया जा रहा है, यह एक ज्वलन्त प्रश्न है? आज
आम आदमी सुरक्षा चाहता है। वह आज के बौद्धिक प्रदूषण में घुटन
असुरक्षा अनुभव करता है। मुझे लगता है पशु-पक्षी, कीट, पतग आदमी
तुलना मे अधिक असुरक्षित अनुभव नही करता है। ससार के अनेक सुखी साधन
सविधानो का सहयोग पाकर वह सुरक्षित होना चाहता है। मेरे विचार म सय
से बडी और शाश्वत दूसरी और कोई सुरक्षा है नहीं। असयम से आज
आदमी गम्भीर रूप से रूग्ण है। कीटाणुओ से रोग इतना अधिक सक्रामक
होता, जितना भयकर रूप वह असयम से धारण कर लेता है। आज आदमी
असयम मे अधिक चुटैल हो रहा है, उतना शास्त्रो से नही। पुलिस की अपे
आज का आदमी असयम के द्वारा अधिक बदी बन रहा है। असयम के द्वार
जितनी अधिक असमय में ही मौतें हो रही हैं, उतनी यथाय और स्वाभावि
मृत्यु मे आदमी नही मर रहा है।

इन्द्रियो के व्यवहार से भी आज का आदमी परिचित नही है। इसलिए
प्रयोग-प्रसग मे वह असमर्थता अनुभव करता है। नेत्र इन्द्रिय है उसका उपयोग
है—रूप दर्शन। अब रूप का ही जब हम अवबोध नही है, तब रूप-दर्शन का
निर्णय करना वस्तुत दुरूह हो जाता है। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों के प्रयोग-
उपयोग का प्रश्न है। फिर प्राणी—सयम का प्रश्न तो और अधिक सूक्ष्म और
जटिल है। हमें पहले इन्द्रियो के प्रयोग-उपयोग पक्ष का ठीक-ठीक जानना और
पहिचानना होगा।

सामान्यत आज का आदमी स्व और पर का भेद नहीं समझता। उसे
भासता है कि 'पर' की प्राप्ति मे सुख है। उसे न तो 'स्व' का बोध है और
इससे भी आगे का चरण है 'स्व' के अस्तित्व को स्वीकारना। 'पर' को जाने
बिना उसका त्याग करना अथवा उसके प्रयोग-उपयोग मे सयम रखना, सम का

ार्यकता नही है ऐसी स्थिति मे जिस यम अथवा नियम का पालन किया जाता उससे शारीरिक शासन तो हो सकता है किन्तु आन्तरिक अनुशासन जगाने का श्न ही नही उठता। 'पर' और 'स्व' का बोध हो तो सयम–त्याग का प्रयोग साथक, म्भव हो सकता है। मुझे लगता है कि बोध होने पर बुराई–दुहराई नही ाती।

एक जीवत घटना–सदभ का स्मरण हुआ है। एक जनपद के सीमान्त र एक माद है जिसमे एक सिहनी अपने नवजात शिशुओ का पोषण करती है। ावायक एक वृहद् जुलूस का निकलना होता है। बाजे बजते हैं—जयनाद होते है। कोलाहल को सुनकर सिह–शावक माद से बाहर निकलते हैं और जुलूस के वैभव को, उत्साह को देखकर भयभीत हो जाते हैं। वे त्वरित अन्दर अपनी मा के पास आ जाते हैं और जुलूस का वृत्त-बोध कराते हैं। यह सुनकर मा यथार्थ जानने के लिए माद से बाहर आती हैं। वह जुलूस को ध्यान पूर्वक देखती है और निश्चित होकर अपनी माद मे लौट जाती है। शावको के अन्यत्र भाग चलने के प्रस्ताव को निरस्त करती हुई वह उन्हें यह कहकर आश्वस्त करती है कि यह जुलूस आदमियो का है। वे भाषा-विवाद, वे प्रान्तवाद, वे जातिवाद तथा वे सत्तावाद के लिए परस्पर लड़ेंगे, जुझेंगे। परस्पर मे घात-प्रतिघात करेंगे उन्हे हमारे ऊपर आक्रमण करने का अवसर ही कहा मिलेगा? यह सुनकर सिह-शावक तमाशा देखने लगे।

आज आदमी आदमी की हिसा करने मे अधिक सलग्न है। पहले पहले वह अपनी जीवन रक्षा और विभुक्षा के लिए पशु-पक्षियो का वध करता था किन्तु आज इस हिस्र-प्रवृत्ति का इतना विकास हुआ है कि वह परस्पर मे ही वध करने पर उतारू है।

उसके खाने मे सयम नही, उसकी वाणी मे सयम नही, उसकी दृष्टि मे सयम नही, उसके सुनने मे सयम नही। पहले अनर्थ और अश्लील सदर्भो के आने पर आदमी का चित्त विरक्त हो जाता था किन्तु आज के आदमी को ऐसा करने मे कोई परहेज, सकोच नही रह गया है।

आज का आदमी दो प्रकार की जीवन दौड दौड रहा है। आरम्भ मे वह धन की दौड मे दौडता है और जब उसे अनुभव हो पाता है कि यह दौड निरी, निरथक रही है तो वह धम की दौड प्रारम्भ कर देता है। इस दौड मे उसे कोई लाभ नही हो पाता। ऊपरी क्रिया-कलाप सम्पन्न हो पाते है—यथार्थ की अनुभूति करने मे वह पूणत वियुक्त रहता है। यम, नियम का ऐन्द्रिय-व्यापार सम्पादन करने मे वह लीन रहता है, सयम का स्वभाव जगाने म वह प्राय असमर्थ रहता है। विचार करें, जब नियम प्रधान बनता है और सयम गौण होता है तब धम का दिवाकर निस्तेज हो जाता है और जब सयम का रूप प्रधान

होता है और गौण होता है नियम का रूप, तब वस्तुत धर्म का सूर्य तेजस्
हो उठता है ।

आत्मिक गुणो को जगाने के लिए हमे धार्मिक बनना चाहिए। ऐ
स्थिति मे, नियम छूट जाते हैं और सयम मुखर हो उठेगा। जहा क्रिया
नियत्रण अथवा विरोध नहीं होता वहा चर्या मूलत निरोध मुखी होती है।
निरोध के वातायन से सयम के स्वर खुलते हैं। तब यह कहना सार्थक हो
है कि 'सयम खलु जीवन' अर्थात् सयम ही जीवन है ।

३६४ सर्वोदय नगर, आगरा रोड, अलीगढ (उ प्र)

नैसर्गिक चिकित्सक

❀ श्री विवेक भारती

श्री विहीन निस्तेज चेहरा लिए
क्यो जीने को विवश हो मित्र
तन ही नही तुम्हारा तो,
मन भी बीमार लग रहा है ।
आधुनिक चिकित्सा-व्यवस्था से
निराश भी हो चले हो शायद
तो आओ, मैं तुम्हें
दो सर्वोत्तम चिकित्सकों से
मिलवा देता हू ।
जो आपके अपने हैं,
हैं अहर्निश सेवा देने मे सक्षम भी ।
ये हैं परिश्रम और सयम ।
परिश्रम की चिकित्सा प्रक्रिया से
जठराग्नि हो उठेगी तेज,
भूख खुलकर लगेगी,
अच्छा खाओगे, पचाओगे
रक्त-मज्जा ठीक बनेगी अपने आप ।
और सयम
रोकता रहेगा भोग की अति से,
करवाओ अपनी चिकित्सा आप,
इन निजी चिकित्सकों से ही
स्वस्थ-जीवन मित्र,
पा जाओगे अनायास ही ।

—बी ११६, विजयपथ, तिलक नगर, जयपुर-३०२००४

जीवन का सग्रह : सयम का सेतु

❀ डॉ विश्वास पाटील

हमारे यहा एक वहुत पुरानी कहानी प्रचलित है । एक बार ब्रह्माजी की शरण मे देवता गए और आशीर्वादपूर्वक उपदेश की याचना की । मनुष्य तथा असुरो ने भी देवताओ का ही अनुगमन किया । ब्रह्माजी ने तीनो को एक ही अक्षर का उपदेश दिया—वह अक्षर था 'द' । इस अक्षर को हरेक ने अपने-अपने स्तर पर, अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार समझा । देवताओ ने 'द' का अर्थ 'दमन' माना, मनुष्यो ने 'दान' तथा असुरा ने 'दया' अथ को स्वीकारा । दूसरे शब्दो मे यह क्रमश 'सयम', 'अ-परिग्रह' तथा 'अहिंसा' तत्त्व कहे जा सकते हैं । इन तीनो शब्दो के मूल मे 'सयम' की वृत्ति है ।

सयम धर्मप्रासाद के नीव की पहली ईट है । धमप्रासाद कोई विशिष्ट धम का नही, मानव धम का । सयम शब्द की व्याकरणिक चर्चा चिकित्सा करते हुए परमश्रद्धेय प्रवतक मुनि श्री महेन्द्रकुमार 'कमलजी' ने कहा है—"वह (वैयाकरणी) सयम शब्द को पूणत भारती (सरस्वती) मानकर आगे वढा । 'यम्' को उसने कहा कि धातु है । 'यम्' धातु का अथ है विपयेच्छा । 'यम्' धातु का उसने अर्थ किया दमन-सयम-निरोध । उसका तक है 'भ' वण के वाद 'म' वण आता है । यम मे जो फस गया उसका त्राण असभव हो जाता है । जो साधक 'भ' वण का उलाघकर यम (सयम) तक पहुच गया उसे 'यम' अर्थात् मृत्यु का भय नही रह जाता । यम अर्थात् भोगेच्छा की आग है । आग आग को नही जला सकती । यम अर्थात् मृत्यु, यम अर्थात् सयम को नही मार सकता ।"

भारत याने सयम की मिट्टी के कणो से वना हुआ देहपिण्ड । भारतीय मनीषा ने सयम का वहुत सविस्तार चिन्तन किया है । हमारे धमग्रन्थ और विद्वान् लोग इस प्रश्न के सम्बन्ध मे बहुत गहराई मे उतरे हैं ।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के दूसरे, चौथे और छठे अध्याय मे निपेध रूप से और सवत्र ही सयम की गाथा पढने को मिलती है । गीता का कहना है कि साधक को इन्द्रिया वश मे करनी चाहिए क्योकि उसी की वुद्धि स्थिर होती है (२/६१) ।

समस्त इन्द्रियो को वश मे करने की आवश्यकता दिखलाने के लिए 'सर्वाणि' विशेपण प्रयुक्त है क्योकि वश म न की हुई एक इन्द्रिय भी मनुष्य के मन-बुद्धि को विचलित करके साधना मे विघ्न उपस्थित कर देती है । (२/६७) अत परमात्मा की प्राप्ति चाहने वाले पुरुष को सम्पूण इन्द्रियो को ही भलीभाति वश मे करना चाहिए ।

इन्द्रियो के सयम के साथ-साथ मन को वश मे करने की तपस्या पर भी गीताकार ने जोर दिया है। मन और इन्द्रियों को सयमित कर बुद्धि का परमात्मरूप मे स्थिर करने की बात गीता म मिलती है क्योंकि मनसहित इन्द्रियों पर सयम होने पर ही साधक की बुद्धि स्थिर रह सकती है, अन्यथा नहीं। मन और इन्द्रियों के सयम के प्रति लापरवाह साधक की हानि का वर्णन गीता के दूसरे अध्याय के बासठवें श्लोक से अडसठवें श्लोक तक यो किया गया है।

विषयो का चिन्तन करने वाले पुरुष की उन विषयो मे आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयो की कामना उत्पन्न होती है, और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अत्यन्त मूढभाव उत्पन्न हो जाता है। मूढभाव से स्मृति मे भ्रम हो जाता है, स्मृति मे भ्रम हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश हो जाने से पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है परन्तु अपने अधीन किए हुए अन्त करण वाला साधक अपने वश मे की हुई, राग-द्वेष से रहित इन्द्रियो द्वारा विषयो में विचरण करता हुआ अन्त करण की प्रसन्नता को प्राप्त होता है। जिस पुरुष की इन्द्रियां इन्द्रियों के विषयो से सब प्रकार निग्रह की गई हैं, उसी की बुद्धि स्थिर है।

गीता म आगे कहा गया है कि जिसका अन्त करण ज्ञान विज्ञान से तृप्त है, जिसकी स्थिति विकाररहित है, जिसकी इन्द्रियां भलीभांति जीती हुई हैं और जिसके लिए मिट्टी पत्थर और सुवर्ण समान है, वह योगी युक्त अर्थात् भगवत् प्राप्त है। (६/८) इसी अध्याय में गीताकार कहते हैं कि जिसका मन वश म नहीं है, उसके पुरुष द्वारा योग दुष्प्राप्य है (६/३६)

भगवान बुद्ध ने अपने उपदेशो मे सयम की दीक्षा दी है। आरण्यक अर्थात् जगलवासी भिक्षु के लिए नियम बताते हुए उन्होने कहा है—"आरण्य भिक्षु को भोजन के पूर्व या पश्चात् गृहस्थ कुलो मे फेरे नहीं देते रहना चाहिए। उसे अचपल, प्रवचनकारी, कल्याणमित्र, भोजन मे परिमाणी, जागरण मे तत्पर, आरब्ध वीर्य अर्थात् उद्योगी, होश रखने वाला, एकाग्रचित्त, प्रज्ञावान तथा इन्द्रियों मे गुप्तद्वार अर्थात् संयमी होना चाहिए।" (मज्झिम निकाय—गुलिस्सानि-सुत्त-२/२/९) आगे चलकर कीटागिरि-सुत्त मे कहते हैं, "भिक्षुओं, जो न प्राप्तानि है अनुपम योगक्षेम अर्थात् निर्वाण के इच्छुक हो विचरते हैं। भिक्षुओ, वैसे ही भिक्षुओ को मैं 'प्रमादरहित हो करो' कहता हूँ। सो किस हेतु ? … अर्थात् सु मित्र … कल्याण … करो … इन्द्रिय निरोध … यथानुसार अनुकूल शयन-आसन को सेवन … इन्द्रियों का सयम … से … करते … कीटागिरि-सुत्त २/२/१०)

अंगुत्तरनिकाय की सुप्रसिद्ध … भगवान बुद्ध का … मैं …

है तब उसकी प्रश्नोचित जिज्ञासा का भगवान उत्तर देते है "अगुलिमाल ! सारे प्राणियो के प्रति दड छोडने से मैं सवदा स्थित हू । तू प्राणियो मे असयमी है, इसलिए मे स्थित हू और तू अ-स्थित है ।" (मज्झिम निकाय—अगुलिमाल सुत्त २/४/६)

शास्त्रकारो के इन वचनो का मन पूर्वक अध्ययन करने पर यह बात ध्यान मे आती है कि मनुष्य के भीतर शक्ति का अनत, अक्षय स्रोत है । इस शक्ति का जागरण सयम के द्वारा किया जा सकता है । मन की मागो को मनुष्य जैसे-जैसे अस्वीकार करते जाएगे, वैसे-वैसे सकल्प शक्ति का विकास होना है, यही सयम है । सयमी को सभी सभव है ।

शुभाशुभ निमित्त कर्म के उदय मे परिवतन कर देते हैं किंतु मन का सकल्प उनसे बडा निमित्त है । सयम की शक्ति के विकसित होने पर विजातीय द्रव्य का प्रवेश नही हो सकता । सयमी मनुष्य बाहरी प्रभावो से प्रभावित नही होता । 'दशवैकालिक' मे कहा गया है—'काले काल समायरे'—सब काम ठीक समय पर करो । सूत्रकृताग मे लिखा गया है—खाने के समय खाओ, सोने के समय सोओ । सब काम निश्चित समय पर करो ।

सयम जीवन का आतरिक विकास सूत्र है । सयम जीवन का पर्यायी रूप है—'सयम, खलु जीवनम् !' सयम अर्थात् स्वीकृत साधना का पालन । साधक सकल्प को स्वेच्छा से स्वीकारता है । वह हर क्षण जाग्रत होता है । साधक इस अवस्था मे सम्पूर्ण अप्रमत्त रहने के अभ्यास को विकसित करता है, फिर भी प्रमादवश कभी स्खलन न हो जाए, इसलिए साधक को आचाय उपदेश देते हैं कि वह निरतिचार साधना का अभ्यास करे । इस साधना के लिए अनुशासन और विनय की महती आवश्यकता है ।

भगवान महावीर ने अतीत मे सयम का सूत्र दिया था—वह सूत्र भविष्योन्मुखी है । इसी को जीवनाधार मानकर महावीर चलते रहे और अन्यो को भी इस सूत्र का उपदेश दिया । सयम की आवश्यकता को अधोरेपित करते हुए महावीर ने कहा था—खाद्य का सयम करो, वाहन का सयम करो, यातायात का सयम करो, उपभोग-परिभोग का सयम करो ।"

सयम के कारण विकसनशील राष्ट्र विकासशील बन सकता है । विकासशील राष्ट्रो की समस्या है अभाव, गरीबी, अनैतिकता और विषमता ! सयम के विना निर्यात बढाना, आर्थिक उत्पादन और ऊर्जा के नित नए स्रोतो का विकास जैसे तमाम उपाय निरथक हो जाते हैं ।

विकसित राष्ट्रो की समस्या है अपराध, अशाति, आतक और हिंसा ! जहा अभाव और गरीबी या शून्यता और रिक्तता नही है धन और साधनो की—वहा के जनजीवन के केन्द्र मे है भोग । भोग बूर का लड्डू है, उसे नही खाने वाला

ललचाता है और खाने वाला पछताता है । भोग आरम्भ मे कुछ हद तक तृप्ति देता है किन्तु एक वस्तु के आत्यतिक भोग के पश्चात् उसका आकर्षण कम हो जाता है, तृप्ति की मात्रा घट जाती है । अतृप्त मनुष्य फिर तृप्ति के नए साधन खोजने मे लग जाता है ।

आज सम्पन्न राष्ट्रो मे कुछ ऐसा ही घटित हो रहा है । भोग या उप भोग और उपभोग करते रहने पर जो अतृप्ति उभरती है उसकी चिकित्सा न होने पर आदमी पागल और अशात हो जाता है, अपराधी बन बैठता है । हमारे पूवज साधको ने बहुत तपस्यापूवक सयम का सूत्र दिया था । तृप्ति की आकाक्षा और अतृप्ति से समाधान का सही उपाय बताया था ।

आज हमे जिस शक्ति की आवश्यकता है वह सयम पर ही आधृत हो सकती है । शाति का आध्यात्मिक सिद्धान्त सह-अस्तित्व का विचार है । शाति का आधार व्यवस्था है । व्यवस्था सह-अस्तित्व से उभरती है । समन्वय के कारण सह-अस्तित्व की भावना जागती है । समन्वय का आधार है, सत्य । सत्य अभय से उपजता है । अभय का आधार है अहिंसा, अहिंसा का मूल है अपरिग्रह और अपरिग्रह की नीव मे सयम है । यह सयम, शाति, सद्भावना और सह अस्तित्व का मूलाधार है ।

आज आग्रहपूर्ण नीति का त्याग कर तटस्थ नीति को स्वीकारना चाहिए। अनाक्रमण और उसके समथन की घोषणा करते हुए आत्मविश्वास और पारस्प रिक सौहार्दभाव का विकास करना चाहिए । इसी से मानवीय एकता की दिशा मे मानवता के कदम बढ़ेंगे और मनुष्य के जीवन प्रवाह को सयम के सेतु जोड़ने पर ही हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियो-साधको का यह स्वप्न हम यथाथ धरती पर देख सकेंगे ।

—३४-ब, कृष्णाम्बरी, सरस्वती कॉलोनी, शहादा (धुलिया) ४२५४०६

मदन मागा विशगार

उत्क्रांति : सयम के द्वार से

श्री राजीव प्रचडिया

आज 'होडबाजी' का जमाना है । यह होड-प्रक्रिया जीवन मे क्राति तो ला सकती है, उत्क्राति नही । क्राति और उत्क्राति मे बहुत बडा अन्तर है । क्राति का अथ है 'परिवतन' । जो है उसमे बदलाव । परिवतन जीवन मे रस घोलता है । जैसे किसी जलाशय का पानी भरा रहे तो उसमे दुगन्ध आने लगती है । उसका पानी मर-सा जाता है । वह न स्वय अपने लिए ही उपयोगी और न दूसरो के लिए ही उपादेय बन पाता है । इसलिए उसका बदलना आवश्यक रहता है । विचार करें, यदि भरा जाने वाला पानी गन्दा, कीचड से सना हो तो क्या वह लाभकारी होगा ? नया पानी चाहिए, वह भी स्वच्छ । नवीनीकरण यदि होता है तो वह ऊध्व को ले जाने वाला, सज्जीवनी से सम्पृक्त होना चाहिए यह सत्य है कि आज हर समाज–राष्ट्र के समक्ष सबसे बडी चुनौती है कि जीवन म परिवतन लाया जाए लेकिन यह परिवतन कैसा होना चाहिए और उसका माध्यम क्या है ? कोई भी कदम उठाने से पूव इस पर गम्भीरता से विचार करना आवश्यक है । बिना विचारे कोई भी काय गति तो ला सकता है, किन्तु वह गति निस्सार होगी ।

'सयम' के माध्यम से यदि जीवन मे परिवतन लाया जाय तो जीवन उन्नत तो बनेगा ही, उसमे उथल-पुथल का अभाव होता जाएगा । भीतर जो हाहाकार की अथवा 'लाओ-लाओ', 'भरो–भरो' जैसी मधुर लगने वाली ध्वनि-लहरें हर क्षण उठती रहती है, वे सब समाप्त हो जाएगी, फिर जो परिवतन–उत्क्रान्ति होगी, वह समाज को एक नया आयाम देगी । यह सही है, एक ही पथ पर चलते-२ जीवन ऊब स भर जाता है । ऊबाऊपन समाप्त हो, इसके लिए सयम की अनेक पगडडिया ह, उनमे से किसी को भी पकड लिया जाए तो भरे हुए से जीवन मे 'जीवन' आ सकता है । ये सारी की सारी पगडडिया आनन्द–दायी हैं । एक पगडडी, जो 'सकल्प' के अन्तिम छोर तक जाती है, एक 'नियम-निवास' का माग दिखाती है, एक 'विरत-महल' तक व्यक्ति को पहुचाती है । ऐसी ही न जानें कितनी पगडडिया हैं, बस, आवश्यकता है, उस पर निश्चल भाव से चलने की ।

'सयम–प्रकरण' मे दो बातें बडी महत्त्वपूण हैं—एक 'इच्छा' और दूसरी 'काक्षा' । इच्छा मे वस्तु/पदाथ के प्रति लालसा बनी रहती है जबकि 'काक्षा' म भावो का उद्रेक समाया रहता है । सयम इच्छाओ का 'स्वनियन्त्रक' है । इच्छाओ का फैलाव आकाश के समान अनन्त है, उसकी सीमा असीम है । वास्तव

मे इच्छाए 'अरक्षा' और सयम 'रक्षा' की ओर ले जाती हैं। प्रश्न है यह किसकी ? विचार करें, 'रक्षा' उसकी जो प्रकाशक है, दिशा-दर्शक है, जन्म इन्द्रिया जिसमे चलित होती हैं अर्थात् आत्मतत्त्व। जीवन का प्रवाह सयम है और रुकावट असयम। विकास है वहा, जहा सयम है। असयम मे तो पर-वैभव बढ सकता है, आत्म-वैभव कदापि नहीं। स्थिति ऐसी ही हो जाती है जैसे 'पारस-पत्थर' को छोड उससे विनिर्मित स्वर्ण-पदार्थों की चाह रखना। सयम 'पारस-पत्थर' को पैदा करता है जिससे तमाम स्वर्ण प्राप्त होते हैं। पर विवेक तो हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हम स्वर्ण को प्राप्त करें या स्वर्ण निर्माणक को। वास्तव मे यह पत्थर कही और नही हमारे स्वय के भीतर है। सयम के द्वारा उसे खोजना होता है। जैसे अधकार मे से प्रकाश ढूढना होता है और इस ढूढन-प्रक्रिया मे जो अवयव, जो श्रम, जिस रूप मे करना होता है वैसे ही इस अविनश्वर पारसमणि की साधना की जाती है।

आज हमारे जीवन मे 'तनाव' हावी होते जा रहे हैं। जिसे देखो वह तनावो से घिरा है। स्वाभाविकता कृत्रिमता में, नम्रता अहकारिता मे, वरदान कटुता मे तथा दया-प्रेम, द्वेष और घृणा मे अभिसिचित हो रहे हैं। इनसे मुक्ति का एक ही उपाय है—सयम-साधना। सयम तो जीवन का वह द्वार जिसमे सचयवृत्ति रूपी झाड-झखार नही होते और ना ही कषायजन्य विकार इसमे आलस्य, तन्द्रा-निद्रा, मोह-वासनादि कुप्रभाव अपना प्रभाव नहीं छोड़ते अपितु प्रभाव छोडने की टोह मे निरन्तर प्रयत्नशील रहते है। वास्तव मे सयम साधना मे सम्यक् रूप मे यम अर्थात् नियत्रण अर्थात् व्रत समिति गुप्ति आदि रूप से प्रवर्तना अथवा विशुद्धात्मध्यान मे प्रवर्तना की जाती है। सयम में साधक बाह्य जगत् से अन्तर्जगत अर्थात् स्थूल से सूक्ष्म की यात्रा करता है अर्थात् कषायों को काटता हुआ स्वभाव को जगाता है। विभावों से स्वभाव तक ले जाने वाला यह परिवर्तन जीवन मे क्रांति नही, उत्क्रांति लाता है।

—एडवोकेट, ३६४, सर्वोदयनगर आगरारोड, अलीगढ़ (उ.प्र.)

संयम ही जीवन है !

❀ श्री धनपतसिंह मेहता

मानव जीवन के आचार पक्ष पर चिन्तन करने से एक बात स्पष्टत उभरकर सामने आती है और वह यह कि जीवन के परिष्कृत एव शुद्ध-सात्विक रूप का मूलाधार सयम है । धम एव आचार गन्थो मे इस बात का विशद विवेचन है कि अगर हम अपने जीवन को भव्य एव सुन्दर बनाना चाहते है, अगर हम चाहते है कि मानव जीवन गौरवपूर्ण एव गरिमामय हो, उदात्त एव आकर्षक हो तो हमे जीवन के हर क्षण मे सयम की शरण लेनी होगी, समग्र जीवन को मनसा-वाचा-कमणा सयमित करना होगा । हर पल सयम की साधना करते हुए जीवन के समस्त कपाय-कलमषो से मुक्ति पानी होगी । इन्द्रिय-सुख की मृगतृष्णा से छुटकारा पाकर जीवन को आध्यात्मिक मोड देना होगा । यह जीवन की पवित्रता की, नैतिकता की माग है, आत्म-साधना का उद्‌घोष है ।

सयम शब्द बडा अर्थ भरा है । जीवन मे यम-नियम का पालन करते हुए उस पर कठोर अकुश लगाना ही सयम है । मस्त हाथी को विचलित एव पथभ्रष्ट होने से रोकने के लिए जिस प्रकार महावत का अकुश निरन्तर आवश्यक है, उसी प्रकार इन्द्रिय-सुख के वेगवान प्रवाह मे बहकर सवनाश से वचने का जीवन मे एकमात्र उपाय सयम ही है । जीवन के उत्कप एव अभ्युदय का, उसके सस्कार एव श्रेय का और कोई मार्ग नही । केवल सयम का सहारा लेकर ही हम उदात्त आदर्शो एव शाश्वत सनातन जीवन मूल्यो से सम्पन्न मनुष्य जीवन-यापन कर सकते हैं । वही जीवन भव्य, वही श्रेष्ठ एव अभिनन्दनीय है और इसलिए वही सार्थक एव श्रेयस्कर है ।

मानव जीवन मे इन्द्रिय-सुख का बडा आकर्षण है । उसके मायावी परिवेश मे अहर्निश आबद्ध मनुष्य मकडी की तरह जीवन भर सुख-सुविधाओ का जाल बुनता रहता है और अन्तत उसी मे फसकर प्राण त्याग देता है । मानव जीवन की यह कैसी विडम्बना है कि वह आत्म-साधना से विमुख होकर इन्द्रिय-साधना करते-करते जानबूझकर अपने सर्वनाश को आमत्रण देता है ।

कुरुक्षेत्र के मैदान मे मोहाभिभूत अर्जुन जब कर्मयोगी कृष्ण से प्रश्न करता है कि—"प्रभु, स्थिर बुद्धि वाले मनुष्य की पहचान क्या है ?" तो उत्तर मे कृष्ण उसका विशद विवेचन करते हुए जो कुछ कहते हैं उसके कुछ शब्द बडे मार्मिक हैं । वे कहते है—"हे पार्थ, यत्नयुक्त सुधी की भी इन्द्रिया यो प्रमत्त हो, मन को हर लेती हैं अपने बल से हठात, उन्हे सयम से रोकें, मुझी मे रत, मुक्त हो, इन्द्रिया जिसने जीती, प्रज्ञा है उसकी स्थिरा" निस्सन्देह जिसने इन्द्रियो पर

जाती हैं । प्रश्न है रम
इच्छाए 'अरक्षा' और सयम 'रक्षा' की ओर ले जाती हैं । प्रश्न है रम
किसकी ? विचार करें, 'रक्षा' उसकी जो प्रकाशक है, दिशा-दर्शक है, समग्र
इन्द्रिया जिससे चलित होती हैं अर्थात् आत्मतत्त्व । जीवन का प्रवाह सयम है
और रुकावट असयम । विकास है वहा, जहा सयम है । असयम से तो पदार्थ
वैभव बढ सकता है, आत्म-वैभव कदापि नही । स्थिति ऐसी ही हो जाता है
जैसे 'पारस-पत्थर' को छोड उससे विनिर्मित स्वर्ण-पदार्थों की चाह रखना।
सयम 'पारस-पत्थर' को पैदा करता है जिससे तमाम स्वर्ण प्राप्त होते हैं । य
विवेक तो हमारे ऊपर निभर करता है कि हम स्वर्ण को प्राप्त करें या स्वर्ण
निर्माणक को । वास्तव मे यह पत्थर कही और नही हमारे स्वय के भीतर है।
सयम के द्वारा उसे खोजना होता है । जसे अ धकार मे से प्रकाश ढूढना होता
है और इस ढूढन-प्रक्रिया मे जो अवयव, जो श्रम, जिस रूप मे करना होता है,
वसे ही इस अविनश्वर पारसमणि की साधना की जाती है ।

आज हमारे जीवन मे 'तनाव' हावी होते जा रहे हैं । जिसे देखा वह
तनावो से घिरा है । स्वाभाविकता कृत्रिमता मे, नम्रता अहकारिता मे, वत्सलता
कटुता मे तथा दया-प्रेम, द्वेष और घृणा मे अभिसिचित हो रहे हैं । इन सबसे
मुक्ति का एक ही उपाय है—सयम-साधना । सयम तो जीवन का वह द्वार है
जिसमे सचयवृत्ति रूपी झाड-झखार नही होते और ना ही कषायजन्य विकार।
इसमे आलस्य, तन्द्रा-निद्रा, मोह-वासनादि कुप्रभाव अपना प्रभाव नही छोड पाते
अपितु प्रभाव छोडने की टोह मे निरतर प्रयत्नशील रहते हैं । वास्तव मे सयम
साधना मे सम्यक् रूप से यम अर्थात् नियन्त्रण अर्थात् व्रत-समिति-गुप्ति मा
रूप से प्रवतना अथवा विशुद्धात्मध्यान मे प्रवर्तना की जाती है । सयम मे सा
बाह्य जगत् मे अ तजगत अर्थात् स्थूल से सूक्ष्म की यात्रा करता है अर्थात् क
को काटता हुआ स्वभाव को जगाता है । विभावो से स्वभाव तक ले जाने
यह परिवतन जीवन मे क्राति नही, उत्क्रांति लाता है ।

—एडवोकेट, ३६४, सर्वोदयनगर आगरारोड, अलीगढ (

संयम ही जीवन है !

❀ श्री धनपतसिंह मेहता

मानव जीवन के आचार पक्ष पर चिन्तन करने से एक बात स्पष्टत उभरकर सामने आती है और वह यह कि जीवन के परिष्कृत एव शुद्ध-सात्विक रूप का मूलाधार सयम है । धम एव आचार ग्रन्थो मे इस बात का विशद विवेचन है कि अगर हम अपने जीवन को भव्य एव सुन्दर बनाना चाहते हैं, अगर हम चाहते हैं कि मानव जीवन गौरवपूर्ण एव गरिमामय हो, उदात्त एव आकपक हो तो हमे जीवन के हर क्षण मे सयम की शरण लेनी होगी, समग्र जीवन को मनसा-वाचा-कर्मणा सयमित करना होगा । हर पल सयम की भावना करते हुए जीवन के समस्त कपाय-कल्मपो मे मुक्ति पानी होगी । इन्द्रिय-सुख की मृगतृष्णा से छुटकारा पाकर जीवन को आध्यात्मिक मोड देना होगा । यह जीवन की पवित्रता की, नैतिकता की माग है, आत्म-साधना का उद्घोप है ।

सयम शब्द बडा अर्थ भरा है । जीवन मे यम-नियम का पालन करते हुए उस पर कठोर अकुश लगाना ही सयम है । मस्त हाथी को विचलित एव पथभ्रष्ट होने से रोकने के लिए जिस प्रकार महावत का अकुश निरन्तर आवश्यक है, उसी प्रकार इन्द्रिय-सुख के वेगवान प्रवाह मे बहकर सर्वनाश से बचने का जीवन मे एकमात्र उपाय सयम ही है । जीवन के उत्कप एव अभ्युदय का, उसके सस्कार एव श्रेय का और कोई माग नही । केवल सयम का सहारा लेकर ही हम उदात्त आदर्शो एव शाश्वत सनातन जीवन मूल्यो से सम्पन्न मनुष्य जीवन-यापन कर सकते हैं । वही जीवन भव्य, वही श्रेष्ठ एव अभिनन्दनीय है और इसलिए वही सार्थक एव श्रेयस्कर है ।

मानव जीवन मे इन्द्रिय-सुख का बडा आकर्पण है । उसके मायावी परिवेश मे अहर्निश आबद्ध मनुष्य मकडी की तरह जीवन भर सुख-सुविधाओ का जाल बुनता रहता है और अन्तत उसी मे फसकर प्राण त्याग देता है । मानव जीवन की यह कैसी विडम्बना है कि वह आत्म-साधना से विमुख होकर इन्द्रिय-साधना करते-करते जानबूझकर अपने सर्वनाश को आमत्रण देता है ।

कुरुक्षेत्र के मैदान मे मोहाभिभूत अर्जुन जब कर्मयोगी कृष्ण से प्रश्न करता है कि—"प्रभु, स्थिर बुद्धि वाले मनुष्य की पहचान क्या है ?" तो उत्तर मे कृष्ण उसका विशद विवेचन करते हुए जो कुछ कहते हैं उसके कुछ शब्द वड मार्मिक हैं । वे कहते है—"हे पाथ, यत्नयुक्त सुधी की भी इन्द्रिया यो प्रमत्त हो, मन को हर लेती हैं अपने बल से हठात्, उन्हें सयम से रोकें, मुझी मे रत, मुक्त हो, इन्द्रिया जिसने जीती, प्रज्ञा है उसकी स्थिरा" निस्सन्देह जिसने इन्द्रियो पर

विजय प्राप्त कर ली हैं, उन पर नियन्त्रण कर लिया है वही स्थिर बुद्धि होकर अपने हिताहित का निणय कर सकता है। इसके विपरीत इन्द्रियों के आधिपत्य को स्वीकार करने वाले, उनके समक्ष घुटने टेकने वाले व्यक्ति की बुद्धि चल मान होती है । उसमे विचार-विचलन होने से उसके कम भी लडखडा जाते हैं स्थिर बुद्धि के अभाव में वह कोई उचित निणय लेने में सवथा असमर्थ रहता है इस स्थापना से जीवन मे सयम का महत्त्व स्वय सिद्ध है ।

इस सदर्भ मे एक भ्रान्ति से सजग रहने की नितान्त आवश्यकता है। इन्द्रिय-निग्रह एव इन्द्रिय-दमन मे बडा अन्तर है । सयम की साधना के लि इन्द्रिय-निग्रह आवश्यक है जो व्रत, तपश्चर्या, सतत जागरुकता एव वैचारिक दृ से ही सभव है । सकल्पवान व्यक्ति ही कर सकता है जिसकी जीवन के नैतिक मूल्यो मे प्रवल आस्था है और जो आत्मा के निर्मल, दिव्यस्वरूप को पहचानने का पक्षघर है । विश्वविख्यात मनोविज्ञानी फ्रायड, यग एव एडलर का कथन कि मनुष्य जीवन मे उद्दाम वासनाओ का बडा आतक है और मनुष्य क्रीतदास है । उनका दमन भयावह है । दमित इच्छाए और वासनाए अवचेत मन (unconcious mind) में चली जाती हैं । वहाँ वे भले ही कुछ समय लिए शान्त हो जायें, पर समय आने पर वे तूफानी वेग से आक्रमण कर मनु को धराशायी कर देती हैं । इसीलिए धम-ग्रथो मे इन्द्रिय-निग्रह पर बल दि गया है । आवश्यकता है इच्छाओं और वासनाओ को आध्यात्मिक मोड दे उनके उन्नयन एव उदात्तीकरण (sublimation) की जिससे उनकी ऊर्जा सत्कार्यो मे उपयोग हो सके ।

सयम के आलोक मे हम आज के जीवन पर दृष्टिपात करें । चारों ओर विकृति ही विकृति नजर आएगी । आहार, विहार, आचार-विचार एव व्यवहार सब मे सयम का अभाव दृष्टिगोचर होता है । इतना ही क्यो पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो मे इसी के अभाव में इतनी कटुता, इतना तनाव, इतना विग्रह परिलक्षित होता है ? कोई किसी का नही । कही स्नेह न सद्भाव नही, अपनापन नही, सहिष्णुता नहीं, सेवा एव समपण का भाव नहीं सब एक दूसरे की जड खोदने मे लगे हुए ह । भीड मे मनुष्य अकेलेपन बेगानेपन का, परायेपन का अनुभव करता है । लगता है जैसे इन्सानी जी आज चौराहे पर खडा, दिशा विहीन, पथभ्रष्ट, जाए तो जाए कहाँ ? कोई सी सरल राजमाग नही । चारो ओर खाई-खड्डे हैं, जहा कदम-कदम पर गिरने खतरा है । सारा माग कटकाकीण है, जहा सवत्र चुभन ही चुभन है ।

आइये, जीवन एव जगत के दीघव्यापी आयाम पर चिन्तन करें । कि क्षेत्र को लें—पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, साहित्यिक सास्कृतिक, प्रभृति । सर्वत्र क्लेश है, पीडा है, दुख है, परिताप-उत्ताप है । जी का सतुलन जसे बिगड चुका है । मानव-मूल्य तिरोहित हो रहे हैं । जीवन

घायल, हारा-थका भू-लुंठित होकर कराह रहा है, सिसक रहा है। जीवन का अभीप्ट सुख, शाति, आनन्द, शीतलता केवल स्वप्न बन कर रह गये है। आदमी का, दिन-रात का प्रबल एव अथक पुरुषाथ इस दृष्टि से निरथक सिद्ध हो रहा है। वह कोल्हू के बैल की तरह, मशीन के पुर्जे की तरह घूम रहा है, अविराम गति से। वह चाहता है उसे सुख मिले, शाति मिले, आनन्द मिले। पर मिलता है दुख, अशाति, पीडा। लगता है जसे जिन्दगी मे जहर घुल गया है। उसकी मिठास समाप्त हो गई है। अब तो सब कुछ कडुवा-कडुवा लगता है। इसका कारण क्या ? विपुल साधन-सुविधाओ के होते हुए भी आदमी के जीवन मे छटपटाहट क्यो ? वह क्यो दुखी और सन्तप्त है। इसका एकमात्र कारण यह है कि उसके जीवन मे सयम का सवथा अभाव है। इसीलिए जीवन-वीणा का 'सरगम' बिगड चुका है, वह बेसुरा हो गया है। भोग की आधी मे, उसकी उद्दाम लालसा मे मनुष्य जैसे पागल हो गया है। इसी कारण जीवन के पावन आदर्शो से विमुख होकर उसने छल–कपट, शोपण और उत्पीडन का आश्रय लिया है। मनुष्य, मनुष्य के खून का प्यासा हो रहा है, मनुष्य मनुष्य के अस्तित्व को मिटा देना चाहता है, मनुष्य मनुष्य के बीच अलगाव की दुर्भेद्य दीवारें खडी हो गई हैं। उसमे पाशविक वृत्तिया जोर मार रही हैं। उसका जीवन स्वाथ एव छल–प्रपच से प्रेरित है। उसे केवल अपनी चिन्ता है। औरो का कल्याण, उनकी सुख-सुविधा उसके लिए अथहीन है। केवल स्वाथ का उसके जीवन मे महत्त्व है, परमार्थ गौण है, निरथक है। सयम के अभाव मे जीवन मे सवनाश का महा–नाटक चल रहा है। तब उसके घातक प्रभाव से आदमी बचे तो कैसे ?

'जीओ और जीने दो' का उद्घोष हमारी अत्यधिक मूल्यवान सास्कृतिक विरासत है एव 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना हमारी दुलभ धरोहर है। उसकी आज रक्षा कैसे हो ? जीवन का ताना-बाना कैसे बुनें कि हम सब सुख से, शाति से जीवन-यापन कर सकें ? उसका एक मात्र उपाय सयमित जीना है। सयम से ही सहिष्णुता आएगी, सयम से ही अपरिग्रह का भाव जागेगा, सयम से ही सम्पूर्ण जीवन की रुझान, अहिंसा-प्रेम एव करुणामय होगी, सयम से ही जीवन मे श्री–सुषमा आएगी, सयम से ही जीवन का कालुष्य-कालिमा मिटकर उसमे निखार परिष्कार आएगा। साराश यह है कि सयम से जीवन का रूप-स्वरूप ही बदल जायेगा और उसके फलस्वरूप जीवन मे सुख, शाति एव आनन्द की रिमझिम वर्षा होगी। सयम मानव जीवन मे रीढ की हड्डी की तरह है, वह जीवन का एक मात्र सुदृढ मूलाधार है जिस पर जीवन की सारी गौरव-गरिमा टिकी हुई है। अत यदि हम साथक जीवन जीना चाहते है, उसे सुन्दर, भव्य एव आकपक बनाना चाहते हैं, उसमे सुख, शाति एव आनन्द की बासन्ती बहार लाना चाहते हैं तो हमे सयम का राजमाग अपनाना होगा। मानवोचित श्रेष्ठ जीवन जीने का और कोई विकल्प नही।

—चौपासनी रोड, जोधपुर (राजस्थान)

संयम : साधना का ऊर्जस्वल पहलू

❀ डॉ दिव्या

आदिम युग मे मानव निरन्तर प्रगति-पथ पर अग्रसित होता आ रहा है । जीवन को क्रमश सयमित करते हुए यह प्राणिक मन एक रूप से दूसरा अधिक व्यवस्थित रूप तक निरतर गतिशील है । मानव को प्रगति के इस सर्वो-त्तम रूप तक पहुचाने का श्रेय मन को है । मन ही एकमात्र पथ प्रदर्शक है, कर्त्ता है, स्रष्टा है या यदि ऐसा कहें तो भी अतिशयोक्ति न होगी कि मन ही विश्व का अनिवाय कार्यवाहक है । इसीलिए तो कहा गया है कि—

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत ।

कम की श्रेष्ठता के लिए कम की प्रेरणा भी श्रेष्ठ होनी चाहिए। जीवन के प्रत्येक व्यावहारिक सन्दर्भों एव क्रिया कलापो का सतुलित एव सयमित रूप से क्रियान्वयन ही जीवन है । जैन धर्म ने जीवन के इन व्यावहारिक सन्दर्भों को नवीन आयाम दिए हैं । उसने सयम, तप, व्रत, अहिंसा तथा पुरुषाथ प्रधान माग की महत्ता को प्रस्थापित किया है । जैन धम ने लोगो को समता, वैराग्य, उपशमन, निर्वाण, शौच, ऋजुता, निरभिमान, कषाय, अप्रमाद, निर्वैर, अपरि-ग्रह, ससार के समस्त जीवो के प्रति मैत्री, गुणियो के प्रति प्रमोद, निबल ए विपन्न के प्रति दया भाव और विपरीत वृत्ति मंत्र वाले मनुष्य के प्रति मध्यस्थ भाव रखने को अनुप्रेरित किया है । इसी प्रकार जैन धम के आत्मवाद, लोक-वाद, कमवाद, स्याद्वाद आदि सभी सिद्धात जीवन के व्यावहारिक सन्दर्भों मे जुडे हुए हैं ।

कर्मों का क्रियान्वयन मन की गतिशीलता और दशा पर आधारित होता है । मन स्वभावत चचल है । अर्जुन ने भी मन की इस चचलता का उल्लेख करते हुए श्रीकृष्ण से कहा है कि इसे वश मे करना बडा दुष्कर काय है । इसके प्रत्युत्तर मे श्रीकृष्ण कहते हैं कि वास्तव मे यह एक दुष्कर काय है । किंतु—

अभ्यासेन तु कौन्तेय ! वैराग्येण च गृह्यते ।

मन की सबसे बडी सबलता यह है कि वह समझ-बूझकर हमें भुलावे मे रखे रहता है, और मन की यह सबलता वास्तव मे सबसे बडा दौर्बल्य है । इस दुर्बलता का निवारण निरन्तर मन को सयमित करने के प्रयत्न या अभ्यास द्वारा ही सम्भव है । मन को वश मे न कर पाने के कारण ही जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में असामजस्य है । सामजस्य की स्थापना तभी सम्भव है जब हमारे द्वारा

क्रियान्वित प्रत्येक काय हमारे व्यवहार के सयमन का परिचय देता हो तो इस सन्दर्भ मे एक दृष्टात प्रस्तुत है—

एक गुरु ने अपने शिष्यो को आश्रम मे पूर्ण रूप से शिक्षित कर उन्हे एक साधु पुरुष के साथ भ्रमण हेतु भेजा । शिष्यगण साधु पुरुष के प्रत्येक व्यवहार मे कही न कही त्रुटि देख रहे थे । उन्हे साधु पुरुष की सहिष्णुता मे अति का भास हो रहा था, किंतु वे मौन थे । अचानक अनजाने मे ही साधु-पुरुष का पैर कुत्ते की पूछ पर पड गया । तब वे कुत्ते के पास ही बैठ गए और उसकी पूछ सहलाने लगे तथा उससे क्षमायाचना करने लगे । शिष्यो से न रहा गया और उन्होने कह ही दिया कि पूज्यवर ! आपसे तो अनजाने मे भूल से कुत्ते की पूछ पर पैर रखा गया था, इसमे ऐसी कौनसी बडी भूल है जो आप क्षमायाचना कर रहे हैं । तब साधुपुरुष ने कहा,'जीवन मे हम इसी तरह बडी से बडी गल्ती को भी अनजानेपन का नकाब पहनाकर आगे बढते जाते है और परिणामस्वरूप जीवन के हर क्षेत्र मे असामजस्य बढता जाता है । इस प्रकार बडे ही धैय और सयमपूवक जब हम अपनी छोटी-छोटी भूलो को स्वीकार करने का अभ्यास रखेंगे तभी सफलता हमारे कदम चूमेगी और जीवन के हर क्षेत्र मे सामजस्य की स्थापना होगी ।'

जीवन मे भूलो को स्वीकार करते चलना आसान काय नही है, क्योकि मनुष्य की सवेदना का परिवृत्त सीमित है । वह अपने स्व के परिसीमित फैलाव मे ही प्रेममय व्यवहार करने का आदि है । जैन धम मे 'स्व' के इस विस्तार हेतु 'व्रत' का विधान है । 'व्रत' का अथ है—आचरण मे सत्य का निष्ठापूवक अनुसरण एव मिथ्याचरण न करने की प्रतिज्ञा । मनसा, वाचा, कमणा से सत्यनिष्ठ रह सकने के लिए प्रतिज्ञा आवश्यक है क्योकि मन की भटकन हमे अडिग नही रहने देती । व्रत का बधन मन की भटकन को समाप्त करता है । व्रत वैसे ता भारतीय सस्कृति मे धार्मिक जीवन का अभिन्न अ ग रहा है किंतु जैन धम मे इसका उद्देश्य आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करने के साथ-साथ व्यावहारिक जीवन मे भी इन्द्रिय-दमन की शक्ति प्राप्त कर आत्मा को उस सीमा तक शुद्ध एव मुक्त करना है जहा आत्मा स्व का विस्तार सवत्र देखने मे समर्थ होती है इसी भाव को श्री मथिलीशरण गुप्त ने निम्न काव्य पक्तियो मे बद्ध किया है—

"आत्मघातिनी न हू गी जानो उपवास इसे,
चारो ओर चित्त के कूडा-करकट जब होता है,
तब जठराग्नि की सहायता से उसको
दग्ध कर आत्मशुद्धि पाता उपवासी है,
साधारण अग्नि मे ज्यों सोना शुद्ध होता है ।'

मनुष्य प्रवृत्तिशील है । जैन धर्म के अनुसार प्रवृत्ति के तीन द्वार हैं—मन, वचन और काया । इनका सत्प्रयोग करना और दुष्प्रयोग न करना ही शुभाचरण के अंतर्गत आता है । यह केवल अध्यात्म-सिद्धि के लिए ही आवश्यक नहीं है वरन् मानवीय जीवन के व्यावहारिक सन्दर्भों मे इसका सर्वाधिक महत्त्व है । 'तीर्थंकर भगवान् महावीर' के रचयिता भी दशांग धर्म का निरूपण करते हुए कहते हैं—

धर्म क्षमा मार्दव आर्जव, सत शुचि सयम तप,
त्यागाकिंचन ब्रह्मचर्य मग, जग जाता रूप ।

सम्प्रति इस शुभाचरण मे बाधक एव मन की चचलता का प्रमुख कारण है तृष्णा । सुख-प्राप्ति की तृष्णा का नाश ही अक्षय सुख है । ययाति ने तृष्णा को 'प्राणान्तक रोग' कहा है । तृष्णा ही मन की चचलता का कारण है अतएव 'ता तृष्णा त्यजत सुखम्'' कामनाओ की दमनपूर्ति से एव स्वर्ग के सुख की कल्पना जो सुख प्रदान करती है, वह तृष्णा के क्षय से प्राप्त सुख की मात्रा मे अत्यल्प है—

यच्च काम सुख लोके, यच्च दिव्य महत्सुखम् ।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते, नार्हत षोडशीं कलाम् ॥

ऐन्द्रिक प्रतिक्रियाए निरन्तर भवर निर्माण करती रहती हैं और मन इसमे असहाय सा हो उलझता जाता है । जैन धर्म मे इन अनिष्टकारी पदार्थों को व्रत एव सयम द्वारा दूर करने का सिद्धात रखा गया है । समस्त चित्तवृत्तियों को एकाग्र करके तथा समस्त इन्द्रियों को वशीभूत करके ज्ञान के आलोक मे जब अन्तर आत्मा द्वारा अवगाहन किया जाता है, तब उसे परमतत्त्व का साक्षात्कार होता है—

सर्वेन्द्रियाणि सयम्य स्तमितेनान्तरात्मन
यत्क्षण पश्यतो भाति ततत्व परमात्मन ।

सयम व्यावहारिक जीवन मे भी सफलता का चरम सोपान है । श्रीराम से जब विभीषण पूछते हैं कि हे भगवन् ! आपके पास रावण से युद्ध करने हेतु न तो रथ है और न कवच । तब श्रीराम उत्तर देते हुए कहते हैं कि विजय जिस रथ से होती है वह रथ दूसरा ही है और विजय रथ का उल्लेख करते हुए कहते हैं—

सौरज धीरज तेहि रथ चाका, सत्य शील दृढ़ ध्वजा पताका ।
बल विवेक दम परहित घोरे, छमा कृपा समता रजु जोरे ॥

शौर्य और धैर्य उस रथ के पहिए हैं, सत्य और शील (सदाचार) उसकी मजबूत ध्वजा और पताका है । बल, विवेक, दम (इन्द्रियों का वश मे होना) और परोपकार ये चार उसके घोड़े हैं जो क्षमा, दया और समतारूपी रस्सी से

रथ मे जुते हुए हैं । इस प्रकार जीवन के व्यावहारिक सन्दर्भो मे ये ही गुण सफलता के द्योतक हैं ।

इस प्रकार व्यावहारिक एव आध्यात्मिक जीवन मे सफलता के चरम सोपान सयम एव व्रत है । वास्तव मे जैन धम ने मनुष्य मे नैतिक मूल्यो का अभिसिंचन मन प्रवृत्तियो के आतरिक बदलाव द्वारा किया ह और मनुष्य की सकीर्ण सवेदना, जो स्व के परिवृत्त मे सीमित थी, उसे विस्तृत दृष्टि प्रदान कर व्रत और सयम जैसे अमूल्य रत्न प्रदान किए है ।

—प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग, शहादा महाविद्यालय, शहादा (धुलिया)

सर्पिणी और काल

❀ आचाय श्री नानेश

जब सर्पिणी के बच्चे पैदा होने का समय आता है तो वह अपने शरीर की कुडली लगाकर, उस घेरे के बीच मे बच्चे देती है । उसी समय उसे जोर से भूख लगती है । तब वह घेरे मे रहे हुए बच्चो को खा जाती है, परन्तु सयोग से जो बच्चा घेरे से अलग हो जाता है, वह बच जाता है । ऐसी ही दशा इस काल रूपी सर्पिणी की है । इसके गोल चक्कर मे जो फसे हुए है, उनमे से कोई बिरला ही बच सकता है ।

जिस प्रकार सर्पिणी का कोई बच्चा, उस कुडली के आकार वाले घेरे से कूद जाय, अलग हो जाय, तो बच सकता है । इसी प्रकार काल रूपी सर्पिणी के द्वारा जो ससारी प्राणियो के जन्म-मरण का चक्कर चल रहा है, उस चक्कर से जो प्राणी कूद पडते हैं, अर्थात् श्रुत चारित्र धम को अगीकार कर साधना के पथ पर बढ जाते हैं, वे काल-चक्र रूपी सर्पिणी से सवथा, सवदा के लिए हटकर परम मुक्त स्थान को प्राप्त कर लेते हैं ।

कहानी—

सुमन हो, सुमन बनी रहो

❀ श्रीमती डॉ शांता भानावत

प्रात काल टन-टन कर घडी ने सात बजाये। पृथ्वी ने अपनी अंधरा काली चादर हटा ली थी। सूर्य ने अपनी स्वर्णिम किरणों का जाल पृथ्वी पर फैलाना प्रारम्भ कर दिया था। सुमन अपनी उनींदी आंखें मलती-मलती कमरे से लगी छत पर टहल रही थी। सोच रही थी पप्पू और गुड्डी को स्कूल जाना है। अरे, सात बज रहे हैं। अभी बाबूजी के कमरे में चाय भी नहीं पहुंची। इन्हीं विचारों की उधेड़बुन मे उसने अपने पांव कमरे की देहली पर रक्खा ही था कि एक कर्कश आवाज उसके कानों मे पड़ी—अरे! क्यों खाते हो मेरे प्राण! इस घर मे मैं नौकरानी बन कर नहीं आई हू। बाबूजी के कमरे मे चाय नहीं पहुंची तो मैं क्या करू? जगाओ न अपनी लाडली बहन को। वो दे अपने बाप को चाय। मैं बच्चों को तैयार करू, नहलाऊ-धुलाऊ, उनके लिए नाश्ता तैयार करू, क्या-क्या करू?

यह स्वर भाभी का था। आवाज सुन सुमन के पैर कुछ क्षण के लिए जहा थे वहीं जम गये। उसके कान चौकन्ने थे। फिर आवाज आई एक जोर का चांटा लगने की। रोने की आवाज से सुमन को लगा—यह आवाज तो गुड्डी की है। गुड्डी जोर-जोर से चिल्ला-चिल्ला कर रोती हुई कह रही थी मैं सुमन भुआ के हाथों से नहाऊंगी। भुआ तैयार करेगी मुझे। भुआ-भुआ आओ। मम्मी मारती है। गुड्डी का रोना अभी बंद भी नहीं हुआ था कि सुमन ने सामने देखा भाभी पप्पू को घसीट कर ला रही है। उनकी त्यौरियां चढ़ी हुई हैं। मुंह फूला हुआ है।

क्रोध मे रणचण्डी बनी भाभी का वीभत्स रूप देख सुमन कमरे में से ही बोली—भाभी! भगवान के नाम-स्मरण की मंगल वेला मे इतना क्रोध क्यों कर रही हो? मैं अभी आधे घंटे में सारा काम निपटा दूंगी। आप परेशान मत होओ।

सुमन के स्वरों मे तो अमृत सा मिठास था। पर भाभी मे तो क्रोध का नाग फुफकार कर रहा था। ननद का यह कहना कि गुस्सा मत करो, यह बात उसे छोटे मुंह बड़ी बात लगी। उसने सुमन से साफ-साफ कह दिया—सुमन तुम मुझसे छोटी हो। छोटे मुंह बड़ी बात न करो। गुस्सा न करू तो क्या करू? इस उम्र में कितनी जिम्मेदारी है मेरे पर—अरे, तुम्हारी मां भी

तुमको छोड कर चली गई मेरी छाती पर । तुम्हारी कितनी बडी जिम्मेदारी मेरे पर । व्याह-शादी करना हसी खेल है क्या आज के जमाने मे ? तुम्हारे बाबूजी को देखो—जबसे तुम्हारी मा मरी है तब से वे किसी काम-धन्धे के हाथ नही लगाते । बताओ बैठे-बैठे खाने से तो भरी तिजोरिया भी खाली हो जाती हैं । फिर कम्बख्त बच्चे ऐसे कि मेरी बात ही नही सुनते । जब देखो भुआ–भुआ, दादा-दादी की रट लगाये रहते हैं । ऐसी परिस्थितियो मे गुस्सा नही करू तो क्या करू ? फूट गये करम मेरे तो । जाने कैसे मनहूस घर मे आ गई मैं तो । मा–बाप के घर मे तो खूब राज किया, आठ बजे सोकर उठती, चाय-नाश्ता, न्हाना-धोना, खाना-पीना, कॉलेज, क्लब,पार्टी, घूमना, फिरना, मौज-शौक । और यहा काम काम काम ।

भाभी के मुह से वाक्य के तीर बिना किसी नियत्रण के छूटते जा रहे थे । सुमन बिना कुछ प्रतिक्रिया किये कमरे से रसोई घर मे पहुची। बाबूजी के लिये जल्दी से चाय बनाई । बच्चो को तैयार कर स्कूल भेजा । तभी उसे लगा–भैया उठकर अभी अपने कमरे से बाहर नही आये हैं । उसने मन ही मन सोचा आज की ये सारी बातें मैं भैया को बताऊगी । तभी उसे भैया सुरेश सामने खडे दिखाई दिये । वे कह रहे थे—सुमन ! आजकल तुम बहुत देर से उठने लग गई हो । जल्दी उठा करो । तुम देर से उठती हो तो तुम्हारी भाभी को गुस्सा आता है, उसे टेंशन हो जाता है फिर बेचारी पर जिम्मेदारी भी कितनी । अरे, तुम्हारी शादी की चिन्ता मे उसे रात-रात भर नीद नही आती । बाबूजी का रात भर खासना, उनके इलाज का खर्चा, ऊपर से बढती हुई महगाई । बाप रे बाप ! हमारी भी कोई जिन्दगी है ।

सुमन के मन-मस्तिष्क मे विचारो का तूफान उमड-घुमड रहा था पर जबान को उसने मुह मे बन्द कर लिया था । वह कह देना चाहती थी—मेरी शादी का भार तुम पर कौनसा पडने वाला है । मा ने अपना सारा जेवर भाभी को ही तो दिया था और कहा था—आधा जेवर सुमन के लिये है । बाबूजी ने भैया की पढाई-लिखाई पर कितना पैसा खच किया था । अपनी सारी तनखा इलाहबाद भैया को ही भेजते थे । मा मे कहते—फालतू खर्चा मत करो, अपना सुरेश पढ-लिख कर काबिल बन जायेगा तब उसके पैसे से खरीद लेना सामान । फिर बाबूजी की पेंशन, ग्रेच्युटी, पी एफ सब कुछ तो है ।

भाभी और भैया की लोभ-प्रवृत्ति दिन पर दिन बढती जा रही थी । सुमन इस बात को बराबर महसूस करती थी । कोई महिना ऐसा नही जाता जिसमे वह पाच सौ सातसौ की नई साडी नही खरीदती हो । गुड्डी की नई फ्राक, पप्पू के नया सूट और भैया के नित नई डिजाइन के पेंट, शर्ट । बाबूजी ने मा के जाने के बाद एक भी नया कपडा नही सिलवाया था । पुराने कुर्ते पजामे फटने लग गये थे । कई बार सुमन ने भैया-भाभी को बाबूजी के लिये कपडे

लाने की याद भी दिलायी पर सदव अभी देर हो रही है, बाद में बुलायेंगे कह कर टालते जाते ।

सुमन अपने मन में उठ रहे विचारों को भाभी के सम्मुख रख देना चाह रही थी । तब तक भाभी रसोई घर का काम सुमन पर छोड़ अपने कमरे में जा चुकी थी । गैस पर दाल का कुकर चढा सब्जी सुधारती सुमन भाभी के कमरे की तरफ गई ।

बाहर से उसने सुना कमरे से भाभी के जोर-जोर से रोने की आवाज आ रही थी । मुझे मेरे पीहर भेज दो, मम्मी, पापा को बहुत याद आ रही है । मम्मी मुझे बहुत प्यार करती थी । मैं कितना ही गुस्सा करती, रोती, चिल्लाती, बडबडाती, मम्मी कुछ नहीं कहती । मेरी फरमाइश पर हजारों रुपये यूं ही लुटा देती । कभी थोडा सिर भी दुखने लगता तो डॉक्टर सिरहाने-पैताने खडा रहता । और आगे वे कह रही थीं—यहा तुम मेरी बिल्कुल चिन्ता नहीं करते । देखो उस छोकरी सुमन को, जब देखो तब उपदेश देती रहती है । 'भाभी ! धीरे बोलो गुस्सा मत करो । टेंशन से बीमारियां बढ़ी हैं । कह देना उसे मुझसे बात नहीं करे । छोटे मुंह बडी बात मुझे नहीं पसंद है । मेरी बहन मोण्टू का बुला दो ना यार यहां । जिन्स टापर में क्या जचती है वह । तुम्हारी बहन तो उसके सामने बुद्धू लगती है, पूरी बुद्धू । बातें करेगी तो दादी अम्मा जसी और मेरी बहन पूरी मोड । क्या उसके डायलोग्स ?

भाई-भाभी की बातें सुमन नहीं सुनना चाह रही थी पर भाभी के तेज स्वर-बाण रह-रह कर दूर खडी सुमन के हृदय पर आघात पहुंचा रहे थे । उसके हाथ से सब्जी का थाल गिरने वाला था । इस घर में उसे कोई प्राणी ऐसा नहीं लगा जो उसके आहत हृदय पर राहत का मरहम लगा सके । वह एक बार बाबूजी के पास जाकर उनकी छाती से लग कर अपने हृदय को हल्का करना चाहती थी पर उसे लगा मां के जाने के बाद वे स्वयं गुमसुम अधिक रहने लग गये हैं । उनसे ये सारी बातें कहने पर वे और दुःखी होंगे । उसे याद आया—मेरा धर्म किसी का दुःख बढ़ाना नहीं, हल्का करना है ।

सुमन रसोई में गई जलती हुई गैस को बन्द कर अपने कमरे में बिस्तर पर जाकर लेट गई । उसे लग रहा था भाभी की कतरनी सी जबान उसके कलेजे को काट रही है । तभी उसे महसूस हुआ कोई हाथ उसके माथे को सहला रहा है । कहीं से आवाज आ रही है—बेटी सुमन ! व्यर्थ का चिन्तन न करो, उठो अपना कर्त्तव्य निस्वार्थ भाव से निभाओ । बच्चे स्कूल से आते होंगे । बाबूजी भूखे होंगे । भाभी को सम्भालो ।

'सुमन बुद्धू है, बड़ी-बुढि औरतों सी बातें करती है । मेरे पर भार है' जैसे शब्द बाणों से आहत सुमन ने एक बार तो सोचा—अब वह भाभी के पास

नही जायेगी, नही बोलेगी । पप्पू और गुड्डी की भी उसे गरज नही । भैया मरजी हो तो मुझसे बात करें, बोलें, नही तो मुझे उनकी भी परवाह नही । भाभी भले ही पीहर जायें, कही भी रहे, मेरी बला से मै और बाबूजी अलग रह सकते हैं ।

फिर वही आवाज सुमन को कानो मे सुनाई देती है—'बेटी जोडना मुश्किल है, तोडना सरल है । स्वाथ से परमाथ की ओर बढो, मन मैला न करो, सुमन हो, सुमन बनी रहो ।

सुमन को लगा—यह आवाज मा की है । यह मधुर स्पश मा का है । मा की आज्ञा का पालन करना मेरा कत्तव्य है । बिना प्रमाद किये उसने अपना बिस्तर छोड दिया । मन से कलुषित विचार हट गये थे । अब उसका मन दपण की भाति चमक उठा था । जहा न कोई राग था, न द्वेष, न क्रोध था न माया–लोभ । रसोई घर मे जाकर उसने कूकर खोला । दाल बन चुकी थी । सब्जी छोक कर वह चावल साफ करने मे लग गई । भाभी के बिना रसोई मे उसका मन नही लगा । उसने सोचा—भाभी जसी भी है, मेरी है । मेरा होगा वही तो मुझे कुछ कहेगा । बडी है, कुछ कहे तो कहने दो । कहने से उनके भी मन की भडास निकल जायगी । शादी के बाद वे कमजोर भी बहुत हो गई हैं । तभी उसे लगा—भैया भाभी को दिखाने डॉक्टर को लेकर आये हैं ।

सुमन रसोई का काम छोड भाभी के कमरे मे पहुची । डॉक्टर कह रहे थे—सुरेश ! तुम्हारी पत्नी बहुत ऐनेमिक है । ब्लड प्रेशर लो है । इसको ब्लड की आवश्यकता होगी । अस्पताल मे भर्ती करवाना होगा, खून चढेगा । सुरेश सोच मे पड गया । खून कौन देगा ? परिवार मे अकेला । पिताजी वृद्ध हैं, बच्चे छोटे है । भैया को चिन्ता मे देख सुमन उसके मन की बात समझ गई । भैया ! भाभी के लिये खून मै दूगी । खून की जाच हुई । दोनो का ब्लड ग्रुप मिल गया । सुमन का खून भाभी को चढने लगा । जैसे–२ सुमन के रक्त की बूदें भाभी के शरीर मे जा रही थी, वह नई शक्ति और शाति का अनुभव कर रही थी । उसे लग रहा था—जैसे गरजती–उफनती समुद्र की लहरें शात हो गई हैं । मन मे उठ रहा वैचारिक अंधड समाप्त हो गया । उसके चेहरे पर तेज बढ रहा था । उसके शात हृदय–सरोवर मे समता के कमल खिल उठे । तुम मा हो, जीवनदायी हो, तुम बोझ नही मेरी शक्ति हो, जीवन पथ का शूल नहीं फूल हो ।

—प्रिंसीपल, श्री वीर बालिका कॉलेज, जयपुर–३

मन का संयम

❀ श्री मदनसिंह कूमट

विद्वानो के मत से सयममय जीवन अनुकरणीय है तथा असयमित जीवन त्याज्य है। क्यों ? कभी भी कोई वस्तु या सिद्धान्त उपयोगी कब व्यक्त किया जाता है और अनुपयोगी कब व्यक्त किया जाता है ? अनुभवो एव प्रयोगों से जो स्थितिया जनहित की अनुभव की जाती हैं, उन्हे उपयोगी एव अनुकरणीय व्यक्त किया जाता है और जो कृत्य अहितकारी होते हैं व जिनसे परिवार, समाज व जनसमूह मे कलह या विघटन या अस्तित्व के विपरीत स्थितिया उभरती हो, उन्हें अनुपयोगी व्यक्त कर त्याग करने की प्रेरणा दी जाती है।

मन, वचन एव कम ये तीन योग जीवन के सचालन मे प्रमुखता रखते हैं। इन तीनो मे मन का योग प्रमुख है। यह कहा जाता है कि यदि मन वश मे हो जाता है तो मनुष्य अपने को बहुत सुखी महसूस करता है। मन चचल होने पर अनेक दुखो की उत्पत्ति कही गई है। मन की गति विचित्र है, यह बिना पैरो एव पखो के ही कई स्थानो का भ्रमण कर आता है व उडान भर लेता है। शरीर यहा रहते हुए भी वह अपनी गति कई स्थानो पर कर लेता है, इसके कारण ही इन्द्रियों मे चचलता आती है और वाणी एव शरीर मे भी चचलता दृष्टिगत होती है। कहते हैं कि मन एक बलिष्ट घोडे की तरह है। यदि इसे काबू करके इसकी सवारी की जावे तो यह लक्ष्य की ओर पहुचाने में सहयोगी होता है और यदि बेकाबू स्थिति मे सवारी होती है तो इस पर बैठने वाले की दुर्दशा ही होती है। किसी कवि ने इनका स्थिति को यो भी व्यक्त किया है—

मन लोभी, मन लालची, मन है बडा चकोर।
मन के मते न चालिये, मन पलक-पलक में और॥

यदि मन नियमित नही है तो फिर उसकी सवारी खतरनाक ही सिद्ध होती है। अनियमित मन वाला स्वय के जीवन को तो क्लेशमय बनाता ही है, वह अपने अडोस-पडोस और समाज को भी प्रभावित करता है तथा इस प्रकार खतरे का चिह्न बन जाता है। कषायो की वृद्धि मन के कारण ही होती है। मन मे लोभ जागृत होता है तो उसकी पूर्ति के लिये मनुष्य इष्ट-अनिष्ट सोचे बिना ही इसकी पूर्ति में लग जाता है, वह व्यवस्था को भी बिगाड कर अपने लालच की पूर्ति करने का प्रयास करता है। लोभ के वशीभूत हो कपट करने को उद्यत हो जाता है। इस प्रकार जब मन एक कषाय मे प्रवृत्त होता है तो उसे दूसरी कषाय का भी आश्रय लेना पडता है। दोनो कषायो के कारण तीसरी कषाय मान का भी उभार होता है और उसके सरक्षण के लिये क्रोध कर चौथी कषाय को भी धारण करता है। इस प्रकार लोभ एक कषाय है जहा से उसने प्रारम्भ किया

और माया का सहारा ले उसकी पूर्ति करने पर मन जाग्रत हुआ और उसी के लिये वह क्रोध भी करने लगता है । यह स्थिति मन के असयमित होने पर ही होती है ।

यह देखा गया है कि यदि अग्नि, जल, वायु ये भी सीमा से बाहर हो तो खतरनाक बन सकते हैं । अग्नि चूल्हे तक सीमित है या जिस सीमा तक उसकी आवश्यकता है, वहा तक सीमित है तो उसकी शक्ति कई प्रकार से लाभकारी है और ऐसी स्थिति मे वह स्तुत्य है । यदि सीमा छोड कर वही अग्नि आगे बढती है तो विनाश का दृश्य उपस्थित कर देती है, चारो ओर हाहाकार मच जाता है और उसके शमन के लिये जल व अन्य पदाथ जो इसे शात कर सकें, का उपयोग किया जाता है । ऐसी ही जल और वायु की भी स्थिति है । जब तक ये सयम मे हैं, अपनो आन मे ह, तब तक ता वे जीवनदायी हैं, उनसे जीवन को विकास की राह मिलती है और यदि इसके विपरीत वे सीमा से बाहर हो जायें तो प्रलय का दृश्य उपस्थित कर देते हैं, प्राणदायी के स्थान पर ये प्राणविनाशक बन जाते हैं ।

अग्नि, जल, वायु जो एकेन्द्रिय जीव की स्थिति के हैं, वे यदि असयमित हो तो प्रलय हो जाता है । एक इन्द्रिय के असयमित होने पर विनाश की स्थिति के और भी अनेक उदाहरण विद्वानो ने दिये हैं । स्पर्शेन्द्रिय के सयमित नही होने से हाथी अपनी जान खो बैठता है, घ्राणेन्दिय की असयमित स्थिति मे भवरा अपने प्राण गवा देता है, रसना इन्द्रिय के वशीभूत होने से मछली मृत्यु की ग्राहक बन जाती है तो श्रोत्रेन्दिय के वशीभूत मृग अपने प्राण खो देता है एव चक्षुइन्द्रिय के सयमित नही रहने से पतगा अपने को अग्नि के हवाले कर देता है । एक एक इन्द्रिय के अधीन होने पर प्राणी अपने लिये मरण का वरण कर लेते हैं तो पाचो इन्द्रिया यदि असयमित हुई तो निश्चय ही शीघ्र विनाश है । और यदि पचेंन्द्रिय जीव मन वाला मनुष्य सकल रूप मे असयमित हो जावे तो स्थिति अकल्पनीय ही होगी । सामाजिक व्यवस्था मे ऐसी अकल्पनीय स्थिति उत्पन्न न हो, इसी के लिये ऋषियो-मुनियो ने चिन्तन के साथ धम को जीवन का अग बनाने का उपदेश दिया, इसी के माध्यम से सुखमय जीवन जीने का मार्ग प्रतिपादित किया । मन, वाणी, कम के सयमित होने मे विकास की स्थिति व्यक्त की ।

मन के सयम से वाणी एव कम को सयमित किया जा सकता है । 'ज्ञानाणव' के एक श्लोक मे व्यक्त किया गया है कि यदि एक मन को सयमित कर लिया जावे तो समस्त अभ्युदय सध जावेंगे । यह अनुभव सिद्ध बात है कि जितने भी योगीश्वर हैं और जिन्होंने तत्त्व निश्चय को प्राप्त किया है, उन्होंने मनोरोध का आलवन लिया है—

एक एव मनोरोध, सर्वाभ्युदय साधक ।
यमेवालम्ब्य सप्राप्ता, योगिनस्त ख निश्चयम् ॥

सी १३/१५ एजेन्सी डाकघर के सामने, जोघपुर

समता एव सम्यक्त्व दर्शन

श्री रणजीतसिंह कूमट

समता को जैन दशन मे अत्यत महत्त्वपूण स्थान मिला है। समता का धर्म का मूल और मोक्ष-मार्ग का साधन माना है। साथ ही समता शब्द का प्रयोग अनेक अर्थो मे हुआ है और इसके कई पर्यायवाची शब्द काम मे आये हैं जिनसे कुछ भ्रम भी उत्पन्न होता है कि समता का सही अथ क्या है? सम्यक्त्व, सतुष्टि, समदृष्टि, सतुलन, समानता, सयम आदि कई शब्द हैं जो समता के पर्याय वाची के रूप मे काम मे लिये गये है।

अब प्रश्न यह है कि इन शब्दो का सही अर्थ क्या है? क्या ये शब्द वास्तव मे पर्यायवाची हैं या इनमें अथभेद है? इनका वास्तविक अर्थ क्या है और किस प्रकार ये आध्यात्मिक व व्यावहारिक जीवन मे प्रासगिक हैं और किस प्रकार सुखी जीवन बिताने में मदद करते हैं।

समता का अथ सम्यक्त्व से किया जाता है। सम्यक् शब्द का अर्थ "पूर्ण" से लिया है। सम्यक् का अथ यह भी ले सकते हैं जो एकान्त दृष्टिकोण नहीं रखता। जो चीज एकान्त दृष्टिकोण से देखी जाती है वह पूण नही है। इसीलिये अनेकान्त को जैन दशन में केन्द्र स्थान मिला है। सत्य के अनेक रूप होवे हैं और सब दृष्टिकोणों से सत्य को देखकर समझ पाने की शक्ति को सम्यक् ज्ञान कहा है। जो चीज जैसे है, उसको वैसी ही जानना सम्यक्दशन है। हम अपनी दृष्टि को सकीर्ण न कर व्यापक बनायें, एकान्त की बजाय अनेकान्त का दर्शन करें। और सत्य के अनेक रूपो को पहचानें, यही सम्यक् ज्ञान और सम्यक् दर्शन है। यही सम्यक्त्व या समता है। इसके विपरीत व्यवहार में व कई आचार्यो के कथनो मे यह उल्लेख आया है कि जो जिनवाणी पर विश्वास करें व सद्गुरु, सुदेव का आराधन करें वे सम्यक्त्वी है और शेष मिथ्यात्वी हैं। जब यह प्रश्न उठता है कि सुगुरु कौन? कोई तथाकथित वस्त्रधारी को सुगुरु बताता है तो कोई अन्य को। यह परिभाषा सम्यक्त्व की भावना से दूर ही नहीं नितान्त विपरीत है। जितने झगडे इस प्रकार के विवेचन से हुए हैं, उतने अन्य किसी बात से नहीं हुए। सम्यक्त्व का सीधा व सच्चा अथ सत्य की स्वीकृति है और सत्य अनेक पक्षीय होता है। अत सब पक्षो को जानना, समझना व आदर देना ही सत्य से साक्षात्कार है। यही अनेकान्त है जो महावीर के सदेश का अभिन्न अग है।

सम्यक्त्व "सत्य" के दशन में है। 'समण सुत्त' मे आचाय कुन्दकुन्द का यह पद आया है—

"णाणाजीवा णाणाकम्म, णाणाविह हवे लद्धी।
तम्हा वयणविवादं, सगपरसमएहिं वज्जिज्जो॥

भांति-भांति के जीव (हैं), भांति भांति का (उनका) कर्म है तथा भिन्न-भिन्न प्रकार की (उनकी) योग्यता होती है, इसलिये स्व-पर मत मे वचन-कलह का (तुम) दूर हटाओ।

जब हम सम्यक् दृष्टि बनेंगे तो सब अन्य मत व धारणाओ के प्रति उदार दृष्टि बनेगी, उनके पक्ष को समझने की शक्ति आवेगी । यही हमारे मे समता आयेगी । सब के प्रति आदर की दृष्टि याने सम-दृष्टि ।

आचार्य उमास्वाति ने जब यह उद्घोष किया "सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग," तब उनका सम्यग्दर्शन व ज्ञान से तात्पर्य, नव तत्त्व—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, सवर, निर्जरा, बध व मोक्ष । या सक्षेप मे दो तत्त्व जीव व अजीव मे श्रद्धा व उनकी जानकारी से था । जीव और अजीव की आपसी क्रिया व प्रतिक्रिया से यह ससार है और उनकी प्रतिक्रिया के स्वरूप को जानना व श्रद्धा करना सम्यक्त्व है । जिसने इस ससार-रचना के मूल को जान लिया उसने सब कुछ जान लिया और जानकारी के बाद अपने पुरुषार्थ से इस चक्र से निकल जाता है । जब तक वह मूल स्वरूप को न समझकर वस्तु-जाल मे दिग्भ्रमित हो घूमता है, तब तक वह ससार-चक्र मे आवर्तन करता है । इस दृष्टि से सम्यक्त्व का अर्थ आत्मा व इससे जुडे कर्म एव वस्तु स्वरूप को जानना व उसमे श्रद्धा करना है ।

जीवादी सददहण सम्मत जिणवरेंहि पण्णत्त ।
ववहारा णिच्छयदो, अप्पाण हवई सम्मत ।। (दर्शन पाहुड)

अर्थात् व्यवहार से जीव आदि (तत्वो) से श्रद्धा सम्यक्त्व (सम्यग्दर्शन) (है), निश्चय से आत्मा ही सम्यक्त्व होती है । (ऐसा) अरहतो द्वारा कहा गया (है) ।

सतोष समता का अर्थ जब सतोष से लेते है तो बाहरी वस्तुओ धन-परिग्रह आदि के सग्रह मे सतोष मे किया जाता है । जब तक धन-सग्रह से सतोष नही होगा, अध्यात्म की ओर व्यक्ति प्रवृत्त हो ही नही सकता । जब तक व्यक्ति धन के पीछे भागेगा, धन उसे और अधिक भगायेगा । अपनी परछाई का पकडने की तरह परछाई के पीछे भागता रहेगा । इस भाग-दौड मे अपने जीवन का रहस्य कभी नही समझ पायेगा । क्यो, उसने जन्म लिया, क्या उनके जीवन का उद्देश्य है ? क्या धन एकत्र करना ही उसका उद्देश्य है ? यदि हा, तो क्या वह इस धन को अपने साथ ले जायेगा ? यदि नही तो धन किस लिये ? जब यह प्रश्न पूछेगा तभी वह मोड लेगा और जीवन के सही अर्थ समझने की कोशिश करेगा । जिस दिन यह सही दृष्टि आयेगी उसी दिन समता आयेगी ।

सुवण्णरुप्पस्स उ पव्वया भवे सिया हु केलास समा असखया ।
नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि, इच्छा हु आगाससमा अणन्तिया ।।

अर्थात् लोभी मनुष्य के लिये कदाचित् कैलाश (पर्वत) के समान सोने चादी के असख्य पर्वत भी हो जाये, किन्तु उनके द्वारा (उसकी) कुछ (भी) तृप्ति नही (होती है) क्योकि इच्छा आकाश के समान अन्त रहित होती है । इसीलिये कवि ने कहा—

गोधन, गजधन रत्नधन, कचन खान सुखान ।
जब आवे सतोष धन, सब धन धूरि समान ।।

कभी-कभी, सतोष का अर्थ यह होता है, जो है उसमें सतोष र
इसमे एक खतरा अवश्य है । इससे मेहनत न करने व तकदीर पर भरोसा
व भाग्यवादी बनने का डर है । पूर्व कर्म-फल समझकर अन्याय को सह
भविष्य मे विश्वास कर कर्म या मेहनत न करें, यह सतोष का अर्थ नहीं है
कर्म तो करना है परन्तु इसके फल के प्रति व्यग्रता नही हो, तब ही शात
ममता बनी रह सकती है । कर्म न करना क्योकि फल मिलेगा या नहीं मि
अथवा फल जो होगा भाग्यानुसार मिलेगा यह वृत्ति वाछनीय नही है और
सतोप या समता का सही अर्थ है । समता का सही अर्थ है कि फल कुछ भी हो,
समता मे रहे या अविचलित रहे ।

कई बच्चे परीक्षा मे फेल होते हैं और आत्महत्या कर बैठते हैं । क
कडी मेहनत पर भी सफलता न मिलने पर निराशा होनी स्वाभाविक है प
फल के पीछे जितना चिपकाव होता है, उतना ही गहरा धक्का लगता है ।
कर्म मे गहरा विश्वास है और फल के प्रति इतना चिपकाव नही है तो असफ
को भी सतोष भाव या समता से सहन किया जा सकता है । हर हार को अ
जीत का अवसर माना जा सकता है ।

समता दृष्टि

समता का एक और अर्थ है समभाव या समदृष्टि । जो खराब
निदक या दुष्ट, उसके प्रति भी और जो प्रशसक या मित्र है उसके प्रति
प्रेम या करुणा भाव होना । इस प्रकार का समभाव होने पर दुष्ट या निदक
समतावान घबरायेगा नही या उनके प्रति द्वेष भाव नही लावेगा । इसी प्र
जो प्रशसा करता है उसके प्रति राग भाव नही आयेगा । ऐसी साम्य भा
जिसमे आ गई है वह कठिन परिस्थिति से भी दु खी नही होता और व
परिस्थिति मे अपने आपको खो नही देता । सब शत्रु मित्र पर समभाव
समता का सार है । ऐसी स्थिति म पहुचने के लिये अहम् के प्रति जो गहरा
काव है उससे मुक्ति पाना आवश्यक है ।

हमारी आत्मा का वास्तविक शत्रु और मित्र और कोई नहीं है,
और मित्र हम स्वय हैं । जो भी हमारी निदा करता है उससे आहत इस
होते हैं कि हमारे अह पर आघात होता है, प्रशसा से इसलिये खुश होते हैं कि
का पोषण होता है । यह अह ही हमारे दृष्टिकोण को बदलता है और हमें कि
का शत्रु व किसी का मित्र के रूप म देखने के लिये मजबूर करता है । जि
अह से चिपकाव उतनी ही हमारी समता से दूरी है ।

जिसने शत्रु और मित्र को समभाव से देखना प्रारभ कर दिया,

राग हो गया, वही भगवान हो गया । इसीलिये कहा—'समदृष्टि है नाम तुम्हारो ।' भगवान जो होगा समदृष्टि ही होगा । वह किसी के प्रति खुश या किसी के प्रति नाराज नही हो सकता । वीतराग स्थिति अन्तिम स्थिति है । राग और द्वेष से ऊपर उठकर समभाव मे स्थित हो जाना समता की चरम स्थिति है ।

व्यावहारिक दृष्टिकोण—सतुलन

वीतराग स्थिति प्राप्त हो उसके पूर्व समता का रूप सतुलन मे है । हमारे जीवन मे कितना सतुलन है, इसी से समता की कोटि या श्रेणी निर्धारित होगी । जिनेन्द्रवर्णी के शब्दो मे "समता शुद्ध हृदय का भाव है और विपमता मलिन हृदय का ।" शुद्ध हृदय की स्फुणर्ये हैं - क्षमा, मादव, आजव, सत्य, शील, तप, त्याग, अकिंचन और ब्रह्मचर्य अर्थात् दशलक्षण धम । मलिन हृदय की स्फूर्णायें हैं—कपाय अर्थात् क्रोध, मान, माया, लोभ । इन दो विपरीत धुरियो के बीच मन विचरण करता है । जब विपमता मे होता है तो कपाय प्रवृत्ति विशेप बलवती होती है और जब समता मे होता है तो शुद्ध हृदय के भाव अर्थात् क्षमा बलवती होती है । जिसने कपायो पर विजय पा ली वह हमेशा शुद्ध भाव मे रहेगा और वह समता की अन्तिम श्रेणी मे होगा अर्थात् वीतराग होगा । इसके विपरीत जिसमे क्षमा आदि का कोई अ श नही है, वह घोर कपाय की स्थिति मे होगा और विपमता मे ही पूरा जीवन बितायेगा । परन्तु ससारी जीवन मे न तो कोई हमेशा समता मे रहता है और न कोई हमेशा विपमता मे । वह कुछ समय या कुछ अंशो मे समता मे हैं और कुछ अ शो मे विपमता मे ।

व्यक्ति इन दो धुरियो के बीच सतुलन बनाने की कोशिश करता है और जो अधिक सतुलित होता है वह उतना ही सुखी महसूस करता है और जो विपमता की ओर अधिक झुका होता है, वह अधिक दु खी रहता है । अपने आवेशो (Passions) क्रोध, मान, माया, लोभ तथा सज्ञाओ (Instincts) यथा—आहार, भय, मैथुन पर जब व्यक्ति नियत्रण या सयम तथा शुभ भावो अर्थात् मैत्री, अनुकम्पा, समन्वय आदि का फैलाव करता है तब जीवन मे चरित्र प्रकट होता है, जीवन समता मे होता है । समता मे जितना समय बीता वह सुखी जीवन और जितना विपमता मे वह दु खी जीवन । हम अपने व्यावहारिक जीवन मे अनुभव कर सकते हैं कि जो अति क्रोध, अति मान या अति लोभ मे जीवन बिताते हैं वे कितने दु खी होते हैं परन्तु जो सयमित रूप से जीते हैं वे कितने सुखी होते हैं । इसीलिये कहा है "धम्मो मगल मुक्किठ, अहिंसा सजमो तवो" अर्थात् मंगल और मुक्ति का धर्म अहिंसा, सयम और तप है । यह दशवैकालिक सूत्र की गाथा है । केन उपनिषद् की इस गाथा पर ध्यान दें—

"तस्य तपो दम कर्मेति प्रतिष्ठा, वेदा सर्वांगनि सत्यमायतनम"

अर्थात् सयम, तप और कर्म इस अनन्त ज्ञान का आधार है और वेद इसके अग हैं और सत्य इसका घर है ।

अनन्त ज्ञान या ब्रह्म या अनन्त सुख जिसकी खोज में जाना इस ॰ का चरम लक्ष्य है, उस ज्ञान का मूल आधार सयम, तप और श्रम है जिसने इस सत्य को जान लिया वह सब बुराइयो से दूर होकर अनन्त स्व अपने आपको प्रतिष्ठित कर लेते हैं । दशवैकालिक और केन उपनिषद् की ॰ दो गाथाओ मे कितना साम्य है, यह स्पष्ट है । सयम का अथ है—अहम् ॰ नियन्त्रण या स्वय पर विजय (Self Conquest) । हम अपने आवेशों पर ॰ सज्ञाओ पर जो नियन्त्रण करते हैं वह सयम है और जो त्याग करते हैं वह ॰ है । इससे उदित होता है कर्म, अनुकम्पा, सेवा, अहिंसा और सत्कम । ॰ सयम, तप और सेवा मे रमण ही समता है ।

सामाजिक सदर्भ

समता का आज के विषम सामाजिक सदर्भ मे एक और गूढ़ अर्थ और वह है—समानता (Equity) व न्याय (Justice) । ये सिद्धान्त आज ॰ सविधान के मुख्य अग है । सविधान की घोषणा है कि—बिना किसी ॰ लिंग, धर्म व वर्ण के भेदभाव के, सबको समानता का हक होगा और सब आर्थिक, सामाजिक, कानूनी न्याय का भी हक होगा । इस उद्घोषित समानता और न्याय की आज कितनी वास्तविकता है, इसकी चर्चा करना यहा आवश्यक ॰ परन्तु समाज के उद्भव एव विकास के लिये यह समानता और न्याय अत्यत आवश्यक है, इसम कोई दो मत नहीं हो सकते । भगवान् महावीर ने इस सामाजिक ॰ मे समता की उद्घोषणा की और कहा—जाति से कोई ऊचा या नीचा नही है। जाति से ब्राह्मण नही बल्कि कर्म से ही व्यक्ति ब्राह्मण हो सकता है । भगवान् महावीर ने गुलामी, पशु-सहार, जाति-भेद, आदि ज्वलत समस्याओ पर ॰ प्रहार कर सामाजिक समानता के मूल्यो की स्थापना की । आर्थिक विषमता जब तक रहेगी, सामाजिक समानता स्थापित हो ही नही सकती इसीलिये अपरिग्रह ॰ सिद्धान्त को सर्वोच्च महत्त्व देते हुए महावीर ने कहा कि अपनी इच्छाओं और धन-संग्रह की लालसा पर सीमा लगाओ और एक सीमा से अधिक धन ॰ समाज के विकास मे लगाओ, दान दो । दान के महत्त्व को उजागर करते हुए छोटे और गरीब व्यक्तियो द्वारा अपनी कमाई के तुच्छ हिस्से के दान को ॰ सौनैया के दान से ऊपर बताया । अपरिग्रह की भावना जब तक समाज के सब सदस्यों म व्याप्त नही होती आर्थिक समानता का आधार नहीं बनता । जब तक आर्थिक समानता नही तब तक सामाजिक व आर्थिक न्याय की कल्पना एक ॰ मना मात्र है ।

वैचारिक स्वतन्त्रता भी समाज की समानता का आधार है । इस दृष्टि ॰ ग्राण मे समानता और समन्वय के लिये अनेकात मूल आधार बनता है । ॰

किसी के विचारो से सहमत हो या नही परन्तु दूसरे के विचारो मे निहित सत्य को जानने की उदार भावना प्रत्येक मे होनी चाहिये । इससे सहिष्णुता की भावना जगगी और दूसरे व्यक्ति के विचारो के प्रति जब साम्य और आदर भाव होगा तो व्यवहार मे भी समानता स्थापित होगी । यदि असहिष्णुता और कटुता है एकागी विचारधारा पर चलने की प्रथा है तो न केवल वैचारिक स्तर पर भेद-भाव और कटुता होगी वरन् व्यवहार मे हिंसा और वैमनस्य होगा । विचारो मे अनेकान्त दृष्टिकोण व्याप्त होने पर व्यवहार मे अहिंसा स्वत ही प्रकट होगी । वास्तव मे विचारो मे अति कटुता, गहन रोष और असह्यता होने पर ही व्यवहार मे हिंसा प्रकट होती है और यदि यह कटुता और रोष वैचारिक स्तर से निकल जाये तो हिंसा गायब हो जाती है । अत जिस 'अहिंसा परमो धम ' की उद्घोषणा भगवान् महावीर ने की उसका वैचारिक आधार अनेकान्त है और सामाजिक आधार अपरिग्रह । जब तक ये आधारभूत शर्तें पूरी नही होती जीवन मे वास्तविक अहिंसा स्थापित नही हो सकती । चीटी न मारने या पानी छान कर पीने की अहिंसा स्थापित हो सकती है परन्तु वास्तविक अहिंसा जो करुणा, सेवा, सहानुभूति, सहिष्णुता और समभाव मे समाहित है, वह बिना अनेकान्त और अपरिग्रह के स्थापित नही हो सकती । सामाजिक समनता और समानता के बिना व्यक्तिगत समता सम्यक्त्व या सन्तुलन प्राप्त हो ही नही सकता । कोई व्यक्ति चाहे कि सारा समाज कितना ही दु खी रहे वह अपने सुख मे मस्त रहे तो यह कभी सभव नही । कोई आग मे रहकर आग का ताप प्राप्त न करे, यह असभव है । उक्त व्यक्ति स्वय के मोक्ष की कामना करने से पूव सबके सुख और कल्याण की कामना करे व-उन्हे सुखी करने का प्रयास करे तब ही स्वय सुख प्राप्त कर सकता है ।

इस सदभ मे महर्षि अरविन्द ने लिखा है—

The salvation we seek must be purely internal and Impersonal, it must be the release from egoism, the unity with the devine, the realisation of our universality as well as our transcendence and no salvation should be valued which takes us away from the love of god in his manifestation and the help we can give to the world If need b it must be taught for a time "Better this hell with our other suffering selves than a solitary salvation' P—189 The Upnishads

अर्थात् जिस मुक्ति की हम खोज मे हैं वह शुद्ध रूप से आन्तरिक एव अवैयक्तिक होनी चाहिये । इसका अथ अपने अह से मुक्ति और परम तत्त्व मे मिलन होना चाहिये । यह अनुभूति हो कि हमारा व्यापक एव सत्य रूप क्या है और निरतर परिवतन रूप क्या है कोई भी मुक्ति, जो ईश्वर के प्रकट रूप से और विश्व को जो कुछ हम दे सकते हैं उससे दूर ले जावे, उस मुक्ति को कोई

अहमियत नही दी जानी चाहिये । यदि आवश्यकता हो तो कुछ समय के लिये यह शिक्षा भी दी जाये कि—

"अकेले मुक्ति की बजाय अपने सब दु खी साथियो के साथ इस नर्क में रहना ज्यादा अच्छा है ।" —श्री अरविन्द

समता पत्थर की समता नही है, जो न बोलता है न अनुभव करता है। समता और जडता मे रात-दिन का फर्क है । जीवन्त समता मे चेतना है, क्रिया, गतिशीलता और सतुलन है । पत्थर की समता मे है जडता, निष्क्रियता और निश्चेतनता । राग-द्वेष को जीतना या वीतरागता का अर्थ पत्थर बनना नहीं वरन् अपने आवेशो पर नियन्त्रण करना है । अपनी जागरूकता व विवेक को बढाना है जिससे हम सस्कारो और प्रतिक्रिया के जीवन से ऊपर उठकर विवेकपूर्ण जीवन जी सकें । विवेक और जागरूकता से किया कार्य भी समता का कार्य है। 'दशवैकालिक' सूत्र मे पूछा कि हम कैसे खायें, कैसे सोयें, कैसे चलें व कैसे बठें जिससे पाप-कर्म का बन्ध न हो, तो उत्तर दिया कि विवेक या यत्न से चलें, बैठें, सोवें व भोजन करें तो पाप कर्म का बन्ध नही होगा । इस गाथा ने जीवन की प्रत्येक छोटी-छोटी क्रिया मे भी विवेक एव जागरूकता को महत्त्व दिया है ।

विवेक एव जागरूकता की पहली शर्त है—आत्म-सयम । टॉलस्टॉय ने भी लिखा है—आत्म सयम के बिना न तो उत्तम जीवन सभव हुआ है और न हो सकता है । आत्म-सयम का अर्थ है मनुष्य का वासनाओ से मुक्त होना, वासनाओ को सीमित और सरल बनाना । वासनाओं का जिक्र करते हुए टॉलस्टाय ने सर्व प्रथम जीभ की मौलिक वासना से लडने व उपवास व्रत करने का उपदेश दिया अर्थात् त्याग व तप करना आवश्यक बताया । यह दूसरी शर्त हुई । इसी सदर्भ मे मास-भक्षण को अनैतिक बताते हुए कहा कि मास भक्षण विकार ही जाग्रत नही करता वरन् मूल मे स्वादु भोजन के लोभ और जीवो के उत्पीडन के प्रति असवेदनशीलता दर्शाता है । जीवो के प्रति सवेदनशीलता ही अहिंसा का आधार है । यह तीसरी शर्त हुई । टॉल्स्टॉय के उपयुक्त शब्द महावीर के उपदेशो का समर्थन ही नही करते वरन् इस बात का परिचय देते हैं कि जो भी व्यक्ति उच्च श्रेणी की समता पर पहुचते हैं उन सबकी अनुभूति एक सी है और उनके उपदेश भी एक से हैं ।

समता अर्थात् सयम, अहिंसा, और तप, जीवन धर्म का मूल आधार है और इसमें सबका मगल निहित है । इसी से समाज मे सवेदनशीलता, समानता, न्याय और करुणा के भाव उत्पन्न हो सकेंगे, जो समाज के सभी वर्गों के लिये व्यक्तिगत एव समष्टिगत रूप से लाभकारी होंगे । जहा अहिंसा, सयम और तप का अभाव होगा, वहाँ विषम सामाजिक परिस्थितियां होगी और प्रत्येक व्यक्ति दु खी एव असतुलन की स्थिति म मिलेगा । इसके विपरीत स्थिति मे समाज मे सौहार्द, समन्वय, समदृष्टि व समानता स्थापित हो सकेगी और सभी प्राणी सुखमय जीवन बिता सकेंगे । —सचिव, राजस्थान राज्य उपक्रम विभाग, जयपुर

समता–साधना

❀ डॉ सुषमा सिंघवी

समता–साधना का साधन तथा साध्य दोनो ही आत्मा का प्रसाद है अर्थात् निर्मल आत्मा ही समता की साधना के लिये साधन है तथा आत्मा की निर्मलता या विप्रसाद ही समता साधना का साध्य है, फल है। 'आचाराग' सूत्र मे स्पष्ट निर्देश है कि समता की दृष्टि से आत्मा को प्रसाद युक्त रखें—"समय तत्थुवेहाए अप्पाण विप्पसादए"[1]।

वर्तमान सदर्भ मे समता–साधना का महत्त्व इस दृष्टि से भी अधिक है क्योकि वर्तमान मे प्राणियो मे उल्लास की कमी है। चेहरे मुर्झाए हुए है, चित्त म्लान है, प्रसन्नता का अभाव है। चित्त की निर्मलता और सरलता के अभाव के कारण उल्लास की सर्वत्र कमी है। इसके अतिरिक्त भोगोपभोग के साधनो के योग–क्षेम मे ही मानव जीवन व्यस्त हो रहा है और इस प्रयास मे अनुकूल की अनुपलब्धि तथा प्रतिकूल की उपलब्धि से त्रस्त हो रहा है। अत सर्वत्र उल्लास का अभाव दृष्टिगोचर होता है। प्राणियो के जीवन मे उल्लास और प्रसाद के दर्शन समता की साधना से सभव है। भोगोपभोग हेतु बाह्य साधनो और सामग्री की वृद्धि सुखाभास करा सकती है किन्तु आत्म–प्रसाद अथवा आत्मोल्लास कदापि नही क्योकि आकाशवत् अनन्त इच्छाओ की पूर्ति का कभी विराम नही होता।

यदि समता की साधना अर्थात् सामायिक को दुष्कृतगर्हा, सुकृत अनु–मोदना तथा चतु शरणागति पूर्वक किया जाय तो निश्चय ही ज्ञान और आचरण का सयोग होने से मोक्षपरक तीव्र सवेग की प्राप्ति होगी। दुष्कृत गर्हा से पाप कर्मो के प्रति तीव्र पश्चात्ताप रूप प्रतिक्रमण होता है, प्रतिक्रमण से पूर्वभव ज्ञान सभव हो जाता है तथा उससे वैराग्य पुष्ट होता है, साथ ही सुकृत् अनुमोदना से सच्चे देव, गुरु और धर्म की प्राप्ति का विश्वास जाग्रत होता है तथा अरिहत, सिद्ध, साधु एव जिन–धर्म इन चारो के प्रति शरणागति से मन समता–साधना मे स्थिर होता है।

सम्पूर्ण सृष्टि के प्राणी आत्मोपयोग लक्षण की दृष्टि से समान है। इस आत्मौपम्य भाव से साधक सावद्य–योग का त्याग करता है, पर छिद्रान्वेषण अथवा मात्र पर्याय अवलोकन को अनावश्यक मानता है तथा स्वात्मरमण को आवश्यक मानकर समभावपूर्वक आचरण करता है—यही सामायिक है, यही समता-साधना है। समता–साधना के विना, आवश्यक के शेष पाच अङ्ग–चौवीस्तव, वन्दना,

---

1– आचाराग सूत्र, III/३ समता दर्शन, १२३ सूत्र

प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, प्रत्याख्यान सार्थक सिद्ध नहीं होते । राग अथवा द्वेष की स्थिति में न तो सुकृत् अनुमोदना रूप चौबीसत्व सम्भव है और न दुष्कृत गर्हा रूप प्रतिक्रमण । राग से अथवा द्वेष से आवेशित चित्त स्थिर, शान्त नहीं रह सकता। किसी भी रंग में रंगा वस्त्र श्वेत नहीं ही कहलाएगा । चित्तवृत्ति को निर्मलता प्रदान करती है सामायिक। आत्मा में निर्मलता और प्रसाद प्रदान करने की क्षमता मात्र समभाव में है क्योंकि जहां परभाव या विभाव का अभाव होता है, वहां समभाव की स्थिति होती है । 'नियमसार' का उद्घोष द्रष्टव्य है—

अशेषपरपर्यायैरन्य द्रव्यैर्विलक्षणम् ।
निश्चिनोति यदात्मान तदा साम्ये स्थितिर्भवेत् ॥ [संस्कृत भाषान्तर]

आत्म स्वभाव में अथवा शुद्ध चैतन्य में स्थिति मात्र समता/साम्य है । यह एकरूपता ही सामायिक है । इस स्थिति में स्वय आत्मा को ज्ञाता द्रष्टा ज्ञान का अनुभव समाय है और समाय ही सामायिक है, यही समता की साधना है ।

सब प्राणियों के प्रति आत्मौपम्य भाव जाग्रत हो जाने से, द्रव्य का वास्तविक स्वरूप 'उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्त सत्, 'सद् द्रव्यम्' रूप त्रिपदी समझ लेने से अनुकूल के प्रति राग और प्रतिकूल के प्रति द्वेष कदापि सम्भव नहीं होगा। सभी द्रव्य द्रव्य हैं, सभी द्रव्य द्रव्यत्व की महासत्ता की दृष्टि से समान हैं, ऐसा निश्चय हो जाने पर किससे राग और किससे द्वेष ?

ऐसी समता की साधना का अविरल निर्झर पूर्वकृत एव सचित कर्मों की निर्जरा का हेतु बन जाता है और भावी कर्मबन्धन का सवर करता है ।

जैन दर्शन Rational human base पर आधारित है, वैदिक दर्शन की भांति Supernatural base पर नहीं । वैदिक ऋषियों ने अपनी आवश्यकताओं तथा इच्छा पूर्ति करने वाले तत्त्वों को देवी-देवता [वायुदेवता, अग्निदेव, जलदेव, पृथ्वी-देव] का रूप देकर पूजा की । जैन दर्शन में जीवत्व सामान्य की दृष्टि से विचार कर पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय सभी को जीव मानकर इन सभी के साथ आत्मौपम्य भाव की स्थापना कर सभी के प्रति समत्व भाव को जाग्रत किया है—

'सम्यक् एकत्वेन अयन गमन समय । समय एव सामायिकम् ।'

विश्व के समस्त प्राणियों को अपने समान मानना ही न्यायोचित तथा तर्कसम्मत है क्योंकि अन्य जीवों को अपने से न्यून या छोटा मानने पर अभि-मानोदय से हम संसार-गर्त में पतित होते रहेंगे और यदि अन्य जीवों को अपने से बड़ा माना तो दीन बनकर स्वभाव से च्युत हो जायेंगे। आवश्यकता है पर्याय बुद्धि परित्याग की और सर्वजीव समता-साधना की। सब प्राणियों में यथार्थ मैत्री भाव भी आत्मौपम्य दृष्टि में ही सम्भव है । मिले हुए सेनों में यह मधुर भा

त्र है तथा यह दूसरे का, इस भेद को जानने हेतु जैसे एक सीमा रेखा होती है वैसे ही आत्मा और अनात्मा के भेद को जानने की सीमा समता है ।

मध्यस्थ भाव अथवा द्रष्टाभाव की पुष्टि हुए बिना समत्व की आय सम्भव नहीं है । समता–साधना का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण किया जाय तो स्पष्ट होगा कि प्रतिक्रिया का निषेध समभाव की प्राप्ति मे अत्यन्त सहायक है ।

मनोविज्ञान के अनुसार उत्प्रेरक प्राप्त होने पर जीव प्रतिक्रिया करता है। यह एक सहज वृत्ति है जिसे मनोवैज्ञानिक S–O–R समीकरण मे प्रस्तुत करते हैं। पावलफ नामक मनोवैज्ञानिक ने प्रयोगो द्वारा यह निर्णय दिया कि कुत्ते जैसे प्राणी का भी किसी विशेष परिस्थिति मे विशेष क्रिया करने हेतु बाध्य [शिक्षित] कर दिया जाता है, तथापि अपने कुछ प्रयासो मे यदि वह फल प्राप्त नही करता तो अभ्यास से और अनुभव से प्रतिक्रिया करना छोड देता है। जैसे कुत्ते को कुछ समय तक घंटी बजाकर खाना दिया गया जिससे उसे लार आई। भोजन उत्प्ररक था उस कुत्ते ने लार के रूप मे प्रतिक्रिया की । कई प्रयासो के पश्चात् कुत्ता घंटी की आवाज से Conditioned हो जाता है और ऐसी स्थिति मे कुत्ते के समक्ष भोजन न रखने पर भी यदि घंटी मात्र बजा दी जाय तो भी उसे लार आ जायेगी । यह Conditioned Learning है । किन्तु यदि कई प्रयास ऐसे हो जिसमे घंटी बजाकर भोजन न दिया जाय ता वह कुत्ता भी उस प्रक्रिया मे फल प्राप्ति न होने पर Conditioning से प्रभावित नही होता है । यह अभ्यास का प्रभाव है कि वह घंटी बजने पर भी लार के रूप मे प्रतिक्रिया नही करेगा क्योकि वह पुन जान गया कि अब उसे घंटी बजने पर भोजन नही मिलता है । कैसी विडम्बना है कि अनन्त काल तक पूर्व-पूर्व जन्मो मे काम-भोग-बन्ध कथा से परिचित एव उसके अभ्यस्त हम ससारी प्राणी उनमे सुख अथवा दुख मानने की प्रतिक्रिया करते हैं जो कमबद्धता के कारण सहज है किन्तु यह राग-द्वेष निष्फल है, ऐसा अनेकश गुरु द्वारा श्रवण, शास्त्र द्वारा पठन तथा अपने अनुभव द्वारा जान लेने के बाद भी हम उस पूर्व Conditioning से प्रभावित होते रहते है । अभ्यासपूर्वक प्रयास करके प्रतिक्रिया करना छोडते नही हैं । कुन्दकुन्दाचार्य ने कितना मर्मस्पर्शी कथन किया है कि सभी प्राणियो को काम-भोग-बन्ध कथा श्रुत, परिचित और अनुभूत है, पर्यायभिन्न केवल आत्मैकत्व की प्राप्ति सुलभ नही है [समयसार गाथा ४] ।

क्रोधादि के उत्प्रेरक की प्राप्ति होने पर भी प्रतिक्रिया [क्रोधादिरूप] न करने हेतु राग-द्वेष के परित्याग का अभ्यास अपेक्षित है और वह अभ्यास ही समता-साधना है और यही श्रावक की सामायिक है । यह निश्चय है कि क्रोध क्रोध है, आत्मा नही, विभाव विभाव है, आत्मा नही, राग राग है, आत्मा नही तब आत्म प्राप्ति के लिये समता–साधना का लक्ष्य लेकर चलने वाले हम लोगो को क्रोधादिकारक उत्प्रेरको के प्रति प्रतिक्रिया नही करने का अभ्यास करना चाहिये जिससे मिथ्यात्व के

कारण राग-द्वेष के प्रति बाध्य हमारा विभाव समाप्त हो और हम इस र्ग , को समता-साधना के अभ्यास द्वारा त्याग कर आत्म स्वभाव में स्थित हा न

समता-साधना का एक दूसरा अर्थ है अप्रमत्त स्थिति की प्राप्ति र प्रयास । हमारी जीवनचर्या मे हम या तो भूतकालीन सुख-दुःख मय अथवा भविष्यकालीन कल्पनाओ के ताने-वाने में इतने प्रमत्त रहते हैं कि वर्तमान क्षण का भान नही रहता । सामायिक हमे क्षण के स्वरूप को स्म कर अप्रमत्त बनाने मे सहायक है ।

'आचाराङ्ग सूत्र' के पचम अध्ययन के द्वितीय उद्देशक में क्षणान्वे अप्रमत्त कहा है । शास्त्रो मे क्षणज्ञ को सर्वज्ञ कहा गया है । "एत्थोवर झोसमाणे अय सधि ति अदक्खु, जे इमस्स विग्गहस्स अय खणे ति अन्नेसि [ए भेद-मन्नेसि]" इस औदारिक शरीर का यह वर्तमान क्षण है, इस प्रकार क्षणान्वेषी हैं वे अप्रमत्त हैं । प्रतिक्षण के पर्याय परिवर्तन पर जिसकी दृष्टि जो क्षणविशेष की अवस्था विशेष को पकडकर नही बैठता [उसके प्रति रा द्वेष नहीं करता] वह सुगमतया अनन्त पर्यायात्मक जगत् [के पदार्थों] की ए भगुरता का समझ लेता है और क्षणभगुरता का ज्ञान ही वैराग्य का उत्पादर मुझे जो व्यक्ति या वस्तु प्रिय है, वह प्रतिक्षण बदलती जा रही है, मेरी कहा रही, यदि मैंने प्रिय को पा भी लिया तो जो जिस क्षण में प्रिय था उस क्षण मे नहीं पाया, जब तक पाया तब तक वह प्रतिक्षण परिवर्तन के का बदल चुका था अत कोई वस्तु या व्यक्ति राग अथवा द्वेष का विषय नहीं सकता । वस्तु द्रव्य की अपेक्षा ध्रुव है और पर्याय की अपेक्षा परिवर्तनशील इस चिन्तन से वैराग्य उत्पन्न होता है । राग-विगत होते ही समता की प्रा होती है । राग का छूटना ही द्वेष का नष्ट होना है क्योंकि द्वेष और राग ही सिक्के के दो पहलू हैं ।

वर्तमान क्षण को पकड लेने वाला व्यक्ति भूत मे चला जायगा जिसने क्षण को छोड दिया वह भविष्य मे । इस प्रकार भूत-भविष्य के भूले राग-द्वेष वश क्षण[वर्तमान] का नही पहचानना ही हमारा अज्ञान है, मोह इस मोह पर विजय प्राप्त करने के लिये समता-साधना अपेक्षित है ।

प्रश्न यह है कि क्षण का अन्वेषण कैसे हो ? समता के साधक समाधान दिया है कि ज्ञाता द्रष्टा भाव मे क्षणान्वेषण सम्भव है । पूर्वकर्म उदयवश जो रागात्मक स्थिति या द्वेषात्मक स्थिति हो, उसे यदि मात्र दे दिया जाय, हम उस स्थिति में ज्ञाता द्रष्टा मात्र हो जायें, वह स्थिति हम राग या द्वेषपरक प्रभाव न छोड पाये हम उस स्थिति के प्रति प्रतिक्रिया न तो कर्मबन्धन की विस्तृत परम्परा को काट सकेंगे ।

अब प्रश्न यह भी स्वाभाविक है कि अनन्त जन्मो के कर्मबन्धन क्या जन्म की समता-साधना से कर्म कट सकते हैं ?

समता-साधको का उत्तर है कि बीज के अकुरित होने से बना वृक्ष स्वय अपने फलो मे सन्निहित, अनेक बीज रखता है जिससे भविष्य मे असख्य वृक्षो निर्माण सम्भव है किन्तु उस वृक्ष को दग्धबीज कर दिया जावे तो भावी वृक्ष द्ध तो समाप्त होगी ही, उस वृक्ष की पूव सन्तति भी समय पर क्षीण हो यिेगी ।

निष्कषत समता-साधना का फल है आत्म-प्रसाद । समता-साधना का र्थ है—आत्मौपम्य भाव । समता-साधना का अथ है—प्रतिक्रिया का अभाव तथा ध्यस्थभाव का अभ्यास । समता-साधना का तात्पय है—प्रमाद का त्याग तथा णान्वेषी बनकर अप्रमत्त भाव की प्राप्ति ।

—निदेशिका, क्षेत्रीय केन्द्र,
कोटा खुला विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज)

卐

यह अनुशासनहीनता होगी

❀ राजकुमार जैन

न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानाडे के पास किसी परिचित ने कीमती अल्फोजी आमो का टोकरा भेजा । भोजन के वक्त श्रीमती रमाबाई रानाडे आम ले आई । उन्होने चाकू से आम काटकर तीन फाकें पति को दी । तीनो फाकें खाकर रानाडे ने कहा—'बस, अब नही चाहिए ।'

'क्यो ? और लीजिए न ? क्या स्वादिष्ट नही हैं ?'—श्रीमती रानाडे ने कहा ।

'नही स्वादिष्ट तो हैं, पर इससे अधिक खाना मेरे स्वाद के अनुशासन से बाहर होगा ।'—रानाडे ने कहा—'ये आम कीमती हैं । मैं इन्हे उतना ही खाना चाहता हू जितने से जीभ की आदत न बिगडे और जितना मैं खरीद कर भी खा सकू । किसी ने भेंट किये हैं, इस लिए ज्यादा खा लेना मेरी नजर मे अनुशासनहीनता होगी ।'

श्रीमती रानाडे अपने पति के सिद्धातो के आगे नत-मस्तक थी ।

पचपहाड रोड, भवानी मण्डी (राज) ३२६५०२

श्रावकाचार और समता

डॉ सुभाष कोठारी

जैन धर्म मे श्रावकाचार का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्रावक का तात्पर्य गृहस्थावस्था मे रहकर अपने एव अपने पारिवारिक जीवन को नीति पूर्वक चलाकर धर्म का आराधन करना है तथा आचार का अभिप्राय कुछ निश्चित नियमो का यथारीति पालन करना होता है। जैन दर्शन मे इन्हे सैद्धान्तिक रूप मे श्रावक-आचार नाम दिया गया है।

श्रावक आचार के मूल पाच अणुव्रत, तीन गुणव्रत एव चार शिक्षाव्रत हैं।[1] अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एव अपरिग्रह ये पाच व्रत हैं। इन व्रतो को जब बिना किसी अपवाद के अगीकार किया जाता है तो ये महाव्रत की संज्ञा पाते हैं परन्तु जब इनका पूर्णरूप से पालन नही करके अपनी क्षमता एव सामर्थ्य को ध्यान मे रखते हुए आशिक रूप मे ग्रहण किया जाता है तब अणुव्रत कहलाने लगते हैं।

अणुव्रतो मे समता—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एव अपरिग्रह आदि व्रतो का पालन सभी श्रावक अपनी-अपनी क्षमता एव स्थिति के अनुसार करते हैं। इसके पीछे हमारे पूर्वाचार्यों, तीर्थंकरो एव आदि पुरुषो का सूक्ष्म चिन्तन रहा हुआ है। वे जानते थे कि सभी व्यक्तियो की रुचि, क्षमता एव सामर्थ्य एक जैसा नही होता है। अत प्रारम्भिक तौर पर वह उनका पालन किंचित् मात्र करता है परन्तु धीरे-धीरे उसकी क्षमता मे वृद्धि होने लगती है और वह व्रतो को स्वीकार करने की क्षमता बढ़ाता जाता है।

इन व्रतो के आचरण से समता के विकास की दिशा में ठोस कार्य किये जा सकते हैं। जहा हिंसा से भय और विषमता फैलती है, असत्य मे द्वेष और क्रोध उत्पन्न होता है, परिग्रह से शोषण वृत्ति पैदा होती है और भ्रातृत्व समाप्त होता है, वहीं दूसरी ओर अणुव्रतो के पालन से प्राणिमात्र के प्रति समभाव, परस्पर आदर और समाजवाद की भावना का उदय होने लगता है, जो समता के पर्यायवाची हैं।

अणुव्रतो का पालन करने के साथ-२ श्रावक उन दोषो से भी बचने का प्रयत्न करता है जिनसे व्रत-भग होने की आशका रहती है। इन दोषो से बचना हमारे समतामय आचरण के सूत्रो से बहुत हद तक समानता रखता है। समता-मय आचरण का पहला सूत्र हिंसा का त्याग[2], दूसरा मिथ्याचरण छोडना[3], तीसरा चोरी और खयानत से दूर रहना[4], चौथा ब्रह्मचर्य का मार्ग[5] एव पाच

तृष्णा पर अकुश रखना[6] है जिसका पालन श्रावक अणुव्रतो के अतिचारो से दूर रहकर करता है ।

इस प्रकार वस्तुत देखा जाय तो अणुव्रतो का निरतिचार पालन करना या समतामय आचरण के सूत्रो का आचरण करना बहुत हद तक समानता रखते हैं ।

गुणव्रतो मे समता—अणुव्रतो के गुणो मे अभिवृद्धि के लिए दिशाव्रत, उपभोग परिभोग परिमाण व्रत एव अनर्थदण्ड इन तीन गुणव्रतो का विधान किया गया है ।

मानव मन की इच्छा आकाश के समान अनन्त कही गयी है । ज्यो-ज्यो जगत और विश्व-व्यापार का कार्य क्षेत्र बढता है त्यो-त्यो व्यक्ति की इच्छा अपने व्यापार को दूर-दूर तक फैलाने की इच्छा बलवती होती जाती है । दिशाव्रत इस इच्छा को सीमित करता है । इससे दूसरो की सीमा का अतिक्रमण भी नही होता है एव समता भाव बना रहता है ।

भोग और उपभोग ये दो तत्व ऐसे है जिनके लिए ही व्यक्ति समस्त उचित-अनुचित, नैतिक-अनैतिक कार्यों को करता है । इन कार्यों को रोकने के लिए साधको ने उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत का उल्लेख किया है । समाज-व्यवस्था सुचारु रूप से चले, कुरीतिया समाप्त हो, इसके लिए श्रावकाचार मे १५ कर्मादानो यानि निषिद्ध व्यवसायो का भी उल्लेख किया गया है । अवैध एव अनुचित व्यापार की ओर व्यक्ति अग्रसर नही हो, इसके लिए समतामय आचरण के सूत्रो मे सादगी एव सरलता, व्यापार सीधा एव सच्चा तथा कुरीतियो का त्याग आदि सूत्र दिये गये हैं ।[7]

शिक्षाव्रतों मे समता—शिक्षा का सामान्य अर्थ अभ्यास से है । अणुव्रत एव गुणव्रत एक बार ग्रहण करने के बाद पुन ग्रहण नही करने पडते हैं परन्तु शिक्षाव्रतो को पुन-पुन अभ्यास हेतु कुछ समय के लिए ग्रहण करना होता है । अत श्रावकाचार मे उन्हे सामायिक, देशावकाशिक, पौषधोपवास एव अतिथि सविभाग इन चार भागो मे बाटा गया है ।

समता की साधना का पहला चरण सामायिक से शुरू होता है ।[8] इसमे एक मुहूर्त्त तक एक स्थान पर बैठकर समभाव मे लीन होकर साधु तुल्य जीवन मे रहना पडता है । समतादर्शी व्यक्ति को प्रात एव सायकाल इस कार्य को अवश्य करना चाहिए ।

इसी प्रकार देशावकाशिक एव पौषधोपवास व्रत पालन के समय समता भाव रखकर धर्म का आराधन किया जाता है । ये नियम श्रावक जीवन को उत्तरोत्तर विकास की ओर ले जाने वाले है । इसके अन्तर्गत आहार, देहसज्जा, अब्रह्मचय एव आरम्भ-सभारम्भ का त्याग हो जाता है ।

समतामय आचरण के तीन चरणो में साधक की सर्वोच्च सीढ़ी समता-दर्शी नाम से कही गयी है और उसमे जो चौबीसो घण्ट समतामय भावना और आचरण के विवेकपूर्वक अभ्यास की बात है, वह आशिक रूप में इस प्रौपधोपवास व्रत मे निहित है ।

अतिथि सविभाग व्रत में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना रही हुई है। प्रत्येक प्राणी के प्रति सहयोग की भावना रखना और सुपात्र दान देना इस व्रत का मूल उद्देश्य है । जिनके आने की तिथि निश्चित नही हो, ऐसे साधु-मुनिराज और स्वधर्मी बंधु-बाधवो को अपने लिए निर्मित आहार-पानी आदि देकर इस व्रत का पालन किया जाता है और बचे हुए आहार आदि का समता-भाव से स्वयं ग्रहण करना इस व्रत का सार है ।

इस प्रकार इन बारह व्रतो के पालन से हम बहुत अशो तक समतामय आचरण के इक्कीस सूत्रो को पालन करने की स्थिति में आ जाते हैं जो आचार्य श्री नानेश द्वारा प्रतिपादित 'समता दर्शन और व्यवहार' में निर्दिष्ट हैं ।

समतामय साधना के इन इक्कीस सूत्रो के साथ-२ तीन चरण भी कहे गये हैं—(१) समतावादी, (२) समताधारी, (३) समतादर्शी ।

ये तीन चरण भी अणुव्रता आदि के माध्यम से प्राप्त किये जा सकते हैं । सप्त कुव्यसनों के त्याग एव सामायिक की आराधना से आशिक समतावादी[९], अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह एव अनेकान्त के स्थूल नियमो के पालन से आशिक समताधारी[१०] एव देशावकाशिक, पौषध आदि व्रतो के पालन से हम समतादर्शी[११] की उस श्रेणी तक पहुच सकते हैं जो श्रमण के निकट की श्रेणी मानी जाती है ।

इस प्रकार अगर हम श्रावक-आचार म निर्दिष्ट व्रतो का पालन निर्दोष रूप से करते हैं तो हमारा जीवन व्यवहार एव आचरण उसी प्रकार ही समता मय हो जायेगा जिस प्रकार आनन्द, कामदेव आदि श्रावको का हुआ था ।

श्रावकाचारियों में समता—महावीर और उसके बाद भी अनेक श्रावक ऐसे हुए हैं जिनको अपने साधना काल मे विविध प्रकार के कष्ट सहन करने पड़े और उन्होंने उस स्थिति में समता भाव बनाये रखा । 'उपासकदशाग' सूत्र श्रावक आचार को प्रतिपादित करने वाला एक मात्र प्रामाणिक ग्रन्थ है जिसमे महावीर के अनन्य भक्त दस श्रावको के जीवन चरित्रो का वर्णन है । इनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि गृहस्थावस्था मे रहने पर भी व्यक्ति को किस तरह के कष्ट एव उपसर्ग आते थे और उसमे श्रावक अपने आपको कैसे समभावी बनाये रखते हैं ।

कामदेव श्रावक को उपासना मे लीन देखकर व्रतों से डिगाने के लिए मिथ्यादृष्टि देव ने अपनी वैक्रिय शक्ति से पिशाच हाथी एव सर्प के विकराल रूप बनाकर उपसर्ग दिये परन्तु कामदेव श्रावक इस असह्य दुःख को समभाव से सहन करता हुआ साधना में लगा रहा ।[१२]

चुलनीपिता को उसके पुत्रो और माता के वध की धमकी देकर देव ने व्रतो से स्खलित करने का प्रयत्न किया । पुत्रो के वध तक तो चुलनी पिता ने समता भाव रखा परन्तु मा के वध की बात वह सहन नही कर सका और कुछ क्षण के लिए उत्तेजित हो गया परन्तु पुन प्रायश्चित कर समभाव मे लीन हुआ ।[13]

इसी प्रकार के उपसर्ग सुरादेव[14], चुलशतक[15] और सकडालपुत्र को भी आये जिनमे उन्होने कुछ देर समता रखी, कभी व्रतो से डिगे भी, परन्तु अन्त मे प्रायश्चित कर समभावी ही बने ।

महाशतक को इन सब के विपरीत अनुकूल उपसर्ग आया । उसकी पत्नी रेवती ने उसे ब्रह्मचय जन्य उपसग दिया । अनेक बार विषय भोग की प्रार्थना करने पर भी महाशतक ने समता भाव बनाये रखा परन्तु जब दुष्चेष्टा की सीमा का उल्लघन हो गया तो उसने अवधिज्ञान से उसकी मृत्यु का हाल सुना दिया ।[17] हालाकि महाशतक का कथन सत्य था और सत्य निकला भी, परन्तु उस सत्य वचन से रेवती को जो दु ख उत्पन्न हुआ, उसके लिए महावीर ने महाशतक को प्रायश्चित करने को कहा और कहा कि—समतासाधक के द्वारा किसी को कष्ट हो, ऐसी सत्य भाषा का प्रयोग भी नही करना चाहिए ।[18]

इस प्रकार श्रावको ने अपने आचार धर्म का पालन करते हुए अपने चरित्र को इतना उदात्त और समतामय बना लिया और विभिन्न उपसर्गो एव वेदनाओ को इस प्रकार समभावी होकर सहन किया कि स्वय महावीर को उनकी प्रशसा करनी पडी और अपने शिष्य समुदाय को उनसे प्रेरणा ग्रहण करने को कहना पडा ।[19]

इस प्रकार श्रावक आचार के नियमो मे हमारे अन्दर समता भावना कैसे आये, इसका ज्ञान होता है तो श्रावक आचार के पालनकर्त्ताओ के इतिहास से हम यह ज्ञान होता है कि कष्ट, उपसर्ग एव विपरीत परिस्थितियो मे किस प्रकार सहिष्णुता रखी जाय । अगर ये दोनो पहलू हमारे अन्तरग मे उतरेंगे तो निश्चय ही हम आचाय श्री के समता दशन को सार्थक कर सकेंगे ।

—शोध अधिकारी, आगम अहिंसा समता एव प्राकृत सस्थान, उदयपुर

सदभ—सकेत

(१) उवासगदसाओ १/१४-१५,(२) समता दशन और व्यवहार, पृष्ठ-१६०, (३) वही पृष्ठ-१६०, (४) वही पृष्ठ-१६१, (५) वही पृष्ठ-१६१, (६) वही पृष्ठ-१६१, (७) वही पृष्ठ-१६३-६४, (८) वही पृष्ठ-११६-१७, (९) वही पृष्ठ-१६९-७०, (१०) वही पृष्ठ १७०-७१, (११) वही पृष्ठ-१७१-७२, (१२) उवासगदसाओ-२/१६१-१८६, (१३) वही ३०/२१०-२२०, (१४) वही ४/२३४-२४०, (१५) वही ५/२४४-२४९, (१६)वही ७/२७४-२७५, (१७)वही ८/२५१, (१८) वही ८/३५७-५८, (१९) वही 2/२००-२०१

जैन धर्म और समता

डॉ. प्रभाकर माचवे

दो सौ वरस पहले फ्रांस में राज्यक्रांति हुई तब ये तीन तत्त्व उभर कर सामने आये— लिबर्ते, इगॅलिते, फ्रॅतर्निते' (स्वतंत्रता, समता, बंधुता)। पर दार्शनिकों ने विदेश में इस पर बड़ा विचार किया कि मनुष्य के लिए ये तीनों मूल्य ऐकांतिक रूप से सम्भव नहीं। पूरी स्वतन्त्रता हो तो फिर सांस लेने की भी स्वतन्त्रता हो जाय। एक तरह से चेतना या विवेक से 'मुक्त' पुरुष पशु ही हो जायेगा। जब तक इन्द्रियां हैं, संवेदन-क्षमता से मनुष्य मुक्त कैसे हो? संवेदन शून्य तो यन्त्र होता है, या रोबो।

कुछ लोगों ने यह भी ऐतराज किया कि स्वतन्त्रता और समता साथ २ नहीं चल सकती। सब बराबर हो गये तो वे यन्त्र के पुर्जों की तरह हो जायेंगे। व्यक्ति की स्वाधीनता का क्या अर्थ बचा होगा? 'मैं तुम में, तुम मुझ में हो प्रिय' तो प्रेयसि-प्रियतम अभिनय क्या' शायद महादेवी की उक्ति है। एकाकार होने पर 'वर्णानाममेकता' कहां बची रह गई? राजनीति-शास्त्रियों का यह भी मानना है कि पूंजीवादी देशों ने 'स्वतन्त्र व्यापार, स्वतन्त्र बाजार, स्वतन्त्र कारोबार' करके देखा पर दुनिया उस सिद्धांत को अपना न सकी। 'पूंजीवाद' शब्द में यही निहित है कि कुछ लोग हैं जिनके पास पूंजी है। कुछ हैं जिनके पास नहीं है यानी उससे विषमता बढ़ी। अब उस विषमता को कम करने के लिए समाजवाद, समतावाद (या साम्यवाद) आया। पर वह भी पूरी तरह से असमानता नष्ट नहीं कर सका। साम्यवादी साम्यवादी राष्ट्रों में भी वैषम्य आ गया। वह इतना बढ़ा कि पहले रूस-युगोस्लाविया अलग पथ पर चलने लगे, रूस और चीन अलग हो गये। अब तो पोलैंड और हंगरी भी रूस से छिटक गये। अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी संघ का स्वप्न सात दशक में ही विलीन हो गया और दुनिया का पूंजीवादी या साम्यवादी खेमे में बांटने को उत्सुक राजनयिक, कूटनयिक यह भूल गये कि इतने दो बड़े महायुद्ध और शीत युद्ध दो दशकों तक बनाये रखने के बाद भी दुनिया का आधे से ज्यादह हिस्सा न पूंजीवादी हुआ न साम्यवादी। एशिया-अफ्रीका के पच्चीसों देश निर्गुट बने रहे। वे 'तीसरी दुनिया' बने।

यह सब राजनैतिक, ऐतिहासिक, आधुनिक युग की, बीसवीं सदी की त्रासदी भूमिका रूप में देने का अर्थ इतना ही है कि मनुष्य व्यक्ति हो या समाज बारबार सम से विषम और विषम से सम की ओर बढ़ता, आता-जाता नजर आता है। साहित्य का ही साक्ष्य लीजिये। न वीर-गाथा काल सदा के लिए रहा,

न भक्तिकाल, न शृंगार वाला रीतिकाल । 'शृंगार–वीर-करुणा' ये तीनो रस, शायद इसी क्रम से नही, मानवी संवेदना-व्यापार को सम्मोहित–संक्रमित-मचालित करते रहे । यदि चित्त एकदम सम-रस समाधि मे पहुच जाये, तो फिर उस 'शांत' को रस कहना भी कठिन है ।

भगवान महावीर और जैन धर्म का आरम्भकाल से ही 'समता' पर विशेष बल रहा है । महावीर ने अपने अनुयायियो मे सब वर्णो के लोगो को समान अवसर दिया । यद्यपि सभी तीर्थंकर क्षत्रिय है,परन्तु जैन धम मे जातिभेद नही है । महावीर कर्मणा जाति मानते थे । जैन धम मे महावीर ने पूर्वापराधी चोर या डाकू, मछुआरे, वैश्या और चाडाल पुत्रो को भी दीक्षित कर लिया । केवल कोल्हापुर (महाराष्ट्र) के जिनसेन मठ के अनुयायी 'चतुथ' कहलाते हैं । सातारा, बीजापुर की ओर खेतीहर, जमीदार, जुलाहे, छीपे, दर्जी, सुनार और कसेरे भी जैन हैं ।

जन्मना जातिगत विषमता न मानने के साथ ही महावीर विद्वान् और मूख, पढा–लिखा और अनपढ, साक्षर और निरक्षर का भेदभाव भी कृत्रिम मानते हैं । इसलिए वे 'निर्ग्रन्थ' ज्ञातपुत्र कहलाये । शब्दप्रामाण्य मानने वाले धर्माचार्यो को उन्होने चुनौती दी । धम क्या पुस्तक मे बसता है या मनुष्य मे ? अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीय की प्राप्ति हर व्यक्ति के लिए समान भाव से सम्भव है । वहा तर–तमता नही है ।

इसी कारण से मैं विचार करता हू कि कई जैन न केवल गाधी जी की ओर आकृष्ट हुए (गाधी के एक प्रभावक रामचन्द्र भाई आशुकवि जैन थे) परतु समाजवादी–साम्यवादी आदोलनो मे भी देश के कई प्रबुद्ध जैन खिचकर चले आये । डॉ जगदीशचन्द्र जैन, पदमकुमार जैन, विमलप्रसाद जैन, अ भि शहा, भानुकुमार जैन, नेमिचद्र जैन, इन आदोलनो मे खिचे चले आये । कुछ लोगो को मैं जानता हू । गुजरात मे भोगीलाल गाधी, महाराष्ट्र मे गोवधन पारीख और कई ऐसे लोग गिनाये जा सकते हैं ।

जैन धम और दर्शन मे यह 'मानव मानव सब ह समान' मन्त्र को प्रचलित करने की सुविधा इस कारण से हुई कि उन्होने आत्मा से अलग किसी उच्च पदासीन ईश्वर का निषेध किया । तप और सत्कम से आत्मविश्वास की सर्वोत्तम अवस्था ही ईश्वरत्व है । मनुष्य अपने 'कम' से अलग भाग्य विधाता स्वरूप है । कोई अवतार या चमत्कार उसका उद्धार करने नही आयेगा । गीता के 'उद्धरेदात्मनात्मान' और 'आत्मैवह्यात्मनो बधुरात्मैव रिपुरात्मन' से बहुत मिलता–जुलता विचार जैन दार्शनिकों ने शदियो तक प्रचारित किया ।

महावीर लिच्छवी कुलोत्पन्न होने पर भी गणतन्त्रवादी आदश पर उन्होंने चतुर्दिक चतुर्विध सघ निर्मित किये । बिहार मे राजगृह और भागलपुर, मुंगेर और जनकपुर, उत्तरप्रदेश मे बनारस, कोसल, अयोध्या, श्रावस्ती, स्थानेश्वर

(कन्नौज) सब स्थानों पर महावीर ने विहार किया । वे 'आर्य' क्षेत्र कहलाये। पर महावीर के अनुयायी सुदूर कर्नाटक, कलिंग, बग म भी पाये गये है। विशाल गोमटेश्वर कन्नड भाषियो के प्रदेश मे है, जिसे महाराष्ट्र के शिल्पियो न बनाया होगा । उसके नीचे 'चावुडराये करवियसे' महाराष्ट्री मे शिलालेख है । चन्द्र गुप्त मौर्य (३२५–३०२ ईसापूर्व) से लेकर अतिम वाचनावलभी म ७२० ७८० ईस्वी तक कई शताब्दियो तक यह समता धम प्रचलित रहा ।

जन समता का एक उत्तम प्रमाण जैन धम को मुस्लिम राज्यकाल में भी राज्याश्रय मिलना है । सुलतान फिरोजशाह तुगलक (१३५१-१३८८) ने जन विद्वान् रत्नशेखर सूरि का और तुगलक सुलतान मुहम्मदशाह ने जिनप्रभसूरि को विशेष सम्मान दिया, ऐसे ऐतिहासिक उल्लेख हैं । मुगल सम्राट अकबर (१५५६–१६०५) ने हो विजयसूरि को सम्मानित किया । और अतिम मुगल सम्राट औरगजेब (१६५४-१७०७) ने अपने दरबार के जवेरी शातिदास जैन को शत्रुजय पर्वत की दो लाख की आमदनी दानार्थ दी। अहमदशाह (१७४८-१७५४) ने जगत् सेठ महताबराय को पारसनाथ पवत देकर पुरस्कृत किया । यदि जन धर्म समता की दृष्टि नही रखता तो ये भिन्न धर्मीय उन्हे क्यो सम्मानित या पुरस्कृत करते ?

जैन धम दशन की समता का एक और प्रमाण जिस भाषा मे वह प्रचारित-प्रसृत किया गया वह अर्द्ध मागधी भाषा है । जन तीर्थंकरो ने सस्कृत व वग विशेष की अभिजात भाषा मे उपदेश नही दिये । सस्कृत तो शूद्र और स्त्रियों के लिए वर्ज्य भाषा थी । महावीर जन–जन तक पहुचना चाहते थे । इसलिए समता का यह सहज सरल माग उन्होने अपनाया । सबकी भाषा मे अपनी बात कही और लिखवादी । दृष्टात भी जनसाधारण के जीवन से लिये । मिथ्या पौराणिक, काल्पनिक कथाओ मे नही उलझे रहे । यथार्थवादी, ठोस जमीन पर व्यावहारिक बातें कही । उनकी इच्छा थी कि उनका दर्शन आबालवृद्ध, स्त्रियो तक पहुचे । वह अभिजात वग का एक गुह्य रहस्य बनकर सीमित न रहे ।

महावीर के दशन मे विषमता पर चारो तरफ से तार्किक हमला किया गया । विषमता का कारण एकात या दृष्टि-दोष है । विषमता का मोह एक चरित्र-दोष है । इस कारण से समता को जीवन मे उतारने के लिए महावीर ने पन्द्रह सूत्र दिये ।

(१) धर्म ही उत्कृष्ट मगल है । "सच्च लोगम्मि सारभूय" सत्य ही दुनिया में सार है । 'सत्यमेव जयते' मे जीत शब्द था, जिसमें औरों की 'हार' निहित थी । महावीर 'सारभूत' शब्द चुनते हैं । यानी सत्य को छोड सब कुछ निस्सार है ।

(२) श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र्य यह 'रत्नत्रय' जन दशन का तीथ है। यदि सम्यक् आस्था होगी तो सम्यक् ज्ञान मिलेगा। दृष्टि और दशन के बाद उसे दृश्यमान बनाने के लिए सम्यक् चरित्र आवश्यक है। तेलुगु भाषा मे 'चरित' का अथ ही है इतिहास, कर्म-परपरा।

(३) मनुष्य ही सवश्रेष्ठ है। देवता भी चरित्र सम्पन्न मनुष्य के चरणो मे सिर नवाते हैं। लोकतत्र की पहली सीढ़ी यही है। 'सब मनुष्यो का, सब मनुष्यो के लिए, सब मनुष्यो द्वारा' तत्र ही लोकतत्र है।

(४) जैन तत्त्व दृष्टि से सात तत्त्वो का विधान है। प्रथम जीव और शेष अजीव। उसी आश्रव बध, सवर, निजरा, मोक्ष मे समता से हटने के पाच कारण आस्रव मे दिये गये हैं—विपरीत श्रद्धा, अनुशासन हीनता, आलस्य, क्रोध मान-माया-लोभ, और प्रवृत्ति (योग)।

(५) अनेकात ही समता की दृष्टि निर्मित करता है। द्रव्य वस्तु का निजी रूप, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से हमारी सब विभिन्न दृष्टिया या 'नय' बनते हैं।

(६) समता का मुख्य मूलाधार अहिंसा है। यदि मैं नही चाहता कि मेरे साथ बदसलूक हो, तो मैं दूसरे के साथ क्यो वसा करूगा? 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' सिफ प्रवचन की बात नही, आचरण की बात है। पाचो ज्ञानेन्द्रिया, मानसिक, शाब्दिक, वाचिक शक्तिया, श्वास-प्रश्वास, वायु सब प्राणवत हैं। उन्हे नष्ट करना, उनकी स्वतन्त्रता मे बाधा डालना हिसा है। विचार-स्वातत्र्य, भाषण-स्वातत्र्य, आवागमन स्वातत्र्य, सूचना प्राप्त करना और प्रदान करने का स्वातत्र्य जहा बाधित हो, वह हिसा है।

(७) स्वालवन समता का आधार सूत्र है। आचाराग सूत्र मे महावीर कहते हैं—'अरे मानव! तू ही मेरा मित्र है, बाहर किसे खोज रहा है? वस्तुए मानव के लिए हैं, मानव वस्तु के लिए नही।'

(८) साधको की श्रेणिया सुविधा के लिये हैं। प्रथम श्रेणी मे एक वर्ष से अधिक किसी प्रकार का मनोमालिन्य न रखा जाय। द्वितीय श्रेणी के साधक को चार महिने की अवधि दी जाती है। तृतीय श्रेणी के लिए पन्द्रह दिन की अवधि है। अतिम या केवली मे यह भेद बिल्कुल मिट जाता है। सब केवली बन सकते हैं।

(९) जैन धर्म गुरुडम मे विश्वास नही करता' न पडे-पुरोहितो मे। उपास्य केवल आदर्श हैं जो रागद्वेषादि दुबलताओ को जीत लेते हैं वे ही 'देव' या उस माग पर चलने वाले गुरु। 'णमो अरिहताण' देवो के लिए कहा गया। 'णमो आयरियाण' गुरु-आचाय के लिए।

(१०) जीवन मे समता उतारने का अभ्यास ही 'सामायिक' है। जैन

साधना मे इस पर बडा जोर दिया गया है। मुनि समस्त जीवन इसे साधित करता है, गृहस्थी कुछ समय के लिए। 'स्व' और 'पर' मे, बाह्य और अभ्यतर मे एकरूपता पाने के लिए विकारो की विषमता दूर करते जाना जरूरी है। आरम्भ-सयम का यह कडा पुरश्चण है।

(११) सामायिक या 'सवर' मे विकार रोक तो दिये। परन्तु यदि कुछ कल्मष फिर भी रह गया तो उसे दूर करने को 'निजरा' या तपस्या कहा जाता है।

(१२) प्रतिक्रमण भी जैन साधना का एक अ ग है इसका अथ है पीछे मुडना। इसमे पीछे की हुई भूलो का परिताप निहित है। सामायिक चतु-विंशति-स्तव, वदन-प्रतिक्रमण (आत्मालोचन), कायोत्सग, प्रत्याख्यान इसके सोपान है। जीवन के काम मे आने वाली वस्तुओ में एक-एक को छोडते जाना, सीढी दर सीढी त्याग सीखना इस समता-साधना मे आता है।

(१३) प्रत्येक प्राणी से क्षमा प्राथना कर उन्हे वह क्षमा प्रदान भी करता है। शत्रुता समाप्त करके सबसे मित्रता की घोषणा अगला कदम है। जो व्यक्ति वष मे एक वार सच्चे हृदय से यह घोषणा नही करता,अपने मन से सब मलिनता और द्वेष नही हटाता, वह सच्चा जन नही। यह सावत्सरीक पयुषण पव, बौद्धो के 'पातिमोक्ख' की तरह या वैष्णवो की तरह पापनाशिनी एकादशी की तरह पुन सब प्राणियो को एक ही समतल पर ले आता है।

(१४) मनुष्य अनन्त ज्ञानी होने पर भी अल्पज्ञ क्या है? अनन्त सुखी होने पर भी दु खी क्यो है, अनन्त शक्ति सम्पन्न होने पर भी दुबल क्यों है? क्योंकि बाह्य प्रभाव या 'कम' उसे बाधता है। न्याय तभी होगा जब पुरुषाथ और फल में समानता होगी। मनुष्य अपने ही कर्मों से यह विषमता पैदा करता है, अपने कर्मो से ही वह समता ला सकता है।

(१५) जैन सघ मे पुरुष या स्त्री, ब्राह्मण हो या शूद्र, जाति, लिंग, व्यव-साय के आधार पर कोई वैषम्य नही रखा गया है। आयु, जाति या लिंग के अनुसार परस्पर-अभिवादन भिन्न नही है। जन दशन ने स्त्री को समान अधि-कार देकर उन्हे साध्वी बनने दिया, जो कि हिंदू या वैदिक सनातन धम की अगली सीढी थी। जैन दर्शन मानता है कि—

> नास्पृष्ट कमभि शश्वद्विश्वदृश्वास्ति कश्चन।
> तस्यानुपायसिद्धस्य सवथाऽनुपपत्तित ॥

किसी भी सवद्रष्टा और अनादिकाल से कर्मों से अस्पृष्ट ऐसे व्यक्ति की कल्पना भी नही की जा सकती। बिना उपाय के सिद्धि प्राप्त करना अनुप-पत्त है।

—७३, वल्लभनगर, इन्दौर-३

जैन आगमो मे संयम का स्वरूप

❀ श्री केवलमल लोढ़ा

मनीषियो का उद्बोधन है 'सयम खलु जीवन' यानि सयम ही जीवन जीने की कला है और असयम मृत्यु है । उस सयम की व्याख्या जैन आगमो मे उसका स्वरूप (प्रकार, फलादि) आदि बिन्दुओ पर यहा सक्षिप्त वणन करना अभीष्ट है ।

व्याख्या—(i) सयम शब्द 'स' उपसर्ग और 'यम' धातु से बना है । 'स' का अथ सम्यक् प्रकार से और 'यम' का अथ नियत्रण करना है । यानि मन, वचन, काया की पापरूपी प्रवृत्तियो का सम्यक् प्रकार से नियत्रण करना सयम है ।

(ii) सम्यक् ज्ञान, दशन पूवक वाह्य और आन्तरिक आश्रव स्रोतो से विरति (असयम से निवृत्ति और सयम मे प्रवृत्ति—'असजमे नियत्ति च, सजमे च पवत्तण—उत्तरा अ ३१-२) होना सयम है ।

(iii) हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्म और परिग्रह से विरति (पाच महाव्रत) सयम है । ठाणाग–ठाणा ५

(iv) पाच समिति और तीन गुप्ति (द्वादशाग रूप प्रवचन—उत्तरा अ २४–३) सव विरतिरूप चारित्र सयम है । पाच समिति मे यतनावाले सयमी श्री हरिकेशीवल मुनि समाधि युक्त थे (अ १२–२)

(v) प्रत्याख्यानावरण कपाय चौकडी के क्षय, उपशम, क्षयोपशम से आत्माओ मे सवविरति रूप परिणाम की प्राप्ति होती है, वह सयम है । चारित्र और सयम दोनो सापेक्ष हैं—आधार–आधेय रूप हैं ।

चरम तीथकर भगवान महावीर का वीतराग मूलक सयम धम का वणन अनेक दृष्टियो से वतमान उपलब्ध आगमो मे सवत्र दृष्टिगोचर है । इनमे से कुछ शास्त्रो की झाकी यहा प्रस्तुत की जा रही है ।

दशवकालिक सूत्र मे—

(क) धम अहिंसा–**सयम**–तप रूप है । अ १–१/अ ६–६ मे भी 'अहिंसा निउणा दिट्ठा सव्व भुएसु सजमो'—सव प्राणियो की सयम पालन रूप अहिंसा अनत सुखो को देने वाली है ।

(ख) समभाव पूवक सयम मे विचरते हुए साधक का मन यदि कभी सयम से बाहर निकल जावे तो वह वस्तु मेरी नही है और न मैं उसका हू । इस प्रकार चिंतन करते हुए, उस पर से राग भाव को दूर करे(अ २-४) । वमन

किये हुये भोगों को पुन भोगने की इच्छा नही करे। इस पर राजमती—रथनेमि को असयम से सयम स्थित होने का प्रेरणादायक दृष्टान्त गाथा ६-१० मे द्रष्टव्य है।

(ग) सयमी के निषिद्ध अनाचार अ ३ गाथा १–६ तक व सयम तप से पूर्व सचित कर्म क्षय होते हैं और फलस्वरूप साधक सिद्ध होता है या कुछ कर्म शेष रह जावें तो दिव्य देवलोकवासी होता है, गाथा १४ अवलोकनीय है।

(घ) चतुर्थ अ मे शुद्ध सयम पालने हेतु छ जीवनिकाय का स्वरूप, पाँच महाव्रतो की विस्तृत जानकारी देने के साथ–साथ यतनापूर्वक चलने, ठहरने, बैठने, सोने, भोजन, भाषण करने से पाप कर्म का बन्ध नही होता, सयम साधने को प्रथम से अन्तिम चरण सिद्धालय–लोक के अग्रभाग मे शाश्वत स्थित होने का सुन्दर पथ प्रदर्शन है। इसी अध्ययन मे सुगति मिलना किनको दुर्लभ और किनको सुलभ और वृद्धावस्था मे भी सयमाचरण देव या मोक्ष गति का दायक है, इनका भी सकेत है।

(ङ) सयम का निर्वाह शरीर के माध्यम से होता है और उस शरीर को टिकाने के लिए आहार आवश्यक है। अत निर्दोष आहार की गवेषणा, ग्रहणैषणा और परिभोगैषणा के नियम पचम अ मे गुम्फित है। जो आहार, दान, पुण्य, याचको, बौद्धादि भिक्षुको और गर्भवती स्त्री के उद्देश्य से निर्मित है, वह प्रासुक होते हुए भी अग्राह्य है।

(च) सयम की विशुद्धि के लिए निम्न १८ स्थानो की विराधना न करने की प्ररूपणा छठे अध्ययन मे है —

६ (छ) व्रत—पाच महाव्रत और छठा रात्रि भोजन विरमण व्रत।

१२ काय छ —पृथ्वीकाय, अप्पकायादि छ कायो की रक्षा करना।

१३ अकल्पनीय पदार्थों को ग्रहण न करना।

१४ गृहस्थ के बर्तनो मे भोजन न करना।

१५ पलग पर न बैठना।

१६ गृहस्थी के आसन पर न बैठना।

१७ स्नान न करना।

१८ शरीर की विभूषा न करना।

(ज) सयमी के लिए निवद्य भाषा बोलने की (दोष टाल कर बोलने की) पूरी विधि सातवें अध्ययन मे कही गई है जिनके पालने से सयमी साधक आराधक होकर मुक्त होता है (वचन या भाषा सयम)।

(झ) अष्टम अध्याय मे सयम दूषित न होवे, उसके लिए साधक निद्रालु आलसी न होवे, हसी-मजाक का त्याग, बहुश्रुत मुनि या गुरु के पास बैठने आदि

की विधि और क्रोध को उपशम भाव से विफल करे, मान को मृदुता से जीते, माया को सरलता से नष्ट करे और लोभ को सतोष से वश मे करे, ऐसी सयम की विशेष आचार प्रणिधि का निर्देशन है ।

(ञ) नवमे अध्ययन मे सयम रूप धम का मूल विनय है (एव धम्मस्स विणओ मूल परमो सो मोक्खो ३२-२)। ऐसे विनय गुण का विवेचन, विनय-अविनय के भेद, अविनीत को आपदा और विनीत को सुख सम्पदा, पूज्य कौन है उसका स्वरूप और अन्त मे विनय, श्रुत, तप और आचार रूप चार प्रकार की समाधि का वर्णन है ।

(ट) सयम के आचार-गोचर का पालन करने वाला सयमी भिक्षु होता है । उस भिक्षु के लक्षण, हाथ सजए, पाय सजए, सजइन्द्रिय आदि दशम अध्ययन में सग्रहीत हैं ।

(ठ) सयम ग्रहण करने के पश्चात् यदि सयमी के मन मे किसी प्रतिकूल, अनुकूल प्रसगो के कारण सयम से अरुचि हो जावे तो, वह गहस्थवास मे लौटने के पहले निम्न १८ स्थानो पर गम्भीर चिंतन करे, जिससे उसका मन पुन सयम मे दृढ हो जावे। जैसे—अकुश से हाथी, लगाम से घोडा और पताका से नाव सही पथ पर आ जाते हैं (पहली चूलिका) ।

(१) यह दुखमकाल है और जीवन दुखमय है। (२) गृहस्थो के काम-भोग तुच्छ और अल्पकालीन हैं । (३) इस दुखम काल के बहुत से मनुष्य बडे मायावी होते हैं। (४) जो दु ख प्राप्त हुआ है वह भी चिरकाल तक नही रहेगा। (५) गहस्थ मे नीचजनो की चापलूसी करनी पडती है । (६) गृहस्थावास मे लौटने पर वमन किये हुवे दुवेख भोगो को फिर चाटना पडेगा । (७) गृहस्था–वास मे लौटना नर्क गति मे जाने के समान है । (८) गृहस्थवास मे अचानक प्राणनाशक रोग उत्पन्न हो जाते हैं । (९) गृहस्थवास मे धम पालना दुष्कर है। (१०) गहस्थ मे सकल्प–विकल्प सदा होते रहते है जो अहितकर हैं । (११) गृहस्थवास क्लेशयुक्त है और सयम क्लेश रहित है । (१२) गृहस्थवास बन्धनयुक्त है और सयम मुक्ति हैं । (१३) गृहस्थवास पापयुक्त है और सयम निष्पाप है । (१४) गृहस्थो के काम भोग बहुत साधारण ह । (१५) प्रत्येक प्राणी के पुण्य–पाप अलग-अलग हैं ।(१६) मनुष्य का जीवन कुश के अग्रभाग स्थित जल बिन्दु के समान अनित्य व क्षणिक है । (१७) निश्चय ही मैंने पूव मे बहुत पाप कम किये हैं जिससे सयम छोडने का निन्दनीय विचार मेरे मन मे उत्पन्न हुआ । (१८) मिथ्यात्वादि दुष्ट भावो से उपार्जिन पाप के फल को भोगे विना जीव को मोक्ष नहीं होता । तप के द्वारा उन कर्मों का क्षय होने से जीव मुक्त होता है ।

(ड) दूसरी चूलिका मे सयमी के लिए विशेष चर्या का कथन है। पाँचो

इन्द्रियो को सुनियन्त्रित कर आत्मा की रक्षा करे, क्योंकि अरक्षित आत्मा जन्म-मरण करती है और सुरक्षित आत्मा सर्व दुखो से मुक्त होती है, गाथा १६।

उत्तराध्ययन सूत्र में—

(क) सयमी मोक्ष अर्थ वाले आगमो को सीखें तथा शेष निरर्थक का त्याग करें, अ १–८।

(ख) कर्मों की निजरा हेतु और सयम से च्युत न होने के लिये २२ परिषहो को सयमी समभाव मे सहन करे (अ २)।

(ग) चार दुर्लभ अगो मे सयम मे पराक्रम फोडना भी दुलभ है, अ ३–१०।

(घ) कई नामधारी साधु से गृहस्थ (श्रावक) उत्तम सयम वाले होत हैं परन्तु सभी गृहस्थों से साधु उत्तम एव शुद्ध सयमी होते हैं, अध्याय। ४ २०

(ङ) जो पुरुष प्रतिमास दस लाख गायों का दान देता है, उसकी अपेक्षा दान नही देने वाले मुनि का सयम अधिक श्रेष्ठ हैं, अ ९–४०।

जो मास-मासखमण की तपस्या करता है और पारणा मे कुश के अग्र-भाग मे आवे उतना आहार करता है, उस अज्ञानी के तप से जिनेन्द्र देव से कथित धर्म (संयम धम) सोलहवी कला के बराबर नही है अर्थात कम है, गाथा ४४।

(च) दिव्य काम-भोगो को त्याग कर सयमी जीवन का यापन कर मुक्त होने वाले मुमुक्षु जीवो का वणन चित्त मुनि का अ १३ मे इक्षुकार राजा आदि छ जीवो का अ १४ मे, सयति राजा का अ १८ मे, मृगापुत्र का अ १९ में, समुद्रपाल का अध्याय २१ में, अनाथी मुनि का अ २० मे, रथनेमि का अ २२ और जयघोष विजय अ २५ मे हैं। ज्ञाता धम कथा मेघकुमार अ १, शलकराज ऋषि अ ५, पुण्डरीक अ १९ इसी तथ्य के सूचक हैं।

(छ) चचल घोडो के समान चारो ओर भागते हुए मन को श्रुतज्ञान रूपी लगाम से बाध कर वश करने का कथन अ २३ गाथा ५५-५६ मे हैं। ऐसा सुशिक्षित मन उन्मार्ग मे गमन नही करता, (मन सयम)।

(ज) सयम मे सहायक रूप (१) अष्ट प्रवचनमाता (अ २४), समाचारी अ २६, मोक्षमार्ग (अ २८), तपो मार्ग अ ३० है जिनके प्ररुपित नियमो के पालने से सयम विकसित होता है और विशुद्धि की ओर चरण बढ़ते हैं।

(झ) असयम की घातक प्रवृत्तियाँ जिनके सेवन से जीव की अकाल मे मृत्यु हो जाती है। अध्ययन ३२ में शब्द, रूप, रस, गध, स्पश की तीव्र आसक्ति का दृष्टान्त क्रमश हिरण, पतगा, मछली, भवरा व हाथी से दिया गया है। इस

इस अकाल युद्ध का ज्वलत दृष्टान्त कुडलिक मुक्ति का (ज्ञाता धर्मदशाग अ १९) मे दृष्टव्य है, जो सिर्फ तीन दिन की भोग आसक्ति के कारण सातवी नर्क मे गये। राग-द्वेष की प्रवृत्तियो मे जो सम्भाव रखता है वह सयम का आराधक होता है।

(ञ) अकाल मरण (असयमी का) सकाम मरण (सयमी का) अ ५ पापी श्रमण (असयमी) सभिक्षुक, अनगार (सयमी) अ १५ और ३५ के तुलनात्मक अध्ययन से साधक को उपादेय मार्ग को ग्रहण करने की और हेय मार्ग को छोडने की प्रेरणा मिलती है।

(ट) सयमी के तीसरे मनोरथ (सलेखना) का विस्तृत वर्णन अ ३६ मे है वह आदरणीय है। गाथा २५०–२५५

उत्तराध्ययन के कुछ विशिष्ट सूत्र इस प्रकार हैं—

१ सपुज्जसत्थे सुविणीयससए अ १-४७ विनीत का पुज्जशास्त्र (ज्ञान) जनता द्वारा पूजनीय–सम्मानीय होता है। उसके सारे सशय नष्ट हो जाते हैं।

२ अप्पमतो परिव्वए (६-१३) ससार मे अप्रमत्त भाव से विचरण करो।

३ चिच्चा अधम्म धम्मिट्ठे (७-२९) अधर्म का त्याग कर धर्मिष्ठ बनो।

४ सव्वेसु काम जाएसु पासमाणो न लिप्पइ (८-४) समस्त कामभोगो मे उनके दोषो को देखता हुआ आत्म रक्षक मुनि उनमे लिप्त नही होता।

५ समय गोयम ! मा पमायए (१०-३) पूव सगृहीत कर्म-धूलि को तप सयम द्वारा दूर करने मे हे गौतम ! क्षण-मात्र का प्रमाद मत करो।

६ धणेण किं धम्मधुराहिगारे (१४-१७) धर्म (सयम रूपी धम) को धारण करने मे धन का क्या प्रयोजन ?

७ अज्जेव धम्मं पडिवज्जयामो जहिं पवन्ना न पुण नवामो (१४-२८) आज ही सयम रूप धम को ग्रहण करेंगे, जिसकी शरण लेने के पश्चात् पुन जन्म धारण करना नही पडे।

८ अभयदाया भवाहि य (१८-११) हे राजन् ! तुम भी अभय दाता बन जाओ अर्थात् सयम ग्रहण करो।

आचारांग सूत्र मे—सुत्ता अमुनि, मुनिणो सया जागरकिर (३-१-१९९) अमुनि सोते रहते हैं और मुनि सदा जाग्रत रहते हैं।

सूत्रकृताग सूत्र मे—एव खु नाणिणो सार ज न हिंसई किंचण (१-११-१०) ज्ञान का सार यही है कि कोई जीव की हिंसा न करे।

ठाणाग सूत्र मे—

(क) सयम दो प्रकार है—१ सराग सयम और २ वीतराग सयम।
अन्य प्रकार से—१ इन्द्रिय सयम और २ प्राणी सयम।

(ख) सयम तीन प्रकार का—मन, वचन, काय सयम। तीनो को अशुभ से हटाकर शुभ मे प्रवर्तावें।

(ग) सयम चार प्रकार का—मन, वचन, काया, उपकरण सयम। वस्त्र, पात्रादि अल्पसंख्या मे रखना व उनकी कालोकाल प्रतिलेखना करना उपकरण सयम है। इसी तरह से सयम के ५-६ आदि भेद हैं।

(घ) सयम में स्खलना होने पर उसकी शुद्धि हेतु छह प्रकार के प्रतिक्रमण का विधान है—

१ उचार प्रतिक्रमण—मल विसर्जित कर लौटने पर इर्यापथिक प्रतिक्रमण करना।

२ प्रसवण प्रतिक्रमण—मूत्र विसर्जित कर लौटने पर इर्यापथिक प्रतिक्रमण करना।

३ इत्वरिक प्रतिक्रमण—देवसिय, रायसि आदि काल सम्बन्धी प्रतिक्रमण। ३२ वें आवश्यक सूत्र मे इसका विधि-विधान है।

४ यावत्कथित प्रतिक्रमण—मारणान्तिक सलेखना के समय किया जाने वाला प्रतिक्रमण।

५ यत्किंचित प्रतिक्रमण—साधारण दोष लगने पर उसकी विशुद्धि हेतु मिच्छामि दुक्कड कहकर खेद प्रकट करना।

६ स्वप्नान्तिक प्रतिक्रमण—दुस्वप्न आदि देख कर किया जाने वाला प्रतिक्रमण।

(ङ) दसम ठाणा मे दस प्रकार के श्रमण धर्म जिसमे सयम धारण करने का सातवा भेद है।

भगवतीजी सूत्र मे—

शतक २५ उद्देशा ६ व ७ मे पाच प्रकार के निग्रन्थ (पुलाक, बकुश, कषाय-कुशील निग्रन्थ और स्नातक) व ५ प्रकार के सयम चारित्र (सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहार-विशुद्धि, सूक्ष्मसपराय और यथाख्यात) का २६ द्वारों में इनकी जानकारी सग्रहीत है। इनमे सयम के स्थान, सयम के पर्यव व उनकी अल्पाबहुत्व, सयम के परिणाम और भव द्वार भी है। सयमी जघन्य उसी भव में, उत्कृष्ट ८ भव तक आता है। आठवें भव मे नियमा मोक्ष जाता है। सयम चारित्र के परिणाम एक भव म जघन्य एक वार, उत्कृष्ट प्रत्यक सौ बार आते हैं। सयम चारित्र के परिणाम अनेक भवो मे जघन्य दो वार, उत्कृष्ट प्रत्यक हजार बार आते हैं।

समवायांग मे—

१७ वें समवाय मे १७ प्रकार के सयम की प्ररूपणा है। (१-५ पृथ्वी

काय से वनस्पतिकाय), ६-६ बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय सयम, १० वा अजीव ११, प्रेक्षा (वस्त्र पात्रादि उपकरण देखकर, पूज कर लेवे और रखे) १२, उपेक्षा (अज्ञानियो के अशुभ वचनो की उपेक्षा करना) १३, प्रमाजन १४, परेठना (मल-मूत्र आदि का उपयोग पूवक परठना) १५, मन सयम, १६, वचन सयम और १७ काय सयम ।

सयम के १७ प्रकार दूसरी तरह से—५ आश्रव का त्याग, ५ इन्द्रियो का नियत्रण, ४ कषाय का निग्रह और ३ योगो का निरधन । उपासकदशाग, पणुत्तकोवनाद्वदशा, अन्तराङ्गदशाग देश सयम और पूर्ण सयम के क्रमश पालन के प्रयोगात्मक शास्त्र हैं ।

प्रश्नव्याकरण सूत्र मे—

पाच आश्रव द्वार असयम के है और फिर ५ सवर द्वार सयम के हैं । प्रथम सवर द्वार अहिंसा के ६० नामो मे ४१ वा सयम नाम है (मन एव ५ इन्द्रियो का निरोध व जीव रक्षा) पचम सवर द्वार मे अपरिग्रह व्रत की ५ भावनावो मे प्रथम श्रोतेन्द्रिय सयम जाव पाचवें मे स्पशइन्द्रिय सयम है ।

विपाक सूत्र मे—'दुच्चीरणा कम्मा, दुच्चीरणा फला' असयमी कैसे दारुण दुख भोगते हैं, इसका रोमाचक वणन दुख विपाक मे है और सयमी सुखे-सुखे मोक्ष जाता है इसका साक्षी सुखविपाक सूत्र है –'सुच्चीरणा कम्मा, सुच्चीरणा फला । पन्नवरणा के ३० वें, सयम पद मे सयत के चार भेद यथा सयत, असयत, सयतासयत और नो सयत, नो असयत नो सयतासयत की प्ररूपरणा है ।

२४ दण्डक मे २२ दण्डक एकान्त असयत है, तिर्यंच पचेन्द्रिय असयत और सयतासयत है, मनुष्य मे प्रथम तीन भेद और सिद्धो मे केवल चतुथ भेद पाया जाता है ।

उपसहार—भगवान् महावीर ने फरमाया है कि सयम से आश्रवो का निरोध होता है 'सजमेरा अरणण्हत जरणयइ उत्तरा अ २६ बोल २६ और इसकी परम्परा फल मोक्ष है । ऐसा समझकर भव्य जीवो को अपने लक्ष्य मुक्ति–प्राप्ति हेतु सयम को यथाशीघ्र धारण करना चाहिए, क्योकि सयम समाचारी का सम्यक् रूप से आचरण करने से बहुत से जीव ससार-सागर से तिर गये, वर्तमान मे तिर रहे हैं और भविष्य मे तिरेंगे (ज चरित्ता वहू जीवा, तिणा ससार सागर, उ २६-५३) ।

—A–८, महावीर नगर, टोक रोड जयपुर–१५

卐

इस्लाम में संयम की अवधारणा

※ डॉ॰ निज़ामउद्दीन

'स्वयम' के लिए इस्लाम धम मे 'तकवा' शब्द का प्रयोग किया जाता है, यानि 'सयम' का समानार्थक शब्द 'तकवा' है जिसका अथ है परहेज, इन्द्रिय निग्रह । जो सयमपूर्ण व्यवहार करता है उसे मुत्तकी, जाहिद, तकी (सयमी) कहते हैं । इस्लाम धर्म में तकवा जीवन के हर पहलू को समाविष्ट किए है। खाना-पीना, उठना-बैठना, चलना-फिरना, बातचीत करना, खरीदोफरोख्त करना, नापतौल, रोजा, नमाज सब जगह मनुष्य को मुत्तकी रहना चाहिए, सयमी बनना चाहिए । रोजा-नमाज हो या हज का फरीजा हो, शादी-ब्याह हो या पडोसी के साथ बर्ताव करना हो, बिना तकवे के, सयम के गाडी नहीं चल सकती । जब पैगम्बर मुहम्मद साहब ने फरमाया कि बेहतरीन इस्लाम यह है कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की जबान व हाथ से महफूज रहे । इससे जाहिर है कि जब मनुष्य बातें करे तो उसम किसी को न ठेस पहुचे, न किसी की हसी खिल्ली उडाई जाए, न झूठ बोला जाए, न फरेब या धोखा दिया जाए । जबान पर काबू रखना चूकि आसान नही होता, जबान का जख्म तलवार के जख्म से भी अधिक घातक होता है इसलिए जबान पर सयम रखने का आदेश दिया गया है । पैगम्बर साहब का फरमाना है कि ए लोगो ! तुम किसी के खुदा को, पैगम्बर को बुरा मत कहो, वे तुम्हारे खुदा को पैगम्बर को बुरा कहेग । यह है धार्मिक सहिष्णुता, सवधमसद्भाव । आज धार्मिक सहिष्णुता नहीं है इसीलिए तो जगह-जगह साम्प्रदायिक दगो से बेशकीमती जानें खत्म होती हैं, मनुष्य के खून से मनुष्य के हाथ रग जाते हैं, गली-सडकें रक्तरंजित हो जाती हैं ।

इस्लाम धम के जो पाच आधारभूत सिद्धान्त हैं[1] उनम नमाज का दूसरा दर्जा है । नमाज पढने का हुक्म कुरान मे बार-बार दिया है, नमाज पढना और उसे कायम रखना जरूरी है । यह नही कि जब चाहा पढी, जब चाहा न पढी । निरतर उसे पढना है, पाचो समय पढ़ना है क्योकि नमाज बुराइयो से बचाती है । खुदा के सामने पाक-साफ होकर हाथ बाधकर मनुष्य जब नमाज पढता है तो वह अपने आपको पापकर्मों से दूर रखता है । वह नमाज क्या जो मनुष्य के आतरिक मल का न धो डाले ! वह नमाज क्या जो सही गलत की तमीज इन्सान म पैदा न करे ! वह नमाज क्या जो मनमुटाव ईर्ष्या-द्वेष को दूर न करे ! नमाज का मकसद मनुष्य को सयम के पथ का पथिक बनाना है । इसी प्रकार 'रोजा' को देखिए । इस्लाम धम का यह तीसरा स्तम्भ है । प्रत्येक व्यस्क पर रोजा भी

1 तौहीद, 2 नमाज, 3 रोजा, 4 जकात 5 हज

नमाज की भाति फर्ज है और इसका मकसद जहा खुदा की खुशनूदी हासिल करना है वहा उसके द्वारा मनुष्य मे 'तकवा' पैदा करना भी है । कुरान मे स्पष्ट शब्दो मे इसका उल्लेख किया गया है—"या अय्यु हल्लीना आमनु कुतिबा अलैकुमुस्स्यामु कमा कुतिबा अलल्लजीना मिनँ कबलिकुम ला अल्लाकुम तत्ताकून" (२,१६२) अर्थात् ए ईमान वालो ! तुम पर रोजे फर्ज किए गए जिस तरह तुम से पहले लोगो पर फज किए गए ताकि तुम परहेजगार बन जाओ । यानि रोजा मनुष्य को परहेजगार बनाता है, मुत्तकी, सयमी बनाता है, आत्मनिग्रही या इन्द्रियनिग्रह बनाता है। केवल दिन भर भूखा-प्यासा रहने का नाम रोजा नही है । रोजा नाम है सयम का, इन्द्रियनिग्रह का । जबान का रोजा है कि मुह से किसी को अपशब्द न बोलें, किसी की अवमानना न करें । सामने स्वादिष्ट से स्वादिष्ट व्यजन भी रखे हो तो उन्हें न खाए, न स्पश करे । क्रोध से, घृणा से, कामुकता से किसी पर नजर न डाले । आखो मे कामासक्ति का रग चढा हो तो रोजा क्या है ? अपने हाथो पर भी सयम रखे, उनमे कम नापतौल न करे, खाने-पीने की चीजो मे मिलावट न करे, रिश्वत न ले । पैरो पर सयम यह है कि उन्हे कुमाग पर न चलने दे ।

इन सभी इन्द्रियो का रोजा है, उन्हे सयम मे रखना है । चारित्रिक शुद्धता का महीना है रमजान का, रोजो का महीना । मनुष्य अपने लिए तथा अपने परिवार के लिए धनार्जन करता है, जीविकोपाजन करता है, लेकिन इसमे हलाल की कमाई हो, हराम की न हो। सयम से ही धन कमाया गया ह। चरस बेचना व्यापार नही । मादकद्रव्यो का कारोबार मनुष्य के लिए नरक है। शादी-ब्याह मे दहेज लेना-देना अनुचित है, दडनीय है । इस्लाम भी इनकी इजाजत नही देता । हमारे सभी काम धन के द्वारा चलत हैं, लेकिन धन जमा करना भी मर्यादा मे, न्याय की सीमा मे, सयम की रेखा मे बधा हो । सयम की लक्ष्मण-रेखा का जब उल्लघन होता है तो उस समय न केवल सीता-सात्त्विक गुणो का हरण होता है बल्कि विनाशकारी युद्ध भी होता है जिसमे रक्तपात होता है। सयम की दौलत जिसके पास है उसे और कुछ ग्रहण करने की आवश्यकता नही, उसे मुक्ति मिलेगी, जन्नत मिलेगी । कुरान कहता है—

"इन्ना अकरामाकुम इन्दल्लाहि अतकाकुम'

अर्थात् अल्लाह के निकट वही व्यक्ति आदरणीय है, श्रेष्ठ है जो मुत्तकी है, सयमी है, परहेजगार है ।

सयमी उसी प्रकार पाप-प्रभावो से, बुराइयो से दूर रहता है जैसे परहेज करने वाला रोगी शीघ्र रोग से मुक्त हो जाता है । वह रोगी जो डॉक्टर द्वारा सुझाए गए परहेज पर अमल नही करता वह कैसे ही अच्छे डॉक्टर से इलाज कराए कितनी ही 'फॉरन' औषधियो का सेवन करे कभी स्वास्थ्य लाभ प्राप्त नही कर सकता । आज हमारे सामने धमशास्त्र है, ऋषि-मुनियो, सन्तो-सिद्धो

के मन्त्र-उपदेश हैं, प्रवचनामृत हैं फिर भी हम दिन-ब दिन पतनोन्मुखी होते जा रहे हैं, होना चाहिए था ऊर्ध्वोन्मुखी ! इसलिए कुरान मे दूसरी 'सूरत' (अध्याय) में 'मुत्तकी' बनने का आदेश दिया गया है । कुरान का अवतरण ही इसलिए हुआ ताकि मनुष्य 'मुत्तकी सयमी परहेजगार बन सके, खुदा से डरता रहे—"हुदल्लिल मुत्तकीन ।" कुरान की ४९ वी सूरत 'अल-हुजुरात'[1] मे अनेक बातें ऐसी हैं जो हमारी नैतिकता का मार्ग आलोकित करती हैं । कुरान है ही हिदायत देने वाली, मार्गनिर्देशन करने वाली किताब । कुरान मे इरशाद है—ए ईमान वालों ! तुम आपस मे किसी का मजाक न उडाओ, किसी पर छीटाकशी न करो, जो कोई आपस मे लडें उसमें सुलह-सफाई करा दो । किसी की निन्दा न करो, न किसी के भेद जानने की कोशिश करो, किसी की चुगली करना, पीठ पीछे बुराई करना ऐसा है जैसे अपने ही भाई का मास खाना । कुरान कहता है कि "जमीन पर फसाद, उपद्रव मत करो, अल्लाह फसाद, दगा करने वालो को पसन्द नहीं करता। तुम जमीन पर इतराकर मत चलो, अहंकार-मद मे मत झूमो, तुम जमीन को फाड नहीं सकते, न पहाडो को हिला सकते हो । यहा मनुष्य के आचरण को सयमित करने का सदुपदेश दिया गया है और कुरान उपदेश दे सकता है, दिशा निर्देशन कर सकता है, डडा लेकर किसी के पीछे नही चल सकता उन्हें सद्मार्ग पर चलाने के लिए ।

इस्लाम मे 'सयम' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थों मे किया गया है वैसे ही जैसे जैनधर्म मे किया गया है । 'तकवा' (सयम) का धात्वर्थ है परहेज करना, बचना है यानि जो वस्तु किसी प्रकार से हानि पहुचाए उससे अपने को बचाना है । पैगम्बर मुहम्मद साहब ने फरमाया कि जैसे रास्ते मे कांटों से अपना दामन को कोई बचाकर चलता है वही 'तकवा' है । इस्लाम मे तकवा उस भाव को कहा जाता जिसमें अल्लाह की अजमत को तसलीम करते हुए, उसे सर्वगुण सम्पन्न मानते हुए उसके भय का स्मरण रखा जाए । सदैव अल्लाह के प्रति कृतज्ञता का भाव रखकर विनम्रतापूर्ण व्यवहार किया जाए उसके आदेश की, कभी अवज्ञा न करे । अत यतीमो के माल न खाने चाहिए, मां बाप को कभी भी 'उफ' नही कहना चाहिए, न उनसे ऊची आवाज मे बात करें, न सूद लें, न अपने अहद को—वचन को तोडें । इस प्रकार इन सब बुराइयो से बचना 'सयम' हैं । पैगम्बर मुहम्मद साहब का व्यक्तित्व, उनका समस्त जीवन सयम की साक्षात प्रतिमा है । इस्लाम मे सयम का विशेष महत्त्व है ।

—इस्लामिया कॉलेज, श्रीनगर-१९०००२ (कश्मीर)

---

१ यहां छः बातों से बचने का साफ आदेश है—(१) मजाक उड़ाना (२) किसी पर दोषारोपण करना, बोहतानतराशी (३) अपशब्दों से सम्बोधन करना (४) गुमान (५) छिद्रान्वेषण (६) चुगली गीबत कराना ।

मसीही धर्म में संयम का प्रत्यय

❀ डॉ ए बी शिवाजी

वर्त्तमान मे यह अनुभव हो रहा है कि मानव-मूल्य सम्यता के क्षेत्र मे पतन के गर्त मे पहुच चुका है । कोई भी धम हो, नैतिक एव आध्यात्मिक मूल्यो की शिक्षा देता है किन्तु कितने लोग हैं जो उस आचरण को अपने जीवन मे उतारते हैं । क्या कारण है कि मानव उन आदर्शों को अपने जीवन मे नही उतार पाते । जहा तक मेरी अल्प बुद्धि की समझ मे आता है वह यह कि मनुष्य जीवन से सयम नामक तत्त्व लुप्त हो चुका है अथवा मैं यह कहू कि भौतिकवाद के प्रभाव से मानव सयम को खो चुका है और इसी कारण आज अधिक हत्याए, चोरी, व्यभिचार और नाना प्रकार के अपराघो के बारे मे सुनने को मिलता है। समस्त धर्म मानव को सयम की शिक्षा देते हैं । आइये हम मसीही धर्म मे प्राप्त सयम के प्रत्ययो का अवलोकन करें ।

मसीही धर्म एक व्यावहारिक धम है । वह व्यावहारिक शिक्षा प्रदान करता है । मसीही धर्म केवल एक सिद्धान्त ही नही, व्यावहारिकता है । सयम एक ऐसा प्रत्यय है जो शरीर को आध्यात्मिकता के लिए बलशाली और दृढ बनाता है क्योंकि निर्बल शरीर द्वारा आध्यात्मिकता का वहन नही किया जा सकता । वास्तविक रूप से सयम का अथ है अपनी इन्द्रियो को नियन्त्रण मे रखना । सयम रखने की प्रथम आवश्यकता मानव के जवान होने पर अधिक होती है । इस कारण मसीही धम की प्रथम और महत्त्वपूर्ण शिक्षा यह है कि अपनी जवानी पर सयम रख । अभिलाषाओ का कभी अन्त नही होता । एक अभिलाषा की पूर्ति दूसरी अभिलाषा को जन्म देती है । चाहे धन कमाने की अभिलाषा हो, चाहे नाम कमाने की । यद्यपि यह सही है कि अभिलाषा के बिना मानव विकास नही कर सकता फिर भी कहा गया है कि "जवानी की अभिलाषाओ से भाग" याकूब की पत्री १, १४, १५ मे कहा गया है, "प्रत्येक व्यक्ति अपनी ही अभिलाषा से खीचकर और फसकर परीक्षा मे पडता है ।" अभिलाषाए अन्त मे मनुष्य का सवनाश ही करती हैं ।

मनुष्य मे सबसे अधिक 'काम' के प्रति अभिलाषा होती है । दस आज्ञाओ मे से एक आज्ञा है, "व्यभिचार न करना" (निर्गमन २० १४) अर्थात् सयम रखना किन्तु मानव समय-असमय काम की प्रवृत्ति को सतुष्ट करने मे नही हिचकिचाता । वह शारीरिक एव मानसिक दोनो रूपो से व्यभिचार करता है । इसलिए ब्रह्मचय का उपदेश दिया जाता है । धार्मिक रूप से ब्रह्मचर्य के पालन की बात कही जाती है क्योंकि जो ब्रह्मचय का पालन नही करता उसकी उम्र कम

होती है। अय्यूब की पुस्तक १५, २० मे कहा गया है कि "बलात्कारी के वर्षों की गिनती ठहराई हुई है।" ब्रह्मचर्य का पालन नही करना, सयम नहा रखना ईश्वर एव शरीर से वैर करना है। याकूब की पत्री ४, ३४ मे स्त्रियों को सम्बोधित करते हुए लिखा है 'हे व्यभिचारिणीयो! क्या तुम नही जानती कि ससार (वासना जगत) से मित्रता करना परमेश्वर से बैर करना है।" यह तथ्य पुरुषो पर भी लागू होता है। असयम के कारण चेहरो पर तेज नही होता चेहरा मुरझाया हुआ सा होता है। असयम मानव को नैतिकता से दूर कर देता है। मसीही धर्म की विशेषता यही है कि सयम के द्वारा प्रभु यीशु को जाना जावे क्योकि वह स्वय सयमी था। इस कारण मसीहियों के लिए सयम का स्रोत भी बनता है। पौलुस गलतिया की पत्री ५, २४ मे कहता है कि "जो मसीह यीशु के हैं, उन्होंने शरीर को उसकी लालसाओ और अभिलाषाओ समेत क्रूस पर चढा दिया है।

ऊपर कहा गया है कि व्यभिचार शारीरिक ही नही होता, मानसिक भी होता है। मत्ती रचित सुसमाचार मे कहा गया है कि "जो किसी स्त्री पर कुदृष्टि डाले, वह अपने मन मे उससे व्यभिचार कर चुका।"

पूर्ण सयम और विवाह दोनो दृष्टियो से पौलुस कुरिन्थ की कलीसियों को कहता है, "मैं अविवाहितो और विधवाओ के विषय मे कहता हू कि उनके लिए ऐसा ही रहना अच्छा हैं, जैसा मैं हू। परन्तु यदि वे सयम न कर सकें तो विवाह करें क्याकि विवाह करना कामातुर रहने से भला है"(१ कुरिन्थ ७,८,९) यह शब्द इसलिए लिख सका क्योकि वह स्वय सयमी था। सयमी व्यक्ति सदैव निर्भीक होता है, वह वीर होता है, कायर नही।

मानव-जीवन का एक युग होता है और उस युग मे जीवन बिताने के लिए मसीही धर्म की शिक्षा यही है कि, "इस युग मे सयम, धर्म और भक्ति से जीवन बिताए" (तितुस की पत्री २, १२) सयम मे धर्म का निर्माण होता है, धर्म से भक्ति प्रस्फुटित होती है और यही वास्तविकता मे मानव-जीवन है। यदि यह तीनो नही, तो मानव जीवन पशु तुल्य होता है जो अपनी प्रवृत्तियो के अनुसार चलते हैं।

मसीही धर्म की दूसरी शिक्षा **'जीभ पर सयम'** रखने पर बल देती है। हमारे शरीर मे जीभ एक छोटा सा अग है किन्तु जीभ की असयमिता सारे जीवन मे उपद्रव फैलाती है। सारे समाज मे बिखराव पैदा करती है। याकूब की पत्री ३, ५ मे कहा गया है, "जीभ हमारे शरीर का एक छोटा सा अंग है और बड़ी बड़ी डींगें मारती है।" दुष्ट प्रवृत्ति के लोग अपनी जीभ पर अधिक विश्वास करते हैं झूठ को सत्य की तरह बोलते हैं, क्योकि "वे कहते हैं कि अपनी जीभ से ही जीतेंगे।" वकीलो का पेशा जीभ पर ही निर्भर करता है। सत्य की जीत वाले को जीवन और झूठ की हार वाले को मृत्यु प्राप्त होती है। कहने का अर्थ यह

है कि जीभ के वश मे मृत्यु और जीवन दोनो होते हैं जैसा कि लिखा गया है कि "जीभ के वश मे मृत्यु और जीवन दोनो होते हैं और जो उसे काम मे लाना जानता है, वह उसका फल भोगेगा" (नीति वचन १८, २१) क्या हम जीभ को काम मे लेना जानते हैं ? जीभ पर सयम आवश्यक है क्योकि यह जीभ आग लगाने का काय करती है । जीवन का सर्वनाश करती है । यह जीभ जिससे अमृत की वर्षा होती है, वही जीभ जहर उगलती है, मजाक बनाती है । जो जीभ पर सयम नही रख सकता वह अधर्मी है । नीति वचन १५, ४ मे कहा गया है कि "अधर्मी मनुष्य बुराई की युक्ति निकालता और उसके वचनो से आग लग जाती है ।"

जीभ तलवार का भी काय करती है । नीति वचन १२, १८ मे कहा गया हैं कि, " ऐसे लोग हैं जिनका विना सोच-विचार के वोलना तलवार की नाई चुभता है ।" जीभ के वारे मे मैं कुछ पद निम्न रूप से दे रहा हू ताकि पाठक के समुख स्पष्ट चित्र उभर सके—

१ पतरस ३, १० मे लिखा है, "क्योकि जो कोई भी जीभ की इच्छा रखता है और अच्छे दिन देखना चाहता है, वह अपनी जीभ को बुराई से और अपने होठो को छल की वात करने से रोके रहें ।"

याकूव ३, ६ मे कहा गया है, "जीभ भी एक आग है, जीभ हमारे अगो में अधर्म का एक लोक है और सारी देह पर कलक लगाती है, भवचक्र मे आग लगा देती है और नरक कुण्ड की आग से जलती रहती है ।"

याकूब ३ ८ मे लिखा है, "जीभ को मनुष्या मे से कोई वश मे नही कर सकता, वह एक ऐसी वला है जो कभी रूकती नही, वह प्राण-नाशक विष से भारी हुई है ।"

उपयु क्त सदभ यह वताते हैं कि जीभ पर सयम रखना मानव जाति के लिए कितना आवश्यक एव महत्त्वपूर्ण है ।

मसीही धम **'क्रोध पर सयम'** रखने की शिक्षा देता है । क्योकि मनुष्य जीवन मे क्रोध एक प्रवृत्ति है । क्रोध करना मानव का स्वभाव है । जव क्रोध उत्पन्न होता है । तव आखें लाल हो जाती हैं, मुठ्ठी वध जाती है और शरीर मे परिवर्त्तन उत्पन्न हो जाता है । वैवल के लेखक-महान थे जिन्होने क्रोध पर सयम रखने की शिक्षा दी । जिस व्यक्ति मे क्रोध अधिक होता है, वह अभी तक इ सान नही बना । कहा जाता है क्रोध मूर्खों की निशानी है समोपदेशक का लेखक ७ ९ मे कहता है, "अपने मत मे उतावली से क्रोधित न हो, क्योकि क्रोध मूर्खों के हृदय मे रहता है ।"

हम ने ऊपर कहा—क्रोध मानव जीवन का स्वभाव है किन्तु मसीही धम की शिक्षा यह है कि इतना क्रोध न करो कि पाप हो जावे । पौलुस के शब्द हैं

क्रोध तो करो, पर पाप मत करो । सूर्य अस्त होने तक तुम्हारा क्रोध जाता रहे।" (इफिसियो की पत्री ४ २६) कुलुसियो की पत्री मे कहता है, "क्रोध, रोप, बर-भाव, निन्दा और मुह से गालिया बकना, ये सब बातें छोड" (कुलुसियो ३ ८) मानव आचारण मे आज असयमिता घुल मिल गई है । इसी कारण सभ्यता का विनाश करीब दिखाई पडता है ।

आज के युग को तीन प्रकार के उपर्युक्त सयम पालन करना आवश्यक हो गया है ताकि मानव जाति विनाश से बचाई जा सके । मसीही धर्म की वास्तविक शिक्षा यही है कि प्रभु यीशु मे विश्वास कर, मन, वचन और कर्म पर सयम रख उस जीवन को प्राप्त करें जिसे मोक्ष की सज्ञा दी जाती है ।

—प्रोफेसर, दर्शन विभाग, माधव कॉलेज, उज्जैन (म प्र)

□

स्वस्थ रहने का राज

❀ प्रेमलता

एक दफा एक बादशाह ने एक नगर के एक बुजुग के पास एक हकीम भेजा । वह साल भर उस नगर मे रहा किंतु एक भी आदमी उसके पास इलाज कराने नही आया । हकीमजी रोज मरीजो का इन्तजार करते रहते ।

बेचारे हकीम महाशय परेशान ! वह समझ नहीं पाए कि आखिर माजरा क्या है ? अत मे वह बुर्जुग के पास गया और बोले—"हुजूर, मुझे आपके चेलो का इलाज करने के वास्ते यहा भेजा गया लेकिन अब तक एक भी आदमी ने मुझसे इलाज नही करवाया । बताइए मैं क्या करू"

बुजुग महोदय ने हकीम साहब को आदर सहित बैठाया और फिर उन्हें समझाया—"दरअसल मेरे चेलो की आदत है कि जब तक उन्हे जोरो की भूख नही लगती, वे खाना नही खाते और जब थोडी सी भूख बाकी रहती है, वह तभी खाना छोड देते हैं ।"

हकीम साहब ने कहा—"वाह, जनाब ! अब समझ में आया कि उन्हे मेरी जरूरत क्यो नही पडती । भाई जान, ऐसे तो वे जिंदगी भर बीमार नहीं होंगे । मैं तो चला ।"

हकीम साहब ने अपना सामान उठाया और चल दिए ।

—वार्ड न ५, मकान न ३४, मुक्ति मार्ग, भवानी मण्डी

शिक्षा और सयम

❀ श्री चादमल करनावट

शिक्षा का मुख्य आधार है सयम। विना सयमित जीवन के शिक्षा की उपलब्धि सभव नही। चचलचित्त व्यक्ति शिक्षा कैसे अर्जित कर सकता है? इसी प्रकार जिसने अपनी इन्द्रियो पर सयम नही रखा, वह व्यक्ति भी शिक्षा सरलता से नहीं पा सकता। अत मन, वाणी, शरीर और इन्द्रियो पर नियत्रण रखकर ही कोई व्यक्ति शिक्षा प्राप्ति मे सफल हो सकता है। अभिप्राय यह है कि सयमित जीवन शिक्षा-प्राप्ति की अनिवाय शर्त है।

शिक्षा जगत् मे सयम का अर्थ अनुशासन से लिया जाता है। आधुनिक समय मे व्यवहारवादी मनोविज्ञान के प्रभाव के फलस्वरूप शिक्षा को व्यवहार-परिवर्तन या व्यवहार-परिमाजन के रूप मे परिभाषित किया जा रहा है। इसका अथ यह है कि शिक्षा शिक्षार्थी मे समाज के अभीष्ट उत्तम व्यवहारो का विकास करती है, जिससे वह समाज का सुयोग्य उपयोगी नागरिक बन सके। शिक्षा विद्यार्थी को शारीरिक एव मानसिक प्रशिक्षण प्रदान करती है जिससे वह शरीर, मन और इन्द्रियो को नियत्रण मे रखना सीख जाय। धार्मिक-आध्यात्मिक क्षेत्र मे भी सयम की यही धारणा है। मन, वचन, काया को पापकारी प्रवृत्तियो से बचाकर शुद्ध आचरण मे लगाना ही सयम है।

शिक्षा मे सयम या आत्मानुशासन की धारणा

आधुनिक शिक्षा क्षेत्र मे सयम का अथ आत्मानुशासन (Selfdiscipline) से लिया जा रहा है। शिक्षा अनुसधान के विश्वकोश (Encyclopedia of Educational Research 1982) मे आत्मानुशासन को आतरिक एव बाह्य कारको की सहायता से व्यक्तियो मे आत्मनियत्रण या आत्मानुशासन का विकास माना गया है, जो उन्हे समाज के योग्य, सक्षम एव उपयोगी सदस्य के रूप मे तैयार करता है। यह आत्म-अनुशासन बिना अन्य के दबाव-दड आदि के व्यक्ति के द्वारा स्वय ही स्थापित किया जाता है। आधुनिक शिक्षा शोधकर्ताओ की दृष्टि मे अनुशासन-हीनता को केवल प्रशासनिक या प्रबधकीय समस्या के रूप मे ही न देखकर इसे शैक्षिक समस्या के रूप मे लिया जाना चाहिए। दार्शनिक प्लेटो का कथन है कि बालक को दण्ड की अपेक्षा खेल द्वारा नियन्त्रित रखना कही अच्छा है। पेस्तालॉजी के मतानुसार अनुशासन का आधार और नियत्रण शक्ति प्रेम होना चाहिए। डीवी ने सामाजिक वातावरण की अनुकूलता पर बल देते हुए आत्म-अनुशासन की चर्चा की है। इन दार्शनिको के अनुशासन सबधी कथनो मे अनुशासन को आत्मानुशासन के रूप मे ही स्थापित करने का विधान किया गया है।

धार्मिक-आध्यात्मिक क्षेत्र मे सयम के निवहन हेतु यद्यपि कुछ प्रायश्चित्त या दण्ड विधान हैं परन्तु मुख्यतया 'सयम' स्व-अनुशासन या आत्मसयम का ही द्योतक है।

शिक्षा-क्षेत्र मे आत्मानुशासन की स्थापना

यह जानना आवश्यक है कि शिक्षा-क्षेत्र मे आत्म-अनुशासन का विकास कैसे किया जाता है। शिक्षानुसधान के विश्वकोश १६८२ के अनुसार समग्र रूप में आत्म-अनुशासन की स्थापना हेतु स्वनिर्देशन (Self direction) और सामाजिक दायित्व (Social responsibility) को मुख्यतया स्थान देना चाहिए। इन दोनों को ही क्रियान्वित करने से धीरे-धीरे आत्म-अनुशासन का विकास होने लगता है और अततोगत्वा शिक्षार्थी स्व अनुशासित बनते है। शिक्षा-क्षेत्र मे हुए विश्वव्यापी अनुसधानो मे बताया गया है। (Tannre 1978) कि आत्म अनुशासन के विकास की प्रक्रिया को तीन चरणों मे क्रियान्वित करने की आवश्यकता है। **प्रथम-चरण**—इसमे विद्यार्थी अध्यापक के निर्देशो को सुनते और उनका पालन करते हैं। वे आवश्यकतानुसार प्रश्न करते हैं। अध्यापक प्रश्नो का समाधान करते हैं और प्रश्नो को प्रोत्साहित करते हैं और स्वय एक आदर्श उदाहरण भी उपस्थित करते हैं। द्वितीय चरण (रचनात्मक) इसमे विद्यार्थी समह मे परस्पर सहयोग करते हुए काय करते हैं। दूसरो की भूमिका का निर्वाह करते हैं तथा न्यायशीलता एव नैतिकता की अवधारणा को समझते है। अध्यापक इस प्रकार से प्रबधकीय स्वरूप मे काय करने सबधी नियमो एव कारणो की व्याख्या करता है। तृतीय चरण (उद्भावनापरक या Gensature stage) यहा छात्र स्वायत्त इकाई के रूप मे स्वतत्रता से उत्तरदायी बनकर काय करते और किसी नियम के कायकारी सिद्ध न होने पर अन्य विकल्प काम मे लेते है। अध्यापक काययोजनाओं के विकास एव क्रियान्विति मे सहयोग करते हुए उन्हे यथावश्यक सहयोग करते हैं, उन्हें स्वायत्ततापूर्वक काय करने म मदद करते हैं। इस प्रकार काय करने के अवसर प्रदान करके उनमे आत्म-अनुशासन या नियमो के स्वत पालन एव व्यवस्था आदि का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता।

जॉस एव जॉन्स (१६८१) ने शोध निष्कर्ष के रूप मे बताया है कि सकारात्मक आत्म अवधारणा (Self concept) की विकास प्रक्रिया मे अग्रसर हो रहे छात्र आत्म अनुशासन का विकास करते हैं। आत्म-अवधारणा का विकास, मुक्त, सहानुभूतिपूर्ण तथा गनिर्णयिक वातावरण मे सभव होता है। यह वातावरण विद्यार्थियो को उनकी अपनी समस्याओ के हल मे उनके विचारो एव भावनाओं की अभिव्यक्ति की स्वतत्रता प्रदान करता है।

इसके अतिरिक्त विद्यार्थियो के विचारों को स्वीकारते हुए उनके परिणामों पर किंचित् सीमाओं के निर्धारण करके, खेलो और सरचित कथनपरक क्रियाओं

एव प्रश्नो द्वारा मूल्यो के स्पष्टीकरण से, प्रोजेक्ट या प्रायोजनाए चलाकर सकारात्मक वृत्तियो को वातावरण परिवतन द्वारा पुष्ट करके आत्मा-अनुशासन के विकास हेतु काय किए जा सकते हैं ।

मनोवैज्ञानिक स्किनर के अनुसार दुर्व्यवहार घटित होने का कारण वातावरण है । अत वातावरण को वदलकर पुन सद्व्यवहार को पुष्ट किया जा सकता है । इसके लिए पुरस्कार, प्रोत्साहन आदि के तरीके अपनाए जा सकते हैं । इसके अतिरिक्त छात्रो के विवेकहीन एव विचारविहीन विश्वासो को विचारपूण विवेकपूण विश्वास मे बदला जा सके तो भी उनमे आत्मानुशासन का विकास हो सकता है । छात्रो को आत्मप्रकाशन के अवसर देकर उनके विचारों को समझा जा सकता है और तदनुसार आत्मानुशासन मे उनको कुछ दायित्व सौंपे जा सकते हैं ।

ये सभी सैद्धातिक तरीके हैं जो शोधो के आधार पर सुझाए गए हैं । इन्ह क्रियान्वित करके इनके सफल व्यवहारो को आत्मानुशासन के विकासार्थ स्वीकार किया जा सकता ।

आत्मानुशासन के विकासार्थ अन्य प्रवृत्तिया

कुछ अन्य प्रवृत्तिया भी आत्म-अनुशासन की स्थापना मे सहायक होती हैं जसे—**छात्रसघ** जिसमे छात्र विभिन्न पदो पर रहकर विद्यालय के कार्य सपन्न करते हैं और आत्म-अनुशासन का विकास करते हैं । खेल और इसी प्रकार के **दलकाय** (Team work) जिनमे स्वय दायित्व ग्रहण कर वे विविध कार्य सभालते है । वे उनको सम्पन्न करते हुए नियम पालन, सहयोग, निर्णय आदि अच्छी आदतो का विकास करते हैं ।

पर्वों, त्यौहारो का आयोजन—इनमे भी दल मे रहकर कार्य करते हुए स्वय ही अनुशासन का पालन करते और आयोजनो को सफल बनाते हैं । NCC और NSS जैसी प्रवत्तियो के माध्यम से उनमे स्व अनुशासन का विकास किया जाता है । **प्रवचन, प्रार्थना, सभा एव धार्मिक नैतिक शिक्षा** से भी उन्हे आत्म-अनुशासन की महान् प्रेरणाए मिलती हैं । **शिक्षक स्वय अपना** (Model) आदश व्यवहार प्रस्तुत कर छात्रो को स्वअनुशासन हेतु प्रेरित करते एव प्रोत्साहित करते हैं ।

शैक्षिक-धार्मिक क्षेत्रों मे परस्पर आदान प्रदान

आत्म अनुशासन की स्थापना हेतु धार्मिक क्षेत्र की कुछ बातें शिक्षा-जगत के लिए अपनाने योग्य हैं, जैसे—

(१) सयमधारी साधु-साध्वियो की एक समाचारी की तरह विद्यार्थी वग

के लिए उनके मनोविज्ञान को दृष्टिगत कर एक आचार सहिता बनाई जानी चाहिए । इसमे विद्यार्थी वग के लिए आचरणीय सद्व्यवहारो की सूची हो जिनका पालन करके वे अच्छे विद्यार्थी कहला सकें एव आत्मानुशासित बन सके । इसका महत्त्व समझाकर इसके अनुपालन पर बल दिया जाना चाहिए । इस समाचार के महत्त्व को समझकर इसका पालन करते हुए वे आत्म-अनुशासन का विकास कर सकेंगे ।

(२) सयमी आत्माओ की तरह विद्यार्थी वर्ग के लिए प्रतिक्रमण व आलोचना और आत्मनिरीक्षण का शुभारम्भ किया जाना आवश्यक है प्रति प्राथना के उपरान्त कुछ देर मौन रहकर विद्यार्थी पिछले दिन के अपने शुभाशु व्यवहारो का निरीक्षण करें और भविष्य के प्रति दृढ सकल्प करें कि अशुभ का को त्यागकर शुभकार्यों मे दृढता से प्रवृत्त होगे । धीरे-धीरे यह प्रवृत्ति उन आदत बन जायगी और इससे वे आत्म-अनुशासन मे अग्रसर होंगे । प्रति प्राथना वेला मे उन्हे ग्रहण करने योग्य एव उपयोगी सकल्प बताया जाय और उ ग्रहण करने हेतु प्रेरित भी किया जाय । दूसरे दिन उसी सकल्प की पालना छात्र मौन रहकर चिन्तन करें ।

शिक्षा-क्षेत्र के कतिपय व्यवहार आत्मानुशासन या सयम के पालन दृढता लाने हेतु धार्मिक क्षेत्र के लिए भी उपयोगी हो सकते हैं, जैसे—

(१) सयमी आत्माओ को भी आत्म-अनुशासन दृढ बनाने की दृष्टि अपने विचार अभिव्यक्त करने का अवसर प्रदान करना वाछनीय है । सभव वे इसलिए अनुशासन का पालन नही करते हो, क्योंकि चीजें उन पर थोपी रही हो और उन्हे अपनी बात कहने का अवसर ही नही दिया जा रहा हो विचार प्रकाशन और उस पर चर्चा से सभव है वे अपने विचारों को बदलक सही विचार मानने को तत्पर हो जायें ।

(२) सयमशील आत्माओ को भी आचार्य द्वारा कुछ दायित्व सौंपे ज और उन्हे गुरुजन के निर्देशन मे पूर्ण करने की स्वतन्त्रता दी जाय । इससे आत्माओं मे भी आत्मानुशासन का गुण विकसित हो सकेगा ।

(३) धार्मिक जगत मे भी कुछ समूह कार्य के अवसर देना उ होगा । इन कार्यों मे एक से अधिक सत/सती मिलकर काय करेंगे और काय सफलतार्थ परस्पर सहयोग, नियमपालन, दायित्व का निर्वाह आदि गुणों विकास कर सकेंगे । फलस्वरूप वे परानुशासन के बोझ से अपने आपको मुक्त अनुभव करेंगे ।

उपर्युक्त अनेक कार्यक्रम यथोचित रूपेन शिक्षा जगत म आत्म-अनुशास

गुण के विकासार्थ क्रियान्वित होने ही चाहिए । गुरुजनो एव प्रशासको को यह सोचना चाहिए कि आखिर उनके अधीन रहने वाले छात्रो को वे अपने अनुशासन से कहा तक सचालित करेंगे। अतत तो उन्हे स्वय के निणय नेकर आत्मानुशासन से ही मचालित होना है । अत उन्हे विद्यालयो, महाविद्यालयो या विश्वविद्यालयो मे भी अधिकाधिक उत्तरदायित्व देकर स्वायत्तता के अवमर देने चाहिए, जिससे आत्म-अनुशासन उनकी जीवन पद्धति का एक अग वन जाय । वस्तुत लोकतान्त्रिक समाज की सफलता के लिए तो आत्म-अनुशासन ऐक अनिवाय आवश्यकता है ।

—३५ अहिसापुरी, फतहपुरा, उदयपुर—३१३००१

सच्चा ज्ञान

एक वार एक महात्मा ने, अपने चारो प्रमुख शिष्यो की परीक्षा लेने का विचार किया । चारो ही शिष्य महात्मा को प्रिय थे। महात्माजी जानना चाहते कि इनमे से सच्चा ज्ञान किसने प्राप्त किया है ?

चारो को पास वुलाकर महात्मा बोले—अपने आश्रम से कुछ दूरी पर एक उपवन है । तुम चारो वहा जाओ और सायकाल मुझे वताना कि तुमने क्या देखा ।

ऐमा आदेश पाकर, चारो शिष्य प्रात काल ही उपवन मे जा पहुचे । एक आलसी शिष्य ने घनी छाह देखी । वह वहा जाकर मो गया । एक चोर मनोवृत्ति के शिष्य की दृष्टि वृक्षो पर लगे आमो पर पडी । वह ऊपर चढ गया और आम खाने लगा । एक बातूनी शिष्य ने सभी वृक्षों की गिनती प्रारम्भ कर दी और दिन भर गिनता रहा । चौथा शिष्य विद्वान था । वह हर वृक्ष को निहारता रहा, वृक्ष पर लगे आमो को भी देखता रहा और मनन करता रहा ।

सायकाल चारो लौट आए । एक की आखें भारी देखकर महात्मा समझ गए कि यह सोता रहा होगा । दूसरे के शरीर पर चोटें देखकर समझ गए कि यह चोरी करता रहा होगा और माली ने इसे पीटा होगा । बातूनी राह मे आते-आते गिनती ही भूल गया । चौथे को पूछा—बेटे, तुमने क्या अनुभव किया ?

वह विनम्रतापूर्वक बोला—गुरुदेव, वृक्षो की उन टहनियो पर सवसे अधिक फल थे, जो झुकी हुई थी । जो ऊची तन कर खडी थीं, उन पर एक भी फल नही था ।

महात्मा वहुत प्रसन्न हुए । वोले—"सच्चा ज्ञान यही है जो नम्र व शालीन होता है, उसी को परिश्रम का फल मिलता है । जो अहकारी व तना हुआ रहता है, वह कोई फल प्राप्त नही कर पाता ।

समता की साधना

❀ श्रीमती गिरिजा सुधा

"समता की दृष्टि बिना ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त करना सभव नही है राजन् ! आप महर्षि कणादि का शिष्यत्व ग्रहण कर समता के दशन की व्यावहारिक दीक्षा लीजिए।" मन्त्री ने कहा !

"आपकी राय समयानुकूल है ! मैं महर्षि कणादि के आश्रम जाकर उनसे ब्रह्मज्ञान की शिक्षा लेता हू ।"—राजा उदावर्त ने अपना निश्चय बतलाया।

दूसरे दिन महाराजा उदावर्त कई तरह बहुमूल्य हीरे, रत्न, अन्न एव धन राशि लेकर महर्षि कणादि के आश्रम मे जा पहुचे । उन्हे प्रणाम करके यह विपुल धनराशि आश्रम को समर्पित कर, महर्षि से ब्रह्मज्ञान की शिक्षा देने की प्रार्थना की ।

महर्षि ने मुस्का कर कहा—"राजन् ! तुम ब्रह्मज्ञान के जिज्ञासु हो यह बहुत ठीक है । यह धन आश्रम के लिए जरूरी नही है इसलिए इसे ले जाओ । समता का व्यावहारिक ज्ञान करने पर ही तुम्हें ब्रह्मज्ञान की दीक्षा दी जा सकती है । तुम एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए हर किसी स्थिति, जीव जन्तु, वनस्पति मे समता की भावना तलाशो ! यह कर सको तो एक वर्ष बाद आकर ब्रह्मज्ञान का उपदेश प्राप्त करने की कोशिश करना ।"

"तो मैं महर्षि कणादि के आश्रम से निराश लौट जाऊ ?"—महाराज ने पूछ तभी ।

"निराश नही, जिज्ञासु बनकर, अन्वेषी बनकर वापिस जाओ ।" महर्षि कणादि ने उन्हें धैर्य बधाते हुए कहा ।

परन्तु राजमद मे चूर उदावर्त को बुरी भी लगी यह बात । गुस्सा भी आया और निराश भी हुआ । लेकिन चारा भी क्या था ? वे लौट आए वापिस।

एक दिन उन्हे खिन्न देखकर मंत्री द्युतिकीर्ति ने उनकी परेशानी दूर करने की गरज से समझाकर कहा—"राजन् ! चिन्ता मत कीजिये । महर्षि तो सब मे समता की दृष्टि रखते हैं । आपके ही भले के लिए उन्होंने यह व्यवस्था दी है । आप निराश मत होइए इस व्यवस्था से ।"

"महर्षि ने मुझे ब्रह्मज्ञान का पात्र नहीं समझा ऐसा क्यो, मन्त्रीवर !"

तब मन्त्री द्युतिकीर्ति ने उनकी खिन्नता दूर करते हुए कहा—"राजन् ! भूखे को ही अन्न पच सकता है, जिज्ञासुजन को ही ज्ञानार्जन का लाभ मिलता है। महर्षि ने एक वर्ष तक ब्रह्मचर्यव्रत से रहने की शर्त लगाकर आपकी जिज्ञासा प्रवृत्ति को परखा है। यदि आप उनकी कसौटी पर खरे उतरे तो आपको ब्रह्म-विद्या का लाभ अवश्य प्राप्त होगा। जो अधिकारी नही होता है उसमे ज्ञान को पहचाने की सामर्थ्य ही नही रहती है। मनोरंजन के लिए कुछ कहने मे समय की बर्बादी समझकर ऋषि ने लौटाया है आपको। इसे आप अपनी अवज्ञा या कुपात्रता नही मानें। बस बात को समझ नही पाने का ही चक्कर है यह सब।"

मन्त्री की यह बात उदावर्त की समझ मे अच्छी तरह आ गई। वे एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य से रहे। समता की स्थिति के दूर पक्ष पर अपना व्यवहार परखते रहे।

वर्ष समाप्ति पर वे आध्यात्मिक ज्ञान के अधिकारी बन कर जब फिर से महर्षि कणादि के आश्रम मे गए तो ऋषि ने उन्हे छाती से लगा लिया। प्रसन्न हो बोले—"राजन् ! निरहंकारी, धैर्यवान, समता का व्यवहारशील, जिज्ञासु तथा श्रद्धावान ब्रह्मज्ञान का अधिकारी होता है। अब मैं जो कुछ भी आपको सीख दूंगा उस पर आप गहनता से विचार करेंगे। समभाव की आपको अब जरा भी शिक्षा देने की जरूरत नही है, क्योकि अब आप उस पर व्यवहार करना सीख चुके हैं।"

महर्षि कणादि से राजा उदावत ने ब्रह्मज्ञान पाया और अपने आपके जीवन को धन्य बनाया। समता की जीवन शैली उन्होने अपने आचरण से प्रजा में भी विकसित की।

—बी–११६, विजयपथ तिलक नगर, जयपुर–३०२००४

मर्म कथा–

सुख का रहस्य

❀ श्री यादवेंद्र शर्मा 'चन्द्र'

आखिर पुरुषोत्तम के घर वालो मे अंधविश्वास बैठ ही गया। एक अनजान भय से भयभीत हो गये। अजीब आशंकाओं से घिर गये।

बात ही कुछ ऐसी थी। कई बार नये कपडे जल जाते थे। उनमें बड़े बड़े सुराख हो जाते थे।

सभी को यही वहम था कि यह भूत की करामात है। अवश्य इस घर मे किसी भूत-प्रेत या पितर का निवास है।

पुरुषोत्तम के घर मे उसकी झगडालू सास, उसकी नकचढी दो बेटियां एक सीधा सादा और डरपोक बेटा और एक गाय के समान सीधी बहू थी– सरला।

सरला बहुत सुन्दर लडकी थी। वह जब इस घर मे आयी थी तब पूगल की पद्मिनी लगती थी। उसके हजारो सपने थे। पर बेचारी ससुराल वालो के लिए मनचाहा दहज नही ला सकी। परिणाम यह निकला कि सास का मास, उसे दानों ननदें भी सताने लगी। शुरू-शुरू में तो उसने विरोध किया। उसे आशा थी कि उसका पति उसके साथ रहेगा। सच का साथ तो सभी देते ही हैं, पर शीघ्र ही उसकी आशाओ पर पानी फिर गया। उसका पति अपने घर वालो से अजीब तरह से भयभीत था। यदि सरला ज्यादा कहती तो वह इतना ही फुसफुसाकर कहता, "मैं अपनी मा का अकेला बेटा हू। भला मैं इन्हें कैसे नाराज कर सकता हू।"

सरला उससे कहती, "आप न्याय और धर्म का साथ भी नही देंगे? मुझे ये लोग व्यर्थ ही सताते रहते हैं।"

पर उसका पति गणेश तो बबर गणेश ही रहा। वह अपने मा–बाप को नही समझा सका। सरला पर अत्याचार बढते रहे। अब तो उसे बात-बात पर पीट दिया करते थे, उसे पीहर नही भेजते थे, उसे किसी से मिलने-जुलने नही देते थे, कभी कभी तो उसे दंड स्वरूप पति के पास भी नही जाने देते थे। उसे फटे कपड़े व उतारू साडिया पहनाते थे।

इस तनावपूर्ण वातावरण मे सरला चुप रहती थी। पर उसकी आत्मा और रोम-रोम उन लोगो को दुराशीष देते थे, उसकी आंखें पीडा से दहकती रहती थी मानो वे उन्हें सर्वनाश का शाप दे रही हो।

थाड़े दिनो मे ही-उस घर मे नये कपड़े जलने लगे। पहले तो सरला पर सदेह किया गया। बाद मे उसे रात को एक कमरे मे बद कर देते थे। इस पर भी कपड़े जलने लगे तो वे घबराए। अब नये सिरे से दौड धूप शुरू हुई। ओझाओ व तान्त्रिको को बुलाया गया।

पर कोई समाधान नही निकला। पडितो, झाडगरो और तान्त्रिको ने कहा कि कोई भयकर प्रेतात्मा है। इससे छुटकारा पाना कठिन है।

'धोबी धोवन से पौच नही आये तो गधी के कान खीचे।' घर वाले बेचारी सरला को ही दोष देते थे। उसका सताना बढता गया।

गणेश अस्पताल मे जूनियर एकाउन्टेंट था। एक दिन उसने पागलो के डॉक्टर व्यास को अपने घर की इस अजीब स्थिति से परिचित कराया। डॉ व्यास का माथा ठनका। वे घर गये। सचमुच नये-नये कपडो मे कई सुराख थे।

डॉ व्यास के लिए यह एक विचारणीय समस्या थी। वे उस पर सोचते रहे। सोचते-रहे। उस विषय के सम्बन्ध मे पढ़ते रहे। उन्होंने गणेश से घर की-छोटी-छोटी बातें पूछी। गणेश ने दुखी मन से बताया कि उसकी पत्नी को वे लोग बहुत सताते हैं। वह सूख कर काटा हो गयी है। शायद वह मर जाये।

डॉ व्यास के सामने स्थिति साफ हो गयी। वे पाचवें दिन गणेश के घर गये।

उसका सारा परिवार इकट्ठा हो गया। क्योकि आज डॉक्टर व्यास इस प्रेत बाधा का उपाय बताने जा रहे थे।

डॉक्टर ने उन सब पर निगाह रखते हुए कहा, "मैं आपको एक कहानी सुनाता हू। मोहनपुर के सिहासन पर जा बैठता, वह पाच-दस साल मे मर जाता था। इससे मोहनपुर के सिहासन पर बैठने वाला डरता रहता था। आखिर मोहनपुर के राजा गिरधरसिंह ने सोचा। उसे पता लगा कि सूरतगढ के राजा कम से कम सौ वर्षो तक राज्य करते हैं। आखिर क्या बात है कि वे सौ बरस राज्य करते है और हम पाच-दस साल। काफी सोच-विचार कर गिरधरसिंह ने अपने सौ आदमियो को सूरतगढ के राजा दौलतराम के पास भेजा। उन्हे कहा कि वे इस रहस्य का पता लगा कर आवें। यदि वे उत्तर नही लाये तो सबको जमीन मे जिंदा गाड दिया जायेगा।

बेचारे एक सौ सैनिक सूरतगढ पहुचे। उन्होंने राजा दौलतराम को हाथ जोड-जोडकर कहा—वे अधिक जीने का रहस्य बताए। यदि आप नही बताएगे तो हम एक सौ जने व्यर्थ-ही मारे जायेंगे।

राजा दौलतराम ने उन सौ जनो को एक बडे घर मे ठहरा दिया। उसके सामने एक पुराना पीपल का पेड था। उसे दिखाकर कहा—वह हरा भरा पुराना पीपल नही सूखेगा तब तक मैं आपको यह रहस्य नही बता सकता।

सूचित नही करते । असल में सगठन एक सगठित व्यवस्था है न कि विशृखलित वस्तु ।

दुनिया भर की प्रवन्ध व्यवस्था अन्ततोगत्वा इस ऊँच-नीच की व्यवस्था पर आधारित है । सत्ता और दायित्व का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर होता है। यद्यपि 'समता की भावना' (समता दृष्टिकोण) इस प्रकार की प्रवन्ध-व्यवस्था के विरुद्ध वगावत कर रही है तथापि यह प्रवन्ध व्यवस्था के जीवन का कटु सत्य है। अत सगठन के प्रबन्ध मे समता (दृष्टिकोण)की भूमिका 'दिन दुनी रात चौगुनी' वढती जा रही है ।

एक सगठन खेल के खिलाडियो की एक टीम के सदृश है, जो एक ही अपने लक्ष्य-प्राप्ति मे सलग्न रहते हैं और कप्तान तथा 'कोच' के सरक्षण और उत्प्रेरणा मे खेल के मैदान मे खेलते हैं । यहा मालिक और मजदूर का सम्बन्ध नही है और न 'काम करने वाले' और 'काम कराने वालों' का अन्तर ही। सारी टीम एकजुट हो कप्तान के नेतृत्व मे खेलती है और खेल के मैदान मे भेदभाव को भूल जाती है । जब तक ऐसा वातावरण सगठन मे उत्पन्न नही होता, वास्तविक कार्य नही हो सकता और लक्ष्य-प्राप्ति भी असम्भव हो जाती है । ऐसी परिस्थिति मे प्रवन्ध की 'काम करवाने' के रूप में भूतकालीन परिभाषा असामयिक हो जाती है । वास्तव मे प्रवन्ध तो किसी भी सगठन के विभिन्न घटकों के, सुन्दर समन्वय स्थापित कर उनमे निरन्तर कार्यशीलता या गतिशीलता उत्पन्न करने का नेतृत्व-गुण है । अत प्रबन्ध मे समता (समानता) दृष्टिकोण को स्वीकार किये विना सगठन का कुशल प्रवन्ध करने मे कठिनाई होगी इसलिए प्रबन्ध मे समता की भूमिका अपरिहार्य है ।

समता, साम्य, समानता मानव जीवन एव मानव समाज का शाश्वत ... आध्यात्मिक या धार्मिक क्षेत्र हो अथवा आर्थिक, राजनैतिक या सामा... का समता लक्ष्य है क्योंकि समता मानव मन के मूल मे है ।

...मानव-मानव में ऊँच-नीच की भावना को छोडकर सहृदय व्यवहार करना ... अर्थात् समता का अर्थ समानता की भावना से है ।

...वान् महावीर ने भी समता का सिद्धान्त दिया । उन्होंने कहा कि ...मान हैं, सभी को जीने का अधिकार है, कोई भी किसी की सुख ...ण नही कर सकता । सभी को समान रूप से जीने का अधि... 'र जीने दो' के सिद्धान्त को जीवन में अपनाने से अवश्य ही ...हो सकती है । समता सिद्धान्त नया नही है, जिन प्रणीत ...ा मूलाधार है ।

...र्य श्री नानेश ने समता के लिए कहा है कि—'समदर्शी ...लाभ, स्वर्ण पत्थर, वन्दक-निन्दक इतना ही नही समस्त

म-दृष्टि से देखता है।' समता भाव अपने प्रति ही नही,
उसमे छोटा-बडा, छूत-अछूत जात-पात आदि का भेद
'-व्यवहार मे वह शक्ति है जो दुनिया के किसी अस्त्र-
ग्न बम मे नही है । इसीलिये समता को विश्व-शाति

वतको ने भी विश्व को आर्थिक क्षेत्र मे समता का
ाद की नीव हिल गई । पूजीवाद के विरुद्ध कई
रूप प्रवन्ध के क्षेत्र मे नवीन दृष्टिकोण—मानवीय
ससे प्रवन्ध मे समता की भूमिका को महत्त्व मिलने

ामता-दृष्टिकोण' पर हेनरी फैयोल ने बल दिया और
।—'समता'—समता के सिद्धान्त से आशय कमचारियो
यालुता का व्यवहार करने से है । समता का स्थान
न्याय तो केवल नियम, कार्यविधि, परम्परा आदि
ा होता है जबकि समता न्याय के साथ-साथ 'सहृदयता'
ोती है । प्रबन्धको को कमचारियो के साथ समता
इससे प्रबन्धको एव कमचारियो के बीच विश्वास
मचारियो की निष्ठा का स्तर ऊँचा बढता है। न्याय
भावना उत्पन्न होती है । अनुभव, करुणा और
उत्पन्न होते है । समता तथा व्यवहार की समानता
। सगठन मे इसको स्थापित करने से लोग निष्ठावान

ायिक युग मे जटिलताए बढती जा रही हैं और व्यव-
लाघ कर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपना बिगुल बजा
छेदी प्रतिस्पर्धा व्यावसायिक क्षेत्र मे बढती जा रही है
मे हडताल, तालाबन्दी, घेराव, हिंसा, उपद्रव, मारपीट,
रहे है और औद्योगिक अशान्ति बढती जा रही है । इस
ाता का महत्त्व इन समस्याओ के निराकरण मे दृष्टि-

श्रम को सचालित करता है और मानव श्रम भौतिक
व का पूरा विकास किया जा सके और ऐसा विकसित
ा से काय करे तो उद्योग मे उत्पादन वृद्धि हो सकती है।
से कार्य करता है, तो अन्य भौतिक तत्त्व, यन्त्र इत्यादि
करेंगे, क्योकि वे मनुष्य की सक्रियता पर निभर रहते

हैं । इसके अतिरिक्त कार्य द्वारा ही मनुष्य का सम्पूर्ण और सर्वांगीण विकास होना चाहिये ।

मनुष्य का व्यक्तित्व एक अधखिले फूल की तरह होता है, और वह कार्य के द्वारा पूरा खिल जाता है, जैसे अच्छे उद्यान मे गुलाब के फूल खिल उठते हैं। एक अच्छा बागवान गुलाब के पेड को अच्छे खाद, पानी, प्रकाश इत्यादि देता है पेड की रक्षा करता है और अच्छे वातावरण मे गुलाब का फूल प्रस्फुटित होकर सम्पूर्ण रूप से खिलकर सवत्र अपनी सुगध फैलाता है, ठीक इसी तरह एक कारखाने को उद्यान की तरह अपने मनुष्यो का विकास करना चाहिये । मनुष्यों के विकास मे कारखाने का विकास छिपा हुआ है, अर्थात् सगठन मे कमचारियों के विकास से कारखाने का विकास होगा । इसके महत्त्व को प्रबधक अनदेखा नही कर सकता । अत सगठन मे कमचारियों के विकास मे समता दृष्टिकोण का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है ।

समता की विचारधारा को मध्यनजर रखते हुए ही प्रबन्ध में कर्मचारियों की सहभागिता पर बल दिया गया है और हमारे देश मे भी अनेक सगठनों के प्रबध मण्डल या सचालक मण्डल मे श्रमिको के प्रतिनिधि को सम्मिलित किया जाता है जिससे श्रमिकों मे समता, मैत्री, समानता व अपनत्व की भावना का विकास हो सके ।

क्लेरेन्स फ्रासिस का कहना उपयुक्त ही है कि—"आप एक व्यक्ति का समय खरीद सकते हैं, उसकी शारीरिक उपस्थिति खरीद सकते हैं, आप उसकी गतिविधिया भी खरीद सकते हैं किन्तु आप उसका उत्साह नहीं खरीद सकते, उसकी लगन एव स्वामिभक्ति नही खरीद सकते, आप उसके दिल-दिमाग और आत्मा की निष्ठा नही खरीद सकते । ये सब बातें उसमे उत्पन्न करनी होगी।' ये सब बातें तभी सम्भव हैं जबकि प्रबधक समता की विचारधारा को अपने प्रबंध में सम्मिलित करें ।

एक प्रबधक समता की स्थापना करने के लिए श्रमिको एव कर्मचारियों को उचित मजदूरी, रोजगार मे स्थायित्व, अच्छे कार्य की दशाएँ (स्वास्थ्य व सुरक्षा) सामाजिक सुरक्षा (क्षतिपूर्ति, पेन्शन ग्रेच्युटी) श्रम कल्याण (शिक्षा, चिकित्सा) आवास व्यवस्था, मनोरजन, जलपान गृहों की व्यवस्था, प्रेरणात्मक मजदूरी, मानवीय व्यवहार (आदर, सम्मान, गौरव, निष्ठा की भावना) प्रबन्ध में सहभागिता, पदोन्नति, लाभो मे हिस्सा, आदि योजनाओ को लागू करके कर सकता है ।

समता (समानता) के द्वारा कर्मचारियो मे मानसिक सन्तोष, उनमें अपनत्व की भावना का निवास एव उनमे उच्च मनोबल की स्थापना की जा सकती है ।

प्रबधक समता के द्वारा औद्योगिक शान्ति, मधुर मानवीय सम्बन्धो की

स्थापना, कार्यकुशलता मे वृद्धि, उत्पादन मे वृद्धि, उद्देश्यो व लक्ष्यो की प्राप्ति कर गलाकाट प्रतिस्पर्धा मे विजय हासिल कर सकते हैं । यह प्रबन्ध के लिए एक महत्त्वपूण हाथियार का कार्य करेगा ।

यदि प्रबन्ध मे समता दृष्टिकोण को अपनायेंगे तो औद्योगिक समस्याओ के निराकरण मे प्रबन्धक के लिए 'समता' एक 'रामबाण औषधि' साबित होगी ।

—प्राध्यापक, व्यावसायिक प्रशासन विभाग
श्री जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बीकानेर (राज)

अमृतवाणी

☐ सजमेण अरगण्हयत्त जरगयइ ।
सयम से जीव आश्रव-पाप का निरोध करता है ।

☐ असजमे नियत्ति च, सजमे य पवत्तण ।
असयम से निवृत्ति और सयम मे प्रवृत्ति करनी चाहिए ।

—भ० महावीर

☐ भोगो की इच्छा पर विजय पाना ही मानव-शक्ति की साथकता है ।

☐ गहनो मे सुदरता देखने वाला आत्मा के सद्गुणो के सौन्दर्य को देखने मे अन्धा हो जाता है । त्याग, सयम और सादगी मे जो सुन्दरता है, पवित्रता है, सात्विकता है, वह भोग मे कहा ?

—श्रीमद् जवाहराचार्य

☐ सयम चारित्र-धम का प्रवेश-द्वार है ।

☐ आवश्यकता पर नियन्त्रण करने वाला अपने मन की आकुलता मिटा लेता है ।

☐ सब कुछ जानने, समझने, श्रद्धने के उपरान्त भी अगर आपने मन पर, वाणी पर, तन पर सयम नही रखा, अकुश नही रखा तो धमस्थान मे आकर भी आप अपनी आत्मा को कलुपित करेंगे ।

—आचार्य श्री हस्तीमलजी म

शिक्षा मे आत्म-सयम के तत्त्व कैसे आये ?

❀ श्री सौभाग्यमल श्रीश्रीमाल

सामान्यत मानव शिक्षा द्वारा समस्त ज्ञान और विज्ञान को धरोहर के रूप मे प्राप्त करता है और उसम अपने अनुभव, विचार एव आकाक्षाए जोड देता है। विकास का यही क्रम है।

इस विकास क्रम मे शिक्षा एक सोदेश्य प्रक्रिया होती है। प्रत्येक समाज की अपनी सम्यता और सस्कृति होती है, उसके कुछ मूल्य और आदर्श होते हैं। समाज का यह प्रयत्न होता है कि वह अपने सदस्यो को इन मूल्य और आदर्शों मे अवगत कराये और उन्हें इनके अनुसार आचरण करने मे प्रशिक्षित करे। इसकी प्राप्ति के लिये वह शिक्षा का विधान करता है। प्रत्येक समाज गतिशील परिवर्तनशील और प्रगतिशील होता है। अत वह अपने सदस्यो को जो कुछ है, उसी से परिचित नही कराता, अपितु उन्हे ऐसी शक्ति भी प्रदान करता है, जिससे वे अपनी नई-२ समस्याओ के समाधान भी ढूढ सकें। इस प्रकार शिक्षा समाज की आकाक्षाओ की भी पूर्ति करती है। समाज की तत्कालीन धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक और औद्योगिक स्थिति भी शिक्षा के उद्देश्यों को प्रभावित करती है। एक वाक्य मे हम यह कह सकते हैं कि किसी समाज की शिक्षा के उद्देश्य उस समाज की सम्पूर्ण जीवन-शैली पर आधारित होते हैं। ये उद्देश्य अपने में एक आदर्श स्थिति के द्योतक होते हैं। जैसे व्यक्ति का शारीरिक विकास करना, उसका मानसिक विकास करना, चारित्रिक एवं नतिक विकास करना, सामाजिक और सास्कृतिक विकास करना, आध्यात्मिकता की प्राप्ति करना आदि आदि। ये सब शिक्षा के मूलभूत उद्देश्य हैं।

शिक्षा उद्देश्य एव लक्ष्य

शिक्षा के क्षेत्र मे उद्देश्य और लक्ष्य शब्दो का प्रयोग सामान्यत पर्यायवाची शब्दो के रूप मे ही होता है पर वास्तव मे इनमे अतर है। शिक्षा के क्षेत्र में उद्देश्य का अर्थ किसी ऐसे कथन से होता है जो व्यक्ति मे वाछित परिवर्तन की आदर्श स्थिति की ओर सकेत करता है। इस आदर्श स्थिति को सीमा में नही बाधा जा सकता। इस प्रकार शैक्षिक उद्देश्य आदर्श एव अप्राप्य स्थिति के द्योतक होते हैं। इसके विपरीत शैक्षिक लक्ष्य किसी शैक्षिक उद्देश्य की प्राप्ति के मार्ग के वे पडाव होते है जहा तक व्यक्ति पहुच सकता है। कहने का अभिप्राय यह है कि शैक्षिक लक्ष्य किसी शैक्षिक उद्देश्य की प्राप्ति की ओर निर्दिष्ट होते हैं और ये निश्चित और प्राप्य होते हैं। आत्म-सयम के तत्वो के सन्दर्भ मे भी हमे इसी दृष्टि से सोचना होगा।

शिक्षक का कार्य क्षेत्र

शिक्षण एक क्रिया है जिसके द्वारा शिक्षक, शिक्षार्थियों को ज्ञान प्राप्त करने, क्रियाओ मे प्रशिक्षण प्राप्त करने, रूचियो मे विकास करने और अभिवत्तियो के निर्माण करने के लिए तैयार करता है, उनका मागदर्शन करता है, उन्हें सीखने मे सहायता पहु चाता है और अपनी ओर से कुछ बताकर उनके ज्ञान और क्रियाओ को व्यवस्थित करता है, कौशल की वृद्धि करता है, रूचियो मे विकास करता है और उनको परिष्कृत भी करता है। वह अभिवृत्तियो का निर्माण करता है, पर ये सब करना सरल काय नही है।

मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि

मनोविज्ञानवेत्ताओ ने बताया है कि बालक जन्म से ही कुछ शक्तियाँ-मूल प्रवत्तिया, सवेग और सामान्य जन्म जात प्रवृत्तिया लेकर आते हैं और उनका भावी विकास इन्ही मूलभूत शक्तियो पर आधारित होता है। उनका मानना है कि शिक्षार्थी उन कामो को सरलता से करते हैं, जिनमे उनकी स्वाभाविक रुचि होती है और रुचि, उनकी उन कामो मे होती है, जिनके द्वारा उनकी अन्त प्रेरणाओ की सतुष्टि होती है। अत रुचि जागृत करना या रखना ये भी स्वय मे एक बहुत बडी सम्प्राप्ति होगी शिक्षा के क्षेत्र मे। बालको मे जिज्ञासा की मूल प्रवृत्ति होती है। वे प्रत्येक नई बात को जानने को सदा लालायित रहते हैं, पर उस ही नई बात को जिससे उनका सम्बन्ध होता है। यहा शिक्षक की भूमिका महत्त्वपूण होगी। वह ऐसी परिस्थितियो का निर्माण करता है कि बालक उसके द्वारा दिये जाने वाले ज्ञान को जानने की जिज्ञासा प्रकट करने लगे और अपना ध्यान विपय वस्तु पर केन्द्रित कर सके। इसका परिणाम यह होगा कि सीखने की क्रिया प्रभावशाली हो जायेगी। बालक की यह आन्तरिक स्थिति ही अभिप्रेरणा कही जाती है।

मनोविज्ञान की दृष्टि से बालक, माता-पिता तथा कुल परम्परा के सस्कार भी लेकर आता है। जिस प्रकार के वातावरण मे उसका लालन-पालन होता है वैसे ही उसके आचरण बनते हैं। साधारण जीवन मे भी वह जैसे औरो को चलते-फिरते, उठते-बैठते, बोलते सुनते, खाते-पीते, देखता है वैसे ही वह भी आचरण करने लगता है। अनुकरण हमारी शिक्षा का मूल आधार है। बालक म उत्साह छलका पडता है। उसके हाथ-पाव, दिल-दिमाग कुछ करने को व्याकुल रहते हैं। वे कोई ऐसा काम करना चाहते है, जिसमे उसकी रुचि हो। जिसमे रुचि होगी उसी मे उसका मन लगेगा। जिसमे मन लगेगा, उसी का ज्ञान बालक के मस्तिष्क मे दृढ होकर बठेगा तथा जो कुछ उसके मस्तिष्क मे बैठेगा उसी के अनुकूल उसका स्वभाव बनेगा, उसका ज्ञान बढेगा। इस प्रकार ज्यो २ वह अपना ज्ञान सचित करता है, त्यो-त्यो इसी सचित ज्ञान के आधार पर वह नया-नया

(२) विद्यालय मे होने वाली प्रवृत्तियो, क्रियाओ को सोद्देश्य बनाया जाय और उनमें सक्रिय भाग लेने के अवसर प्रदान किये जावें—सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, शारीरिक गतिविधियो मे स्वस्थ प्रतिस्पर्धाएँ आयोजित हों और उनके लिए प्रोत्साहन दिया जाता रहे।

(३) ऐसे सस्कार शिविरो का आयोजन हो, जहां पूरे दिन की जीवनचर्या का आदर्श रूप मे पालन किया जाय/कराया जाय।

(४) आदर्शों के प्रति प्रतिबद्ध व्यक्तियो का समय-२ पर सम्पर्क किया जाता रहे।

(५) सत्साहित्य प्रकाशन करके उसे अध्ययन, चिन्तन-मनन के लिए उपलब्ध कराया जावे।

(६) दनिक सौम्य प्राथना सभाओ व प्रवचनो का आयोजन किया जाता रहे।

(७) समय-समय पर जीवन मूल्यो का वस्तुनिष्ठ मूल्याकन करके और प्रशसनीय कार्य करने वालो को प्रोत्साहित किया जाता रहे।

(८) सदाचार, सद्व्यवहार- डायरी की व्यवस्था की जावे, जिसमें शिक्षार्थी स्वय खुले दिल से अपने कार्य व्यवहार को नोध करें और उन पर विराम के समय चिन्तन-मनन कर। आवश्यकतानुसार उनमे शोधन करें।

(९) योजनाबद्ध ढग से कुछ अच्छे सस्कारो पर सप्ताह आयोजित करके अभ्यास देना भी लाभप्रद होता है जसे —नमस्कार सप्ताह, सफाई सप्ताह, अनुशासन सप्ताह, श्रमदान सप्ताह, योगासन सप्ताह, सेवा सप्ताह आदि।

(१०) जीवन मूल्यो को प्रतिस्थापित करने वाले पाठ पाठ्य पुस्तकों मे अधिक जोडे जाने चाहिये और उनको शिक्षण काल में विशेष बल देकर पढ़ाया जाये, जिसमे सात्विक वृत्तियो को बल प्राप्त हो।

(११) जीवन मूल्यों से सम्बन्धित विशेष कार्यक्रम समय-२ पर आयोजित किये जाते रहने चाहिये।

(१२) ऐसी छोटी-२ पुस्तकें, जिनको आचार-सहिता नाम से सबोधित किया जा सकता है, शिक्षार्थियो मे वितरित की जावें और उस पर प्रयोगात्मक चर्चा समय-समय की जावे।

ऐसे ही अनेक कायक्रम हो सकते हैं, जिनके द्वारा आचरण शुद्धि के सम्बन्ध में विशेष बल दिया जा सके। यदि आचरण मे शुद्धि आने की बात

सम्भव हो गई तो निश्चय है आत्मा मे सयम के अकुर प्रस्फुटित होने लगेंगे। बचपन मे यदि ये सस्कार घर कर गये तो निश्चय है कि पूरे जीवन भर इनका बडा प्रभाव रहेगा और व्यक्ति एक सुनागरिक, सुसस्कारी मानव और आत्म-चिन्तन की दिशा मे सहज रूप से, अग्रसर हो सकेगा। आत्म-सयम का मूल मन्त्र यही है।

केटगाल (२)

(चोट, मोच, कन्धा सूजन एव जोड़ दर्द की मरहम)

अधिक समय तक बैलगाड़ियों में भारी वजन ढोने के कारण बैल तथा भैंसों की गर्दन प्राय सूज जाने अथवा चोट या मोच लग जाने से पशु को काफी कष्ट होता है तथा दर्द के कारण वह कार्य करने के योग्य नहीं रहता। कभी कभी छाला पड़ने या चमड़ी कट जाने से घाव हो जाता है। जिसमें अकसर आपरेशन करना पड़ता है। साथ ही साथ वह पशु भी कुछ दिनों के लिए बेकार होकर गाड़ी खींचने से छुट्टी ले लेता है। ऐसी अवस्था में गाड़ी चलाने वालों को काफी अधिक आर्थिक क्षति और परेशानी होती है। ऐसे लोगों को चिन्ता मुक्त करने व पशुओं के कष्टों के निवारणार्थ इस महोषधि का निर्माण किया गया। 'केटगाल' के प्रयोग से पशु इन कष्टदायक रोगों से शीघ्र छुटकारा पा सकता है। इसमें विशेषता यह है कि औषधि के सेवनकाल में भी पशुओं को आराम नहीं करना पड़ता। 'केटगाल' का लेप कन्धे पर करके पशु को आराम से गाड़ी में जोतिये या उस पर हलका जुआं रखिये। कन्धे पर जुआ की रगड़ से दवा भीतर प्रविष्ट हो जाती है और कुछ ही दिनों में आपका पशु पूर्ववत चंगा दिखाई देने लगता है।

योग - आमा हल्दी, एलुआ, टंकण एवं तेल।

नोट - (१) चोट मोच की हालत में पशु को न चलाने एवं हल्का सेक करने से शीघ्र लाभ होता है।

(२) यदि पशुओं को हल में जोतने से पहले 'केटगाल' को गर्दन पर मल दिया जावे तो फिर गर्दन सूजने का भय नहीं रहता है।

(३) खुले स्वच्छ घावों पर 'केटगाल' की पट्टी करने से घाव शीघ्र भर जाता है।

पैकिंग - ५० ग्राम १०० ग्राम ५०० ग्राम

संयम

❀ श्री पी एम चौरड़िया

प्रश्न—संयम किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) मन, वचन और काया के योग को सयम कहते हैं ।

(२) 'इन्द्रिय निरोध संयम' अर्थात् इन्द्रियों के निरोध को सयम कहा गया है ।

(३) आत्म-निग्रह करना, मन, वचन व तन का नियंत्रण करना, इन्द्रियों को अधिकार मे रखना, यही सयम है ।

प्रश्न—सयम का दूसरा नाम क्या है ?

उत्तर—'उत्तम चरित्र'

प्रश्न—इन्द्रियो को सयत तथा केन्द्रित रखना आवश्यक क्यों है ?

उत्तर—क्रिया सिद्धि के लिए यदि कार्य करते समय इन्द्रिय-समूह इधर-उधर दौडता रहेगा तो कार्य सिद्ध न हो सकेगा ।

प्रश्न—सयम और असयम मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—सयम मानव जीवन को ऊचा उठाता है, क्योकि उससे शक्ति प्राप्त होती है । शक्ति का सचय होता है । असयम का परिणाम इससे बिल्कुल विपरीत है । असयम सीढियो से नीचे उतरने का मार्ग है और सयम ऊपर जाने का ।

प्रश्न—मनुष्य को मन सयम, वाक् सयम और काय सयम से क्या लाभ होता है ?

उत्तर—(१) मन सयम से इन्द्रिय-निरोध होता है ।

(२) वाक् सयम से मिथ्या भाषण दोष नहीं होता है ।

(३) काय सयम से अस मार्गगमिता की निवृत्ति होती है ।

प्रश्न—जैन दर्शन मे सयम और तप को किस नाम से अभिहित किया गया है ?

उत्तर—सयम—सवर, तप—निर्जरा ।

प्रश्न—'दशवैकालिक' सूत्र की 'हरिभद्रीय वृत्ति' एव 'प्रवचन सारोद्धार' सयम के १७ भेद कौन से बतलाए हैं ?

उत्तर—(१) पृथ्वीकाय सयम (पृथ्वी की हिंसा का त्याग), (२) अपकाय सयम, (३) तेजस्काय सयम, (४) वायुकाय सयम, (५) वनस्पतिकाय सयम, (६) द्वीन्द्रिय सयम, (७) त्रीन्द्रिय सयम, (८) चतुरिन्द्रिय सयम (९) पञ्चेन्द्रिय सयम, (१०) अजीव सयम, (११) प्रेक्षा सयम (प्रत्येक वस्तु बिना देखे काम में न लेना) (१२) उपेक्षा संयम (क्रूर अधार्मिक आदि पर द्वेष न करना) (१३) प्रमार्जना सयम (पूजन मे सावधानी रखना), (१४) परिष्ठापना सयम (किसी चीज को डालने मे सावधानी रखना), (१५) मन सयम, (१६) वचन सयम, (१७) काय सयम ।

प्रश्न—क्या सयम वृत्तियो का केवल दमन करता है ?

उत्तर—सयम वृत्तियो का दमन ही नहीं करता, वह उनका शमन, विलयन, मार्गान्तरीकरण और उदात्तीकरण भी करता है ।

प्रश्न—सयम और दमन मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—सयम और दमन मे गहरा अन्तर है । सयम मन की स्वीकृति है । दमन में विवशता है, लाचारी है । उसमे किसी के द्वारा दवाया जाता है । दमन मे दु ख होता है जवकि सयम मे सुख ।

प्रश्न—'गरहा सजमे नो अगरहा सजमे' —भगवती सूत्र-१९
उपर्युक्त शब्दो का अर्थ वताइये ?

उत्तर—गर्हा (आत्मालोचन) सयम है और अगर्हा सयम नही है ।

प्रश्न—'निग्गहिए मणयसरे अप्पा परमप्पा इवइ' —आराधनासार २०
इनका हिंदी में क्या अर्थ है ?

उत्तर—मन के विकल्पो को रोक देने पर आत्मा परमात्मा बन जाती है ।

प्रश्न—'हत्थसजए, पायसजए, वायसजए, सजइंदिए' —भगवान महावीर
प्रभु महावीर के इस उपदेश का अर्थ क्या है ?

उत्तर—अपने हाथो को सयम मे रखो, अपने पैरो को सयम मे रखो, अपनी वाणी पर सयम रखो, अपनी इन्द्रियो पर सयम रखो ।

प्रश्न—सयम को अन्य किन रूपो से जाना जा सकता है ?

उत्तर—सवर, गुप्ति या योग-निरोध आदि-आदि ।

प्रश्न—'प्रश्न व्याकरण सूत्र' मे सवर के ५ द्वार कौन-कौन से वताए गए हैं ?

उत्तर—१ अहिंसा, २ सत्य, ३ अचौर्य, ४ ब्रह्मचर्य, ५ अपरिग्रह ।

प्रश्न—सयम से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उत्तर—सयम से जीव आश्रव का निरोध करता है।

प्रश्न —सौन्दय का पूर्ण मात्रा मे भोग करने के लिए सयम की आवश्यकता है। उपर्युक्त विचार किसने प्रकट किए ?

उत्तर —रवीन्द्रनाथ टैगोर ने।

प्रश्न —प्रति मास हजार-हजार गायें दान देने की अपेक्षा कुछ भी न देने वाले सयमी का आचरण श्रेष्ठ है।

उपर्युक्त विचार किस शास्त्र से लिए गए है ?

उत्तर —उत्तराध्ययन सूत्र (६/४०)

प्रश्न —'जो अपने ऊपर शासन नही करेगा, वह हमेशा दूसरो का गुलाम रहेगा।'

उपर्युक्त विचार किसने प्रकट किए ?

उत्तर —महाकवि गेटे ने।

प्रश्न —व्यावहारिक जीवन मे सयम के बिना हम स्वस्थ नहीं रह सकते। यह कथन किस प्रकार सही है ?

उत्तर —जीवन मे स्वस्थ एव सुखी रहने के लिए सयम की आवश्यकता है। यदि कोई खाने मे सयम नही रखता तो रोगो का घर जम जाता है, यदि कोई बोलने मे सयम नही रखता तो कलह या लडाइया छिड जाती है।

प्रश्न —मन का सयम क्या है ?

उत्तर —अकुशल मन का निरोध और कुशल मन का प्रवतन मन का सयम है।

प्रश्न —किन-२ कारणो से मनुष्य सयम मे पुरुषार्थ नही कर पाता है ?

उत्तर —(१) यौवन का उन्माद (२) धन की अधिकता (३) सत्ता की प्राप्ति (४) वासनाओ की ऊपरी रमणीयता (५) अविवेक जन्य पुनर्जन्म में अविश्वास।

प्रश्न —श्रावकजी मधुर बोले, कम बोले। कार्य होने पर बोले कुशलता से बोले उपर्युक्त सब बातें हमे किस ओर सकेत करती हैं ?

उत्तर —हमें वचन (भाषा) सयम की ओर सकेत करती हैं। अर्थात् हमे भाषा का सयम रखना चाहिए।

प्रश्न —वाणी तो सयत भली, सयत भला शरीर।
जो मन को सयत करे, वही सयमी वीर।
उपर्युक्त दोहे मे कवि ने सयम के बारे मे क्या कहा ?

उत्तर —वाणी पर सयम रखना भला है। इन्द्रियों एव शरीर पर भी सयम

रखना आवश्यक है लेकिन सच्चा सयमी वही है जो अपने मन को सयत करता है ।

प्रश्न ।—'प्रभुता पाई काही मद नाही' उपयुक्त सूक्ति का अर्थ बताइये ?

उत्तर।—वह मनुष्य देवतुल्य है जिसमे प्रभुता पाकर भी घमड नही होता । प्रभुता की प्राप्ति होने पर सयम के मार्ग मे विवेक को दुरुस्त रखना बहुत कठिन है ।

प्रश्न —'स्थानाग सूत्र' में सयम के कितने भेद किए गए हैं ?

उत्तर —स्थानाग सूत्र मे सयम के ५ भेद किए गये हैं—१, सम्यक्त्व सवर, २. विरक्ति सवर, ३ अप्रमाप सवर, ४ अकषाय सवर, ५ अयोग सवर ।

प्रश्न —मानव जीवन मे अच्छे काय करने के लिए किन पर सयम रखना आवश्यक है ?

उत्तर —मन, बुद्धि, इन्द्रिय, शरीर के अ गोपाग आदि पर ।

प्रश्न —आचार्य उमास्वाति ने 'प्रशमरति' मे सयम के कौन से भेद बतलाए हैं?

उत्तर —हिंसा आदि पाच आश्रवो का त्याग, पाच इन्द्रियो का निग्रह, चार कषायो पर विजय तथा मन, वचन, काया रूप तीन दण्डो (अशुभ योग प्रवृत्ति) से निवृत्त होना । ये सयम के १७ प्रकार है ।

प्रश्न —सिद्ध अरिहन्त मे मन रमाते चलो, सब कर्मों के बधन हटाते चलो ।
इन्द्रियो के न घोडे विषयो मे अडे, जो अडे भी तो सयम के कोडे पडें ।
तन के रथ को सुपथ पर चलाते चलो । सिद्ध अरिहन्त मे
उपर्युक्त स्तवन के रचयिता कौन हैं ?

उत्तर —कवि रसिक ।

प्रश्न —सयम तब तक ही सयम है, जब तक सम का योग सही है ।
सम का योग नही तो यम है, यम मे सहजानन्द नही है ।।
उपयुक्त कविता किसने लिखी ?

उत्तर —उपाध्याय अमरमुनिजी ने ।

प्रश्न —सयम सुखकारी, जिन आज्ञा अनुसार
(तर्ज—अब होवे धम प्रचार, प्यारे भारत मे)
सयम सुखकारी, जिन आज्ञा के अनुसार ।। सयम ।।
धय पाले जे नर नार ।। सयम ।।
सुखकारी आनदकारी, धन्य जाऊ मैं बलिहार ।।१।।
कर्म-मैल ने शीघ्र हटावे, आतम ना गुण सब प्रगटावे ।
जन्म-मरण ना दुख मिटावे, होवे परम कल्याण ।।२।।

परम औषधि संयम जाणो, तीन लोक नो सार पिछाणो।
शुद्ध समझ हृदय में आणो, अनुपम सुख की खान ॥३॥
उपर्युक्त स्तवन के रचनाकार कौन है ?

उत्तर —बहुश्रुत पंडित श्री समरथमलजी म सा ।

प्रश्न —"अन्धे के पुत्र अन्धे ही तो होते है ।'
ये शब्द किसने कहे तथा इसका क्या परिणाम निकला ?

उत्तर —द्रौपदी ने दुर्योधन को ये शब्द कहे तथा जिससे महाभारत का भीषण युद्ध हुआ ।

प्रश्न —'संयम खलु जीवनम्' इसका अर्थ बताइये ?

उत्तर —संयम ही जीवन है ।

प्रश्न —तंदुल मत्स्य के कौन से असंयम के कारण उसे मरकर सातवीं नरक में जाना पड़ा ?

उत्तर —मन का असंयम ।

प्रश्न —पशु आज भी लाखो-करोडो वर्ष पूर्व जिस स्थिति मे था, आज भी वैसी स्थिति मे है । इसका क्या कारण है ?

उत्तर —पशु मे संयम की शक्ति विकसित नही है । उसमे 'सेल्फ कन्ट्रोल' की क्षमता नही है । इसी कारण उसका विकास नहीं हो सका ।

प्रश्न —कछुए की मूर्ति को शंकर के मन्दिर मे रखने के पीछे क्या रहस्य है

उत्तर —यह इस बात का निर्देश करता है कि यदि तू शंकर अर्थात् सुख चाहता है उसके दर्शन करना चाहता है अपने मन, वचन, काया और इन्द्रियों को समेट कर रख ताकि बाह्य भय अर्थात् जो इन्द्रियों के विषय तुझ पर छाये रहते हैं, उनसे तू मुक्ति पा सके । यहां कछुआ स्पष्ट कह रहा कि हे मानव ! तू भी मेरी भांति संयमित रहेगा तो शंकर (सुख) की प्राप्ति कर सकेगा ।

प्रश्न —भगवान महावीर ने कहा कि इस संसार मे चार परम अंग दुर्लभ हैं वे कौन से हैं ?

उत्तर —१ मनुष्यत्व २ श्रुति ३ श्रद्धा ४ संयम मे पुरुषार्थ ।

—८६ श्रीहीयाप्पा नायकन् स्ट्रीट, मद्रास–६०००३

संयम साधना के जैन आयाम

ॐ श्री उदय नागोरी

आत्मलक्षी जैन धम मे सयम का शीपस्थ स्थान एव विशेष महत्त्व है। जीवन उन्नयन की इस पद्धति मे सम्यक् चारित्र से मुक्ति के द्वार अनावृत्त होते हैं, यह मानकर चारित्र का मूलाधार सयम बताया गया है। धम को सागार धर्म और अणगार धर्म मे विभाजित करते हुए स्पष्ट किया गया है कि श्रावक श्राविका का धर्म आगार सहित (स+आगार) एव श्रमण श्रमणी का धम बिना आगार (अण+आगार=अणगार) का है। अन्य शब्दो मे कहे तो अणगार को महाव्रत का एव श्रावक को अणुव्रत का पालन करना पडता है अर्थात् एक ओर तीन करण तीन योग से व्रत पालन का विधान है तो दूसरी ओर दो करण तीन योग का।

वतमान आणविक युग मे सुख-सुविधाओ का अम्बार होने पर भी मानव मानसिक पीडा, सत्रास, तनाव एव समस्याओ से ग्रसित एव भ्रमित है। वह जूझ रहा है जीवन मूल्यो से और सघप रत है शाति की चाह मे। यह स्थिति वैयक्तिक स्तर पर ही नही वरन् सामाजिक, राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक है। यदि हम समस्त समस्याओ का कारण जानना चाहे तो एक ही अर्थात् सयम का अभाव है और सबका निराकरण सयम से सभव है।

जैन साधना-पद्धति प्रथम दृष्टि मे दमन की क्रिया प्रतीत होती है परन्तु वस्तुत इसमे विश्लेषण की प्रक्रिया मे पाच समिति, तीन गुप्ति, इन्द्रिय सयम एव कषाय निरोध पर जोर दिया गया है। उत्तराध्ययन सूत्र के २३ वें अध्ययन मे "शरीर माहो नाव" कहते हुए बताया गया है कि ससार-समुद्र से पार पाने के लिए शरीर एक नौका के समान है परन्तु इसके छिद्र रहित होने पर ही भव-भ्रमण के पार पहुचना सभव है। अर्थात् इसमे पाच इन्द्रियो के माध्यम से चार कषाय एव तीन गुप्ति के छिद्रो को बन्द करने पर ही हमे सफलता की प्राप्ति होती है।

सयम के लक्षण

स्थानाग सूत्र (स्था ५ उ २ सूत्र ४२९-४३०) मे सयम की परिभाषा बताते हुए कहा गया है कि सम्यक् प्रकार सावद्य योग से निवृत्त होना या आश्रव से विरत हाना सयम है। "सम्यक् यमो वा सयम' अर्थात् सम्यक् रूप से यमन (नियन्त्रण) करना ही सयम है।[1] अन्य शब्दो मे कहा जा सकता है कि व्रत,

---

[1] जैन सिद्धान्त कोश भी ४ पृ १३७

समिति, गुप्ति आदि रूप से प्रवतना अथवा विशुद्ध आत्म भाव मे प्रवतना सयम है। इसे भी दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है। अन्य प्राणियों का रक्षा करना प्राणी सयम एव इन्द्रियो के विषयो से विरत होना–इन्द्रिय सयम है।[1]

सयम रूप एव प्रकार

सयम के चार रूप बताते हुए कहा गया है—

चउव्विहे सजमे—मण मजमे, वइ सजमे, काम सजमे, उवगरण सजमे।[2]

अर्थात् सयम के चार रूप हैं—मन का सयम, वचन का सयम, शरीर का सयम और उपधि–उपकरण का सयम। इसे यो भी कहा जा सकता है कि मन, वचन, काया की अशुभ क्रियाओ का निरोध एव उपकरण का परिहार सयम है। लेकिन वस्तुत सयम है गर्हा अर्थात् आत्मालोचन, जसा कि भगवती सूत्र (१/६) मे कहा गया है—

गरहा सजमे, नो अगरहा सजमे।

इस सूत्र गहराई मे जाने पर ज्ञात होता है कि गर्हा की स्थिति तभी आ सकती है जब हम शरीर और आत्मा को पृथक मानें—

अन्नो जीवो, अन्न सरीर।[3]

इसी को दृष्टिगत रखकर कहा गया है कि समता से अन्तमुख होकर अपने को पापवृत्तियो से दूर रखने हेतु आत्मा को शरीर से पृथक् जान कर लि शरीर को धुन डाले—

एगमप्पाण सपेहारा धुणे सरीर ग।

सयम के उपरोक्त चार उप के अतिरिक्त इसके सत्रह भेद भी निम्नानुस बताये गये हैं—

१-५-हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य एव परिग्रह रूपी पांच आश्रवा विरति।

६–१०–स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु एव श्रोत-इन पाच इन्द्रियो को उन विषयो की ओर जाने से रोकना।

११–१४–क्रोध, मान, माया एव लोभ रूप चार कषायों को छोडना

१५–१७–मन, वचन और काया की अशुभ प्रवृत्ति रूप तीन दण्डों विरति।[4]

---

१ जन सिद्धांत कोश भी पृ १३६
२ स्थानांग सूत्र स्था ४ उद्देशा २ सूत्र
३ सूत्र कृताग सूत्र २/१/६
४ स्थानांग सूत्र ४/१/३६६
० प्रवचन सारोद्धार द्वार ६६ गाथा ५५५
० जै मि बोल सग्रह भा ५ पृ ३६८

श्रमण धर्म (अणगार) का पालन करने वालो के लिए (तीन करण एव तीन योग) सयम के निम्नलिखित सत्रह भेद हरि भद्रीमावश्यक (अ ४ पृ ६५१) मे वर्णित हैं—

१–५–पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजाकाय, वायुकाय एव वनस्पतिकाय की किसी भी प्रकार हिंसा न करना।

६–९ द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय का किसी भी प्रकार हनन न करना।

१०–अजीव सयम-अजीव होने पर भी जिन वस्तुओ के ग्रहण से असयम होता है उन्हें न लेना अजीव सयम है। जैसे स्वर्ण, चादी, शस्त्र पास मे न रखना तथा पुस्तक, पत्र और पात्र आदि उपकरणो की पडिलेहणा करते हुए यतना पूर्वक बिना ममत्व भाव के मर्यादा अनुसार रखना।

११–प्रेक्षा सयम–बीज, हरीघास, जीवजन्तु से रहित स्थान मे अच्छी तरह से देखकर सोना, बैठना, चलना आदि क्रियाए प्रेक्षा सयम है।

१२–उपेक्षा सयम–पाप कर्म मे प्रवृत्त होने वाले को एतदर्थ प्रोत्साहित न करते हुए उपेक्षा भाव बनाये रखना।

१३–प्रमाजना–सयम–स्थान, वस्त्र, पात्र आदि को पू जकर कार्य मे लेना।

१४–परिष्ठापना सयम–शास्त्रानुसार आहार, वस्त्र, पात्र आदि को यतना सहित परठना।[1]

१५–मन सयम–मन मे ईर्ष्या, द्रोह अभिमान न रखना।

१६–वचन सयम–हिंसाकारी कठोर वचन न बोलकर शुभ वचन बोलना।

१७–काय सयम- गमना गमन तथा अन्य कार्यों मे काया की शुभ प्रवृत्ति करना।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि सयम की समाचारी श्रमण वर्ग के लिए अपेक्षाकृत कठोर है। चू कि उनका पूर्ण जीवन सयम को समर्पित है और उन्हे महाव्रतो का पालन तीन करण तीन योग से करना पडता है अत उनके लिए किसी भी प्रकार की छूट या आगार का प्रावधान नही है। श्रावक वर्ग के लिए भी सयम की उपयोगिता कम नही, भले ही उनका पूर्ण जीवन श्रमणवत सयम से ओत प्रोत न हो।

मन सयम–

मनुष्य को मनन का साधन मन तो मिला है परन्तु इसकी चचलता उसे

---

१ इसे समवायाग सूत्र मे अपहृत्य सयम कहा गया है। (समवा १७)

ऊचाई तक ही नही पहुचाती वरन् इसमे पतन की ओर धकेलने की सामर्थ्य भी है। नियन्त्रित होने पर यह आज्ञाकारी सेवक है परन्तु अनियन्त्रित स्थिति में कठोर मालिक भी। पाचो इन्द्रियो के माध्यम से यह सदैव कार्यरत रहता है। यहा तक कि निद्रित अवस्था मे भी मन विश्राम नही करता। उत्तराध्ययन सूत्र (अ २३ सू ५८) मे इसकी साहसिक, भयकर व दुष्ट घोडे से तुलना की गई है, जो बडी तेजी के साथ दौडता रहता है—

मणो साहस्सिओ भीमो, दुट्ठ एसो परिधावई। अत साधक को अत मुखी होकर कछुए की भाति अपने अगो को अन्दर समेटकर स्वय को पापवृत्तियों से सुरक्षित रखना चाहिए।[1]

समस्त इच्छाओ, विवृत्तियो एव आवेगो का मूल मन मे ही है। "इच्छाए अगास समा अणतए' अर्थात् इच्छाए आकाश के समान अनन्त है, को दृष्टिगत रखकर हमे इन्हे परिमित व नियन्त्रित करना चाहिए। चचल मन हमे चन से नही रहने देता अत हम कुछ भी काय करें मन को सयत रखना आवश्यक है। मन रूपी भूमि मे राग व द्वेप के बीज उग जाने पर कम रूपी वृक्ष हरा भरा हो जाता है और इस प्रकार कामण शरीर का अस्तित्व अपना पडाव डाल देता है। तदनन्तर कार्मण शरीर पूणता या मुक्तावस्था की स्थिति तक आगामी जीवन का आधार बनता है। राग द्वेप के बारे मे बताया गया है कि—

रागो य दोसो वि य कम्म बीय,
कम्म च जाइ मोहप्पभव वयति।
कम्म च जाइ मरणस्स मूल,
दुक्ख च जाइ मरण वयति॥

उत्तराध्ययन सूत्र ३२/७

अर्थात् राग और द्वेप, ये दोनो कम के बीज हैं। कम मोह से उत्पन्न होता है। कम ही जन्म-मरण का मूल है और जन्म मरण ही वस्तुत दुख है।

राग और द्वेप किससे पैदा होता है, इसका विश्लेषण निशीथ चूर्णि (१३२) में किया गया है—

माया—लोभेहितो रागो भवति।
कोह, माणेहि तो दोसो भवति॥

(नि चू १३२) अर्थात् माया और लोभ से राग होता है तथा क्रोध व मान से द्वेप पैदा होता है।

ये कषाय ही मन मे अहं की ग्रन्थियो को जन्म देते हैं, मूर्च्छा या ममत्व के प्रासाद बनाते हैं और माया के सहारे लोभ की सरिता मे गोते लगाते हैं। यहा तक कि पुनर्भव की जडें भी सींचते है—

१ सूत्रकृताग १/८/१६

जे ऐ चतारि, कापिणा कषाया ।
मूल सिचति पुण्ण भवसु ।।

आज मनोविज्ञान, चिकित्सा विज्ञान एव रसायन शास्त्र भी क्रोध से वचने का सदेश दे रहे हैं । किस प्रकार क्रोध से एड्रीवल ग्रन्थि का कार्य असतुलित होकर रासायनिक स्राव से मानव को अस्वस्थ बना देते हैं यह किसी से छिपा नही है । अत मन के सयम से कोई नकार नही सकता ।

अस्थिर चित्त वाले एव क्रोधी व्यक्ति अपने उग्र विचारो से स्वास्थ्य को ही प्रभावित नही करते, अपनी प्राणशक्ति का ह्रास भी करते ह । अर्थात् क्रोध से अधिक भयकर व दुष्प्रभावकारी अन्य कुछ भी नही परन्तु आतम सयम रखने पर कटकाकीर्ण एव प्रतिकूल वातावरण मे भी माधुय छा जाता है ।

वचन-सयम-वाणी का विवेक एव वचन का सयम हमारे पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय जीवन मे परिवर्तन ला सकते हैं । हम तोल कर बोलें व बोलकर तोलें तो वैमनस्य, सघष, टकराव की दीवारें ही ढह सकती हैं । शुभ वचन जहा प्रेम व सौजन्य पैदा करते है, हमारे जीवन की राह तक वदल देते हैं । अत कठोर वचन (फरूस वइज्जा-आचाराग २/१/६) आवश्यक्ता से अधिक (वाइवेल वइज्जा-सूत्र १/१४/२५) वोलना वर्जित है तथा हितकारी एव अनुलोभ (हियमाणुलोभिय दशवे ७/५६) तथा पहले विचार कर (अणुचितिम वियागरे सूत्र १/६/२५) बोलना वचन-सयम मे समाहित है ।

कप्प सयम

काम सयम मे इन्द्रियो का सयम मुख है । इनसे हारने पर हमे अनेक रोग ता जकडते ही हैं हम परवश भी हो जाते हैं । पाच इन्द्रियो के विपय एव विकारो से हम वच सकें तो आरोग्य प्राप्ति के साथ शुभ जीवन-यात्रा पूण कर लेते है । अन्य जीवो को बधन, वध क्षतविक्षत, अतिभार एव भोजन पानी से विलग करने (वधे, वेह, छविच्छेए, अइभारे, भत्तपाण विच्छेए । प्रथम अणुव्रत) जैसी यातनाए इसी काया से दी जाती है अत इनसे बचना भी सयम है ।

उपाधि सयम

अनेक धर्मा वस्तु (पदार्थ) के प्रति ममत्त्व (मूच्छा परिग्गहो) एव उनका एक सीमा से अधिक सग्रह भी असयम है । वस्तु का स्वभाव ही धर्म है (वत्यु सुहावो धम्मो) अत किसी स्थिति के प्रति लगाव परिग्रह है । जैसा कि महावीर ने स्पष्ट किया—पदाथ के प्रति क्षण पयार्यो का परिवर्तन होता है—जिस पर्याय विशेप को हमने देखा, अपनाया वह तो परिवर्तित हो गई अत यह ममत्व भी त्याज्य है । वस्तु को अपने स्वभाव मे रहने दें और अपनी मत्ता किसी पर आरोपित न करें, यह सयम ही है ।

इस प्रकार सक्षेप मे स्पष्ट है कि 'सयम' को मात्र दैहिक/यौनिक न मानकर उसके विविध आयामो के प्रति सजग रहना हमे ऊर्ध्वारोहण मे पथ पर अग्रसर करता है । —द्वारा-सेठिया जैन ग्रन्थालय मरोठी मोहल्ला, वीकानेर

वोसिरामि : एक वैज्ञानिक विवेचन

❀ श्री कन्हैयालाल लोढ़ा

"रागो य दोसो वि य कम्म बीय" उत्तराध्ययन अ ३२ गाथा ७, अर्थात् कम की उत्पत्ति राग-द्वेप रूप बीजो से होती है । दूसरे शब्दों मे कहें तो राग और द्वेप ही कर्म-बध के कारण हैं अर्थात् जब तक राग-द्वेप है तब ही तक कर्म-बध रहता है । राग-द्वेप मे परिवतन होने के साथ ही कम-बध में भी परिवर्तन होता रहता है । वर्तमान मे राग-द्वेप के घटने से पूव मे बधे हुए कर्मों मे भी घटोतरी हो जाती है अर्थात् पहले बधे हुए कर्मों की स्थिति और अनुभाग मे कमी हो जाती है, उन मे अपवर्तन व अपकर्सरण हो जाता है । वर्तमान में राग द्वेप में वृद्धि होने से पूर्व में बधे हुए कर्मों मे भी वृद्धि हो जाती है—अर्थात पहले बधे हुए कर्मों की स्थिति व अनुभाग मे वृद्धि हो जाती है उनमे उद्वर्तन व उत्कर्पण हो जाता है । वर्तमान मे पूण रूप से राग-द्वेप रहित-वीतराग होने पर घाती कर्मों का पूण क्षय हो जाता है । तात्पर्य यह है कि कर्म-बध का सबध पूण रूप से राग-द्वेप पर निभर करता है ।

राग-द्वेप के साथ कर्म बध का उपर्युक्त नियम सभी कर्मों पर लागू होता है परन्तु वीतराग होने पर कम-क्षय का नियम केवल घाती कर्मों पर ही लागू होता है अघाती कर्मों पर आशिक रूप से लागू होता है पूर्ण रूप मे नही । घाती कर्म ही आत्मा के गुणो का घात करने वाले हैं । आत्म-गुणो का घात ही वास्तव मे घात है, हानि है । अघाती कर्म आत्मा के मौलिक निजी किसी भी गुण का अश मात्र, लेश या देश मात्र भी घात नही करते हैं इसीलिए आगम में अघाती कर्मों की किसी भी प्रकृति को देश घाती नही कहा है अत अघाती कर्म से जीव की लेशमात्र भी हानि नहीं होती फिर भी वीतराग होने पर अघाती कर्मों का स्थिति व अनुभाग अत्यधिक हीन-न्यून हो जाते हैं वे जली हुई रस्सी, भुने हुए चने के समान निर्जीव सत्वहीन हो जाते हैं । जैसे भुना हुआ चना खाद्य का काम तो देता है परन्तु नवीन पौधा उत्पन्न करने मे अक्षम होता है इसी प्रकार अघाती कर्म जगत-हित के लिए तो उपयोगी होते हैं परन्तु उनसे नवीन कर्मों की उत्पति नहीं होती है ।

राग-द्वेप मिटाने का एक उपाय 'वोसिरामि' भी है, या यों कहें कि कर्म क्षय का एक उपाय वोसिरामि भी है । 'वोसिरामि' शब्द अर्द्ध मागधी व प्राकृत भाषा का शब्द है । इसके लिए सस्कृत भाषा में 'विस्मरामि' शब्द है 'विस्मरामि' शब्द का अर्थ है—'मैं' विस्मरण करता हू । 'विस्मरण' शब्द 'स्मरण' शब्द का विलोमार्थक है । स्मरण का अर्थ होता है—'याद रखना' अत विस्मरण का अर्थ है 'याद न रखना' अर्थात् भूल जाना ।

यह नियम है कि स्मरण उसी का रहता है जिसके साथ किसी न किसी प्रकार सबध है । सबध से हृदय पर प्रभाव अकित होता है । प्रभाव उसी का अकित होता है जिसके प्रति राग या द्वेष है । जैसे हम बाजार मे होकर निकलते हैं तो हमे बाजार मे कपडे, मिठाई, खिलौनो, पुस्तको आदि की दुकानें दिखाई देती है और उनमे रखी हुई मिठाई, वस्त्र, खिलौने आदि वस्तुएँ भी दिखाई देती हैं । परन्तु बाजार मे दिखाई देने वाली सब दुकानें व उनमे रखी हुई सब वस्तुएँ हमे याद नही रहती है । हमे याद केवल उन्ही की रहती है जिनके प्रति हमारा आकर्षण-विकर्षण है अर्थात् जिन्हे हम पसद या ना पसद करते है या यो कहे जिनके प्रति हमारा राग-द्वेष है । राग-द्वेष उन्ही से होता है जिनसे हम प्रभावित होते हैं । जिनसे हम प्रभावित नही होते, जिनके प्रति हम तटस्थ रहते है, उदासीन रहते हैं उनके प्रति हमारे हृदय मे राग-द्वेष नही होता । राग-द्वेष न होने से उनका प्रभाव अकित नही होता । प्रभाव अकित नही होने से उनका स्मरण नही होता । जिसका स्मरण नही होता उसे विस्मरण करने की आवश्यकता ही नही होती ।

किसी वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति, अवस्था, घटना आदि का प्रभाव अकित होना ही सस्कार निर्माण होना है । सस्कार निर्माण होना ही कर्म-बध होना है । किसी वस्तु, व्यक्ति आदि के दिखने या देखने से कर्म नही बधते परन्तु उनके साथ सुख-दु ख रूप सबध जोडने से कर्म-बधते हैं । सुखात्मक सबध जोडने से राग और दु खात्मक सबध जोडने से द्वेष उत्पन्न होता है । यही सस्कार–निर्माण या कर्म-बध का कारण है ।

किसी वस्तु को मात्र देखना 'द्रष्टाभाव' है और उस दृश्यमान वस्तु, व्यक्ति आदि से सुख चाहना, दु ख मानना अर्थात् सुखी-दु खी होना भोक्ताभाव है और उन्हे प्राप्त करने बनाये रखने अथवा दूर हटाने आदि के लिए प्रयास करना कर्त्ताभाव है । कर्त्ता-भोक्ता भाव राग–द्वेष होने के द्योतक है, कर्म–बध होने के कारण हैं । यह नियम है कि द्रष्टाभाव मे राग–द्वेष नही होता । जहा राग–द्वेष नही होता वहा समभाव होता है, स्वभाव होता है । जहा समभाव होता है वहा स्वभाव मे स्थित रहना होता है वहा न प्रभाव अकित होता है, न सस्कार–निर्माण होता है, न कर्म-बध होता है और न सबध स्थापित होता है । जिससे सबध स्थापित नही होता उसका स्मरण नही रहता । इसके विपरीत जहा कर्त्ता-भोक्ता भाव है वहा सबध स्थापित होता है । जहा सबध है वहा बधन है । यह बधन ही कर्म–बध है । यह बध या सबध ही स्मृति के रूप मे उदय आता है ।

यह नियम है कि जो जिससे बधा हुआ है सबध जोडे हुए है उसे उसका स्मरण आता है । किसी वस्तु, व्यक्ति, घटना, दृश्य आदि का स्मरण आना उसके साथ सबध या बध का द्योतक है । किसी का स्मरण तब तक रहता है जब तक

उसके साथ किसी न किसी प्रकार का सवध का वध है । इस सबंध का विच्छेद करते ही उसका वधन टूट जाता है फिर उसका स्मरण नही आता अर्थात विस्मरण हो जाता है । यह विस्मरण होना वधन टूटना है ।

विस्मरण होना सवध–विच्छेद होने का द्योतक है । सवध विच्छेद होना ही असग हो जाना है । इसे ही त्याग कहा जाता है । त्याग मे सयम और तप (सवर और निजरा) दोनो समाविष्ट है । विषय-कषाय रूप दोषो को निदनीय व हेय जानकर उनकी पुनरावृत्ति न करने रूप व्रत ग्रहण करना सयम है और उनकी स्मृति भी न करने का दृढनिश्चय करना वोसिरामि है । सयम या व्रत ग्रहण से नवीन कर्मों का वध होना रुकता है । वोसिरामि से पूवकृत कर्मों का, मुक्त भोगो का सवध-विच्छेद होने से उनका तादात्म्य टूटता है जिसस उन कर्मों का क्षय होता है ।

साधक का हित इसी मे है कि घटना से मिलने वाली शिक्षा को ग्रहण करे और उस घटना को भूल जाय, विस्मरण कर दे । घटना की स्मृति से कम सजीव, सत्त्वयुक्त, सहज रहते हैं फिर वे कम उदय हाकर नवीन कर्मों के ब के कारण बनते हैं । इस प्रकार घटना की स्मृति से कम प्रवाहमान रहते हैं, घटना की स्मृति से उन कर्मों का सिचन होता रहता है जिससे वे हरे भ (सजीव) रहते हैं । घटना की विस्मृति से वे कर्म निर्जीव (नि सत्त्व निष्प्राण होकर निजरित हो जाते हैं अर्थात् जैसे निर्जीव-सूखे पत्ते झड जाते हैं वसे क भी झड जाते हैं । यह आपेक्षिक दृष्टिकोण है अत कम निर्जरित या क्षय कर का सबसे सुगम, सहज व सुगम उपाय है घटनाओ को विस्मरण कर देना । य वोसिरामि साधना है, कर्मों से मुक्ति पाने की साधना है । वोसिरामि साधना सबध विच्छेद, असंगता नि सगता, निष्कामना, निममता, निरहकारता, त्या निहित है ।

'वोसिरामि' शब्द का दूसरा सस्कृत रूप 'व्युत्सजयामि' बनता है जिसक अथ है मैं व्युत्सजन, विसजन, व्युत्सग करता हू । 'व्युत्सग' शब्द ससग श का विलोम अथवाची है । ससर्ग का अथ है सग करना, सवध जोडना । अ व्युत्सग का अथ होता है सग छोडना, असग होना, सवध-विच्छेद करना । यह नियम है कि जिससे सबध हाता है उसी की स्मृति रहती है, उसी की याद आती है, यही वधन है । अत बधन रहित होने का उपाय व्युत्सग है, विसजन है वोसिरामि है । वोसिरामि के बिना सबध या वध टूटना सभव नही है । तात्पर्य यह है कि वधन रहित हाने की, मुक्ति [illegible] की 'वोसि[illegible] , सहज, सुगम साधना है जिसे अपनाने मे मानव [illegible] एव स्वा[illegible]

[illegible] नगर, [illegible]) ३०२०१७

सूर्या निबन्ध प्रतियोगिता मे प्रथम पुरस्कृत

समता एवं विश्व-शाति

❀ श्री मुक्तक भानावत

[आचार्य श्री नानेश के अर्द्ध शताब्दी दीक्षा वर्ष के उपलक्ष्य मे आयोजित स्व श्री कातिलाल सूर्या अखिल भारतवर्षीय निबध प्रतियोगिता मे सवश्री मुक्तक भानावत (उदयपुर) प्रथम, धर्मचन्द नागोरी (कानोड) द्वितीय तथा शातिलाल श्रीश्रीमाल (निम्बाहेडा) तृतीय रहे।

यह प्रतियोगिता इन्दौर के श्री गजेन्द्रकुमार सूर्या के सौजन्य से साधुमार्गी जैन सघ कानोड द्वारा आयोजित की गई जिसमे विजेता प्रतियोगियो को क्रमश ढाई हजार, पन्द्रह सौ तथा एक हजार रुपयो से पुरस्कृत किया जाएगा।

सयोजक श्री सुन्दरलाल मुडिया ने बताया कि इस प्रतियोगिता का विषय 'समता एव विश्व शाति' रखा गया था जिसमे राजस्थान के अलावा मध्य-प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा महाराष्ट्र के जैन व जैनेतर प्रतियोगियो ने भाग लिया।]

आज का युग विषमता, विसगति, विकृति, विवशता, विनाश और विकार प्रधान युग है। कही भी सुख-शाति, सौहाद, सहकार, स्नेह की प्रभावना की परिव्याप्ति देखने को नही मिलती। विश्व के किसी भाग मे चले जाइये, सब ओर जीवन-मूल्यो मे टूटन, बिखराव और ह्रास ही अधिक मिलेगा। इसीलिये वार-बार विश्व-शाति का नारा सुनाई पडता है। इससे लगता है कि भौतिक समृद्धि अलग चीज है और सहिष्णुता, समता, सौहाद आदि का अपना अलग भाव-दर्शन है।

मनुष्य और प्रकृति का चोली-दामन सा सम्बन्ध है। प्रकृति की जब-जब भी विकृति हुई है तब-तब मनुष्य की चेतना विषम और विखडित हुई है। इसलिये आज सब ओर का वातावरण असतुलित और आतक भरा है। इन सब विकृतियो के मूल को नष्ट करने के लिए समता-भाव की व्याप्ति आवश्यक है।

यह समता कई रूपो मे व्याख्यायित है। यह भाव भी है, गुण भी है, तत्त्व भी है, धर्म भी है, दर्शन भी है और सिद्धान्त भी है। सिद्धान्त की दृष्टि से यह विज्ञान भी है और कला भी है।

आज का व्यक्ति, व्यथित अधिक हो गया है। पहले का व्यक्ति, व्यक्ति गौण था, समाज अधिक था। जब व्यक्ति, व्यक्ति-केन्द्रित हो जाता है तब इसका भीतर और बाहर का लोक मलिन हो जाता है। उसके अन्दर की चेतना और

बाहर के विकार उसे बेचैन किये रहते हैं । ऐसी स्थिति मे वह भीतर कुछ और बाहर कुछ होता हुआ बनावटी जीवन जीता है । यह जीवन चू कि असहज होता है अत राग-द्वेष से ग्रस्त हो क्रोध, मान, माया, लोभ जैसे विकारो के जाले में उलझता हुआ दुराचारो की ओर गतिमान होता रहता है । अत अच्छा जीवन जीने के लिये समभाव की साधना बहुत आवश्यक है । समभाव की यह साधना आदमी के भीतर का, आत्मा का, अध्यात्म का भाव है । यह भाव ज्यों-ज्यों परिपक्व होता जाएगा, त्यों-त्यो सबके प्रति उसकी समदर्शिता बढ़ती जाएगी। समदर्शिता का यही भाव समता भाव है और इसी भाव से शांति का अजस्र उदधि फूट पड़ता है ।

समता दर्शन का महत्त्व सभी धर्मों, सम्प्रदायो, महापुरुषो, संतों, भक्तो, साहित्यकारो, पडितो और मनीषियो ने प्रतिपादित किया है ।

'समता' शब्द समानता की भावना का द्योतक है । समानता की यह भावना अच्छी-बुरी, अनुकूल-प्रतिकूल जैसी भी परिस्थिति हो उसमे समभावी बने रहना है । इस स्थिति मे न दु ख सताता है, न सुख उल्लास देता है । वह न किसी को छोटा समझता है, न किसी को बडा । वह न किसी से घृणा करता है और न किसी से प्यार । आचार्य कु दकु द ने मोह और क्षोभ से रहित ऐसे ही समत्व भाव को धर्म कहा है । लगभग ऐसी ही व्याख्या बाद के अन्य आचार्यों ने की है । महावीर स्वामी ने श्रमण बनने के लिये समता भाव को बडा महत्व दिया और 'चरित्त समभावो' कहकर समभाव को ही चारित्र की सज्ञा दी। उन्होंने कहा कि इन्द्रिय और मन के विषय रागात्मक मनुष्य के लिये दु ख के सेतु बनते हैं । वीतराग के लिये वे तनिक भी दु खदायी नही होते । उन्होंने श्रमण, साधक और वीतराग को सदा समता का आचरण करने का उपदेश दिया ।

आचार्य हरिभद्रसूरि तो यहा तक कहते हैं कि चाहे श्वेताम्बर हो या दिगम्बर, बुद्ध हो या अन्य कोई समता से भावित आत्मा ही मोक्ष को प्राप्त करती है ।

आचार्य नानेश ने परिग्रह को समता का सबसे बडा शत्रु माना और कहा कि इसमें धन, सम्पत्ति, सत्ता, पद, प्रतिष्ठा आदि सभी का समावेश हो जाता है । साधक को चाहिये कि वह इससे दूर रहे और सयमित बनता हुआ अपनी विकृतियो का दमन कर समता की साधना करे ।

श्रीमद् जवाहराचार्य ने बताया कि वास्तविक शाति तो मनुष्य के अपने भीतर है । समता की बाती से यह अपनी आत्मा को यदि प्रकाशित किये रहेगा तो वह कभी अशात नही होगा । ऐसा करने से जब उसकी आत्मा निष्कलंक बन जायगी तब उसका अन्त करण समता की सुधा से आप्लावित रहेगा ।

गीताकार श्रीकृष्ण ने कहा कि जिसकी बुद्धि मे समता की प्रतिष्ठा है वह परम समतावादी है। ऐसा व्यक्ति राग और द्वेष दोनो से ऊपर उठा हुआ त्यागी और सन्यासी है। वह सबको समभाव से देखता है चाहे वह विद्याविनय सम्पन्न ब्राह्मण हो अथवा गाय हो, हाथी हो, कुत्ता हो या कि चाडाल हो। जिसका मन ऐसी समता मे स्थिर हो चुका होता है वही परम शाति का धारक होता है।

इसी विचार को लेकर कई लोग यह कहते पाये जाते हैं कि समता और विश्व-शाति दोनो ही एक प्रकार से आदर्श हैं। भौतिक रूप से न समता सभव है न विश्व-शाति। जिस ससार मे हम रहते आये हैं और जो मनुष्य हमे दिखाई दे रहा है उसमें कही समभाव और शाति नजर नही आती। यथार्थ मे तो हमे यही लगता है कि कोई भगवान भी चाहे तो समता और विश्व-शाति को मूर्त्त रूप नही दे सकता। कहना तो यह चाहिये कि स्वय भगवान भी अपने भक्तो पर आश्रित हैं। यदि भक्त उसकी सेवा पूजा और आराधना-प्रतिष्ठा न करे, यश-गाथा न गाये, सामाजिक-सस्कारो और दिन-प्रतिदिन के जीवन-चक्र मे उसकी मानता को न स्वीकारे तो कौन उसे भगवान कहेगा और कैसे उसका अस्तित्व बना रहेगा? यदि भगवान सामर्थ्यवान है तो उसके सारे भक्त शुद्धाचारी और पुण्यकर्मी क्यो नही बनते पाये जाते ह? क्या कारण है कि उसके दरबार मे ऐसे लोगो की ज्यादा भीड लगी रहती है जो मनुष्य-मनुष्य के प्रति भी स्नेहशील विचार और व्यवहार लिये नही होते अपितु वे शोषण और अत्याचार के ही सरक्षक और सवाहक पाये जाते हैं?

दूसरी ओर डॉ नेमीचन्द जैन समता को मनुष्यता का पर्याय मानते हुए समता-समाज को वर्ग-भेद रहित समाज की स्थापना का सास्कृतिक सूत्रपात मानते हैं। उनका कहना है कि समत्व कोई काल्पनिक स्वर नही होकर ठोस सत्य है जिसे हमारे तीर्थंकरो ने शताब्दियो पूर्व आकार दिया था। समत्व एक ऐसा क्रातिकारी सूत्र है जिसको जीवन मे उतारते चले जाने पर समाज मे कोई नगा, भूखा, प्रताडित और अशात रहे, यह असभव है।

अहिंसा को समत्व की धात्री बताते हुए डॉ जैन ने स्पष्ट किया है कि ऐसा नही है कि हम किसी का खून करें तो ही हिंसा हो। अधिक आहार करना, अधिक कपडा पहनना, अधिक परिग्रही होना भी हिंसा है और यदि इसका और सूक्ष्म विश्लेषण करें तो क्रोध आदि भी हिंसा है। आवश्यकता इस बात की है कि हम विसगतियो के मूल पर अपना ध्यान केंद्रित करें। क्रोध घटकर इतना कम रह जाय कि हम उसकी अनुभूति ही न कर पाये। बैर मैत्री मे बदल जाय। मान सबका सम्मान बन जाय। लोभ लाभ मे बट कर समत्व और शाति का कारण बन जाय। यह सब जब हो जायगा तब विश्व शाति की कल्पना यथार्थ होने लगेगी।

महावीर ने समता और विश्व-शांति की आवश्यकता बहुत पहले ही प्रतिपादित कर दी थी और इसका व्यावहारिक उपाय और उपयोग भी बता दिया था उन्होने कहा था—

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्तिमे सव्व भुएसु, वेर मज्झ न केणई॥

अर्थात् मैं सब जीवो से क्षमा चाहता हू। सब जीव मुझे क्षमा करें। सभी प्राणियो के प्रति मेरा मैत्रीभाव हो, किसी के प्रति वैर न हो।

प्रश्न उठता है सब जीवो से क्षमा की याचना कौन कर सकता है? वही न, जो सबके प्रति समता अथवा समत्व का भाव रखता हो। जो राग द्वेष से ऊपर उठा हो। जिसका किसी में ममत्व और आसक्ति का भाव नहीं हो। जो मन से शुद्ध और विनयवान हो वही तो क्षमा की याचना करने की सामर्थ्य रखेगा और फिर क्षमादान देने वाला भी शुद्धात्मा, कलक और कपट रहित होगा तो ही किसी को क्षमा कर सकेगा। सच तो यह है कि क्षमा मागना और क्षमा देना दोनो ही *उच्च एव उदात्त पुरुषों के आत्मिक गुण हैं।* ससार के सभी प्राणियो से मत्री भाव रखने वाला व्यक्ति समग्र विषमताओ, विकृतियों, विपदाओ और विकारो से मुक्त होगा तभी मन, वचन, काया से वैर भाव दूर कर अपनी आत्मा को शुद्ध करने की भावना व्यक्त करेगा।

जब ऐसे व्यक्तियो का समाज, शहर, राज्य और राष्ट्र बनेगा तो निश्चय ही विश्व शाति का माग प्रशस्त होगा।

बीसवीं शताब्दी नवा दशक समाप्त होने जा रहा है। इन नौ दशकों मे विश्व मे जितना उतार-चढाव, ऊहापोह और आतक देखा-सुना गया इतना पिछली किसी शताब्दी मे नहीं रहा। इस युग का मानव सर्वाधिक कुठाग्रस्त, अशांतिकर्मी, आसमोगी, आतक का शिकार, असतुलित और विषमताओं से ग्रस्त रहा। ज्ञान और विज्ञान के साधना ने जितनी भातिक उन्नति इस युग मे की, वह कल्पनातीत ही कही जा सकती है। मनुष्य चद्रलोक मे पहुच गया और पाताल को भेदकर अपने साहसपूर्ण कौशल से जो शक्ति अर्जित कर पाया वह जहा उसके विकास का परम सोपान है वहा उसके विनाश का चरम भी है। इसीलिये वह ज्यों-ज्यों विकासगामी बनता है त्यो त्यो विनाश की छाया भी उसे झकझारे रहती है। विकास का यह फैलाव सवथा भौतिक है, आत्मिक नहीं। भौतिक विकास बाहरी चमक-दमक तक सीमित रहता है। आत्मा की ऊर्जा से वह अलग-थलग होता है इसलिये उसके साथ जीवनी-शक्ति की सजीवनी का अभाव रहता है। यही अभाव उसे खड-खड किये रहता है। जहा अखडता खड-खड मे विचरण करती हो, एकता अनेकता मे पलती हो वहा टूटन ही टूटन दिखाई देगी। इसी लिये इस युग में हमारी सभ्यता, सस्कृति, सस्कार और सरोकार जिस रूप में

बदले, बिगडे, कुत्सित और दूषित हुए उससे प्रकृति और मनुष्य का सारा पर्यावरण ही विनष्ट हो गया। यहा तक कि साधको और सतो के साधना और तपस्या स्थल भी इस प्रदूषण की मार से बच नही पाये।

सयुक्त परिवार की परम्पराओ मे चली आ रही आधार शिला डगमगा गई। स्नेह, सहिष्णुता और सौहार्द के रिश्ते-नाते समाप्त हो गये और भाई-भाई का दुश्मन हो गया। कहा तो यह विषमता और कहा महावीर का वह समता-दशन जहा ग्वाले द्वारा उनके कानो मे कीलें ठोके जाने पर भी वे तनिक भी विचलित न हुए और गुस्से मे फुफकार खाते हुए अत्यन्त क्रुद्ध सप के डसे जाने पर भी उसका कोई जहर उन्हे विष नही दे पाया बल्कि क्षमा मूर्ति महावीर के समता दर्शन का प्रभाव देखिये कि सप द्वारा डसे हुए स्थान से खून की धार प्रवाहित होने के बजाय दूध की धारा फूट पडी। इससे सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि महावीर कितने क्षमाशील थे! खून अथवा जहर की बजाय दूध की धारा प्रवाहित होना साधारण तो नही किंतु असाधारण की भी असाधारण घटना है। एक मा का अपने बच्चे के प्रति जब अति वात्सल्य का भाव उमडता है तब उसके स्तन से दूध की धार फूट पडती है। एक सप के डसने से यदि महावीर के पाव से दूध की धार फूट पडती है तो यह अदाज लगाना तो कठिन नही है कि महावीर मे उस सप के प्रति करुणा का, वात्सल्य का, समता और स्नेह का कितना प्रेम भाव रहा होगा और वे कितने शाति के अजस्र स्रोत अपने भीतर छिपाये होगे।

इसी भाव भूमि को लेकर मानवतावादी सौन्दर्यचेता कवि सुमित्रानदन पत ने मनुष्य को सारी समता और विषमता का मूल माना और उसी को केन्द्रित करते हुए कहा—

> जग पीडित रे अति दुख से,
> जग पीडित रे अति सुख से।
> मानव जग मे बट जाये—
> सुख दुख से औ-दुख सुख से।।

सचमुच में समता और विषमता का मूल कारण अति सुख और अति दुख ही है इसीलिये सुख और दुख का अतिपन यदि आपस में बटकर एकमेक हो जाय तो ही विश्व मे समता का सुख और समता की शाति परिव्याप्त हो सकती है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने तो सारे दुख-सुख का केन्द्र मनुष्य को माना और उसी को सावधानी की ललक देते हुए हुकार भरी वाणी मे कहा—

> यही पशु प्रवृत्ति है कि,
> आप आप ही चरे,

अखड आत्म भाव जो
असीम विश्व मे भरे,
मनुष्य है वही कि जो
मनुष्य के लिये मरे ।

समता और विषमता मानवता और पशुता की दो अलग-अलग धुरियां हैं । इन्हें समानधर्मी अक देने के लिये मनुष्य को अपने आत्म-भाव के नवास का सर्वहारो के लिये चैतन्य कर देना होगा । राजस्थानी के मतिमान कवि डॉ नरेन्द्र भानावत ने अपने अनेक दोहो मे समता और विश्व-शाति को बडे ही टकसाली भावो में व्याख्यायित किया है । उदाहरण के लिये तीन दोहे यहा द्रष्टव्य हैं—

(१)

समता सू जडता कटै, जागै जीवन-जोत ।
अन्तस मे फूटै नवा, सुख-सम्पत रा स्रोत ।।

(२)

समता-दीवो जगमगै, अंधियारो मिट जाय ।
विण बाती विण तेल रै, घट-घट जोत समाया ।।

(३)

जतरा दीवा सब जलै, पसरे जोत अनन्त ।
वारै बरखा, डूज पण, भीतर समता-मन्त ।।

समता और शाति केवल शब्द नही हैं और न बाहरी आचरण-मूलक कथन हैं । इनकी तोतारटन्त किसी भी जीवन और राष्ट्र को खुशहाल नही बना सकती ये धर्म स्थानो, शास्त्रो, पडितो अथवा सार्वजनिक मत्रो के वाचन भी नहीं हैं और न किसी यज्ञ की आहुति के उच्चारण हैं । ये तो मनुष्य की अन्त चेतना के वे मणके हैं जो उसके घट-घट से निसृत हैं, वे शीतल उच्छवास हैं जो जीवन की दाहकता का शमन करते हैं ।

समता का जहा ऐसा समाज, राज और राष्ट्र होगा वहा विश्व-शाति की गगा ही का प्रवाह होगा । इस दृष्टि से समता और विश्व शाति दोनों ही का अन्योनाश्रित अ त सबध है । जहा समता होगी वहा शाति ही शाति होगी । न विषमता मे शाति की कल्पना की जा सकती और न अशात वातावरण में समता का साहचय ही देखा जा सकता है । इसलिये विश्वशाति की कल्पना के मूल मे समता भाव का अ कुरण आज की सर्वोपरि आवश्यकता है ।

—३५२ श्रीकृष्णपुरा, उदयपुर-३१३००१ (राज)

□

'संयम' और 'सेवा'

❀ मोहनोत गणपत जैन

लगभग ग्यारह सौ वष पूर्व दक्षिण भारत मे वाचस्पति मिश्र नामक विद्वान् ने शास्त्रो पर टीकाए लिखी थी जो विश्व प्रसिद्ध हैं। ग्रथ-लेखन और तपस्या मे ही वे इतने आत्मसात हो गए थे कि अपनी विवाहिता पत्नी तक को भी नही पहचानते थे। शादी के छत्तीस वष ऐसे ही ही गुजर गए मगर उनका जीवन सयमी रहा। एक वार वे 'शकर भाष्य' पर टीका लिखा रहे थे किंतु एक पक्ति ठीक से वैठ ही नही रही थी। इसी वक्त दीपक की लौ कुछ मद होने लगी अत पढने-लिखने मे व्यवधान होने लगा। उसकी पत्नी ने दीपक सतेल कर वाती को सतेज किया। उसी वक्त वाचस्पति की नजर उस पर पडी और उन्होंने पूछा—'देवी, आप कौन ?' उनकी व्याहता पत्नी अवाक् रह गई। छत्तीस-वर्ष पश्चात भी क्या पत्नी को अपने ही पति के सम्मुख परिचय देना पडता है ? मगर उसने वडे धैय और शातचित्त से प्रतिप्रश्न किया—क्या आपको अपने विवाह की स्मृति है ? यह सुनकर वाचस्पति को कुछ धुधली सी स्मृति जागृत हुई। उन्हें मौन और विचारमग्न देख पत्नी ने कहा—आपका विवाह मेरे साथ हुआ था, मगर अब इस वात को छत्तीस वष हो गए हैं। यह सुनकर वाचस्पति का हृदय भर आया।

अन्तत वाचस्पति वोले—तुम्हारे साथ मेरा विवाह हुआ, छत्तीस वष हो गए। तुम निरन्तर सेवारत रही फिर भी एक शब्द तक मुह से कभी नही कहा, इतनी मूक सेवा। ऐसी निष्काम सेवा तुमने तो मुझ को ऋषि ही वना दिया, वोल–तेरी क्या आकाक्षा है ? पति की वात सुन पत्नी ने कहा—वस ! आपकी सेवा ही मेरी कामना है। विश्व-कल्याण के लिए आप इन शास्त्रो की टीकाए लिखते हैं। आपकी सेवा करते-करते अगर मेरा जीवन समाप्त हो जाए तो मैं कृतार्थ हो जाऊगी। वाचस्पति ने बहुत आग्रह किया कि वह कुछ न कुछ मागे मगर पत्नी ने कुछ भी वाछना नही की। अन्तत वाचस्पति ने उसका नाम पूछा तो पत्नी ने 'भामती' कहा। इस पर वाचस्पति ने कहा—'शकर भाष्य' पर लिखी मेरी इस टीका का नाम 'भामती टीका' होगा।

ऐसे सयमी, दयालु होने थे ऋषि महात्मा और इस देश की स्त्रिया, जिन्होंने एक ही घर मे सयम पूवक छत्तीस वष व्यतीत कर दिए। क्या पूर्ण सयम के अभाव मे ज्ञान की उपलब्धि सभव है ?

—सिटी पुलिस के पास, जोधपुर-३४२००१

□

मै तो संयम-सा खिल जाऊ

डॉ सजीव प्रचडिया 'सोमेन्द्र'

भोग और ईप्सा के घर मे
घिरा हुआ
आज आम आदमी
आगन की खूटी से बधी
अरगनी मे
जैसे लटक गया है
मानो गीले कपडो की तरह
पसर गया है।
मतिभ्रम का मदिरा –
जैसे पी लिया है उसने
वह पीछे मुडकर, देखने का
यत्न करता है
मानो मुक्ति का प्रयत्न करता है
किन्तु पिया गया मदिरा
उसके लिए रह जाता है
सिर्फ खतरा ही खतरा।
मान/कषायो के द्वार
जैसे खुल जाते हैं
और गहरे हो जाते हैं
हाथ लकीरो के
अध कच्चे हिसाब।
तब,
'सयम खलु जीवनम्'
का अर्थ बाघ
थपथपाने लगता है
उसकी आत्मा का अतिम प्रहर
मानो उसे जगाने लगता है
और कहता है
मैं तो संयम सा खिल जाऊ
पर तब तक-
मैं बूढा, हो चुका होता हू
और शायद
गणित के सूत्रो को
सिद्ध करने म तमाम उम्र
यू ही खो चुका होता हू ॥

—मगल कलश, ३९४ सर्वोदय नगर आगरा रोड, अलीगढ २०२००१

पत्रात्मक निबन्ध प्रो कल्याणमल लोढा का पत्र

साहु साहु त्ति आलवे

प्रिय डॉ भानावत

आपका कृपा पत्र मिला । यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपके सपादन मे पूज्यवर श्री नानालालजी महाराज सा को वदना हेतु 'श्रमणोपासक' का विशेषाक निकल रहा है । मैंने उनके एक दो बार दशन किए थे । वे महत्तम जैनाचार्य हैं और हैं महान विभूति । श्रमण धर्म के उन्नायक, उद्धारक और उत्थापक । मेरी उन्हें प्रणति ।

मैं यह मानता हू कि मानव समाज के वतमान सकट और व्यामोह के लिए जैन धम ही एक समथ और सार्थक उपचार है । मैं तो उसे हमारी आधि-व्याधि के लिए परमोपकारक सजीवनी ही कहना चाहू गा । यह एक भ्राति है कि जैनघम व्यक्ति-परक है । वह जितना व्यक्ति के लिए है, उतना ही समाज के लिए भी । वह लोक मानस का धम है, लाक सिद्ध । जैन धम की विशेषता है कि वह दशन, अध्यात्म, आचार, नैतिकता और वैज्ञानिक प्रतिपत्तियो मे अन्यतम महत्त्व रखता है । वह जितना प्राचीन है, उतना ही आधुनिक । वतमान युग मे उसकी प्रासगिकता निर्विवाद है । हमारे आदि तीर्थंङ्कर ने समूचे विश्व को असि, मसि और कृषि का पाठ पढाया । बौद्ध धम की भाति वह अनेक देशो मे भले ही नही गया हो, पर इससे उसका विश्वव्यापी महत्त्व क्षुण्य नही हुआ, अपितु यह उसके अधिकृत रहने का भी एक पुष्ट कारण है । बौद्ध धर्म की भाति जैन धम मे वज्रयान जैसी साधना पद्धति कभी नही रही । हमारे धर्माचार्यों ने उसके प्रकृत्त और मूल सिद्धान्ता और सस्थानो को यथावत् रखा । मैं नही समझता कि अन्य कोई धम इतना अधिकृत रह पाया हो । जैन धम की प्राचीनता अब सवमान्य है । ईसाई पादरियो ने किसी तीर्थंकर की निन्दा नही की । कन्याकुमारी की शिला पर जिसे आज विवेकानन्द शिला कहते हैं—पार्श्वनाथ के चरण-चिह्न अ कित थे । वस्तुत चरण पूजा का प्रारम्भ ही जैनियो से हुआ । मैसूर मे वेल्लुर के केशव मदिर मे 'अहम् नित्यय जैन शासनरता लिखा है ।

जैन धर्माचार्यों, साधुओ और मुनियो ने उदार व व्यापक दृष्टिकोण अपनाया । वे कभी पूर्वाग्रह ग्रसित नही हुए, न कभी सकीण और अनुदार रहे । हरिभद्राचार्य, आचाय सिद्धसेन व हेमचन्द्राचाय के कथन इसके प्रमाण हैं । एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा—

पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेष कपिलादिषु ।
युक्तिमद् वचन यस्य, तस्य काय परिग्रह ॥

यह उदारता और सहिष्णुता जैन धम की अन्यतम विशेषता है। वह सदैव यही स्वीकारता रहा—

ब्रह्मा व विष्णु र्वा, हरो जिनो वा नमस्तस्मै ।
बुद्ध व वर्धमान शतदल निलय,केशव वा शिव वा ॥

वह सब प्राणियो को समान दृष्टि से देखता है पर उसका ध्येय है "परस्परोपग्रहो जीवानाम्" । न कोई उच्च है और न कोई नीच । जन्म से न कोई ब्राह्मण होता है और न शूद्र । कर्म ही वैशिष्ट्य रखता है । महावीर ने कहा- "समयाए समणो होइ, बभचरेण बभणो" । उनका उद्घोष था—

न वि मुण्डिएण समणो, न ओंकारेण बभणो ।
न मुनणा नण्णवासेण, कुसो चरेण न तावसो ॥

उस युग मे यह क्राति का स्वर था । बुद्ध ने भी यही माना—

न जटाहि न गोत्तेन, न जच्चा होति ब्राह्मणो ।
यम्हि सच्चञ्च धम्मो, च सो सुचो सो च ब्राह्मणो ॥
(ब्राह्मण वग्गो-॥)

हमने माना "कम्मेवीरा ते धम्मेवीरा" । वशिष्ठ भी यही कहते हैं—

कर्मेण पुरुषोराम पुरुषस्यैव कमता ।
एते ह्यभिन्ने विद्धि त्वयया तुहिन शीतते ॥

'महाभारत' मे भीष्म कहते हैं—

अपारे यो भवेत्पारमल्पवे य भवोभवेत् ।
शूद्रो व यदिवऽप्यन्य सर्वथा मान महति ॥

मैं जैनधम को विश्व मे सभी धर्मों, दशनो और अध्यात्म का विश्वकोश गिनता हू । 'महाभारत' के लिए कहा जाता है कि "यन्न भारते तन्न भारते" जो महाभारत में नहीं है, वह भारतवर्ष मे नही है । मैं तो समझता हू कि यन्न जिन धर्मे तन्न अन्य धर्मे" । यह कोई गर्वोक्ति नहीं, सत्योक्ति है ।

भगवान महावीर ने मनुष्यत्व को श्रेष्ठतम गिना—'माणस्स खु सु दुल्लहं' वे मनुष्यो को "देवाणुप्पिय' कहकर सबोधित करते थे । आचाय अमितगति ने दोहराया "मनुष्य भव प्रधानम्, सभी धम भी यही मानते हैं । व्यास ने कहा- "नहि मानुषात् श्रेष्ठतर हि किंचित" । ग्रीक दाशनिकों की भी यही भावना थी—"मनुष्य ही सब पदार्थों का मापदण्ड है । जन धर्म इसी मनुष्यता के उद्घोष का पावन धर्म है । यहा यह भी कहना सगत है कि मनुष्यता का यह उद्घोष उसके पुरुषार्थ का उद्घोष है—उसकी उच्चतम स्थिति का । जन धम मनुष्य

पुरुषार्थ का धर्म है। वह बताता है कि देव केवल कल्पना मात्र है। मनुष्य अपने पौरुष के बल पर ही श्रेष्ठतर पद प्राप्त करते हैं—

"पुरिसा तुममेव तुममित्त, किं बहिया मित्तमिच्छसि"

विश्वकोप मे कोई ऐसा रत्न नही जो शुद्ध पुरुषार्थजनित शुभ कर्म से न प्राप्त हो सके। पुरुषार्थहीन व्यक्ति सदा परतन्त्र है। जिस पुरुषार्थ की देशना महावीर ने दी, वही अन्यत्र भी कहा गया—

दैव न किंचित कुरुते केवल कल्पनेदवेशी।
मूढै प्रकल्पित दैव तत्परास्ते क्षय गता
प्राज्ञास्तु पौरुषार्थेन पदमुत्तमतां गता ॥

ससार के सभी धर्मो के ग्राह्य तत्त्वो का सन्निवेश जैन धर्म मे मिल जाएगा। महावीर कहते हैं "वओ अच्चेति जोव्वण व"—आयु और जीवन बीता जा रहा है। काल के लिए कोई समय-असमय नही—न कोई उससे मुक्त है "नत्थि कालस्स णा गमो"। इसीलिए 'अप्रमत्त होकर जीवन-यापन कर और विवेकपूर्ण जीवन-पथ पर चलकर सत्य युक्त हो'। काल सदा परिवर्तनशील है और उपयोग जीव का धर्म। इसलिए "समय गोयम मा पमायए" क्षण भर का प्रमाद भी घातक है। सत्य की यह खोज और विश्व के सभी प्राणियो के प्रति मैत्री का भाव ही सम्यक्त्व है और इसके लिए अनिवाय है आत्म-विजय, वही तो सबसे कठिन है। प्रभु कहते हैं—"वाह्य युद्ध सारहीन है, अपने से युद्ध कर। आत्म-विजय ही सच्चा सुख है"। अपने से युद्ध का यह अवसर दुलभ है—

अप्पाण मेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झण वज्झओ।
अप्पाण मेव अप्पाण, जइत्ता सुह मेहए ॥

यही जीवन का सार तत्त्व है—यही सच्चा पुरुषार्थ भी। इसी से मैं कहता हू जिसने जैन धम को जाना, उसने सभी धर्मो को जाना।

वैदिक ऋषियो ने कहा "आयुप क्षण एको पि सर्वरत्नैन लभ्यते"। सभी रत्नो मे आयु का एक क्षण मूल्यवान है। यही तो वीर प्रभु ने भी कहा पर अधिक दृढता से—"परिजूरइ ते सरीरय केसा पण्डुरया हवंति ते" एव "खण जाणाहि पंडिए"। साधक ! तुम क्षण को पहचानो—क्योंकि—

जागरहणरा णिच्च जागर माणस्स
जागरति सुत्त।
जे सुवति न से सुहिते जागरमाणे
सुह होति।

जैन धर्म बताता है क्षमा, सतोप, सरलता और विनय ही धर्म के चार द्वार हैं। सभी धर्मों ने भी यही स्वीकारा। छादोग्य उपनिषद् मे कहा गया—आत्म-

यज्ञ की दक्षिणा है—तप, दान, आर्जव, अहिंसा व सत्य। 'महाभारत' में विदुर सदव क्षमा, मादव, आजव और संतोष का उपदेश धृतराष्ट्र को देते रहे। महावीर ने अहिंसा को सर्वोपरि बताया, यही सभी धम भी कहते हैं, पर जो विशदता और व्यापकता जैन धर्म मे है, उतनी अन्यत्र नही। महावीर ने अहिंसा को 'भगवती' कहा। 'ऋग्वेद' का मत्र है—"अहिंसक मित्र का सुख व सगति हम प्राप्त हो (५-६४ ३)। वैदिक प्राथना मे 'अहि सति' का प्रयोग हुआ। यजुर्वेद ने भी स्वीकारा—'पुमान पुमा स परिपातु विश्वम् (३६-८), दूसरा की रक्षा ही धम है। 'अथव वेद' मे तो प्राथना की गई—"तद वृण्मो ब्रह्म वो गृहे सज्ञान पुरुषेभ्य' हे प्रभो, परिचित अपरिचित सबके प्रति समभाव-सद्भाव रखू। 'विष्णुपुराण कहता है—'हिंसा अधम की पत्नी है'। बौद्ध धम का भी यही मूलस्वर था—उसे यहीं तक गिनाए। सबने एक ही स्वर मे गाया—

अहिंसा, सत्य वचन दानाभिन्द्रिय निग्रह।
एतेभ्यो हि महाराज, तपो नानशनात्परम्॥

ईसाई धर्म मे भी यही दोहराया गया—"यदि कोई कहे कि वह ईश्वर से प्रेम करता है पर अपने भाई से घृणा व द्वेष, तो समझो, वह झूठा है। दस आदेशों मे भी अहिंसा ही मुख्य है। मनुष्यत्व की जिस साधना का वणन, जिस पुरुषाथ का विवेचन, जिस आत्म-विजय का महत्त्व, जिस अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचय और अपरिग्रह का उपदेश हमारे तीर्थङ्करो ने आदिकाल से दिया, वही सबने स्वीकारा। महावीर कहते हैं—

चत्तारि परमगाणि, दुल्लहाणीह जतुणो।
माणा सुत्त, सुई सद्धा सजमभिय वीरिय॥

ससार मे चार बात दुलभ हैं—मनुष्यत्व, सद्धम का श्रवण और अनुपालन, श्रद्धा और सयम मे पुरुषाथ। इसी से महावीर ने देवताओं के कामयोगी को मनुष्य से हजार गुना अधिक बताया। आचाय समन्तभद्र ने जिन शासन को सर्वोदय कहा—'सर्वोदय तीर्थमिद तवैव"। यह आत्मश्लाधा नहीं, एक निर्विवाद सत्य है।

भारतीय मनीषा का मूल स्वर परोपकार का रहा है। परोपकार रहित जीवन से मरण अच्छा है। जिस मरण से परोपकार होता है, वही जीवन वास्तव में अमूल्य जीवन है, "पर परोपकाराथ यो जीवति स जीवति"। अन्यत्र भी—

जीविता मरण श्रेष्ठ परोपकृति वर्जितात।
मरण जीवित मन्ये यत्परोपकृति क्षमम्॥

जैन शासन ने सदैव परोपकार को ही जीवन बताया। "सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमाग' कहने वाले उमास्वाति ने इस सूत्र में जीवन के परम लक्ष्य की ही बात कही। जैन धर्मावलम्बी की यही प्राथना है—

सत्वेषु मैत्रीं, गुणीषु प्रमोद,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परवम ।
माध्यस्थ भाव विपरीत वृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव ।

जीवन की यह परम उपलब्धि है । स्थानाङ्ग सूत्र (४-४-३७३) मे कहा है—मनुष्यायु का वध चार प्रकार से होता है—सरल स्वभाव, विनय भाव, दयाभाव और ईर्ष्यारहित भाव । 'तत्वाथ सूत्र' मे इसी की व्याख्या करते उमास्वाति कहते हैं —

अल्पारभ परिग्रहत्व स्वभाव मादवाजव च
मानुप स्यायुष (६-१८)

जैन धम की वैज्ञानिकता तो आज सर्वविदित हो रही है । हमने जीव-अजीव तत्व का जो वर्णन किया, आज विज्ञान भी उसे स्वीकार कर रहा है । 'नन्दी सूत्र' मे कहा गया है—पचत्यिकाए न कयावि नामि, न कयाइ नत्थि, न कयाइ भविस्सइ । भुविं च भुवइ अ भविस्सइ आ । धुवे नियए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठि निच्चे, अरुवो"(५८)। पाच अस्तिकायो का यह वणन कि वे सदा थे, सदा हैं और सदा रहेगे—ये ध्रुव, निश्चित, सदा रहने वाले, अनष्ट और नित्य पर अरूपी हैं । विज्ञान ने इस सत्य को प्रमाणित कर दिया । परमाणु दो प्रकार के हाते हैं- सूक्ष्म और व्यवहार । सूक्ष्म अव्याख्येय हैं । व्यवहार परमाणु, अनन्त अनन्त सूक्ष्म परमाणु, यह दलो का समुदाय है जो सदैव अप्रतिहत रहता है, (अनुयोग द्वार–३३०-३४६) । वर्तमान विज्ञान ने एक नयी खोज की है "सुपर स्ट्रिंग्स" की इस खोज के अनुसार (जिसे टी आ ई कहते हैं) विश्व की सरचना सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्री (स्ट्रिंग्स) से हुई है । प्रोटोन, न्यूट्रोन, शरीर और नक्षत्र सभी इनसे वने हैं । यह प्रोटोन का एकपदम अति सूक्ष्म रूप है—जो मनुष्य की कल्पना से परे है—किसी यत्र से भी । इस अनुसधान ने विज्ञान की समूची प्रक्रिया को ही वदल दिया । यह आधुनिक खोज जैन तत्त्व दशन की वैज्ञानिकता का पुन प्रमाणित कर देती है । विज्ञान के दो महत्त्वपूण सिद्धान्त "फलक्म ऑफ रेस्ट" एन्ड "फलक्म ऑफ मोशन" भी वस्तुल अधम और धर्मास्तिकाय हैं । आज विश्व के प्रवुद्ध चिन्तक जैन धम के वैज्ञानिक विवेचन से आकृष्ट हो रहे हैं ।

आज समूचा मानव जीवन मानमिक उन्माद, उत्ताप और उपमदन से पीडित है । समाजशास्त्री कहते हैं कि आज व्यक्ति अपने को अस्तित्वहीन, आदश-हीन, प्रयोजनहीन और अलगाव की स्थिति मे समझकर आत्मा और समाज विपयस्त हो रहा है । एक ओर उसकी अन्तहीन आकाक्षाए और एपणाए हैं, दूसरी ओर उनकी पूर्ति के साधन सीमित हैं और अल्प । व्यक्ति और परिवेश एक दूसरे से विच्छिन्न हैं । विनोवाजी के शब्दो मे सत्ता, सम्पत्ति और स्वाथ का ही वोलवाला है । व्यक्ति, समाज और राष्ट्र–सबमे ज्ञात अज्ञात युद्धोन्माद है । फ्रास

में घनिक समाज का महत्व है, इंग्लैंड में सामाजिक प्रतिष्ठा का और जर्मनी में राज्य सत्ता का। अमेरिका इन तीनों से ग्रसित है। वहां वैयक्तिक और सामाजिक जीवन आधुनिक सभ्यता की जडता और भौतिकता से सत्रस्त है। मानव से अधिक मशीन का महत्त्व है। आकाश के सुदूर नक्षत्रो का सधान किया पर मानवीय सवेदनशीलता सिकुडती गयी। बाह्य का विस्तार और अन्तर का समचन—यही विसगति है। आज जिस सास्कृतिक क्राति की आवश्यकता है उसका मूल स्रोत जन धम, दशन और सस्कृति मे ही विद्यमान है। महावीर जितने क्रातदर्शी थे उतने ही शातदर्शी भी। जैन धर्म ने सदैव युद्धोन्माद का विरोध किया। जिस व्यापक और विराट सत्य की प्रतिष्ठा की—वह था विश्वजनीन आत्म और विश्वजनीन समाज। उन्होने चीटी और हाथी मे समान आत्म-भाव को देखा। महावीर ने मनुष्य को पुरुषार्थ और आत्मविजय का सदेश दिया। प्राचीनतम होने के साथ वह नवीनतम भी है। एक ओर जैन धम ने सदव अधविश्वासो, जड परम्पराओं और पाशविक वृत्तियो के विरुद्ध क्राति की तो दूसरी ओर उसने मानव जीवन को उच्चतम विचार, आचार और व्यवहार की ओर अग्रसर किया। उसकी यह रचनात्मक दृष्टि अनुपमेय है—हमारे आचाय, उपाध्याय और साधु "तत्वज्ञ सवभूताना योगज्ञ सर्व कमणा' के आदश पुरुष थे।

यस्य सव समारम्भा कामसकल्पवर्जिता ।
ज्ञानाग्निदग्ध कर्माणतमाहु पण्डित बुधा ॥

जैन-मुनि पूर्णार्थ मे पण्डित हैं। अपनी ज्ञानाग्नि में उनके कम दग्ध हो गए हैं।

आज भी शत-शत श्रमण-वृन्द तत्त्वज्ञ, योगज्ञ, सुविज्ञ और प्रमाज्ञ होकर व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और मानवता के वतमान का परिष्करण कर उन्हें मगलमय भविष्य की ओर ले जा रहे हैं। पारसी धम के तीन महाशब्द हैं—हुमदा, हुखदा और हुविस्तार—अर्थात सुविचार, सत्य वचन और सुकाय। यही तो हमारे साधु समाज का जीवन है। पूज्य नानालालजी म सा का जीवन श्रमण आदर्शों की मजूषा है। उन्होने अपनी साधुता और श्रेष्ठता से जैन समाज का ही नहीं, वरन् सम्पूण मानव समाज और लोक मगल का पाञ्चजन्य फूका है। उन्हें मेरी प्रणति।

साभिवादन,

—२-ए, देशप्रिय पाक (ईस्ट) कलकत्ता-७०००२६
दि १०-१२-१६८६

आपका
कल्याणमल लोढा

卐

जैन दीक्षा एवं संयम-साधना

❀ प कन्हैयालाल दक

भारतीय सस्कृति अध्यात्म-प्रधान सस्कृति है। यह सस्कृति ऋषि-मुनियो के आश्रमो तथा तपोवनो मे पल्लवित व विकसित हुई है। 'दीक्षा' शब्द भी इसी सस्कृति की एक विशेष देन है। 'दीक्षा' शब्द का अर्थ किसी विशेष प्रकार के सस्कार से लिया जाता है। जीवन मे किसी विशेष प्रकार का प्रारम्भ करना भी दीक्षा की कोटि मे आ सकता है, जैसे उसने गृहस्थाश्रम की दीक्षा ली, अथवा अमुक व्यक्ति ने अमुक स्थान पर जाकर व्यापार कार्य की दीक्षा ली—व्यापार काय का 'श्री गणेश' किया। 'जैन दीक्षा' भी इसी प्रकार का एक आध्यात्मिक सस्कार है, जिसमे सवप्रथम इस सस्कार से सस्कारित होने वाले को अपने गुरु का निश्चय करना होता है, साथही अपने भावी जीवन का उच्चतम लक्ष्य भी निश्चित कर लेना होता है।

जीवनोपयोगी व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करने के साथ-साथ एक भावुक व्यक्ति को माता-पिता के सुन्दर सस्कार प्राप्त होते हैं, सत्गुरुओ का समागम प्राप्त होता है, उनके उपदेश व प्रवचन सुनकर उन पर मनन व चिन्तन करने का सुअवसर प्राप्त होता है तब हजार मे से एक या दो व्यक्ति ससार की असारता का, शरीर तथा वैभव की अनित्यता का और जन्म-मरण की ध्रुवता का अनुभव करते हैं, तब उनके हृदय मे ससार का परित्याग करने की इच्छा होती है। वे सोचते हैं, जो लौकिक शिक्षा, मैंने प्राप्त की है, वह जीवन का कल्याण करने के लिये अपर्याप्त है। उन्हे किसी सद्गुरु से यह श्रवण करने को मिलता है कि सा शिक्षा या विमुक्तये' अर्थात् जिससे ससार के बन्धनो से मुक्ति प्राप्त की जा सके, वही सच्ची शिक्षा है। इस मत्र से अनुप्राणित होकर वे सासारिक सम्वन्धो का, पिता-पुत्र के सम्बन्ध का पति-पत्नी के सम्बन्ध का, धन-वैभव का, सम्पत्ति का तथा सासारिक सुखो का त्याग करने के लिये जब कटिबद्ध हो जाते है, सुदेव, सुगुरु तथा सुधम के स्वरूप को समझने की चेष्टा करते हैं और तब जैन दीक्षा धारण करते हैं। यह है जैन-दीक्षा धारण करने की पृष्ठभूमि।

दीक्षा धारण करने वाले व्यक्ति मे भी अनेक प्रकार की योग्यताए अपेक्षित है। 'धम सग्रह' नामक ग्रथ मे दीक्षार्थी मे निम्नलिखित १६ गुणो का पाया जाना आवश्यक बताया गया है—

१ दीक्षार्थी आर्य देश मे उत्पन्न हुआ हो।

२ वह उच्च कुल तथा उच्च जातीय सस्कारो से सम्पन्न हो।

३ जिसके दीक्षा मे बाधक अशुभ कर्म क्षीण हो गये हो।

४ वह नीरोग हो तथा कुशाग्र बुद्धि हो ।

५ जिसने ससार की क्षणभगुरता का भली-भाति प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया हो ।

६ जो ससार से विरक्त होने का दृढनिश्चय कर चुका हो ।

७ जिसके कषायो तथा नो कषायो का उदय मन्द हो।

८ जो माता–पिता तथा गुरुजनो के प्रति कृतज्ञता का अनुभव करता तथा उनके उपकार को मानता हो ।

९ जो अत्यन्त विनीत हो । दीक्षार्थी का विनीत होना इसलिये आवश है कि जैन धम का ही नही, किसी भी धर्म का आधार ही विनय

१० दीक्षार्थी का राज्य से या राज्याधिकारियो से किसी प्रकार का विर न हा । राज्य विरोधी व्यक्ति को दीक्षा प्रदान करने से धम की त गुरु की अवहेलना होने की भावना बनी रहती है ।

११ दीक्षार्थी वाक्कलह करने वाला या धूर्त्त तथा चालाक न हो। दीक्ष का सरल-स्वभावी तथा निष्कपट होना परमावश्यक है ।

१२ जिसके सभी अग-अवयव पूण हा, वह सुडोल तथा स्वस्थ हो ।

१३ दीक्षार्थी दृढ श्रद्धा वाला हो ।

१४ जो स्थिर स्वभावी हो अर्थात एक बार दीक्षा स्वीकार कर लेन पश्चात् यावज्जीवन उसे निर्दोप रूप से पालने मे समथ हो ।

१५ जो अपनी स्वय की तीव्र इच्छा से दीक्षा के लिये गुरु के समक्ष उ स्थित हो ।

१६ जिस पर किसी प्रकार का ऋण न हो और जो सदाचारी हो । उप युक्त गुणो मे युक्त मुमुक्षु दीक्षा धारण कर सकता है ।

शुभ तिथि, करण तथा शुभ मुहूत म 'करेमि भते' के पाठ के शब्दोच्चारण द्वारा वह जीवन पयन्त का (यावत्कथिक सामायिक) सामायिक व्रत ग्रहण करके सवतोभावेन जन शासन को अथवा अपने गुरु को समर्पित हा जाता है। यावत्कथिक सामायिक व्रत को ग्रहण करने के साथ ही उसके सासारिक–पारिवारिक सम्बन्ध सवथा विछिन्न हा जाते हैं । अब वह छह महाव्रतो—पाच महाव्रत तथा छठा रात्रि–भाजन का त्याग को धारण करने वाला साधु कहलाता है ।

दीक्षित जन साधु मे दो प्रकार के गुण पाये जाते हैं — मूलगुण तथा उत्तरगुण । अहिंसा, सत्य, अचौय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन महाव्रता का पालन करना तथा यावज्जीवन के लिये रात्रि भाजन (अशन, पान, खाद्य तथा स्वाद्य) का त्याग करना साधु के मूल गुणा में गिना जाता है । दीक्षित साधु स्वय जीव

हिंसा (छहो कायो की) न करे, न अन्य से करावे और न जीव हिंसा करने वाले का अनुमोदन ही करे। इसी प्रकार से असत्य, चौय, अब्रह्मचर्य तथा परिग्रह के विषय मे भी समझना चाहिये। इसे तीन करण तथा तीन योग से महाव्रतो का पालन करना कहते हैं। पाच समिति, तीन गुप्ति का सम्यक् प्रकार से पालन करना, बावीस परिषहो को समभाव से सहन करना, तीन गुप्ति—मनगुप्ति, वचन गुप्ति तथा कायगुप्ति का पालन करना, निर्दोष आहार का सेवन करना अर्थात् ४२ प्रकार के दोषो का परिहार करके आहार ग्रहण करना, प्रतिदिन दोनो समय—प्रात काल तथा सायकाल वस्त्र, पात्रादि का विवेकपूर्वक प्रति लेखन करना, प्रात काल सूर्योदय से पूव तथा सायकाल सूर्यास्त के पश्चात् प्रतिक्रमण करना, ये तथा इसी प्रकार के अन्य कई कार्य साधु के उत्तर गुणो मे परिगणित होते हैं। नव-दीक्षित साधु को ग्रहणी तथा आसेवनी शिक्षाओ को अपने दीक्षा गुरु अथवा आचार्य से सीख कर साधुत्व का शनै शनै अभ्यास करना चाहिये।

जैन साधु के शास्त्रो मे २७ गुणो का वर्णन किया गया है, वे निम्न प्रकार हैं—

पाच महाव्रतो का पालन करना, पाच इन्द्रियो पर विजय प्राप्त करना, चार कषाय–क्रोध, मान, माया तथा लोभ का वर्जन करना, ज्ञान सम्पन्न, दर्शन सम्पन्न, चारित्र सम्पन्न, भाव से सत्य, तीन योगो से सत्य, करणो से सत्य, क्षमावान्, वैराग्यवान्, मन मे समभाव धारण करने वाले, वचन मे समता भाव का उच्चारण करने वाले तथा काया से समता को क्रियान्वित करने वाले, नव वाड सहित शुद्ध ब्रह्मचय का पालन करें, किसी भी प्रकार की वेदना हो, उसे समभाव से सहन करना तथा मारणातिक कष्ट का अनुभव हो, तब भी सयम का पालन करना।

इन गुणो के अतिरिक्त जीवनपयन्त पादविहार करना, एक वष मे दो बार अपने मस्तक के बालो का लोच करना तथा गृहस्थो के घर से भिक्षा माग कर लाना, ये सब आभ्युपगमिक परीषह कहलाते हैं। अर्थात् दीक्षा धारण करने से पूव पादविहारादि परीषह सहन करने होंगे, इसकी स्वय दीक्षार्थी ने स्वीकृति दी थी, इसलिये इन्हें आभ्युपगमिक परीषह कहा जाता है। यह कुल मिलाकर सक्षेप मे एक जैन दीक्षा का स्वरूप है, जिसे धारण करके एक व्यक्ति सर्वसाधारण का पूज्य हो जाता है, वन्दनीय हो जाता है। इस प्रकार की लोकोत्तर दीक्षा को धारण करना तथा आजीवन विवेकपूवक पालन करना साधारण व्यक्ति का काम नही है, उसके लिये अलौकिक क्षमा, सहनशीलता, साहस तथा उच्चकोटि के मनोबल की आवश्यकता है।

दीक्षा का अर्थ तथा उसका स्वरूप इन दो विन्दुओ पर प्रकाश डालने के पश्चात् सयम-साधना पर प्रकाश डालना आवश्यक है। साधु की दिनचर्या मे

समता-साधना के हिमालय

❀ श्री मोतीलाल सुराना

भगवान ने फरमाया
सरल है चलना
तलवार की धार पर,
पर कठिन है बहुत
सयम–साधना,
सरल है चवाना
चने, मोम के दात से,
पर कठिन है
यम–साधना ।

धन्य हैं वे जो
निरतर लगे हैं
वीर के कहे अनुसार
सयम–साधना में,
वीर के बतलाये माग पर
कठोर क्रिया पालन के साथ,

आज के आराम के युग मे
बहुत कठिन काम
सयम–साधना का,
हिमालय तो देखा नहीं
न पास से, न दूर मे,
पर सयम–साधना के
हिमालय को देखा
कई बार पास से, दूर से,
गत पचास वर्षों से ।

देखा आचाय नानेश को
रत सयम–सामना मे,
ज्ञान–ध्यान–क्रिया मे ।
इस शुभ प्रसग पर
यही शुभ भावना
क्रम यह चलता रहे
आगामी सौ-सौ साल तक ।

—१७/३, न्यू पलासिया, इन्दौर–४५२००१
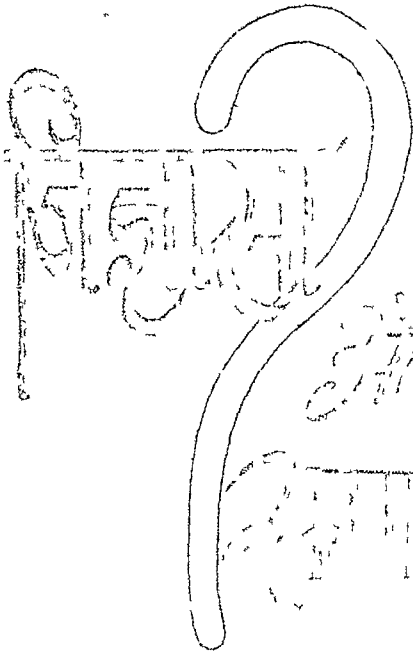
जिज्ञासाएं एव आचार्यश्री नानेश के समाधान

(१)

प्रश्नकर्त्ता डॉ नरेन्द्र भानावत

प्रश्न–१ आपकी दृष्टि मे मानव जीवन का क्या महत्त्व है ?

उत्तर–मानव जीवन सहित ससार की सभी चौरासी लाख योनियों मे भवभ्रमण करती हुई आत्माए तथा सिद्धात्माए भी अपने मूल स्वरूप मे समान होती हैं। उनके बीच जो अन्तर होता है वह होता है वतमान स्वरूप की अशुद्धता व शुद्धता का। ससारगत आत्माओं में जो अशुद्धता होती है वह है कम रूपी मल की। इसी मल के सर्वथा अभाव में आत्मा की सिद्धि होती है अर्थात् पूर्ण शुद्धि।

मानव जीवन का इसी सन्दर्भ मे सर्वाधिक महत्त्व है कि आत्मा की पूर्ण शुद्धि की स्थिति केवल इसी जीवन मे प्राप्त की जा सकती है, किसी भी अन्य जीवन में नही। सासारिकता बनाम कर्मों से अन्तिम सघर्ष करने तथा उसमे चरम सफलता प्राप्त करने का मानव जीवन ही श्रेष्ठतम रणक्षेत्र है। इसी जीवन में सम्यक् निर्णय की असीम शक्ति अर्जित की जा सकती है एव सम्पूर्ण समता की उपलब्धि। अत मेरी दृष्टि में इसका सर्वोपरि महत्त्व है जहा वतमान स्वरूप में रमण करती हुई आत्मा अपने परम शुद्ध मूल स्वरूप का वरण कर सकती है।

प्रश्न–वह कौनसी शक्ति है जो मानव जीवन मे ही पाई जाती है, अन्य जीवन मे नहीं ?

उत्तर–मानव जीवन एव अन्य प्राणी जीवनो मे जो समानताए होती है, वे सर्वविदित हैं यथा–भोजन, विश्राम, भय एव सतानोत्पत्ति का निर्वहन आदि परन्तु वह विशिष्ट शक्ति जो मानव जीवन मे ही पाई जाती है, अन्य जीवन में नहीं—वह होती है आत्म-विकास को उसकी उच्चतम श्रेणियो तक पहुचा देने की शक्ति।

मानव जीवन मे यह शक्ति सचरित होती है कि मानव यदि उसका सदुपयोग करते हुए ज्ञान, दर्शन एव चारित्र रूप धर्म की श्रेष्ठ उपासना मे प्रवृत्त बने तो वह मुक्ति के चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। धर्मोपासना की यह शक्ति इसी जीवन की अति विशिष्ट शक्ति होती है और इसी शक्ति का नाम है आध्यात्मिक शक्ति।

आध्यात्मिक शक्ति के माध्यम से उत्तम ज्ञानार्जन, प्रगाढ़ श्रद्धा, आचरण, शुद्धिकरण, प्रक्रिया, दिव्य सक्षमता आदि आत्म गुणो का विक सि है जो आत्मा के सम्पूर्ण विकास तक पहुच सकता । यह सारा सामर्थ्य म जीवन की शक्ति मे निहित होता है । इसी कारण मानव जीवन को उत्तम एवं दुर्लभ कहा गया है ।

प्रश्न–३ नाम से जैन हैं और इनमे जैनी परिग्रहियो की सख्या अधिक तथा अपरिग्रहियों की सख्या कम है, ऐसा क्यो है ?

उत्तर—जैनत्व किसी व्यक्ति, जाति या वर्ग विशेष से सम्बन्धित नही है । जहा अहिंसा, सत्य, अचौय, ब्रह्मचय, अपरिग्रह, स्याद्वाद आदि सिद्धान्तों की विचार तथा आचार मे भूमिका वतमान है, वही जैनत्व निरूपित है– ऐसा माना जा सकता है । यह कह सकते हैं कि वही जैन शब्द अपनी सार्थकता प्रद करता है ।

मूलत जैन धम के सिद्धान्त मानव जीवन की उस मौलिकता को प्रमाणित करते हैं जिसकी आवश्यकता प्रत्येक मानव को होती है । यदि कोई मानव मात्र नाम से ही जन जाना जाता है तो वह स्थिति उचित नही है न उसके स्वय के जीवन के लिये एव न ही उससे सम्बद्ध समाज के जीवन के लिये। इसके विपरीत यदि कोई मानव नाम से जैन न कहलाते हुए भी अपने अहिंसा आदि श्रेष्ठतम सिद्धातो की अनुपालना की परिधि मे आ जाता है तो उसमें जैनत्व का निरूपण किया जा सकता है । कोई व्यक्ति जन्मजात जन होकर भी जैन सिद्धातो के अनुरूप मौलिक जीवन जीने की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है तो समझिये कि उसकी जनत्व की सज्ञा वास्तविक नही है । आशय यह है कि मात्र नाम से जन कहलाने के महत्त्व का अधिक अकन नही किया जाना चाहिये ।

इस सन्दभ मे मैं एक पूव घटना की याद दिलाना चाहूगा । स २००० मे शान्तक्रान्ति के जन्मदाता स्व आचायश्री गणेशीलालजी म सा के विराजने प्रसग इन्दौर नगर मे था, उस समय महू मे सर्वोदय सम्मेलन आयोजित हुआ और उसमे भाग लेने के लिये आचाय विनोवा भावे आये । विनोवाजी तब आचायश्री के दशनाथ भी आये । चर्चा के दौरान उन्होंने कहा–आप सोच रहे होंगे कि विश्व मे जनियो की सख्या कम है, किन्तु मैं सोचता हू कि जन नाम की सख्या भले ही कम हो सकती है पर जैन धर्म के मौलिक सिद्धात अहिंसा, सत्य अचौय, अपरिग्रह आदि मे व्यक्त या अव्यक्त आस्था रखने वालो की सख्या बहुत है । मानवीय मूल्यो की महत्ता जानने वाले व्यक्तियो के मन-मानस मे ये सिद्धान्त दूध मे मिश्री के समान घुले हुए हैं–एकरूप हैं । दूध मे मिश्री घुल जाती है तो उसका अस्तित्व दिखाई नही देता किंतु क्या उसका अस्तित्व मिट जाता है ?

ादापि नहीं, वह तो मिठास के रूप मे कई गुना बढाकर दूध पीने वाले को ाह्लादित वना देता है। यही स्थिति जैन धम के इन मौलिक सिद्धातो की है। ैन नाम धराने वाले इन सिद्धातो की निष्ठा और पालना मे पीछे है अथवा ैन न कहलाने वाले उनसे आगे हैं–यह विशेष महत्त्वपूर्ण नही। महत्त्व है उन भी लोगो का जो मिश्री के मिठास का रसास्वादन करते हुए सच्चे आत्मिक ानन्द की अनुभूति लेते हैं।

जिस प्रकार गगा और यमुना ये दोनो नदिया बहती हुई अन्त मे एक समुद्र मे जाकर मिलती हैं, उसी प्रकार कहलाने की दृष्टि से जैन हो या अजैन ो अहिंसा, अपरिग्रह आदि सभी सिद्धातो के प्रति सम्यक् आचरण का भाव खते हैं, वे अन्तत आत्म विकास के एक ही स्थान पर पहुच कर एकरूप हो ाते हैं। हा, जैसे ये दोनो नदिया समुद्र मे मिलने से पहले तक अपने पाट, ल, बहाव, भूमितल आदि की दृष्टि से भिन्न या अन्तरवाली दिखाई देती हैं, से ही अपने वाह्याचार, विचार शैली या जीवन-निर्वाह पद्धति मे जैन या अजैन मुदायो मे अन्तर देखा जा सकता है परन्तु उनमे आतरिक समता के कई सूत्र ोजे जा सकते है।

अत यदि तटस्थ भाव से विश्व के सम्पूर्ण मानव समाज का सर्वेक्षण किया जाय तो नाम की दृष्टि से जैन कहाने वाले व्यक्तियो की अपेक्षा नाम नही राने वाले किन्तु जैनत्व से युक्त व्यक्तियों की सख्या अधिक ज्ञात होगी जो ापरिग्रही हैं तथा अपरिग्रहवाद मे विश्वास रखते हैं। वैसे इस हेतु उपदेश भी दया जाता रहा है तथा अन्यथा प्रयास भी किया जाता है कि जैनो की भी पपरिग्रहवाद की दिशा मे अधिक प्रगति हो। उपदेश श्रवण के समय कइयो को सका प्रतिवोध भी होता है और उनमे यह विचार भी जागता है कि हमे ावना एव आचरण से अपरिग्रही वनना चाहिये। अपनी परिग्रही वृत्तियो के लये वई चितन और पश्चात्ताप भी करते हैं, किन्तु अधिकाशत वह चिन्तन ौर पश्चात्ताप सम्भवत उस उच्च सीमा तक नही पहुच पाता है जो सीमा रिग्रह मुक्ति की दृष्टि से निर्धारित मानी जाती है।

यह विडम्वना ही कही जायेगी कि कई वार मानव पापाचरण करते ुए भी उसे पापमय नही मानता। उसी प्रकार परिग्रह की मूर्छा से ग्रस्त होने र भी जब वह उस आत्मपतन को नही समझ पाता है तब वह अपरिग्रह के अपरिमित महत्त्व को भी हृदयगम नही कर पाता है। ऐसी मन स्थिति मे वह ेतन एव पश्चात्ताप की वाछनीय सीमा तक नही पहुचता है और इसी कारण अपरिग्रहवाद की श्रेष्ठता की ओर अग्रसर नही बनता है। फिर भी यदि दान देने की दृष्टि से सर्वे किया जाय तो आपको दीन, असहाय, रोगी, अभावग्रस्त आदि के लिये अन्नदान देने वाले दानवीरो की सख्या जैनियो मे वहुलता से प्राप्त होगी जो अपरिग्रहवाद की परिचायक है। गृहस्थो के लिए अपरिग्रह से तात्पर्य

निधन बनना नही अपितु धन से मोह मूर्च्छा हटाकर उसका नि स्वार्थ दृष्टि
अनुदान करना है । बहुत से विवेकशील जैनेतर व्यक्ति भी उक्त सीमा की ओर
आगे बढ़े हैं तथा परिग्रहवादी जटिलताओ से मुक्त होने का प्रयास कर रहे हैं
वे जन्म या नाम से जैन न होने पर भी अपनी भावना, धारणा और क्रिया
जैन सिद्धातो की परिधि मे आ रहे है ।

इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि कुल मिलाकर वर्तमान सन्दर्भ
भी अपरिग्रहवादियो की सख्या कम नही है । हम सत-सतियो का सतत प्रयास
रहता है कि परिग्रह की घातक मूर्च्छा को समझ कर लोग उस वृत्ति से हटें
तथा अपने विचार एव आचार से अधिकाधिक अपरिग्रही बनें ।

प्रश्न–४ अधिकांश व्यक्ति यश, कीर्ति, नाम आदि के लोभ से दान दते हैं, क्या यह उचित है ? यदि नहीं तो दान किस भावना से किस प्रकार देना चाहिये ?

उत्तर—यश, कीर्ति, नाम आदि कमाने की दृष्टि से जो दान दिया
जाता है, वस्तुत उसको दान कहना मै दान शब्द का दुरुपयोग मानता हू । इस
प्रकार के दान को दान की सज्ञा नही देनी चाहिये बल्कि एक प्रकार से दान
का आडम्बर कहना चाहिय । व्यापारी द्वारा मूल्य चुकाकर खरीदी बेची जाने
वाली वस्तु की दान के साथ समानता नही की जा सकती कि उसे भी कोई
मूल्य चुकाकर खरीद ले । दान किसी भी प्रकार से व्यापार की क्रिया नहीं
होता । दान सदा ही भावना प्रधान कर्म होता है ।

दान किस प्रकार का होना चाहिये, इसकी यह व्याख्या की गई है—
'अनुग्रहार्थ स्वस्यात्तिसर्गो दानम् (तत्त्वार्थसूत्र, ३३) अर्थात्—अनुग्रह के हेतु अपना
उत्सर्ग ही सच्चा दान होता है । दान का मूल एव सर्वोच्च लक्ष्य होता है आत्म
शुद्धि और इस दृष्टि से दिया गया दान ही वस्तुत दान कहलाता है । चिरकाल
काल मे आत्म स्वरूप पर जो कर्मों का मैल लिपा हुआ है उसे धो डालने के
लिये जो देने के रूप मे त्याग किया जाता है, वही दान है—यश, कीर्ति, नाम
की लालसा से दिया हुआ दान सच्चे अर्थों मे दान नहीं है ।

इस प्रकार कर्म-बन्धन से मुक्ति पाने की भावना के साथ नि स्वार्थ भाव
से जो कुछ दिया जाता है और जब उसका लक्ष्य किसी पीडित को पीडामुक्त
करने के लिये उस पर अनुग्रह—उपकार करना हो, तभी वह सच्चे अर्थों मे दान
कहलाता है । जो दान यश, कीर्ति या नाम के लोभ से दिया जाता है अथवा
किसी भी प्रकार के स्वार्थ को पूरा करने की दृष्टि से दिया जाता है, वह दान
का वास्तविक स्वरूप नहीं है ।

अत दानवृत्ति को हृदय से अपनाने वाले सत्पुरुष को बाह्य रूप से
नि स्वार्थ दृष्टिकोण के साथ एव आतरिक रूप से आत्मशुद्धि के लक्ष्य के सा

हो इस क्षेत्र मे अगगामी बनना चाहिये । इस रूप मे जब उसकी वृत्ति का विकास होता है तो एक ओर सच्चा दानशील बनकर वह अपनी आत्मशुद्धि कर लेता है तो दूसरी ओर दान के वास्तविक स्वरूप को वह सम्पूर्ण ससार के समक्ष प्रकाशमान बनाता है । दान के सही स्वरूप से ही दान की महत्ता प्रतिष्ठित हो सकती है ।

प्रश्न–५ तपस्या कर्मों की निजरा के लिये की जाती है किन्तु इसमे जो जुलूस, जीमण या आडम्बर की प्रक्रिया कहीं-कहीं अपनाई जाती है, क्या वह उचित है? क्या इससे कमबन्धन नहीं होता?

उत्तर—तपश्चर्या के निमित्त से जो तपश्चर्या करने वाली आत्मा स्वय यदि जुलूस, जीमण, भेंट आदि की आडम्बरपूर्ण पवृत्ति अपनाती है, उसके लिये यही कहा जायगा कि वह सही अर्थ मे तपस्या का सही स्वरूप ही नही समझ पाई है ।

तपश्चरण का यही आत्म लक्ष्य होता है और होना चाहिये कि पूर्व मे बाधे गये कर्मो के वेग को शिथिल समाप्त किया जाय अर्थात कम-निजरा ही उसका प्रमुख उद्देश्य होना चाहिये किन्तु ऐसे तपश्चरण के साथ जो कोई भी आडम्बर जोडा जाता है वह मेरी दृष्टि म अनुचित है और ऐसे आडम्बर को परम्परा का रूप देना तो और भी ज्यादा गलत है । तपकर्त्ता यदि भौतिक वस्तुओ के लेन-देन की भावना से तप करता है तो मैं उसे एक प्रकार के व्यव-साय की सज्ञा देता हू । इसका यही कारण है कि तप करने वाला तपस्या के आत्मशुद्धि के वास्तविक लक्ष्य को भुलाकर उसके निमित्त से जुलूस, जीमण आदि के आडम्बर मे फस जाता है तो सोचिये कि उसके द्वारा कितने जीवो की हिंसा का प्रसग बन जाता है ।

तपश्चर्या सयम की साधिका होती है और यदि कोई साधक सासारिक इच्छाओ के नागपाश से अपने को मुक्त नही कर पाता है तो उनसे होने वाली जीवहिंसा के दौर से गुजरता हुआ वह भला अपनी विशिष्ट आत्मशुद्धि कैसे कर पायगा ? वह साधक तो त्याग की भूमिका पर आरूढ होता है, फिर भेंट आदि लेने से उसका क्या सम्बन्ध होना चाहिये ?

महावीर प्रभु का स्पष्ट सदेश है —
नो खलु इहलोगट्ठयाएतवमहिट्ठिज्जा, नो
परलोगट्ठयाएतवमहिट्ठिज्जा, नो खलु कित्ती-
वण्णसद्दसिलोगाट्ठयाएतवमहिट्ठिज्जा,
नन्नत्थ णिज्जरट्ठयाए-तवमहिट्ठिज्जा । -दशवैकालिक सूत्र ६/४

अर्थात्—इस लोक की कामना के लिए तप नही किया जाय, परलोक की कामना के लिए तप नही किया जाय और न ही कीर्ति, यश, श्लाघा या

प्रशसा की भावनाओ को लेकर ही तप किया जाय । मात्र कर्मो की निजरा करन के लिए ही तप करना चाहिये ।

इसका अभिप्राय यही है कि तपश्चर्या केवल कर्मों की निजरा अर्थात् कम-बधन से मुक्ति की भावना हेतु ही की जानी चाहिये । तपस्या के जो बारह भेद बताये गये हैं उनमे एक अनशन भी है । परन्तु यदि कोई तपस्वी आत्मा इस एक भेद को भी आडम्बरो का निमित्त बनाती है तो वह अनुचित ही है, चाहे उस की गई तपस्या से कम कुछ हल्के हो सकते हैं किन्तु उन आडम्बरा स तो नवीन कर्मबध की ही सभावना मानी जा सकती है ।

प्रश्न–६ क्या तपश्चर्या के लिये भूखा रहना आवश्यक है ?

उत्तर—तपश्चर्या के लिए भूखा रहना ही आवश्यक नही है । प्रभु महावीर ने बारह प्रकार का तप प्रतिपादित किया है । अनशन, उसमे पहला तप है । जिसमे उपवास, बेला, तेला आदि तपानुष्ठान लिये जाते ह, जिसमे निरा हार रहना होता है । पर यह निराहार भी सम्यक्त्व के साथ कषाय (क्रोध मान माया लोभ) के उपशमन पूवक होना चाहिये । जिस आत्मसाधक से यह तप सम्भावित न हो, उसके लिए अन्य ग्यारह तपो का वणन भी किया गया है। भूख से इच्छापूर्वक कम खाना भी तप है । जो मानसिक वृत्तिया विभाव में भटक रही है उन्हे रोककर स्वभाव मे नियोजित करना भी तप है । खानपान के रस पर समभाव रखना, दूसरो की निंदा मे रस नही लेना, सासारिक विषयों मे रस नही लेना, स्त्री कथा, भक्त कथा, देश एव राज कथा जैसी विकथाओं में रस नही लेना, सासारिक विषयो मे रस नहीं लेना भी तप है । सम्यक साधना करते हुए, सेवा-वैयावृत्य करते हुए या अन्य किसी आत्मसाधक के प्रसगा पर होन वाले कायक्लेश मे समभाव रखना भी तप है । जो इन्द्रियाए, विषयो के पोषण की ओर भाग रही हैं, उन्हे सम्यक् ज्ञानपूवक आत्मलीन बनना भी तप है। इसी प्रकार अपने अपराधो को स्वीकार करते हुए प्रायश्चित लेना, गुरुजन एव गुणवान व्यक्तियो के प्रति यथोचित सम्मान के भाव रखना, उनकी शारीरिक मानसिक, वाचिक दृष्टि से वैयावृत्य (सेवा) करना, शास्त्राभ्यास करना, स्वय की गलतियो को देखना स्वात्म चिन्तन करना, वीतराग महापुरुषो के जीवन चरित्र का अहोभावपूवक ध्यान करना, अपने शरीर से मोहभाव हटाकर आत्मलीन होन आदि भी तपश्चर्या हैं । आत्मसाधक इनमे यथानुकूल तप करता हुआ कम निजर कर सकता है ।

प्रश्न–७ आज जल, वायु आदि शुद्धिकारक तत्त्व स्वय अशुद्ध होते ज रहे हैं और पर्यावरण प्रदूषण का सकट बढ़ रहा है, तब इस समस्या के निवारण हेतु क्या किया जाना चाहिये ?

उत्तर—वैज्ञानिक एव तकनीकी प्रगति तथा अनियन्त्रित भोगलिप्सा ने

तो चारा ओर प्रदूषण का विस्तार किया है । यह विस्तार दो क्षेत्रो मे एक साथ हो रहा है ।

एक ओर कोयला, तेल, पेट्रोल, डीजल आदि के जलने से, सडको पर टायरो के घिसने के कारण वैसी गध हवा मे फैलने से युद्धस्त्रो के प्रयोग से बारूदी विस्फोटो के धमाके होने से विविध भाति की किरणो और तरगो के ताप से, वायुयानो आदि से हद बाहर ध्वनि के फूटने से, परमाणु परीक्षणो के विषैले प्रभाव से, सूर्य एव चन्द्र ग्रहणो के खगोलीय उपद्रवो, कल-कारखानो से निकलने वाले विषाणुओ के विस्तार से और इस प्रकार के अनेकानेक कारणो से जो प्रदूषण फूटता है, उसके विषैले वातावरण का शारीरिक क्रियाओ पर भयकर प्रभाव होता है और कई तरह की विषम समस्याए पैदा हो जाती है ।

दूसरी ओर मानसिक एव आत्मिक प्रदूषण भी उसी अनुपात मे बढता रहता है जो स्वस्थ विकास की जडो पर ही कुठाराघात कर देता है । इसे स्वय से उत्पन्न प्रदूषण कहा जा सकता है । ईर्ष्या, क्रोध, घृणा, घमड, चिन्ता, तनाव आदि की उत्पत्ति भी अधिकाशतः इसी वैज्ञानिक प्रगति की देन होती है । यह विकार बाहर से फूट कर भीतर मे फैल जाता है । जीवन मे सर्वत्र असन्तुलन की उपज इसी वैज्ञानिक प्रगति के प्रदूषण से सामने आई है ।

किसी भी समस्या का सम्यक् रीति से निवारण करना है तो पहले उसके कारणो को खोजना चाहिये । कारण के बिना कोई भी कार्य नही होता । जरासी भी बारीकी से देखें तो पर्यावरण प्रदूषण के कई कारण साफ तौर पर ज्ञात हो सकते हैं, यथा—

(१) उद्योगो का दुष्प्रबन्ध—कई प्रकार के रासायनिको एव अन्य पदार्थों के उद्योगो की स्थापना एव व्यवस्था पर्यावरण सन्तुलन को नजरन्दाज करके की जाती है । घातक तत्त्व भूमि पर या नदी नालो मे बहा दिये जाते हैं अथवा धुआ आदि के रूप मे चिमनियो से आकाश मे उडाये जाते है, फलस्वरूप भूमि, जल एव वायु सभी प्रदूषित हो जाते हैं । एक प्रकार से प्रदूषण सारे वातावरण मे फैल जाता है जो सभी जीवो को हानि पहुचाता है अत उद्योगो का दुष्प्रबन्ध दूर किया जाना चाहिये । भोपाल गैस काड आदि अनेक घटनाए इस दुष्प्रबन्ध का ही परिणाम है ।

(२) जीव हिंसा के प्रयोग—कई ऐसे दुष्ट प्रयोग किये जाते हैं जिनके द्वारा जीवो की हिंसा होती है । ऐसे प्रयोगो से भूमि अशुद्ध बनती है तथा वायु-मण्डल मे भी विकार फैलते हैं । इनसे अन्ततः पर्यावरण प्रदूषित होता है अत ऐसे प्रयोग रोके जाने चाहिये ।

(३) वन-विनाश—पर्यावरण को असन्तुलित बनाने का एक प्रमुख कारण निहित स्वार्थियो द्वारा वनो का विनाश करना भी है । हरे भरे वनो को

उजाड देने से वनस्पति आदि के जीवो की हिंसा तो होती ही है किन्तु उससे वर्षा आदि के न होने से जीवो के सरक्षण मे भी व्यवधान पहुचता है जबकि वन्य जीव पर्यावरण का सन्तुलन निबाहने मे बडे मददगार होते हैं। इस दृष्टि से वनो एव वन्य जन्तुओं का सरक्षण किया जाना चाहिये।

(४) जल का अशुद्धिकरण—इस युग मे लोगो की जीवन शैली कुछ ऐसी अविवेकपूर्ण बन गई है कि केवल जल का दुरुपयोग ही नही किया जाता बल्कि नाना प्रकार से जैसे मैला बहाकर, गटर डालकर शव फेंककर बहते या भरे जल को अशुद्ध बना दिया जाता है। इससे जल अशुद्ध एव रोगकारक बन जाता है। यह अपकाय को जीव हिंसा तथा अन्य प्राणियो की शरीर हानि का कारण बनता है। जल शुद्धि के विविध उपाय आज के वैज्ञानिक युग से अदृश्य नहीं है। पानी की व्यर्थ बरबादी पर सबसे पहले रोक लगानी चाहिये।

(५) ध्वनि प्रदूषण—वाहनो, ध्वनि विस्तारक यत्रों अथवा कल कारखानों आदि का शोर इतना बढने लगा है कि पर्यावरण को बिगाडने मे ध्वनि-प्रदूषण भी मुख्य बन रहा है। इस सम्बन्ध मे कई उपायो से शात वातावरण को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

पर्यावरण को दोषमुक्त एव सतुलित बनाये रखना स्वस्थ जीवन के लिये आवश्यक है।

प्रश्न—८ आध्यात्मिक साधना करने वाला व्यक्ति केवल स्वकल्याण तक ही सीमित रह जाता है, उसे समाज कल्याण की ओर किस प्रकार अपना कर्त्तव्य निभाना चाहिये ?

उत्तर—आध्यात्मिक साधना के वास्तविक स्वरूप को चिन्तन मनन एव तदुत्पन्न अनुभूति को जीवन मे समग्रतया स्थान देने की नितान्त आवश्यकता है। मानव की सद्वृत्तिया किस प्रकार से सामाजिक लाभ-हानि का कारण बनती है, उसको जानने से आध्यात्मिक साधना के सामाजिक सन्दर्भ का स्पष्टीकरण हो सकता है।

सूक्ष्म रूप मे देखें तो मानव की आतरिक वृत्तियां हिंसा, झूठ, चोरी, परिग्रह आदि दुर्गुणो मे ग्रस्त होकर स्व के साथ पर जीवन को भी दूषित बनाती है। एक आत्मा की आतरिक अशुद्धि अनेकानेक आत्माओ की सम्पर्कगत अशुद्धि का कारण बनती हैं और तब ऐसी अशुद्धि प्रगाढ होकर सम्पूर्ण समाज के वातावरण को विकृत बना डालती है। वही सामाजिक विकृत वातावरण फिर व्यापक रूप मे उस विकृति को बढावा देता है। इस प्रकार एक आत्मा की आध्यात्मिक-हीनता सारे समाज की नैतिकता को छिन्न-भिन्न कर डालती है।

ठीक इसके विपरीत इसी प्रकार एक आत्मा द्वारा साधी जाने वाली

आध्यात्मिक साधना एक से अनेक को सुप्रभावित करती है तथा अन्ततोगत्वा सारे समाज की गतिशीलता को नैतिकता, विशुद्धता एव उन्नति की ओर मोड देती है । व्यक्तिगत आध्यात्मिक साधना भी इस रूप मे सारे समाज को प्रभावित करती है और करती है अपने सामाजिक कर्त्तव्य का सम्यक् निवहन ।

सासारिक व्यामोह से आध्यात्मिक साधना के पथ पर अग्रसर होना सरल काय नही होता है । जीवन व्यवहार मे जब कुवृत्तिया एव दुष्प्रवृत्तिया सिलसिला बाधकर निरन्तर चलती रहती हैं तो उससे आन्तरिक एव बाह्य प्रदूषण छा जाता है । प्रवचनो, उपदेशो एव प्रेरणापूर्ण सामग्री के माध्यम से जब ऐसे प्रदूषण को रोकने की सीख दी जाती है तब मानवीय मूल्यो से अनुप्राणित आत्माओ मे एक विरल जागृति का सचार होता है और वही जागृति उन्हे आध्यात्मिक साधना की जीवन-यात्रा मे प्रवृत्त बनाती है, अत यह मानना चाहिये कि आध्यात्मिक साधना की प्रेरणा भी व्यक्ति एव समाज की परिस्थितियो से ही प्राप्त होती है । इस दृष्टि से भी इस साधना का सामाजिक आधार एव स्वरूप स्पष्ट होता है ।

आध्यात्मिक साधना जहा व्यक्ति के बाह्य एव आंतरिक प्रदूषण का शमन करती है, वहा सामाजिक समस्याओ के समाधान का द्वार भी खोल देती है । तब व्यक्ति एव समाज का अन्यान्याश्रित सम्बन्ध बन जाता है तथा आध्यात्मिक साधना इन सम्बन्धो को निरन्तर विकसित बनाती रहती है । इसे दूसरे शब्दो मे इस प्रकार कह सकते ह कि आध्यात्मिक साधना की चरम अवस्था समाज कल्याण के कत्तव्य निर्वहन मे ही प्रतिफलित होती है ।

प्रश्न–६ बहुधा देखा जाता है कि धार्मिक क्रियाओं मे रचा-पचा व्यक्ति दोहरा जीवन जीता हैं, इसका क्या कारण है ? उसे अपने जीवन के रूपांतर के लिये क्या करना चाहिये ?

उत्तर—वास्तव मे धार्मिक जीवन कैसा हो—इस विषय का ज्ञान अन्तचेतनापूवक होना चाहिये । जीवन का सच्चा रूपातरण ही तो धार्मिक बनाता है, परन्तु जब ऊपर से धार्मिक क्रियाओ को करने वाले पुरुष को ही धार्मिक मान लेने की दृष्टि बन जाती है, तभी भ्रान्त धारणा का जन्म होता है । किसी की आन्तरिकता मे झाककर निणय लेना सरल नही होता और जब ऊपरी धार्मिक क्रियाए (जिन्हें भावपूण नही कह सकते) करने वाले लोग समाज मे सम्मान, श्रद्धा, और प्रतिष्ठा पाने लगते हैं तो धार्मिक क्रियाओ की गहनता अस्पष्ट रह जाती है । ऐसी धार्मिक क्रियाओ को करने वाले ही दोहरा जीवन जी सकते हैं, वरना सच्चे धार्मिक पुरुष का जीवन तो सदा ही स्पष्ट, एकरूप और स्वस्थ होता है, क्योकि उसकी धार्मिक क्रियाओ की आराधना मे आत्मशुद्धि का भाव एव प्रभाव सर्वोपरि होता है ।

अधूरी धार्मिक क्रियाओ के दिखावे से, कपट पूर्वक बाह्य प्रतिष्ठा भ
ही प्राप्त करली जाय किन्तु उनसे जीवन मे आमूलचूल परिवर्तन कभी नहीं आ
अर्थात् रूपातरण तो भाव एव त्यागपूर्वक आराधी गई धार्मिक क्रियाओं से ह
सम्भव हो सकता है ।

सच पूछें तो वास्तविक ज्ञान के अभाव मे ही धार्मिक क्रियाओं क
अपरूप प्रचारित हो जाता है । किसी भी धार्मिक क्रिया के स्वरूप एव उसका
साधना विधि की जब सही जानकारी होती है तो उसके प्रति बनने वाला निष्ठ
भी सच्ची बनती है तथा उसकी आराधना भी सर्वांगत श्रेयस्कर । वही क्रि
प्रत्येक चरण पर जीवन मे सदाशयी रूपातरण लाती रहती है । ज्ञान एव अ
दोनो आचरण के साथ सयुक्त रहते हैं और तब वैसी दशा मे आत्मोन्नति का
मार्ग प्रशस्त होता रहता है ।

इसके स्थान पर जब सम्यक् श्रद्धा तो हो पर आचारित तत्त्व जान
कारी सही नहीं हो और किसी क्रिया पर आचरण किया जाय तो उसमें रूप
तरण की गति तीव्र नहीं हो सकती है तथा आत्मशुद्धि का लाभ भी विधि
जानकारी के अभाव मे सामान्य-सा ही रहता है । जीवन का आमूलचूल प
वर्तन उसके लिये सुलभ नही होता, जबकि सही जानकारी और सही श्रद्धा
अभाव में स्वार्थ बुद्धि या कि अन्ध दृष्टि से आचरित धार्मिक क्रियाओं का स
रूप भ्रामक होता है और ऐसा व्यक्ति ही दोहरा जीवन जीने का आडम्बर रच
है । आधुनिक युग से उत्पन्न अन्य कई परिस्थितिया भी धार्मिक क्रियाओं
अधूरे आचरण को प्रोत्साहित करती हैं । इस कारण पनपती हुई दोहरी वृ
पर अवश्य ही सुधारात्मक आघात किये जाने चाहिये ताकि धार्मिक क्रियाओं
आराधना सच्ची और स्तरात्मक बन सके एव जीवन की रूपान्तरणकारी भी

**प्रश्न-१० आपके गृहस्थ अनुयायी आपकी दृष्टि मे आपके धर्मोप
का पालन किस सीमा तक कर रहे हैं ? क्या आप उ
सन्तुष्ट हैं ?**

उत्तर—गृहस्थ वीतरागदेव की वाणी के अनुयायी हैं । उस वाणी
कथन यथाशक्ति मुझसे जो बन पाता है, वह मैं करता हू । इतने मात्र से
मेरे अनुयायी हो गये—ऐसा चिन्तन मैं नहीं करता ।

वीतराग देव की उस विराट् वाणी का अनुसरण कितने लोग
मात्रा मे और किस प्रकार से कर रहे हैं—इसका सर्वेक्षण मैंने नहीं कि
और न ही कभी इस हेतु मैं समय निकाल पाया हू । इसका सर्वे
तो कोई तटस्थ व्यक्ति ही कर सकता है, जो वीतराग वाणी का आस्था
ज्ञाता हो । फिर वीतराग वाणी प्रधानत अन्त करण द्वारा ग्रहण की जाने व
अनुभूति होती है और ऐसी आतरिक अनुभूति का वस्तुत वही सत्य परिचय

सकता है जो स्वय वीतराग एव सर्वज्ञ हो । अन्य व्यक्ति तो मात्र किसी के वाह्य व्यवहार के आधार पर ही उसके आतरिक मनोभावो का अनुमान भर लगा सकता है । अत वीतराग वाणी से गृहीत धर्मोपदेश का कौन कितनी मात्रा मे पालन कर रहा है—इसका यथावत् निर्णय, कहा जा सकता है कि, आज के समय में शक्य नही है ।

मुझे उन अनुयायियो को लेकर अपनी सन्तुष्टि अथवा असन्तुष्टि का नाप भी नही बनाना है । मेरे लिये तो अपनी स्वय की अन्तर्चेतना के प्रति ही अपनी सन्तुष्टि का मापदण्ड निर्धारित करना है ताकि मेरी अपनी आत्मालोचना का क्रम स्वस्थ बना रह सके । इस दिशा मे मेरा अपना निरन्तर प्रयास चलता रहता है । अन्य की अन्तर्चेतनाओ के आधार पर तथा उनके लिये मेरी अपनी सन्तुष्टि या असन्तुष्टि की तुलना करना उपयुक्त नही हो सकता ।

सन्त-सती वर्ग इसे अपना कर्तव्य मानता है कि वीतराग वाणी पर धर्मोपदेश दिया जाय । यह श्रोता आत्माओ की भव्यता पर निभर करता है कि वे उस धर्मोपदेश को कितनी गहरी भावना के साथ ग्रहण करती हैं । भावना की उस गहराई का प्रत्येक भव्य आत्मा ही अपने लिये अकन कर सकती है जबकि वह भी अन्त करणपूवक वैसा करे । अन्तरात्मा की आलोचना की सम्पूर्ण परिधिया विशिष्ट अन्तरात्मा ही ज्ञात कर सकती है ।

प्रश्न–११ तथाकथित जैन समाज के अतिरिक्त अन्य समाज के क्षेत्रों मे आपका विचरण कितना हुआ है और उसका क्या प्रभाव पडा है ?

उत्तर—प्रश्न के अन्तर्गत विचरण की बात आई है । इसमे मैं समभाव की नीति को महत्त्व देता हू—उस तुला के अनुसार ही तथाकथित समुदाय का विभाजन मैं गुण एव कर्म के आधार पर करता हू । हजारो हजार लोग या उससे भी अधिक लोग मेरे सम्पर्क मे आये होंगे तथा विस्तृत विचरण भी हुआ होगा, किन्तु उन पर मेरा क्या प्रभाव पडा—इसका सर्वे मैंने नही किया और न ही इस प्रकार के सर्वे की मैं आकाक्षा रखता हू । यह मेरा कार्य भी नही है ।

इस विषय की यदि कोई जानकारी ली जा सकती है तो वह विचरण-क्षेत्रो मे सम्पर्कगत व्यक्तियो से मिलने व चर्चा करने से ही ज्ञात हो सकती है । उन्हीं के हृदयोद्गार इस जानकारी के, एक दृष्टि से सही पैमाने बन सकते हैं । ऐसी जानकारी के लिये मै अपना समय लगाऊ—यह मेरे लिये उपयुक्त नही है।

प्रश्न १२ जैन समाज सब प्रकार से सम्पन्न समाज है, पर भारतीय राजनीति मे उसका वर्चस्व नहीं के बराबर है, इसके लिये क्या किया जाना चाहिये ?

उत्तर—जैन धर्मानुयायी अपनी गुण–कर्म की गरिमा के साथ सम्पन्न

माना जाना चाहिये । इन अनुयायियो के सामने जब तक धर्म सेवा का [illegible] कार्य क्षेत्र नही आता है, तब तक उन्हें अपनी इस सम्पन्नता का निरर्थक [illegible] भी नही करना चाहिये ।

वर्तमान की भारतीय राजनीति मे जनतत्र का प्रावधान है, [illegible] विशुद्ध जनतत्र का धरातल प्राय कम ही दृष्टिगत होता है । कई बार तो ऐसा प्रतीत होता है कि जनतन्त्र के नाम पर कुछ न्यस्त स्वार्थी व्यक्ति ऐसे काय भी कर गुजरते हैं जो नैतिकता एव मानवता से भी परे कहे जा सकते हैं । ऐसी परिस्थिति मे जन धर्मानुयायी ही नही, कोई भी मानव तक अपनी शक्ति-सम्पन्नता का दुरुपयोग करना पसन्द नही करेगा ।

तथापि जैसे एक साधक अपनी आत्मा के विकारो से अहिंसा, त्याग आदि सिद्धातो के आधार पर सघर्ष करता है, वैसे ही समाज या राष्ट्र म फल रहे विकारो से भी प्रत्येक मानव को सद्भावो की सफलता के लिये सघर्ष करता रहना चाहिये ।

प्रश्न–१३ आज की राजनीति विभिन्न प्रकार के दबावो की शिकार बनी हुई है, ऐसी स्थिति मे गृहस्थ मतदाता अपना मत कस उम्मीदवार को दें ?

उत्तर—मतदाता यदि अपने मत का सही मूल्यांकन समझता है तो उसे अपनी भावना एव मान्यता के अनुरूप ही अपना मतदान करना चाहिये । उप स्थित उम्मीदवारो मे जो व्यक्ति उसे नि स्वार्थी, सदाशयी, कुव्यसनत्यागी ए सेवाभावी प्रतीत हो उसका समुचित रीति से परीक्षण कर अपनी स्वस्थ प्रज्ञा नुसार ही मत देना सर्वथा उचित मानना चाहिये । किन्तु यदि कोई मतदाता यह विचार करे कि अमुक व्यक्ति (उम्मीदवार) को मत देने और उसके विजयी बनने से मुझे या मेरे परिवार को अमुक अमुक प्रकार से लाभ प्राप्त हो सकेगा तथा मेरी स्वार्थपूर्ति हो सकेगी तो वैसे अवैध लाभ को प्राप्त करने का उसका विचार तथा मतदान प्राय अनुचित ही कहा जायगा । कई बार उम्मीदवार अपनी अनुचित स्वार्थपूर्ति के लिये आम लोगो को झूठे और थोथे आश्वासनों के जरिये अपने पक्ष मे मत दिलाने के लिये फुसलाते हैं या अन्य अवांछित कार्यवाहियां भी करते हैं । सभी मतदाताओं को ऐसे उम्मीदवारों की सही पहिचान भी बनानी चाहिये ।

आशय यह है कि मतदान जैसे दायित्वपूर्ण कर्त्तव्य का निर्वहन मतदाता को अपनी स्वस्थ प्रज्ञा एव परीक्षा के अनुसार ही करना चाहिये ।

प्रश्न–१४ विदेशों मे शाकाहार की प्रवृत्ति बढ रही है, किन्तु भारत मांसाहार की, ऐसा क्यों ?

उत्तर—इससे यह लगता है कि विदेशो मे रहने वाले कई, चिन्तनशील मानव समय-समय पर अपने जीवन की उचित अथवा अनुचित दशाओ का अन्वेपण करते रहते ह और उस प्रक्रिया मे जब उन्हे ज्ञात होता है कि अमुक वस्तु का उपयोग जीवन के लिये हितावह नही है तो वे उसे त्यागने की वात को दिल खोल कर कह देते हैं, चाहे वह वस्तु उन्हे पहिले से कितनी ही पसन्द क्यो न रही हो ।

शायद, भारतीयो मे ऐसी वृत्ति का समुचित विकास नही हो पाया है, वल्कि कई बार उनका आचरण अपने हितो के विरुद्ध भी चलता रहता है । इसका प्रधान कारण यह हो सकता है कि उनमे अन्वेषण की वजाय अनुकरण की प्रवृत्ति अधिक है । किसी भौतिक प्रभावशाली व्यक्ति का कोई कथन सुना अथवा कि उसकी कोई प्रवृत्ति देखी, एक सामान्य भारतीय उसका अनुकरण करने के लिये तैयार हो जाता है, बिना यह देखे कि उससे उसके जीवन का कोई हित सधता है या नही । इस प्रकार वह अपने अहित को अनदेखा कर देता है । मासाहार का अन्धा अनुकरण करने के सम्वन्ध मे भी उसकी इसी प्रवृत्ति का कुप्रभाव देखा जा सकता है । कहते है, जव कोई नकल करता है तो उसमे अधिकाशतया अकल का जरूर घाटा होता है ।

प्रश्न–१५ जैन समाज भी अण्डे और मासाहार की प्रवृत्ति से विकृत होता जा रहा है तथा नशीले पदार्थों के सेवन की प्रवृत्ति भी बढ़ रही है, इसकी रोकथाम के लिये क्या किया जाना चाहिये ?

उत्तर—दोनो प्रकार की प्रवृत्तिया अवश्य ही चिन्ताजनक हैं तथा एक अहिंसक समाज के लिये तो अतीव गम्भीर ही कही जा सकती है, जिसकी सफल रोकथाम के लिये शीघ्र कठिन प्रयत्न किये जाने चाहिये । शुद्धाचार की दृष्टि से इस समस्या की ओर सबको अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिये ।

इन प्रवृत्तियो की रोकथाम के लिये मेरी दृष्टि मे मुख्य तौर पर ये दो उपाय कारगर हो सकते हैं—

(१) टी वी एव अन्य प्रचार माध्यमो के जरिये अडो, मास आदि के आहार के पक्ष मे जो गलत विज्ञापनवाजी होती है उसे शीघ्र वन्द कराने के प्रयास होने चाहिये । कारण, ऐसे निरन्तर प्रचार से वालको एव सरल व्यक्तियो के मानस पर विकृत प्रभाव पडता है तथा उन की हिताहित की बुद्धि कुठित हो जाती है । वे उस प्रचार से दुष्प्रभावित होकर अहितकर को भी हितकर मान वैठते हैं एव हिंसाकारी आहार तथा घातक नशेवाजी की ओर झुक जाते हैं । जसे कि 'सडे हो चाहे मड, रोज खाओ अण्डे' जैसी वातें वोलते हुए वच्चे मिल जाएगे । अत ऐसे विज्ञापन वन्द होना आवश्यक है ।

माना जाना चाहिये । इन अनुयायियो के सामने जब तक धर्म सेवा का साक्ष कार्य क्षेत्र नही आता है, तब तक उन्हे अपनी इस सम्पन्नता का निरसन करके भी नही करना चाहिये ।

वतमान की भारतीय राजनीति मे जनतत्र का प्रावधान है, दरहि विशुद्ध जनतत्र का धरातल प्राय कम ही दृष्टिगत हाता है । कई बार तो ऐ प्रतीत होता है कि जनतन्त्र के नाम पर कुछ न्यस्त स्वार्थी व्यक्ति ऐसे काय कर गुजरते हैं जो नैतिकता एव मानवता से भी परे कहे जा सकते हैं। ऐ परिस्थिति मे जैन धर्मानुयायी ही नही, कोई भी मानव तक अपनी शक्ति-स न्नता का दुरुपयोग करना पसन्द नही करेगा ।

तथापि जैसे एक साधक अपनी आत्मा के विकारो से अहिंसा, स आदि सिद्धातो के आधार पर सघर्ष करता है, वैसे ही समाज या राष्ट्र मे रहे विकारो से भी प्रत्येक मानव को सद्भावो की सफलता के लिय सघष म रहना चाहिये ।

प्रश्न–१३ आज की राजनीति विभिन्न प्रकार के दबावों की शिकार हुई-है, ऐसी स्थिति मे गृहस्थ मतदाता अपना मत उम्मीदवार को दें ?

उत्तर—मतदाता यदि अपने मत-का सही मूल्याकन समझता है तो अपनी भावना एव मान्यता के अनुरूप ही अपना मतदान करना चाहिये । स्थित उम्मीदवारो मे जो व्यक्ति उसे नि स्वार्थी, सदाशयी, कुव्यसनत्यागी ए सेवाभावी प्रतीत हो उसका समुचित रीति से परीक्षण कर अपनी स्वस्थ प्रज्ञा-नुसार ही मत देना सर्वथा उचित मानना चाहिये । किंतु यदि कोई मतदाता यह विचार करे कि अमुक व्यक्ति (उम्मीदवार)-को मत देने और उसके विजयी बनने से मुझे या मेरे परिवार को अमुक-अमुक प्रकार से लाभ प्राप्त हो सकेगा तथा मेरी स्वार्थपूर्ति हो सकेगी तो वैसे अवैध लाभ को प्राप्त करने का उसका विचार तथा मतदान प्राय अनुचित ही कहा जायगा । कई बार उम्मीदवार भी अपनी अनुचित स्वार्थपूर्ति के लिये आम लोगो को झूठे और थोथे आश्वासनो के जरिये अपने पक्ष मे मत दिलाने के लिये फुसलाते हैं या अन्य अवाछित कार्य-वाहिया भी करते हैं । सभी मतदाताओं को ऐसे उम्मीदवारों की सही पहिचान भी बनानी चाहिये ।

आशय यह है कि मतदान जसे दायित्वपूर्ण कत्तव्य का निवहन मतदाता का अपनी स्वस्थ प्रज्ञा एव परीक्षा के अनुसार ही करना चाहिये ।

प्रश्न–१४ विदेशों मे शाकाहार की प्रवृत्ति बढ़ रही है, किन्तु भारत मे मासाहार की, ऐसा क्यों ?

उत्तर—इससे यह लगता है कि विदेशो मे रहने वाले कई चिंतनशील मानव समय-समय पर अपने जीवन की उचित अथवा अनुचित दशाओ का अन्वेषण करते रहते हैं और उस प्रक्रिया मे जब उन्हे ज्ञात होता है कि अमुक वस्तु का उपयोग जीवन के लिये हितावह नही है तो वे उसे त्यागने की बात को दिल खोल कर कह देते हैं, चाहे वह वस्तु उन्हे पहिले से कितनी ही पसन्द क्यो न रही हो ।

शायद, भारतीयो मे ऐसी वृत्ति का समुचित विकास नही हो पाया है, बल्कि कई बार उनका आचरण अपने हितो के विरुद्ध भी चलता रहता है। इसका प्रधान कारण यह हो सकता है कि उनमे अन्वेषण की बजाय अनुकरण की प्रवृत्ति अधिक है । किसी भौतिक प्रभावशाली व्यक्ति का कोई कथन सुना अथवा कि उसकी कोई प्रवृत्ति देखी, एक सामान्य भारतीय उसका अनुकरण करने के लिये तैयार हो जाता है, बिना यह देखे कि उससे उसके जीवन का कोई हित सधता है या नही । इस प्रकार वह अपने अहित को अनदेखा कर देता है । मासाहार का अन्धा अनुकरण करने के सम्बन्ध मे भी उसकी इसी प्रवृत्ति का कुप्रभाव देखा जा सकता है। कहते हैं, जब कोई नकल करता है तो उसमे अधिकाशतया अकल का जरूर घाटा होता है ।

प्रश्न–१५ जैन समाज भी अण्डे और मासाहार की प्रवृत्ति से विकृत होता जा रहा है तथा नशीले पदार्थों के सेवन की प्रवृत्ति भी बढ़ रही है, इसकी रोकथाम के लिये क्या किया जाना चाहिये ?

उत्तर—दोनो प्रकार की प्रवृत्तिया अवश्य ही चिन्ताजनक हैं तथा एक अहिंसक समाज के लिये तो अतीव गम्भीर ही कही जा सकती हैं, जिसकी सफल रोकथाम के लिये शीघ्र कठिन प्रयत्न किये जाने चाहिये । शुद्धाचार की दृष्टि से इस समस्या की ओर सबको अपना ध्यान केंद्रित करना चाहिये ।

इन प्रवृत्तियों की रोकथाम के लिये मेरी दृष्टि मे मुख्य तौर पर ये दो उपाय कारगर हो सकते हैं—

(१) टी वी एव अन्य प्रचार माध्यमो के जरिये अडो, मास आदि के आहार के पक्ष में जो गलत विज्ञापनबाजी होती है उसे शीघ्र बन्द कराने के प्रयास होने चाहिये । कारण, ऐसे निरन्तर प्रचार से बालको एव सरल व्यक्तियो के मानस पर विकृत प्रभाव पडता है तथा उन की हिताहित की बुद्धि कुठित हो जाती है । वे उस प्रचार से दुष्प्रभावित होकर अहितकर को भी हितकर मान बैठते है एव हिंसाकारी आहार तथा घातक नशेबाजी की ओर झुक जाते हैं । जैसे कि 'सडे हो चाहे मड, रोज खाओ अण्डे' जैसी बातें बोलते हुए बच्चे मिल जाएगे । अत ऐसे विज्ञापन बन्द होना आवश्यक है ।

(२) ऐसे कुप्रचार के विरुद्ध अति व्यापक सुप्रचार की भी आवश्यकता है जिसके द्वारा आम लोगो को यह समझाया जा सके एव उनके दिलों में मजबूती पैदा की जा सके कि वे गलत प्रचार की ओर कतई प्रभावित न हों तथा वतमान मे यदि पहले की खराब आदतो के कारण अण्डा, मासाहार या नशान पदार्थों का सेवन कर रहे हो तो उनका भाव एव सकल्प पूवक त्याग कर दें। इस प्रकार ऐसे सुप्रचार के ये दो मोर्चे हो ।

इस तथ्य को स्पष्टत स्वीकार करना चाहिये कि कोई भी गलत प्रचार वही पर कामयाव होता है जहा हिताहित का विवेक नही हाता है तथा प्रचारित सामग्री की सही जानकारी सामने नही आतो है । लोहे से लोहे को काटने की तरह सुप्रचार से ही ऐसे कुप्रचार को समाप्त किया जा सकता है । जव लोगा को समझ मे आ जायगा कि अमुक-अमुक पदार्थो का सेवन उनके जीवन एव स्वास्थ्य के लिये कितना अहितकारी एव घातक है तो वे उनका सेवन नहीं करेंगे अथवा उनका सेवन त्याग देंगे ।

इसी रीति से इन दुष्प्रवृत्तियो से लोगो को छुटकारा दिलाया जा सकता है तथा इसी प्रकार जैन समाज के उन क्षेत्रो मे भी हिताहित का विवेक जाग्रत किया जा सकता है। जहा यह लगे कि अण्डा,मासाहार व नशीले पदार्थों के सेवन की प्रवृत्तिया बढ रही हैं । किसी भी दुष्प्रवृत्ति की रोकथाम सघन काय करने से ही की जा सकती है । (इसके लिए आचाय प्रवर द्वारा प्रवेचित वर्णन "अहिसक देश मे घोर हिंसा" नामक लघु पुस्तिका मे प्रचारित किया जा चुका है) । —सं

प्रश्न—१६ शास्त्रों मे उल्लेख आता है कि साधु को दिन मे दो प्रहर स्वाध्याय, एक प्रहर ध्यान और रात्रि मे दो प्रहर स्वाध्याय व एक प्रहर ध्यान करना चाहिये । स्वाध्याय और ध्यान मे क्या अन्तर है तथा ये कैसे किये जाने चाहिये ?

उत्तर—स्वाध्याय का अथ गूढ व्यापक एव मननीय है । प्रचलित अथ यह है कि शास्त्रो एव ग्रन्थो मे मानव के आध्यात्मिक एव व्यावहारिक जीवन के सागोपाग हेतु विकास आत्मचिन्तन से सम्वन्धित जिन मूल पाठो का उल्लेख आया है उनका वाचन किया जाय एव अथ विन्यास भी । स्पष्टीकरण की आवश्यकता अनुभव करने पर उनके सम्वन्ध में ज्ञाता पुरुष से पृच्छा की जाय । जो वाचन अथ एव अध्ययन किया जाय उसे पुन पुन अपने स्मृति पटल पर उभारते रहने का प्रयास भी किया जाता रहे । तत्पश्चात् उस अध्ययन की चिन्तन-मनन की विधि से समीक्षा की जाय और समीक्षा-परीक्षा के उपरान्त जो निष्कर्ष रूप तत्त्व सामने आवें, उनका सही विज्ञान अन्य जिज्ञासुओ के समक्ष उपस्थित किया जाय तथा उससे जो चिंतन के नये सूत्र उभरें उनके प्रकाश मे यदि आवश्यक हो तो उस निष्कर्ष मे उचित सशोधन स्वीकार किये जाय । इस प्रकार के निर्णय प्रेरक अध्ययन को स्वाध्याय की सज्ञा दी जा सकती है ।

स्वाध्याय के माध्यम से जो निष्कर्ष रूप सम्यक् निर्णायक आध्यात्मिक दृष्टि प्राप्त होती है, उस दृष्टि को उदाहरण मानकर अपने अमित आत्मबल की सहायता से अन्तर्चेतनापूर्वक समीक्षण की प्रवृत्ति मे समाविष्ट करना चाहिये । ऐसा ध्यान वास्तविक ध्यान होता है तथा समीक्षण ध्यान साधक को पुष्ट रूप से आत्म केन्द्रित बना देता है ।

समीक्षण ध्यान तक की स्थिति पर पहु चने से पहले एक निर्धारित साधना पथ स्वीकार किया जाना चाहिये । वह साधना नियमित हो तथा उसमे किसी प्रकार का स्खलन न आवे । यह साधना पथ है कि प्रतिदिन साधक अपनी सम्पूण दिनचर्या का अन्वेषण करे और निश्चित करे कि कब और कहा पर उसने आत्मविरोधी आचरण किया है । उसका वह अवलोकन करे, ध्यान करे एव पश्चात्ताप करे—साथ ही यह सकल्प कि भविष्य मे वह वैसा न करने का जागरूक प्रयास करेगा । सम—ईक्षण के इसी ध्यान को समीक्षण ध्यान की सज्ञा दी गई है ।

स्वाध्याय का उत्तरीय अर्थ स्वय के स्वरूप का अध्ययन करना है, आत्मा के निज स्वरूप की अनुभूति का निरन्तर अध्ययन करते रहना है । इस आध्यात्मिक स्वरूप चिन्तन मे स्थिरता का अनुभव हो,ऐसा अध्ययन ध्यान कहलाता है ।

स्वाध्याय और ध्यान इस रूप मे साधु जीवन के प्राण तुल्य हैं । इसी कारण इनके विषय मे शास्त्रो का उक्त उल्लेख है ।

प्रश्न—१७ विदेशों मे जैन धर्म के प्रचार-प्रसार को अधिक आवश्यकता है, उसके लिये जैन धर्म को क्या करना चाहिये ?

उत्तर—ऐसी आवश्यकता अनुभव करने वालो को एक निष्ठावान् प्रचारक वग की स्थापना की ओर ध्यान देना चाहिये, जो वर्ग प्रचार-प्रसार के आवश्यक साधनो के उपयोग की छूट रखकर अपने जीवन मे धम के आदर्शों का प्रभाव भी यथोचित रीति से उत्पन्न करे ताकि वह प्रचार-प्रसार अतिशय प्रभाव पूण हो । ऐसे प्रचारक यथासाध्य अपने जीवन को नियमपूर्ण बनाकर यदि आवश्यक समय देने का सकल्प करें तो समाज विदेशो मे जैन धम के सम्यक् प्रचार-प्रसार का उत्साह जाग्रत कर सकता है ।

वस्तुत ऐसा प्रचारक वर्ग वह तीसरा वग होगा जो रत्नत्रय (ज्ञान, दर्शन, चारित्र) की दृष्टि से गृहस्थ वग से ऊ चा तथा साधु वर्ग तक पहु चने के लिये उन्मुख होगा । इस वर्ग मे त्याग का सन्देश लेकर व्यक्ति गृहस्थ वर्ग से ही आयेंगे, अत इसकी स्थापना, काय शैली आदि के सम्बन्ध मे गृहस्थ वग को ही निणय करने होंगे । साधु वर्ग तो अपनी मर्यादाओ मे अनुबंधित होता है और अपने पच महाव्रतो पर आधारित, अत उनका प्रचार-प्रसार का काय तदनुसार सीमित होता है । अत विदेशो मे या देश मे भी साधनो सहित प्रचार-प्रसार के

कार्य का दायित्व गृहस्थ वर्ग को समझ कर ऐसी प्रचारक वग की योजना को कार्यान्वित करना चाहिये । इसके लिए क्रान्तद्रष्टा स्व आचाय श्री जवाहरलालजी म सा ने 'वीर सघ' के नाम से पूरी योजना आज से ५०-६० वप पूव ही रख दी थी । उसी का परिणाम कहा जा सकता है कि अनेक स्वाध्यायी सघ उभरे हैं । पर इस योजना का व्यापक स्वरूप अब तक उभर नही पाया है । अत प्रबुद्ध जैन उपासको को चाहिये कि वे इस दिशा मे प्रयत्नशील बनें ।

प्रश्न–१८ आपने ढाई सौ से अधिक जैन साधु-साध्वियों को दीक्षित किया है,यह एक अभूतपूव ऐतिहासिक योगदान है,पर आपकी प्रेरणा से कितने ऐसे समाजसेवी गृहस्थ तैयार हुए हैं जो अपने व्यवसाय से निवृत्त होकर पूणरूपेण समाज सेवा मे लगे हों ?

उत्तर—गृहस्थ वग मे समाज सेवा की वृत्ति का वतमान में अवश्य ही विशिष्ट विकास हुआ है । इतना ही नही, वह वृत्ति तुलनात्मक दृष्टि से अधिक व्यापक एव अधिक सघन भी बनी है ।

इस निरन्तर विकासशील वृत्ति का परिचय समाज-सेवा की विभिन्न प्रवृत्तियो उनकी सफलता तथा उनमे कार्यरत गृहस्थ वर्ग के कार्यकर्त्ताओ की कमठता से पाया जा सकता है । उदाहरण के तौर पर समता प्रचार सघ के कार्य को लिया जा सकता है, जिसमे सैकडो की सख्या मे गृहस्थ वग के काय-कर्त्ता विविध प्रकार की समाज-सेवा-प्रवृत्तियो मे सलग्न हैं । जिन स्थानो पर सत सतिया नही पहु च पाते हैं, वहा इस सघ के सदस्य पहु च कर उचित उदबोधन देते हैं तथा लोगो को सत्कार्यों के लिये प्रेरित करते हैं । उनका यह काय समाज सेवा का महत्त्वपूण काय माना जा सकता है तथा यह समता प्रचार सघ इस दिशा में अधिक सक्रिय दिखाई देता है ।

प्रश्न–१८ जैन समाज प्रमुखत व्यवसायी वर्ग है । जसे सरकारी कर्मचारी एक निश्चित आयु के बाद सेवा निवृत हो जाते हैं क्या व्यवसायी वग को भी इस प्रकार निवृत्त नहीं हो जाना चाहिये ? यदि हा, तो इस दिशा में आपकी क्या प्रेरणा रहती है ?

उत्तर—शास्त्रो में श्रावको के जीवन क्रम का इस मे उल्लेख आता कि वे श्रावक अपने श्रावक व्रतो की मर्यादाओं का पालन करते हुए अपना व्यापार, व्यवसाय आदि किया करते थे और जब उन श्रावको के पीछे उनकी सन्तान उनके व्यापार, व्यवसाय को सम्हालन मे सक्षम हो जाती थी तब वे श्रावक अपने व्यवसाय आदि से निवृत्त होकर पूर्ण रूप से धम ध्यान मे ही अपना समय व्यतीत करना आरम्भ कर देते थे ।

इसी प्रकार वर्तमान मे भी यदि व्यापारी-व्यवसायी वग उपयुक्त सम

पर अपना काम-धन्धा अपनी योग्य सन्तान को सम्हला कर निवृत्त होने के लिये तयारी कर लें तो वह स्वस्थ परम्परा का पालन होगा । निवृत्त होकर वे धर्म-ध्यान, समाज-सेवा आदि मे अपना समय एव अपनी शक्ति नियोजित कर सकते हैं । ऐसी भावना जगाने के लिये समय-समय पर उपदेश दिया जाता है तथा देते रहने की भावना रहती है । अनेक व्यक्ति सेवारत भी हैं, पर उनकी सेवाओ का पूर्ण उपयोग लेने के लिए सघ के जागरुक होने की भी आवश्यकता रहती है।

प्रश्न–२० जैन समाज मे अधिकाश महिलाए कामकाजी न होकर सद्-गृहस्थ महिलाए हैं, उन्हें अपने अवकाश का समय किन कार्यों में लगाना चाहिये ?

उत्तर—गृहस्थी मे कमरत महिलाओ को गृहस्थ धर्म के कर्त्तव्यो को भली भाति समझना चाहिये । यह उनका प्राथमिक कर्त्तव्य भी है । उन्हें यह महसूस करना चाहिये कि जितनी जो कुछ पारिवारिक जिम्मेदारिया हैं, वे सिर्फ पति के ऊपर ही नही है । जहा पुरुष वर्ग अपनी जिम्मेदारियो को निभाता है, वहा महिला वग को भी उन जिम्मेदारियो मे अपना हिस्सा बटाना चाहिये । महिला वग घर के कामकाज मे तो मुख्य रूप से हिस्सा लेता ही है लेकिन उसको यह सोचना भी कत्त व्योचित्त होगा कि वह किस प्रकार पुरुष वर्ग के व्यापार-व्यवसाय या अन्य कार्यों के भार को अपना योगदान देकर हल्का बना सकता है ।

सद्गृहस्थ महिलाओ मे यह विवेक भी जागना चाहिये कि वे पतियो के कामकाज पर अपनी दृष्टि भी रखें । यदि उस कामकाज मे अनीति या भ्रष्टता घुसने लगे तो पत्नी वग को हस्तक्षेप करके व्यापार, व्यवसाय आदि को नीतियुक्त बनाये रखने की प्रेरणा देनी चाहिये । पतियो को सत्पथ पर चलाते रहने का पत्नियो का नैतिक और धार्मिक कर्त्तव्य कहा गया है । वे अपना व्यवहार ऐसा सुचारू बनावें कि परिवार मे समस्याए उत्पन्न न हो और हो तो सहजता से सुलझ जाय । यो उनके लिये कार्यों की कमी नहीं है ।

प्रश्न–२१ आज की शिक्षा में नैतिक एव आध्यात्मिक सस्कारों का प्राव-धान नहीं है, आपकी दृष्टि मे किस प्रकार शिक्षा पद्धति मे सुधार अपेक्षित है ताकि नई पीढी सस्कारित एव चरित्रनिष्ठ बन सके ?

उत्तर—यह सही है कि देश की वर्तमान शिक्षा पद्धति में आध्यामिकता एव नैतिकता के सस्कार नई पीढी मे प्रस्थापित करने हेतु कोई सीधे प्रावधान नहीं है और इसके कारण उत्पन्न नैतिकता एव चारित्र का सकट सबके सामने है जो समाज हित की विरोधी प्रवृत्तियो मे परिलक्षित होता रहता है ।

ऐसे सुसस्कारो को प्रभावपूर्ण बनाने के लिये वस्तुत वर्तमान शिक्षा

पद्धति मे सुधार से ही काम नही चलेगा । उसे पूर्ण सोद्देश्य एव साधक के लिये नये ढाचे मे ढालना होगा जो भारतीय संस्कृति के अनुरुप हो। जहा तक सुधारो का प्रश्न है, उसमे सकारात्मक नैतिक शिक्षण का प्रावधान किया जाना चाहिये जो आगे जाने पर स्वार्थी एव भ्रष्ट मनोवृत्तियो पर सफल रोक लगा सके । ऐसे शिक्षण के लिये तदनुरूप योग्य शिक्षको की भी आवश्यकता होगी । इसके लिये शिक्षा विभाग मे ठोक बजा कर चारित्रशील एव विद्वान व्यक्तियो को ही प्रवेश देना होगा ।

ज्ञातव्य है कि नैतिक एव आध्यात्मिक सस्कारो के अभाव म आज मानव जीवन की दशा प्राणहीन शरीर जैसी ही दिखाई देती है ।

प्रश्न—२२ वैज्ञानिक दृष्टिकोण बडी तेजी से विकसित हो रहा है और रहन-सहन के तरीको मे बदलाव आ रहा है, ऐसी स्थिति मे पारिवारिक श्रावकाचार तथा श्रमणाचार मे आप क्या परिवतन आवश्यक समझते हैं ?

उत्तर—वैज्ञानिक प्रगति का प्रभाव दृष्टिकोण के निर्माण पर कम, किन्तु रहन-सहन के बदलाव पर अवश्य ही ज्यादा पड रहा है, जिसके कारण एक दिशाहीन दौड आरम्भ हो गई है । जो पहले की सादगी भरी जीवन प्रणाली थी उसमे वैज्ञानिक सुख-सुविधाओ ने इतना अधिक स्थान घेर लिया है कि जीवन से प्राकृतिक तत्त्वो का लोप सा होता चला जा रहा है । परिणामस्वरूप जीवन एक ओर भ्रातिमय, तो दूसरी ओर विकारमय हो रहा है ।

आज चारो ओर आख उठा कर देखें तो वैज्ञानिक साधनो की चकाचौंध मे मानव अपने निजत्व तक को भुला बैठा है । आधुनिक सुख सुविधाओं मे रमकर उसने अपनी सास्कृतिक जीवन-शैली को ही परिवर्तित कर डाला है और समग्र वातावरण को दूषित बना दिया है । विडम्बना तो यह है कि वह इस दूषित वातावरण का भी अपने और समाज के लिये हितावह मानकर चल रहा है जिसके कारण उसके विचार ही भ्रातिपूर्ण हो गये हैं । यह भ्राति जीवन के सही ज्ञान के अभाव का परिणाम है और इसी कारण यह भ्राति कई प्रकार की प्रदूषणा का हेतु भी बन गई है ।

भ्रात आधुनिकता के इस दलदल मे फस कर मानव कई तरह के मानसिक एव शारीरिक रोगो की मार भी सह रहा है और आश्चर्य है कि इन रोगो के कारणो को भुगत कर भी समझ नही रहा है—उन कारणो से दूर हटने या उन्हें त्याग देने का विचार करना तो आगे की बात है । अभी तो वह इन सबका आदी हो रहा है और सारी पीडाए भोग कर भी वैज्ञानिक सुविधाओं के दोषो से दूर हटने को तैयार नही हैं । यह अवश्य है कि जब भी उसे इस दूषितता का भलीभाति बोध हो जायगा, वह अपने जीवन को तब उधर से मोड

ना। आवश्यकता है कि इस भ्रमित मानव को परिवर्तनकारी बोध का अवसर ले, अत इस दिशा मे सामूहिक प्रयास किया जाना चाहिये।

अब आपकी श्रावकाचार एव श्रमणाचार मे परिवर्तन की बात लें। ये नो प्रकार के आचार शाश्वत आचार हैं जो सार्वभौमिक एव सार्वकालिक हैं। ज्ञान की जो प्रगति स्वय मे दोषपूर्ण सिद्ध हो रही है तथा जनसमुदाय मे नाना-घ विकारो का प्रसार कर रही है, क्या उसी वैज्ञानिक प्रगति के लिये शाश्वत चार पद्धति मे परिवर्तन की बात सोची जाय ? परिवर्तित तो उसे करें जो सत्य हो। सत्य को परिवर्तित करके उसे क्या बनाना चाहेंगे ? अत आवश्यता है कि जनसमुदाय मे स्व-विवेक को जागृत किया जाय उसमे धर्म एव कर्त्तव्य । निष्ठा पैदा की जाय तथा आध्यात्मिकता से अ तर्चेतना को आत्माभिमुखी नाया जाय।

प्रश्न–२३ आज यातायात एव दूर सचार माध्यमो के विकास के कारण जीवन मे गतिशीलता बढ गई है, ऐसी स्थिति मे क्या ध्यान-साधना व्यक्ति को स्थिर बना कर उसकी प्रगति मे बाधक तो नहीं होती ?

उत्तर—आज यातायात एव दूर सचार माध्यमो के विकास के कारण विन मे गतिशीलता बढी है या कि चचलता—इसका सही निर्णय निकालना गा। गतिशीलता मे मन इतना अस्थिर हो जाता है कि सामान्य से कार्य मे ी सफल नही हो पाता है। अत चचलता मन की दुरावस्था का नाम है जो जी से भागने वाली इस व्यवस्था से उत्पन्न हुई है। ऐसी अस्थिरचित्तता मे ामान्य मानव का ध्यान साधना मे केन्द्रस्थ होना आसान नही रहता।

किंतु यह भी एक सत्य है कि यदि कोई साधक दृढता धारण कर ले तो कसी भी जटिल परिस्थितिया क्यो न हो, वह ध्यान-साधना मे सफलता प्राप्त र सकता है। इसके लिये भौतिक इच्छाओ से ऊपर उठकर आध्यात्मिक क्षेत्र रमण करना होता है। जब लगन निष्ठापूर्ण होती है तो स्थिरता को बना ेना आसान भी हो जाता है।

शास्त्रो मे ऐसे एकनिष्ठ साधको का उल्लेख तो है ही, किंतु मैं इस युग के एक तपस्वी मुनिराज का वृत्ता त बताना चाहता हू। वे मुनिराज सडक के पास एक शान्त स्थान मे ध्यान करके खडे हुए थे। वे तो ध्यान मे तल्लीन थे, पर उसी समय किसी उत्सव के प्रसग से उग्र आवाजें करती हुई एक भीड बाजो गाजो के साथ उधर से निकली। वह निकल गई और उसके बाद जब उन मुनि-राज ने अपना ध्यान समाप्त किया तब उनसे किसी ने उस भीड की अशाति के बारे मे पूछा। वे आश्चर्य से उस पूछने वाले का मु ह ताकने लगे, क्योकि वे समझे नहीं कि वह क्या पूछ रहा है। उन्होने कहा—ध्यानस्थ अवस्था मे मैंने तो

कोई ध्वनि सुनी ही नही, फिर अशान्ति कैसी ? ध्यान साधना भी ऐसी एक चित्तता भी होती है।

अत ध्यान साधना आज के मानव की प्रगति में बाधक है अथवा आज की वैज्ञानिक, यातायात व दूरसचार माध्यमो की प्रगति ध्यान साधना में बाधक है–इस पर विचार तो आप ही करें। ध्यान-साधना की बाधाओं को दूर कर अथवा ध्यान-साधना में सुदृढता उत्पन्न हो जाय तो मानव की वास्तविक प्रगति मे चार चाद ही लगेंगे–बाधा का तो प्रश्न ही नही। क्योंकि ध्यान साधना सर्वतोमुखी प्रगति की वाहिका होती है।

ध्यान साधना को सुदृढता के लिये जहा बाह्य वातावरण की शान्ति आवश्यक है, वहा उससे भी अधिक आन्तरिक विचारणा मे शान्ति की आवश्यकता होती है। आन्तरिक शान्ति आ जाय तो बाह्य शान्ति महत्त्वहीन हो जाती है। एक ध्यान साधक शरीर की भौतिक दौड से जरूर दूर हट जाता है किन्तु आत्मा की आध्यात्मिक दौड मे वह निश्चय ही आगे बढ जाता है। वास्तविक प्रगति तो आत्मा की आध्यात्मिक दौड मे आगे बढना ही है।

(२)

प्रश्नकर्त्ता डॉ सुभाष कोठारी

प्रश्न–१ आप आज समता दशन के व्याख्याता के रूप मे बहुत चर्चित हैं, इस नये मौलिक दशन की प्रेरणा आपको कहा से मिली ? यह आपकी अन्त स्फूत प्रेरणा थी अथवा किसी अन्य पर आधारित ?

उत्तर—समता दशन की प्रेरणा ने मेरे अन्त करण मे जन्म लिया। इसका आधार कही वाहर नही, मेरे भीतर ही था। या निमित्त सहयोग मुझे मेरे स्व आचाय श्री गणेशीलालजी म सा से प्राप्त हुआ। वे श्रमण सस्कृति के रक्षक एव शान्त क्रान्ति के जन्मदाता थे। जव उनके मगलमय स्वर्गारोहण के पश्चात् सघ नायकत्व का उत्तरायित्व मेरे कधो पर आया तो मेरी अ तर्चेतना की जाग्रति ने भी नवरूप धारण किया और भीतर ही भीतर विचार-मथन होने लगा। समता दशन को मैं उसी मथन का नवनीत कहू तो समीचीन होगा। इस (आचाय) रूप मे उत्तरदायित्व वढा तो मेरा समाज-सम्पक भी विस्तृत हुआ, अनुभव की सीमाए व्यापक वनी। उसके साथ-साथ मेरे चिन्तन-क्रम का अभिवृद्ध होना अनिवार्य ही था। जिज्ञासुओ के विविध प्रश्न भी सामने आने लगे तो देश व समाज की विभिन्न परिस्थितिया एव समस्याए भी सामने आई, तव विचार-मथन गहरा होने लगा। सव प्रकार की समस्याओ के समाधान के रूप मे तव मेरा ध्यान समता, समभाव, समानता आदि पर केन्द्रित होने लगा। यही ध्यान बहुआयामी समता दशन का स्वरूप ग्रहण करने लगा। फिर तो निरन्तर विचार-विमश एव चर्चा-समीक्षा से उस स्वरूप मे निखार आता गया। इस समता दर्शन मे केवलीभाषित परम समता के भाव ही समाविष्ट हैं जिनका सम्वन्ध व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व से जोडते हुए सम्पूण आत्म-समता पर अतिम रूप से वल दिया गया है।

मेरी मान्यता है कि जन, समुदाय मे विचरण करने वाले साधुओ के समक्ष आपके द्वारा अपनी जिज्ञासाए रखना तथा उनका श्रेयस्कर समाधान प्राप्त करना आप का अधिकार है। इसका दोनो पक्षो का लाभ मिलता है। मेरा अनुभव है कि प्रश्नोत्तरी के कायक्रम से मेरा अपना आत्म सशोधन होता है तो गूढ विचारो का उद्भव भी। इसी प्रक्रिया मे समता दशन का स्वरूप गढा गया है जो मानव मात्र को कल्याण की दिशा मे ले जाने के अतिरिक्त विश्व शान्ति स्थापित करने मे भी समथ है। बीज रूप से इस दशन का निरन्तर विस्तार होता आ रहा है।

समता दर्शन के प्रति मेरा आत्म-विश्वास स्वय की अन्तर्चेतना से ही

प्राप्त हुआ है, अन्य कोई आधार नहीं रहा । निमित्त रूप मे केवली प्ररूपित धर्म एव गुरुदेव के आशीर्वाद की तो विशिष्ट भूमिका है ही ।

प्रश्न–२ आज साम्प्रदायिक विद्वेष चरम सीमा पर है जिससे प्रतिदिन जैनियो का विभाजन होता जा रहा है । आपकी सम्मति में क्या इसे रोकने के लिये कोई सार्थक प्रयास किया जा सकता है ?

उत्तर—आपका प्रश्न सद्भावना पूर्ण है, क्योंकि आप समाज की एकता स्थापित करने के पक्ष मे है । आप इसके लिये कोई उपाय चाहते हैं तो आपको तनिक चिन्तन करना होगा कि क्या कार्य करने से और किन कार्यों को न करने से वांछित उपाय दृष्टिगत हो सकते हैं । इसकी रूप-रेखा ध्यान मे लेकर प्रयास किया जाय तो वैसा प्रयास स्थिर भी होगा एव फलदायी भी ।

जैन समाज की सभी सम्प्रदायो की एकता का जहा तक प्रश्न है, उसे आरंभ करने का कोई न कोई एक बिन्दु तो निर्धारित करना ही होगा, जहा से सबके चरण साथ-साथ आगे बढ़ें । मेरा मानना है कि वह बिन्दु संवत्सरी का आयोजन हो सकता है अर्थात् सारी चर्चा-समीक्षा करके सभी लोग एक दिन पर एकमत हो जाय कि प्रतिवर्ष उस दिन समस्त जैन समाज एक साथ इस महापर्व को मनायेगा । इससे आरंभ हुई एकता भविष्य मे अग्रगामी भी बन सकती है ।

एक संवत्सरी के विषय पर पिछले कुछ वर्षों से काफी चर्चा चलती रही है और मैंने सदा ही अपनी यह भावना व्यक्त की है कि बिना किसी पूर्वाग्रह के सर्वानुभूति से संवत्सरी-आयोजन के लिये जो भी दिन निश्चित हो जायगा उसे मैं भी मान लूंगा । उसके लिये भी मेरी तैयारी रहेगी कि स्थानकवासी समाज के सभी घटक ही नही, स्थानकवासी एव श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज भी एक संवत्सरी का निर्धारण करलें । सारा जैन समाज संवत्सरी–आयोजन के सम्बन्ध मे एकत्र हो तो एकता की दृष्टि से इसके लिये मेरी पूर्ण भावना एव शुभकामना है । मैं तो भावना रखता हूं कि सम्पूर्ण मानव जाति की एकता बनाने का अवसर आज हमारे सबके सामने उपस्थित है और उस दिशा मे हमारे प्रयास सार्थक बनें । एकता से सम्बन्धित प्रयासो मे त्याग एव पूर्ण सहयोग की तत्परता होनी ही चाहिये ।

लेकिन एक तथ्य की ओर मैं सब को सावधानी दिलाना चाहूंगा । एक हाथ मे ताली नहीं बजती और जब तक एकता की भावना सर्वत्र व्याप्त नहीं होगी तब तक किसी योजना पर एकमत होना भी संभव नही बनता है । तद्हेतु जनमानस का निर्माण होना भी जरूरी है जिसके दबाव मे एक संवत्सरी की मान्यता की ओर सबको झुकाया जा सके और किसी का हठाग्रह टिके नहीं । अब तक इस सम्बन्ध मे जो प्रयास हुए वे इसी कारण विफल रहे हैं । सबकी तैयारी न होने से सफलता नहीं मिली । मेरी तो आज भी पूर्ववत् ही तैयारी है ।

एक सवत्सरी के आयोजन के मंगलाचरण के रूप मे समग्र जैन समाज का समाचरण बने तथा एकता सुदृढ हो—यही मेरी मगल भावना है ।

प्रश्न–३ समाज मे व्याप्त कुरीतियो यथा बाल विवाह, दहेज प्रथा, मृत्यु भोज आदि को दूर करने के लिये आपकी ओर से क्या प्रयास चल रहे हैं ?

उत्तर—हम साधु हैं तथा हमारी मर्यादाओ मे रहकर ही हम किसी भी उद्देश्य के लिये प्रयास कर सकते है । जहा तक सामाजिक कुरीतियो को दूर करने के प्रयासो का सम्बन्ध है, इस दिशा मे हमारी मर्यादाओ के अनुरूप लम्बे समय से हमारे प्रयास चल रहे हैं ।

हम साधु मुख्यत विचार-क्रान्ति के वाहक बन सकते हैं और जो लोग मेरे व्याख्यानो से परिचित है, वे जानते हैं कि पिछले कई वर्षों से मृत्यु-भोज, दहेज प्रथा, बाल-विवाह जैसी अन्यान्य सामाजिक बुराइयो को त्यागने की प्रेरणा दी जाती रही है तथा महिलाओ और युवाओ को समझाया गया है कि वे इन कुरीतियो के प्रति स्वय का त्याग समक्ष रख कर आदश रूप उपस्थित करें ।

निरन्तर दिये जाते रहे ऐसे उपदेश के प्रभाव से स्थान स्थान पर सघो ने तथा व्यक्तियो ने मृत्युभोज करने के त्याग लिये हैं तथा चन्द ग्राम ही रह गये होंगे जो इस कुप्रथा को चिपकाये हुए हैं । वहा भी इतना अज्ञान नही रहा है तथा नई पीढी के लोग जाग रहे हैं । दहेज-प्रथा एव अन्य कुरीतियो को छोडने मे भी युवावग आगे आया है और वह समाज मे क्रान्ति फैला रहा है ।

मैं मानता हू कि इन कुरीतियो के विरुद्ध जो एक सामूहिक क्रान्ति जागनी चाहिये और इन्हे मूलत मिटा दिया जाना चाहिये, वैसी परिस्थिति अभी तक उत्पन्न नही हो पाई है । इसका एक कारण यह है कि हमारे मर्यादापूण प्रयासो को आगे बढ़ाने के लिये तथा उनकी निरन्तरता को बनाये रखने के लिये जिन सामाजिक सस्थाओ की निर्मिति होनी चाहिये तथा उनके तत्त्वावधान मे युवावग की टोलिया सोत्साह कार्यरत होनी चाहिये वैसे वातावरण एव काय प्रणाली की रचना नही की गई है जो गृहस्थो का कत्तव्य है । प्रेरणा जगाने के बाद आन्दोलनात्मक प्रयास तो उन्हे ही करने होते हैं ।

इस अभाव के कारण ही यथाथ मे उत्पन्न हुआ विचार-क्रान्ति का स्वरूप भी सामान्य जनता की दृष्टि मे स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त नही हो पाता है । आज उसी विचार को तेजी से अमली जामा पहिनाने की जरूरत है ताकि व्यक्ति ही नही, परस्पर विचार-विमश करके गावो-नगरो के पूरे के पूरे सघ ही इन कुरीतियों का परित्याग कर दें । जो अनुदार व्यक्ति इनके आडे आवें, उन्हे भी प्रत्येक विधि से सहमत बनालें ।

कार्य प्रणाली का ऐसा ढग बनाया जायगा तो सम्पूण कुरीतियों के निवारण मे भी सफलता प्राप्त हो सकेगी ।

प्रश्न–४ साधु-समाज की मुख्यत आध्यात्मिक भूमिका होती है, दृष्टि से समाज मे वैमनस्य को समाप्त करने, युवकों धर्माभिमुख बनाने एव खान-पान व रहन सहन की विकृति को दूर करने में साधु-कर्त्तव्यों के विषय मे आपके विचार हैं ?

उत्तर—साधु समाज का यह कत्तव्य मैं मानता हू कि वे जन समु को उनकी भाति-भाति की विकृतिया के विरुद्ध सचेत बनाते हुए इस प्रकार शिक्षित करें कि अन्तत वे आध्यात्मिक मार्ग पर अग्रसर हो सकें ।

इस दृष्टि से समाज मे स्थान-स्थान पर फैले या फैलने वाले वमनस्य दुर्भाव साधु समाज के उपदेश से समाप्त हुए हैं और होते हैं । युवक भी निरन्तर जाग्रति की दिशा मे आगे बढते हुए धर्माचरण के मर्म को समझ-बूझ रहे हैं। खानपान, रहनसहन एव सामान्य जीवन के शुद्धिकरण की अपेक्षा से भी महत्त्वपूर्ण काय समाज के विशाल क्षेत्र मे स्थल-स्थल पर हो रहे हैं । इस विषय में मालवा के क्षेत्र मे हो रहा काय उल्लेखनीय है । वहा पर धमपाल समाज की रचना हुई है तथा हजारो की सख्या मे लोगो ने अपने खान-पान, रहन-सहन तथा सम्पूर्ण जीवन क्रम को शुद्ध बनाने एव शुद्ध बनाये रखने की प्रतिज्ञा ग्रहण की है । ऐसे लोगो की सख्या इस समय मे अस्सी हजार से भी अधिक बताई जाती है । सन्तों के उपदेश एव इन लोगो के हृदय परिवतन के बाद भी समाज के कर्मनिष्ठ व्यक्ति इनसे बराबर सम्पर्क साधे रखते हैं । इनके क्षेत्रो मे पदयात्राए करते रहते हैं तथा उनकी विभिन्न समस्याओ के समाधान मे अपनी सहायता पहुचाते रहते हैं। फलस्वरूप यह नव सस्कारित धमपाल समाज निरन्तर प्रगति पथ पर आगे बढता जा रहा है । इस प्रकार कई दिशाओ में शुभ प्रयास हो रहे हैं ।

सन्त समुदाय तो अपने कत्तव्य का पालन करता रहता है पर उसका सकलन करना तथा उसे सामान्य जन मे प्रकट करते रहना यह गृहस्थ वर्ग का कर्त्तव्य है । सन्त तो अपनी स्थिति से कार्य करते हैं और उस कार्य को गृहस्थ वर्ग चाहे जितना आगे बढा सकते हैं । ऊपर मैंने आपको धमपाल प्रवृत्ति का उल्लेख किया है उसकी अपूव प्रगति मे सभी वर्गों के कत्तव्या के सुचारु निर्वहन का ही योगदान है ।

ऐसा ही सभी प्रकार की विकृतियो को दूर करने मे तथा आध्यात्मिक दिशा मे गतिशील बनने मे कत्तव्यो का निर्वहन होता रहे और उसमे पर्याप्त जन सहयोग मिलता रहे तो कोई कारण नही है कि सफलता की उपलब्धि न हो ।

मैं समझता हू इस विषय मे मेरा विचार आपको स्पष्ट समझ में आ गया होगा ।

प्रश्न—५ बहुत से युवक-युवतियां भावुक होकर दीक्षा ले लेते हैं, फिर दु खी होते हैं । क्या आपके सघ मे भी ऐसा प्रसग आया ? यदि हां, तो उस पर आपने क्या कदम उठाया ?

उत्तर—सब प्रथम तो सघ की व्यवस्था ऐसी है कि अधिकाश युवक युवतिया तो दीक्षा ग्रहण करने से पूर्व सन्त एव सती वर्ग के समक्ष रहकर क्षा एव मुनिव्रत पालन सम्बन्धी समुचित तथा आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर लेते और दीक्षा के बाद मे भी व्यावहारिक एव आध्यात्मिक ज्ञान की प्रगति के ए भी सघ ने प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था कर रखी है ।

इस प्रकार जब मुनिव्रत के सम्यक् पालन सम्बन्धी आवश्यक ज्ञान एव ष्ठा का विकास हो जाता है तो दीक्षा लेकर दु खी होने जैसा प्रसग आने की भावना नही रहती है । कारण, दीक्षार्थी इस मूल तत्त्व को हृदयगम कर लेता कि उसकी आत्म शान्ति किस आधार पर कायम हो सकेगी । आत्मिक भावो मे यरता आ जाने पर सयम के अनुपालन मे भी स्थिरता आ जाती है । पूर्व शिक्षण एव पश्चात् का स्वस्थ वातावरण इस स्थिरता मे पूरी तरह से सहायक ता है । यो दीक्षा ही हृदय-परिवर्त्तन पर आधारित होती है तथा यही रिवर्तन प्रबुद्ध सरक्षण मे स्थायी होता जाता है । आत्म सुख की आनन्दानुभूति सकी प्रेरणा बनकर प्रवाहित होती रहती है ।

वस्तुत इस कारण जहा पर भी दीक्षार्थियो ने दीक्षा ग्रहण की है और क्षा देने का प्रसग आया है, आपके प्रश्नानुसार प्रसग बना हो, ऐसा नही लगता । फिर भी यदि कही पर प्रकृति या व्यवहार सम्बन्धी कोई बात मेरे सामने ाती है तो सम्बन्धियो को यथाथ वस्तुस्थिति की दृष्टि से मैं समझा देता हू ।

प्रश्न—६ क्या आपने दीक्षार्थियो के लिये दीक्षा से पूव शिक्षण के लिये कोई केन्द्र या पाठ्यक्रम बना रखा है जहां वे सयमी जीवन के कठोर परीषहो की जानकारी प्राप्त कर अध्ययन कर सकें ?

उत्तर—दीक्षा ग्रहण करने वाले भावुक वैरागी एव वैरागिनो के लिये दीक्षा से पूव सयमी जीवन के कठोर परीषहो को समझने एव उनकी जानकारी सहित अध्ययन करने के लिये सघ ने समुचित व्यवस्था कर रखी है । ऐसी व्यवस्था अन्याय स्थानो पर है तथा जिस व्यवस्था के अन्तगत अपने जीवन को पवित्र बनाने की अभिलाषा रखने वाली वे भावुक आत्माए शिक्षा लेना चाहती हैं, वहा वे ऐसा कर सकती हैं । शिक्षा के साथ साथ यथाक्रम एव यथा समय परीक्षा ली जाने की भी व्यवस्था की हुई है । यह परीक्षा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार भी होती है । परीक्षा प्रणाली से शिक्षार्थी यह समझता चला जाता है कि ज्ञान के क्षेत्र मे वह किस रूप म विकास कर रहा है ।

इसके सिवाय दीक्षार्थी सन्त एव सती वर्ग के समक्ष रह कर भी व्यावहारिक रूप मे उनके सयमाचरण से कठोर परीषहो की आदर्श जानकारी ले लेता है । यह प्रत्यक्ष ज्ञान उनके प्रशिक्षण को अधिक सुदृढ बना देता है ।

प्रश्न–७, आप अपने वैरागी एव वैरागिनो को शीघ्र ही दीक्षा देने मानस रखते हैं या उनकी गुणवत्ता को देखने के बाद ... मानस बनाते हैं ? यदि उनकी गुणवत्ता को देखने के ... मानस बनाते हैं तो क्या वह उनकी गुणवत्ता शैक्षणिक धार्मिक अथवा दोनों प्रकार की मानी जाती है ?

उत्तर—दीक्षार्थियो को शीघ्र ही दीक्षा दे देने की भावना मैं नहीं रख... प्रथमत तो मैं उनकी मानसिकता को परखता रहता हू तथा उनकी गुण... को जाचता रहता हू तदनन्तर जिस दीक्षार्थी मे उत्साहपूर्ण मानसिकता एव गुण... वत्ता का अनुभव पाया जाता है, उसे ही दीक्षा देने का विचार करता हू । ऐ... दीक्षार्थियों को तब दीक्षा देने का प्रसग आता है ।

या ऐसे प्रसग भी मेरे सामने आये हैं जब दीक्षार्थी ही नही, दीक्षा ... अनुमति देने वाले उनके अभिभावक भी दीक्षा देने के लिये उतावले हो जाते हैं तब मैंने भलीभाति समझाया है कि ऐसी ताकीदी मत करो, दीक्षा की पूर्व योग्य... की प्राप्ति आवश्यक है । किसी दीक्षार्थी मे वैसी योग्यता दिखाई दी है ... दीक्षार्थी एव उसके अभिभावको के अत्यन्त आग्रह पर दीक्षा देने का प्रसग ... आया है ।

प्रश्न–८ आज प्रचार–प्रसार का युग है और अनेक सम्प्रदाय इसके लिये माईक आदि का उपयोग करने लगे हैं । क्या आप नहीं चाहते कि जैन धम का प्रसार हो और आपके ज्ञान व उपदेश का सभी लाभ ले सकें आज ? आज जबकि सूय के प्रकाश से बटरियाँ बन... हैं, उसमें तो जीव हिंसा नहीं होती फिर उसका प्रयोग आप क्यों नहीं करते ?

उत्तर—युग प्रचार-प्रसार का हो या आचार का, युग को देखकर ... जीवन में उसकी मर्यादाओ का परिवत्त न नही किया जा सकता है । कारण, ... परिवर्तित होता रहता है किन्तु जीवन के शाश्वत सिद्धान्त परिवर्तित नही होते युग को मानव के अनुसार चलना चाहिये—मानव युग के अनुसार परिवर्तित नही हो सकता है । मानव का सच्चा धम वही है जो वीतराग प्रभु के सिद्धान्त के अनुरूप होता है । आज के युग मे तो निरा भौतिकवाद भी है और नास्तिक... का बोलबाला भी हो रहा है तब क्या युग के अनुसार साधु भी भौतिकवादी ... नास्तिक बन जाय ? इसका निर्णय आप ही करें ।

सन्त जीवन का एक लक्ष्य होता है कि साधु आध्यात्मिक साधना के माध्यम ... जीवन मे पूरा चिन्तन-मनन के साथ आत्मिक विकास को साधे । उसका जीवन ... प्रचार के लिये होता है और न प्रसार के लिए—वह तो मात्र आत्म-शुद्धि के लिये होता है । इस प्रकार आत्म शुद्धि साधु-जीवन का प्रधान लक्ष्य है । ...

ामी जीवन अगीकार किया जाता है तो उसके अन्तर्गत पाच मूल महाव्रतो को ोकार करना होता हैं और उनका स्वस्थ रीति से पूर्ण पालन करना ही साधु ा ग्रहण करने वाली मुमुक्षु आत्मा का परम कत्तव्य बन जाता है। यह कर्त्तव्य ा लक्ष्योमुख रहना चाहिये ।

वास्तविक आत्म-शुद्धि के लक्ष्य के साथ पच महाव्रतो का यथाज्ञा पालन रते हुए जितना प्रचार-प्रसार का काय किया जा सकता है, उसकी पूरी चेष्टा ती है । मर्यादा के भीतर रहते हुए जितना प्रचार-प्रसार किया जा सकता है, ीकत मे वह तो हो ही रहा है । किन्तु महाव्रतो को भूल कर या उनके पालन शिथिलता बरतकर अथवा उनमे दोप लगाकर प्रचार-प्रसार करने की भावना धु जीवन मे कदापि नही आनी चाहिये, क्योंकि सन्त जीवन का प्रधान लक्ष्य चार-प्रसार करना नही है, अपितु आत्म-शुद्धि करना है ।

वैसे एक सन्त आजीवन मौन साधना को साधकर भी आत्मशुद्धि के रूप अपने जीवन का परम लक्ष्य प्राप्त कर सकता है, उसके लिये प्रचार-प्रसार रना आवश्यक नही । आत्म-शुद्धि की दिशा मे गतिशील रहते हुए प्रचार-प्रसार कार्य मे वह सलग्न होता है तो यह उसका अतिरिक्त उपकार है । किन्तु के लिये वह जीव-हिंसा आदि मे लगे और महाव्रत को भग करे—यह कतई मीचीन नही । यह निश्चित है कि माईक आदि के प्रयोग से अनेकानेक जीवो ा हिंसा होने की सभावना रहती है, बल्कि सभावना क्या, जीवहिंसा होती ही । वैसे माईक के उपकरण तो निर्जीव होते हैं, परन्तु उनके उपयोग म आने ाली विद्युत् आदि के माध्यम से तेजस्काय के जीवो की हिंसा के साथ पृथ्वीकाय, ायुकाय एव वनस्पतिकाय के जीवों की भी हिंसा होती है और किसी भी रूप हिंसक प्रवृत्ति को अपनाने से साधु अपनी मर्यादा से तो डुलता ही है तथा हाव्रत (अहिंसा) का खडन भी करता ही है, पर साथ ही वह अपने प्रधान क्ष्य से भी दूर हट सकता है ।

यदि साधु माईक पर प्रवचन देने लग जायगा तो फिर माईक पर ही वचन देने की उसकी आदत बन जायगी जिसके परिणामस्वरूप वह वही पर वचन देने के लिये तैयार होगा जहा पर माईक उपलब्ध हो सकेगा । अन्य स्थलो र वह प्रवचन देने मे कतराने लगेगा, क्याकि यह अभ्यास दोप उसमे पनप ायगा । जहा माईक नही मिलेगा, वहा प्रवचन नही दिया जायगा तो इसके लस्वरूप आशा के विपरीत स्थिति होगी कि अधिकाश क्षेत्र प्रचार-प्रसार से चित रहने लगेंगे तथा वास्तव मे प्रचार-प्रसार का कार्य घटकर, जनता की लाभ-ाप्ति मे कमी आ जायगी ।

किसी न किसी रूप मे हिंसा के आधार पर चलने वाले वैज्ञानिक साधनो यो भी जैन धम का सही प्रचार नही हो पायगा । धर्म के प्रति रुचि रखने

वाला विवेकशील युवक जब यह जानेगा कि माईक आदि के प्रयोग से
होती है और साधु ऐसी हिंसक प्रवृत्ति करता है तो उसके मन मे साधु
गरिमामय छवि का लोप होने लगेगा । इस प्रकार महिमापूर्ण सन्त आत्म
अवमूल्यन होगा ।

आप सामान्य रूप से भी चिंतन करें कि जब बादलों में
घर्षण मे उत्पन्न बिजली भी भूमि पर गिरती है तो उससे भी छ काय की हिं
हो जाती है—मनुष्य, पशु तक उसकी चपेट मे आ जाय तो मर जाते हैं
प्रयोग मे ली जानी बिजली भी अन्तत तो बिजली ही है । वह प्राकृति
और यह बिजलीघरों में बनाई जाती है । दोनो के स्वरूप में कोई खास अन्त
नही होता है—यह विज्ञान का सामान्य विद्यार्थी भी जानता है । विद्युत प्र
मे जीवहिंसा होती है या नही—यह प्रसग मेरे सामने ही नहीं, बल्कि पूर्व
महापुरुषो के सामने भी आया था और उन्होंने भी इसमें हिंसा बताकर प्रयो
करना उचित नही समझा था । युगद्रष्टा आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा क
एक बार जयपुर मे विराज रहे थे तब उनके सामने ऐसा प्रसग आया—नागरि
उनसे माईक प्रयोग का सविनय निवेदन किया किन्तु उन्होंने उसे उचित न
माना तथा माईक का प्रयोग नहीं किया । वही प्रयोग यदि अब किया जाता
तो क्या महाव्रत के उल्लघन के साथ उन महापुरुषो के मार्ग दर्शन का भी उल्ल
घन नही होगा । मैं उस समय उनके ही चरणों मे वहा था । इससे स्पष्ट है कि
साधु को माईक आदि का प्रयोग नही करना चाहिये । किन्तु साथ ही यह भ
स्पष्ट माना जाना चाहिये कि यदि माईक का प्रयोग किया जाता है तो फि
साधु का प्रधान लक्ष्य प्रचार-प्रसार ही बन जाता है । ऐसी दशा मे आत्म शुद्धि
और अन्तर की खोज उसके लिये कठिन हो जायगी । इस रूप म प्रचार प्रसार
ऐसे साधन साधु को उसके प्रधान लक्ष्य से दूर हटाने वाले हैं अर्थात आत्मशुद्धि
मे बाधक हैं ।

समझिये कि प्रचार-प्रसार मे सहायक नवीन साधनो का प्रयोग कर
ही है तो उसके द्वारा सन्त जीवन को सकारात्मक प्रवृत्तियो से विमुख कर
कतई उचित नही है—यह कार्य गृहस्थो का हो सकता है अथवा प्रचारक वर्ग
का । वैसे प्रचारक प्रवास भी कर सकते हैं, प्रचार-प्रसार मे साधन-प्रयोग भी कर
सकते हैं क्योंकि वे खुले हैं, पर साधु तो अपनी व्रत-मर्यादा मे बधा हुआ होता
है । उसे मर्यादाहीन बनाने का प्रयास कतई श्रेयस्कर नहो ।

साधु जीवन एक प्रकार से प्रकाश स्तभ होता है, अपनी ज्ञान की महिमा
एव आचरण की उच्चता के साथ । यदि वह उपदेश न भी दे तब भी उसके
आदर्श-जीवन से भव्य आत्माओं को प्रकाश प्राप्त होता है । उस प्रकाश से मलि
मूद कर माईक पर उपदेश दिलाने से कैसा प्रकाश फैलाने की अपेक्षा की जाती
है ? इस प्रकाश के बिना क्या इस प्रकाश मे वैसी उज्ज्वलता की आशा रखी

जा सकती है ? ऐसी अवस्था में कौन चाहेगा कि साधु उपदेशक बन जाय पर साधु न रहे ? साधुत्व खोकर क्या कोई साधु प्रभावशाली उपदेशक बन भी सकता है ? मूल है साधुत्व, अत मूल सुरक्षित और निर्दोष रहे वैसी कोई भी उपकारक प्रवृत्ति साधु कर सकता है, उसमे कोई मतभेद नही । सच्चे साधु के तो दर्शन ही प्रभावपूर्ण होते हैं क्योकि उसका सारा उपदेश उसके आचरण मे सजा-सवरा दिखाई देता है । क्या आप यह चाहेगे कि पवित्र साधु जीवन को पतित बनाकर आप उपदेश-श्रवण की अपनी स्वार्थपूर्ति करें ? मै समझता हू, आप कभी ऐसा नही चाहेंगे । इसलिये आप जरा तटस्थ भाव से सोचिये कि मैं प्रचार-पसार के लिये अपनी मर्यादा को कैसे त्याग सकता हू ?

आपके मन मे यह प्रश्न उठ सकता है कि आधुनिकता की दृष्टि से मनुष्य अपने मे आवश्यक परिवर्तन क्यो न लावे ? सामान्य रूप से इसमे मेरा मतभेद नही है कि हम सब आधुनिक युग के अनुसार अपने जीवन मे परिवतन लावें । लेकिन आधुनिक युग भी यह नही चाहता है कि माईक का प्रयोग करके ध्वनि प्रदूषण को बढावा दिया जाय । आधुनिक वैज्ञानिको ने ही जाच करके यह निष्कर्ष निकाला है कि मनुष्य के कान जितनी आवाज को सुनकर सहन कर सकते हैं, माईक की आवाज उसमे कई गुनी अधिक होती है जिससे कान के पर्दों को क्षति पहुचती है । क्षतिग्रस्त होते-होते कान के पर्दे फट भी जाते हैं। ध्वनि-प्रदूषण मे अन्य कई प्रकार के रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं जिनमे मस्तिष्क की विक्षिप्तता भी शामिल है । आप तो जानते हैं कि कई बार माईक प्रयोग न करने के सरकारी आदेश निकलते रहते हैं । एक ओर विज्ञान स्वय एव सरकारी-तन माईक प्रयोग का घातक बता रहा है तो दूसरी ओर इसे धार्मिक प्रचार-प्रसार के लिये योग्य बताना कहा तक उचित है ? सरकार तो समय-समय पर जन सहयोग मागती रहती है कि माईक के प्रयोग को रोक कर ध्वनि प्रदूषण के दुष्परिणामो से बचा जाय ।

अत वैसे साधनो के प्रयोग का क्यो आग्रह किया जाय जिससे साधु की मर्यादा भग होती है तथा जिसके विरुद्ध वैज्ञानिको के निष्कर्ष भी हैं ? यह प्रयोग सवदृष्ट्या हिंसाकारी है । हिंसा को साधु कभी नही अपना सकता क्योकि वह तीनो करण और तीनो योगो से हिंसा का परित्याग करता है । यदि साधु को साधु रहना है और साधु कहलाना है तो वह माईक आदि का कभी भी प्रयोग नही कर सकता है । आत्म-शुद्धि का लक्ष्य उसके लिये सर्वोपरि है ।

किसी के मन मे यह प्रश्न भी उठ सकता है कि परोपकार के लिये हिंसा हो भी जाय तो उसका प्रायश्चित क्यो नही हो सकता ? मेरी सम्मति मे यह सभव नही है । इसे एक स्थूल उदाहरण से समझे । एक व्यापारी यदि सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य सूची से किसी वस्तु का अधिक मूल्य किसी उपभोक्ता-ग्राहक से वसूल करता है तो उस पर एक अपराध बनता है और इसके लिये

अर्थदड भी किया जाता है । ऐसा प्रावधान जनहित के लिये रखा गया है । यदि दडित व्यापारी यह कहे कि मैंने अधिक वसूले गये मूल्य का धन जनहित-परोपकार में ही लगाया है अत मुझ पर अपराध न लगाया जाय तो क्या सरकार उसे छोड देगी ? मर्यादा तोडने से अपराध बनता है, उससे साधे गये परोपकार से भी वह छूटता नही है । इस कारण परोपकार भी सही विधि से ही किया जाना न्याय-सगत माना जाता है । अब साधु मर्यादा भग करने का अपराध करले और उसे परोपकार के सदर्भ मे छुडाना चाहे तो क्या वह अपराध मुक्त हो सकेगा ? अत मेरी स्पष्ट मान्यता है कि माईक आदि के प्रयोग मे हिंसक प्रवृत्ति का भागीदार बनकर साधु आत्म-शुद्धि के अपने प्रधान लक्ष्य का सम्यक् रीति से अनुसरण नही कर सकता है—इस कारण सयमी जीवन के सिद्धान्तों को छोडकर तथा उसकी मर्यादाओ को तोडकर प्रचार-प्रसार मे साधु को सलग्न नही बनना चाहिये ।

जहा तक सूर्य-ऊर्जा से बैटरिया बनाने की बात कही गई है—ये कैसे बनती हैं तथा इनके बनने मे हिंसा का कोई योग रहता है या नहीं, इस सम्बन्ध की मुझे कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं होने से इस विषय पर कोई विशेष कथन नहीं किया जा सकता है । इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सूर्य की किरणों को सकुचित करने वाले विशेष काच के नीचे यदि रूई आदि कोई शीघ्र ज्वलन शील वस्तु रखी जाती है तो उसमे अग्नि पैदा होती ही है—वैसी ही अग्नि जैसा कि आरणी आदि की लकडी के घर्षण से पैदा होती है । उस उत्पन्न अग्नि से रसोई आदि बनाने का काम हो सकता है । इस तरह से आग पैदा होती है तो तेजस्काय की जीवोत्पत्ति का प्रश्न सामने आता ही है । परन्तु विशेष जानकारी नही होने से इस विषय पर मैं विशेष कथन करना नही चाहूगा ।

प्रश्न—९ सघ के साधु,साध्वियों के लेख आदि प्रकाशित क्यो नहीं होते, जब कि इससे उनके ज्ञान, अध्ययन एव योग्यता का सही मूल्यांकन होता है ?

उत्तर—सत-सती वर्ग के लेख आदि प्रकाशित होने मे कई बातें सामने आती हैं । आरभ में चाहे सत सतिया का बौद्धिक विकास इन लेख आदि के प्रकाशन के माध्यम से हो सकता हो परन्तु आगे का उनका सर्वतोमुखी विकास इससे हो, यह कोई निश्चित नही है, क्योकि यदि सत सतिया इन लेख आदि के लिखने और उन्हें प्रकाशित करवाने मे रम जाते हैं, तब आत्म-शुद्धि के लिये चिन्तन-मनन करना तथा नवीन तत्त्वो की शोध करना उनके लिये कुछ कठिन सा जाता है । ऐसी मानसिकता मे वे फिर साधु-मर्यादाओ का निर्वहन भी सुग मता पूर्वक नही कर पाते हैं । लेख आदि की तरफ अधिक रुचि बढ जाने पर प्रिंटिंग प्रेसो पर आने-जाने का दौर भी बढ जाता है तथा अन्य सलग्नताए भी, जिनके कारण साधुचर्या की पालना अवश्य अवरोधित हो जाती है ।

यदि इस प्रवृत्ति के पीछे योग्यता-वृद्धि का ही उद्देश्य है तो यह उद्देश्य इसी प्रवृत्ति से पूरा हो, यह आवश्यक नही । अन्य समीचीन प्रवृत्तियो से भी इस उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है । उन प्रवृत्तियो के लिये मैं तत्पर रहता हू । मेरी दृष्टि मे साहित्य की चोरी वह कहला सकती है कि साधु कोई लेख लिखे और उसे किसी अन्य के नाम से छपवावे अत साधु इससे दूर ही रहे तो श्रेष्ठ है ।

प्रश्न–१० श्वेताम्बर परम्परा मे जैन गृहस्थ विद्वानों की कमी से आप स्वय परिचित हैं तो इस क्षेत्र मे आपका क्या प्रयास रहा है ? यह एक गभीर समस्या है कि जैन विद्वानो एव शिक्षाविदो को वह सम्मान प्रदान नहीं किया जाता जितना धनपतियों को किया जाता है, क्या इसके समाधान हेतु आपने कोई प्रयास किये हैं ?

उत्तर—यह सही है कि श्वेताम्बर परम्परा मे आगम शास्त्रा के मर्मज्ञ ज्ञाता–विद्वानो की आवश्यकता रहती है और इस आवश्यकता पूर्ति के लिये यथाशक्ति प्रयत्न करने के भाव भी रहते हैं किन्तु श्रद्धानिष्ठ आगम-ज्ञाता विद्वान् उपलब्ध नही हो पा रहे हैं । इस दिशा मे आचार्य श्री हस्तीमलजी म सा ने भी पर्याप्त प्रयास किये हैं तथापि सुनने मे यही आया है कि वाछित सफलता नही मिल पा रही है ।

इस विषय मे मैं मानता हू कि पूण प्रयत्न किया जाना अपेक्षित है । है । साथ ही समाज को भी अपने प्रयत्न अधिक तेज करने चाहिये ।

प्रश्न–११ राष्ट्रीय स्तर पर आये दिन दिल दहलाने वाली घटनाए घटती हैं, क्या वे घटनाए आपको भी प्रभावित करती हैं ? यदि हा तो उनके बारे मे आप किस प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं ?

उत्तर—राष्ट्रीय धरातल पर दिल दहलाने वाली ऐसी घटनाए जब कर्णगोचर होती हैं जिनका सम्बन्ध जनता की अहिंसा भावना एव नैतिक प्रवृत्तियो को विकृत बनाने से होता है तो गहन चिन्तन उभरता है कि यदि इस प्रकार सामान्य जन समुदाय की जीवन-चर्या कठिनाइयो से जटिल बनती हुई विकारपूर्ण होती रही तो सारे राष्ट्र के स्वस्थ विकास का क्या भविष्य होगा ?

जहा तक समुचित प्रतिक्रिया व्यक्त करने का सम्बन्ध है, वह यथायोग्य रीति से प्रवचनो का सम्बन्ध है, वह यथायोग्य रीति से प्रवचनो के माध्यम मे, प्रश्नोत्तरा या चर्चा मे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अवश्य अभिव्यक्त होती है ताकि सस्कार क्रान्ति को बल मिले तथा जन समुदाय मे सभी प्रकार की अनैतिकताओ से सघर्ष करने की प्रेरणा जागे । हमारी ओर से इसी प्रकार का प्रयत्न समव हो सकता है ।

प्रश्न—१२ आपको दीक्षा लिये ५० वर्ष बीत गये हैं। पहले वैरागी, फिर साधु फिर युवाचार्य और अब आचार्य—इस बदलते परिवेश मे आपको कैसा-कैसा अनुभव हुआ ?

उत्तर—मेरे हृदय मे वैराग्य भाव जागृत हुआ उससे पहिले साधु जीवन के प्रति मेरी कोई रुचि नही थी। यही खयाल था कि व्यापार, धधा या खेती आदि मे जीवन-निर्वाह के योग्य बनना है, किन्तु ससार की विभिन्न क्रियाओं के बीच भी प्रतिक्रिया रूप भाव तो उभरते ही हैं। उनके पीछे अमुक परिस्थितियाँ भी रहती है।

अल्पायु मे मेरे पिताश्री का देहावसान होगया। साथ ही विद्यालयी शिक्षा भी अवरुद्ध हो गई। मुझे ध्यान है कि उस समय की शिक्षा का सामान्य पाठ्यक्रम भी बडा प्रभावी था। उससे मन-मस्तिष्क के विकास मे बडी सहायता मिलती थी। मेरा अनुभव है कि उससे भी मेरी बुद्धि का विकास हुआ, साहस की मात्रा मे वृद्धि हुई तथा चिन्तन-मनन की अभिरुचि प्रखर बनी। मैंने एक बार छ आरो का वर्णन सुना। उसके पश्चात् मादसोडा से भदेसर घोडे पर बैठकर जाते समय बीच के वनखड मे चिंतन उभरा कि आत्मा और परमात्मा क्या है? आत्मा की शक्ति कैसे बढ सकती है ? क्या परमात्मा का कहीं दर्शन भी हो सकता है ? आदि आदि। और इसी निरन्तर चिन्तन मे मेरे हृदय में वैराग्य भाव का अकुर प्रस्फुटित हुआ। उस समय मुझे परमात्मा की कल्पना भी होने लगी और अपनी भूलो की तरफ भी ध्यान जाने लगा। मैं अपनी आत्मालोचना मे ज्यो-ज्यो डूबता गया, त्यो-त्यो मेरा वैराग्य भाव अधिकाधिक मुखर होने लगा।

मैंने विचार किया कि मैं अपनी माता के धार्मिक कृत्यो में भी बाधाएं डालता रहा हू, क्यो नही उसका अनुसरण करके अपने जीवन को भी धार्मिक बना लू ? इस प्रकार अनेकानेक बातें सोचता हुआ मैं रो पडा—और कई बार एकान्त मे रोता ही रहता था। ऐसी ही अवस्था मे एक बार मैं माताजी के पास पहुचा। कठ तो रु धा हुआ था ही, प्रायश्चित के स्वर मे बोलने लगा—माताजी, मैं कैसा हू जो आपको साधु सतियो के यहा जाने से टोकता हूं या सामायिक आदि धार्मिक क्रियाए नही करने देता हू ? यह मेरी बडी गलती है। किन्तु अब मैं आत्मा और परमात्मा पर सोचने लगा हू, अब ऐसी गलती नहीं करूगा। मैं स्वय आपको सन्तों के पास ले जाऊगा जो जीवन-सुधार की अच्छी अच्छी शिक्षाए देते हैं। मेरे मुख से ऐसे भाव सुनकर मेरी माता को आश्चर्य हुआ और आनन्द भी। उन्हें चिन्ता भी हुई कि कही मैं वैरागी तो नही हो गया हू ! और सचमुच मेरी वह अवस्था वैरागी की ही हो गई थी और मन ही मन मैंने साधु बनने की ठान ली थी।

मन मे सदा परमात्मा का चिन्तन चलता रहता था और बाहर सामान्य

गुरु की खोज मे घूमता रहता था । मैं एक साधु के पास जाता, उनसे शिक्षा ग्रहण करता और जब मुझे योग्यतर साधु के दशन होते तो मैं उनके पास चला जाता । इस प्रकार कई साधुओ के समीप रहने का मुझे अनुभव मिला, परन्तु पूरी तरह से आत्म-सन्तुष्टि नही मिली । घर पर मेरा मन बिल्कुल नहीं लगता था और इसी धुन मे इधर-उधर घूमता फिरता था । इसी क्रम मे मैंने आचार्य जवाहरलालजी म सा के विषय मे सुना कि वे खादी पहिनते है तथा भावप्रवण प्रवचन दिया करते हैं । मेरे मन को लगा कि जिनकी मुझे अब तक खोज थी वे मुझे मिल गये हैं । उस समय मेरा चिन्तन उभरा—अब तक कई साधुओ के पास गया, मुझे बडा आदर उन्होने दिया और दीक्षा का आग्रह किया परन्तु वहा आत्म-शुद्धि हेतु मुझे उचित वातावरण नही लगा । मेरे मन मे आदर या पद की लालसा कतई नही थी, आत्म-शुद्धि का भाव ही सर्वोपरि था । आचार्य श्री जवाहर के दशन तो उस समय, मैं नही कर पाया पर उन्ही के सत युवाचाय श्री गणेशीलालजी म सा उस समय कोटा विराज रहे थे, दर्शन किये । मैंने महाराज सा के सामने अपनी दीक्षा लेने की भावना व्यक्त कर दी । युवाचाय श्री ने फरमाया—यह तुम्हारी भावना अच्छी है परन्तु दीक्षा से पूर्व तुम्हें समुचित अध्ययन करना होगा । इसके सिवाय दीक्षा के लिये न उन्होंने मुझे कोई प्रलोभन दिया और न ही कोई ऐसी वैसी बात कही । मैं उनके भव्य व्यक्तित्व के प्रति आकृष्ट हो गया और उनके समीप अध्ययन करने लगा । इस बीच घर वाले वहा आ गये और बलात् मुझे घर लेकर चले गये । मैं फिर भाग आता, फिर वे मुझे ले जाते—इस तरह प्रसग बनता रहा । उस समय मैंने सुना कि आचार्य जवाहरलालजी म सा केवल दूध छाछ पर ही अपना निर्वाह कर रहे हैं तो मेरा भी विचार बना कि मैं केवल जल पर ही निर्वाह करूं । इस विचार स मैं अन्न की मात्रा कम करता गया—आधी और पाव रोटी तक पहु च गया । तब गुरुदेव ने फरमाया—आचार्य श्री को तो शक्कर की बीमारी है इस वास्ते अन्न नही लेते हैं, परन्तु तुम्हें तो आत्म-शुद्धि हेतु जीवन चलाना है । आहार नही करोगे तो शरीर दुबल हो जायगा और सयम का पालन कठिन । इस मनुष्य जीवन को यो व्यर्थ थोडे ही करना है । वह बात मैंने स्वीकार करली और वापिस धीरे-धीरे आहार की वृद्धि की—आत्म-शुद्धि का प्रश्न मेरे अन्तमन मे समाया हुआ था ।

एक विचित्र प्रसग भी बना । मेरे वैराग्य भाव को समाप्त करने के लिये मेरे भाई साहब ने कोई तान्त्रिक प्रयोग भी किया । मैं विचारमग्न वैसे ही लेटा हुआ था कि भाई सा आये और मुझे नीद मे सोया हुआ जानकर मुझ पर राख (भभूत) छिडकते हुए कुछ टोटका करने लगे । मैंने उठकर साफ कह दिया कि मुझे दीक्षा लेनी है और आप उसके लिये सहप आज्ञा दे दीजिये । फिर भी उन्होंने कई तरह के प्रयास किये कि मैं दीक्षा न लू, पर हार थक कर उन्होंने मुझे आज्ञा दे दी और मैंने स्वर्गीय आचाय श्री गणेशीलालजी म सा के चरणो मे दीक्षा अगीकार कर ली । मैं साधु बन गया । दीक्षा के समय गुरुदेव ने मुझे

यह शिक्षा दी थी कि तुम्हें जितने भी सच्चे साधु और योग्य श्रावक मिलें—सबसे यही कहना—मेरे मे कोई त्रुटि दिखाई दे तो उसे कृपा करके मुझे अवश्य बतावें। कोई त्रुटि बतावे तो उस पर गुस्सा कभी मत करना एव सशोधन यथार्थ हो तो उसे सविनय स्वीकार कर लेना । मैंने गुरुदेव की इस शिक्षा को विनयपूर्वक हृदय मे धारण की है और इसको सदा याद रखता हू—चाहे मैं युवाचार्य हुआ या आचार्य समाज और संघ के उत्तरदायित्व का वहन करते हुए भी यह शिक्षा मेरे लिये पूर्ण उपयोगी सिद्ध हुई है । तब मैंने गुरुदेव को और सघ को स्पष्ट निवेदन किया था कि आप यह पद किसी अधिक योग्य साधु को देवें—मेरी इसके लिए इच्छा नही है । परन्तु जब किसी ने मेरा निवेदन नही सुना तो मुझे यह दायित्व लेना ही पडा ।

और आज मैं आपके समक्ष हू इस बीच कई प्रकार के अनुभव मुझे हुए पर उनको अभी बताने का समय नही है । अब तक मेरा विशिष्ट अनुभव यही समझिये कि मै आत्म-शुद्धि के नये-नये प्रयोग खोजता रहा हू और यथाशक्ति उन्हे प्रकट भी करता रहा हू । उनमे प्राप्त सफलता के विषय मे मेरा यही कहना है कि अभी तक मैं पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नही हू ।

आपसे यही अपील है कि आत्म-शुद्धि एवं शान्ति के जो उपाय मैं बताऊं, उन में आप आवश्यक सशोधन सुझावें । मेरा यही चिन्तन चलता है कि साधु मर्यादा में रहकर वैज्ञानिक विधि से भी प्रयोगो को साधकर आत्म शुद्धि एव शान्ति के लिये नये-नये सिद्धान्तो का प्रतिपादन कर सकू । और यही नम्र प्रयास आज भी चलता रहता है ।

—शोध अधिकारी आगम अहिंसा समता एव प्राकृत सस्थान, उदयपुर

□

आचार्य श्री हुक्मीचंदजी म सा

जीवन तथ्य

जन्म स्थान	टोडा रायसिह (राजस्थान)
पिता	श्री रतनचन्दजी चपलोत
माता	श्रीमती मोतीयादेवी
दीक्षा स्थल	बूदी (राजस्थान)
दीक्षा तिथि	मागशीप अष्टमी वि स १८७९
गुरुजी	पूज्य श्री लालचन्दजी म सा
स्वगवास स्थान	जावद (मध्यप्रदेश)
स्वगवास तिथि	वैशाख शुक्ला पचमी वि स १९१७

❀ सयमीय साधना की गहराईयो मे उतरकर आत्म कल्याण के साथ परात्म कल्याण के लिये जिन्होने ज्ञान सम्मत विशिष्ट क्रिया का शखनाद किया था।

❀ तत्कालीन युग में निर्ग्रन्थ सस्कृति मे व्याप्त सयम शैथिल्य की उपेक्षा कर आत्म-शक्ति जागृत करने के लिये जिन्होने सयमीय क्रियाओ का विशिष्टता के साथ अनुपालन कर साधु समाज के समक्ष एक आदश उपस्थित किया था।

❀ भयकर से भयकर शीत ऋतु मे भी एक ही चादर को ओढकर जो आत्म-साधना में तल्लीन रहते थे।

❀ २१ वप तक जिन्होंने बेले–२ की तप साधना की थी। जिन्होने १८ द्रव्यो से अधिक द्रव्य का, मिष्ठान्न एव तली चीजो का यावत्-जीवन परित्याग कर दिया था।

❀ प्रतिदिन दो हजार शक्रस्तव एव दो हजार गाथाओं का परावर्तन जिनके जीवन का अग था।

❀ जिनका जीवन अनेकानेक चमत्कारिक घटनाओ से सम्बद्ध था।

❀ ऐसे थे ज्ञात सम्मत क्रियोद्धारक साधु मार्ग परम्परा के आसन उपकारी आचाय श्री हुक्मीचन्दजी म सा

आचार्यश्री शिवलालजी म सा

जीवन तथ्य

जन्म स्थान	धामनिया (मध्यप्रदेश)
दीक्षा स्थान	बूदी (राजस्थान)
दीक्षा तिथि	वि स १८६१ पौष शुक्ला षष्ठी
युवाचार्य पद स्थान	बीकानेर
युवाचाय पद तिथि	वि स १६०७
श्राचाय पद स्थान	जावद (मध्यप्रदेश)
श्राचाय पद तिथि	वि स १६१७
स्वगवास स्थान	जावद (मध्यप्रदेश)
स्वर्गवास तिथि	वि स १६३३ पौषशुक्ला षष्ठी

- ससार की असारता एव मुक्ति के अक्षय सुख के स्वरूप को समझकर जिन्होंने उत्कृष्ट भावो के साथ सयमीय साधना मे प्रवेश किया था।
- अपनी प्रखर प्रतिभा के बल पर जिन्होंने विद्वत् समाज मे जोरदार प्रतिष्ठा प्राप्त की थी।
- जिज्ञासुओ की जिज्ञासा का सटीक समाधान देकर उन्हे सतुष्ट करने मे जो समर्थ थे।
- जिनका शक्ति रस से परिपूर्ण जीवन-स्पर्शी उपदेश जन-जन की आत्मा को झकृत करने वाला था।
- ३५ वर्ष तक निरन्तर एकान्तर की तपस्या करके जिन्होने विद्वता के साथ ही तपस्या मे भी एक कीर्तिमान स्थापित किया था।
- जिनकी स्वाध्याय के प्रति गहरी रुचि, आचार एव विचार के प्रति पूर्ण निष्ठा एव जिनवाणी पर अगाध श्रद्धा थी।
- ऐसे थे प्रखर प्रतिभा सम्पन्न महान् शिवपथानुयायी आचार्य श्री शिवलालजी म सा

आचार्य श्री उदयसागरजी म सा

जीवन तथ्य

जन्म स्थल	जोधपुर (राज)
जन्म तिथि	वि स १८७६ पौष मास
पिता	श्री नथमलजी खिवेसरा
माता	श्रीमती जीवूदेवी
दीक्षा स्थान	बू दी (राजस्थान)
दीक्षा तिथि	वि स १८९८ चैत्र शुक्ला एकादशी
स्वर्गवास स्थान	रतलाम
स्वर्गवास तिथि	वि स १९५४ माघ शुक्ला दशमी

❀ भोग से योग की ओर मुडकर अर्थात् शादी से सन्यास की ओर मुडकर जिन्होने जनता के समक्ष एक विशिष्ट आदश उपस्थित किया था।

❀ सयमीय साधना के साथ ही जिन्होंने सम्यक् ज्ञान के क्षेत्र मे भी विशिष्ट योग्यता प्राप्त की थी।

❀ शासन का सचालन जिन्होंने विशिष्ट योग्यता के साथ सम्पन्न किया था।

❀ आचार्य पद के विशिष्ट गरिमामयं पद पर रहकर भी जिनमे विनम्रता शालीनता आदि के विशिष्ट गुण थे।

❀ जिनकी उत्कृष्ट सयम साधना से उनका शिष्य वग भी तदनुरूप आराधना मे *गतिशील* रहा।

❀ जिनशासन नभ में उदित होकर जिन्होंने अज्ञान तिमिर का निवारण किया था।

❀ ऐसे थे विरक्तो के आदर्श आचार्य श्री उदयसागरजी म सा ।

आचार्य श्री चौथमलजी म. सा.

जीवन तथ्य

जन्म स्थान	पाली (राजस्थान)
दीक्षा स्थल	बूंदी (राजस्थान)
दीक्षा तिथि	वि स १९०९ चैत्र शुक्ला द्वादशी
युवाचार्य पद तिथि	वि सं १९५४ मागशीर्ष शुक्ला त्रयोदशी
आचार्य पद स्थान	रतलाम (मध्यप्रदेश)
आचार्य पद तिथि	वि स १९५४ माघशुक्ला दशमी
स्वर्गवास स्थान	रतलाम (मध्यप्रदेश)
स्वर्गवास तिथि	वि स १९५७ कार्तिक शुक्ला नवमी

❀ ससार से उद्विग्न होकर शाश्वत् सुख की पिपासा को शान्त करने के लिए जिन्होने जनेश्वरी दीक्षा स्वीकार की थी। सम्यक् ज्ञान के साथ सयमाचरण मे जो विशेष रूप से सतक थे।

❀ सयम शैथिल्य मे जो वज्रादपि कठोराणि-वज्र से भी कठोर थे तो सयम-साधना मे मृदुनि कुसुमादपि फूल से भी कोमल थे जिनके सम्यक् आचरण का प्रत्येक चरण साधना के लिये प्रेरणा स्रोत रहा है।

❀ ऐसे थे महान् क्रियावान् सयम के सशक्त पालक आचार्य श्री चौथमलजी म सा।

आचार्य श्री श्रीलालजी म सा

जीवन तथ्य

जन्म स्थान	टोंक (राजस्थान)
जन्म तिथि	वि स १९२६ मार्गशीष द्वादशी
पिता	श्री चुन्नीलालजी बम्ब
माता	श्रीमती चादकु वर बाई
दीक्षा स्थान	बनेडा (राजस्थान)
दीक्षा तिथि	वि स १९४४ पौष कृष्णा सप्तमी
युवाचार्य पद स्थान	रतलाम (मध्यप्रदेश)
युवाचार्य पद तिथि	वि स १९५७ कार्तिक शुक्ला द्वितीया
आचार्य पद स्थान	रतलाम (मध्यप्रदेश)
आचार्य पद तिथि	वि स १९५७ कार्तिक शुक्ला नवमी
स्वर्गवास स्थान	जेतारण (राजस्थान)
स्वर्गवास तिथि	वि स १९७७ आषाढ शुक्ला तृतीया

❀ होनहार विरवान के होत चीकने पात और श्री के लाडले लाल ।
❀ विलक्षण बाल क्रीडा तथा टोकरी पर चिंतन प्रवाह ।
❀ वैराग्य का वेग अवरोध मोचक ।
❀ दीक्षा प्रभाव की अतिशयता एव आचार्य पदारोहण ।
❀ एक एक चातुर्मास भी धर्मोपकार का इतिहास ।
❀ ज मभूमि में स्मरणीय चातुर्मास ।
❀ मरुभूमि मेवाड़ एव मालवा धरा पर धर्मानंद की लहर ।
❀ राजाओ व जागीरदारो की भक्ति तथा सफल जीवदया अभियान ।
❀ ब्यावर में एक साथ पाच दीक्षा ।
❀ सौराष्ट्र के दीर्घ प्रवास मे अपूर्व त्याग, तप व परोपकार ।
❀ शतावधानीजी महाराज की दृष्टि मे आचार्यश्री का व्यक्तित्व ।
❀ पूज्यश्री के पक्के मुस्लिम भक्त मौलवी सैयद आसद अली ।
❀ सम्प्रदाय की सुव्यवस्था एव आत्मशक्ति का प्रयोग ।
❀ थलियो की जलती रेत पर अमृत की वर्षा ।
❀ जयपुर चातुर्मास से अभिनव अहिंसा प्रचार राजवशियो ने सत्सग करने मे होड लगा दी ।
❀ युवाचार्य पदारोहण महोत्सव एव अपूर्व सम्मेलन ।
❀ जैन गुरुकुल की स्थापना । ❀ शरीर पिंड से विदाई ।
❀ श्रीजी के प्रति व्यक्त भावभीने उद्गार ।
❀ महान् सद्गुणो से अलकृत एव अति विशिष्ट व्यक्तित्व ।

आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा

जीवन तथ्य

जन्म स्थान	थांदला (मध्यप्रदेश)
जन्म तिथि	वि स १९३२ कार्तिक शुक्ला चतुर्थी
पिता	श्री जीवराजजी कवाड
माता	श्रीमती नाथीबाई
दीक्षा स्थान	लिमडी (म प्र)
दीक्षा तिथि	वि स १९४८ माघशुक्ला द्वितीया
युवाचाय पद स्थान	रतलाम (मध्यप्रदेश)
युवाचाय तिथि	वि स १९७६ चैत्र कृष्णा नवमी
आचार्य पद स्थान	जैतारण (राजस्थान)
आचार्य पद तिथि	वि स १९७६ आषाढ शुक्ला तृतीया
स्वर्गवास स्थान	भीनासर (राज)
स्वर्गवास तिथि	वि स २००० आषाढ शुक्ला अष्टमी

❀ विपत्तियो की तमिस्र गुफाओ को पार कर जिसने सयम साधना का रा स्वीकार किया था ।

❀ ज्ञानार्जन की अतृप्त लालसा ने जिनके भीतर ज्ञान का अभिनव आलोक न्तर अभिवर्द्धित किया ।

❀ सयमीय साधना के साथ वैचारिक क्रांति का शखनाद बजाकर जिसने भू को चमत्कृत कर दिया ।

❀ उत्सूत्र सिद्धातो का उन्मूलन करने, आगम सम्मत सिद्धातो की प्रति करने के लिये जिसने वाद-विवाद मे विजयश्री प्राप्त की ।

❀ परतन्त्र भारत को स्वतन्त्र बनाने के लिये जिसने गांव-गांव नगर पाद, कर अपने तेजस्वी प्रवचनो द्वारा जन-जन के मन को जागृत किया ।

❀ शुद्ध खादी के परिवेश मे खादी अभियान चलाकर जिसने जन-मानस में धारण करने की भावना उत्पन्न कर दी ।

❀ अल्पारम्भ-महारम्भ जैसी अनेको पेचीदी समस्याओ का जिसने अपनी प्रख प्रतिभा द्वारा आगम सम्मत सचोट समाधान प्रस्तुत किया ।

❀ स्थानकवासी समाज के लिये जिसने अजमेर सम्मेलन में गहरे चिन्तन मन के साथ प्रभावशाली योजना प्रस्तुत की ।

❀ महात्मागांधी, विनोबा भावे, लोकमान्य तिलक, सरदार वल्लभभाई पटेल, प श्री जवाहरलाल नेहरू आदि राष्ट्रीय नेताओ ने जिनके सचोट प्रवचनों का समय-समय पर लाभ उठाया ।

❀ जैन एवं जैनेतर समाज जिसे श्रद्धा से अपना पूजनीय स्वीकार करती थी ।

❀ सत्य सिद्धांतो की सुरक्षा के लिये जो निडरता एवं निर्भीकता के साथ भू-मण्डल पर विचरण करते थे ।

❀ वे हैं ज्योतिर्धर, क्रांतद्रष्टा, युगपुरुष स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा

आचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा.

जीवन तथ्य

जन्म स्थान	उदयपुर (राज)
जन्म तिथि	वि स १९४७ श्रावण कृष्णा तृतीया
पिता	श्री साहबलालजी मारू
माता	श्रीमती इन्द्रादेवी
दीक्षा स्थान	उदयपुर (राज)
दीक्षा तिथि	वि स १९६२ मागशीप कृष्णा एकम
युवाचार्य पद स्थान	जावद (मध्यप्रदेश)
युवाचार्य पद तिथि	वि स १९९० फाल्गुन शुक्ला तृतीया
श्राचाय पद स्थान	भीनासर (राजस्थान)
श्राचाय पद तिथि	वि स २००० श्रापाढ़ शुक्ला श्रष्टमी
स्वगवास स्थान	उदयपुर (राजस्थान)
स्वगवास तिथि	वि स २०१९ माघ कृष्णा द्वितीया

❀ विनय विवेक-विनम्रता जिनके रग-रग मे समाहित थी ।

❀ जिनको समूह नही, सयम प्रिय था ।

❀ सयमीय साधना से श्रनुस्यूत जो, सिंहो के समक्ष भी निर्भय निद्व न्द्व विचरण करते थे ।

❀ जिनकी कुशल वाग्मिता जन-जन के मन को प्रभावित किये बिना नहीं रहती ।

❀ जिनके गीतो की सुमधुर झकृति मन के श्र तस्तल को छू जाती थी ।

❀ प्राय स्थानकवासी समाज के जो एकमात्र सर्वसता सम्पन्न श्रनुशास्ता बनाए गए थे।

❀ जिन्होंने श्रपनी सयमीय श्रान-बान श्रौर शान की रक्षा के लिये बहुत बडे पद की कुर्बानी दे दी ।

❀ केंसर जैसी भयकर बीमारी मे ही जिसने उफ तक नही किया था ।

❀ बडे-बडे साधु सम्मेलनो का भी जिन्होंने कुशलता के साथ सचालन किया ।

❀ श्रपने नाम के श्रनुसार ही जो एक गरण से दो गरणो के, दो से बहुत गरणो के ईशस्वामी बने थे ।

❀ पूण सजगता की स्थिति मे संलेखना सथारा कर जिन्होने समाधि पूर्वक देहोत्सर्ग किया था ।

❀ ऐसे थे, हुक्म गच्छ के सप्तम पट्ट शाँतक्राति के जन्मदाता श्राचार्य श्री गणेशीलालजी म सा ।

आचार्य श्री नानालालजी म सा

जीवन तथ्य

जन्म स्थान	दाता जि० चित्तौड़गढ (राज)
जन्म तिथि	वि स १९७७ ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया
पिता	श्री मोडीलालजी पोखरना
माता	श्रीमती शृंगारबाई
दीक्षा तिथि	वि स १९९६ पौष शुक्ला अष्टमी
दीक्षा स्थान	कपासन (राज)
युवाचार्य पद स्थान	उदयपुर (राज)
युवाचार्य पद तिथि	वि स २०१९ आश्विन शुक्ला द्वितीया
आचार्य पद स्थान	उदयपुर (राज)
आचार्य पद तिथि	वि स २०१९ माघकृष्णा द्वितीया

❀ साधना की पगडंडी पर जो अविचल रूप से निर्भयता के साथ चलते रहे।

❀ श्रमण संस्कृति की अक्षुण्ण सुरक्षा के लिये जो अनेक तूफानों एवं झंझावातों के बीच भी हिमानी की तरह अडिग बने रहे।

❀ गुरु चरणों में सर्वतोभावेन समर्पित होकर जो आत्मिक-मशाल को निरन्तर प्रज्वलित करते रहे।

❀ चिन्तन की गहराइयों से निसृत समता-सुधा द्वारा जो, विषमता से विषाक्त विश्व को आप्लावित कर रहे हैं।

❀ दलित पतित, शोषित- उत्पीडित निम्न समझे जाने वाले जनसमूह को जिन्होंने अपने पावन पूत जीवन से संस्कारित कर धर्मपाल की संज्ञा से अभिव्यक्त किया है।

❀ जैन समाज की भावनात्मक एकता के लिये जो अपने महत्त्वपूर्ण चिंतन के साथ सदा तत्पर है।

❀ मानवों में मानसिक तनाव की उपशांति के साथ आत्मिक शांति जागृत करने के लिये जिसने आगम सम्मत समीक्षण ध्यान साधना का अभिनव प्रयोग जनता के समक्ष प्रस्तुत किया है।

꙳ जटिल से जटिल प्रश्नो का समाधान जो अपनी प्रखर-प्रतिभा से सहजता के साथ आगमिक वैज्ञानिक तार्किक एव व्यवहारिक तरीके से पूर्ण सन्तोष पद प्रस्तुत करते हैं।

꙳ जिनके प्रवचन आगमिक विवेचना के साथ ही विश्व की तात्कालीन समस्याओ का सचोट समाधान प्रस्तुत करते हैं।

꙳ एक साथ २५ दीक्षाए देकर जिसने ५०० वर्ष पूव के इतिहास को पुन तरो-ताजा कर दिया है।

꙳ जिनके जीवन का नैसर्गिक चमत्कारिक प्रभाव आधिव्याधि और उपाधि से सतप्त जीवन मे शाति का वषण करता है।

꙳ भारत के कोने-कोने मे विस्तृत इस विशाल सघ का जो कुशल सचालन कर रहे हैं।

꙳ पचमाचाय श्री श्रीलालजी म सा की भविष्य घोषणा वतमान के परिप्रेक्ष्य मे सत्यता की कसौटी पर कसी जाती हुई जिनके जीवन से प्रदीप्त हो रही है।

꙳ ऐसे युग पुरुष है समता विभूति, विद्वद्व शिरोमणि, जिनशासन प्रद्योतक, धर्मपाल प्रतिबोधक, समीक्षण ध्यान योगी, हुक्म गच्छ के अष्टम पाट सुशोभित हमारे चरित्र नायक आचार्य श्री नानेश।

शुचि शान्ति प्रचेता

हुक्म सघ क्षितिज के अभिनव अधिनेता हो,
परिपूर्ण सयममय इन्द्रिय विजेता हो ।
तुमसा अपूर्व इस भूतल पर तुम्हीं हो,
अनुपम चरित्रयुक्त 'शुचि शान्ति प्रचेता' हो ।

वह दाता गाव है सुख का दाता,
जिस भू पर तुम अवतार लिये ।
वह धन्य धन्य है शृ गारा,
जिसने गुणमय सस्कार दिये ।

तुम मोडी सुकुल तम हीरक हो,
गुरुदेव गणश्री के पटधर ।
हो ध्यान समीक्षण उद्बोधक,
करूणा सयम सपूर्ण सने ।
गाम्भीर्य पूर्ण गुण सागर हो,
नभ मडल कीर्ति वितान तने ।

कोई कितना गुण गण गावे,
पर भाव भगिमा एक रही ।
अन्तर बाहर दोनों दिशि में,
है दृष्टि एक नित नेक रही ।
पावन चरित्र का अभिव्यजन,
मानव क्या किधर भी करते ।
सद्भाव भरित होके सतत,
समता सौरभ सुपमा भरते ।

❀ विद्वद्वर्य, कविरत्न श्री वीरेन्द्र मुनिजी की डायरी से
प्रस्तोता —कमलचन्द सूरिणया, बीकानेर

आचार्य श्री नानेश : शिष्यो की दृष्टि मे

(प्रश्नो के माध्यम से)

प्रश्न जो पूछे गये—

१ आपको सयम धारण करने मे आचार्य श्री से किस प्रकार प्रेरणा मिली ?

२ आपकी दृष्टि मे आचार्य श्री के सयमी जीवन की क्या मौलिक विशेषताए है ?

३ आचार्य श्री द्वारा प्रतिपादित समीक्षण ध्यान मे आपकी क्या उपलब्धि रही है ?

४ आपके सयमी जीवन को पुष्ट बनाने मे आचार्य श्री का किस प्रकार योगदान रहा है ?

५ आचार्य श्री के चातुर्मास एव विहार-काल मे घटित ऐसे घटना-प्रसगो का उल्लेख कीजिए, जिसने आपको सर्वाधिक प्रभावित किया हो ।

सागरवत् गम्भीर एव मेदिनीवत् सहनशील

❀ घायमातृपद विभूषित श्री इन्द्रचन्द्रजी म.सा.

उत्तर-१ मैं शान्तक्रान्ति के अग्रदूत श्री गणेशीलालजी म सा से दीक्षित हुआ था। गुरु भाई होते हुए भी अनुशासित शिष्य ही मानता हू अपने को।

उत्तर-२ वीर शासन के अधिशास्ता आचार्य श्री का जीवन जिस किसी दृष्टि से देखता हू तो मुझे पारसमणिवत् प्रतीत होता है। जैसे पारसमणि जग लगा हुआ लोहा हो या बिना जग लगा हुआ, उसको अपने ससपर्श से स्वर्ण बना देती है, उसी प्रकार जो कोई भी आचार्य श्री के सम्पर्क मे आता है, उसे वे अपने महनीय व्यक्तित्व के द्वारा प्रभावित किये बिना नहीं रहते। भक्तामर स्तोत्र का "नात्यद्भुत भुवन भूषण भूतनाथ" श्लोक का जब भी मैं आचार्य श्री की तरह चिन्तन करता हू, मुझे याद आ ही जाता है।

आपके जीवन मे मूलरूप से आगमकारो ने जो ३६ गुण बतलाये है, वे तो हैं ही, साथ ही साथ अन्य अनेक गुण भी सूत्रो मे गुम्फित मणियों की तरह निरतर प्रतिभाषित होते हैं।

साधक को प्रत्येक वस्तु के प्रति अनासक्त रहने का उपदेश आगमकारों ने दिया है। आचाराग सूत्र मे कहा है "जे गुणे से मूलठाणे, जे मूलठाणे से गुणे।' अर्थात् जो शब्दादि गुण हैं, वे ही आसक्ति के मूलस्थान हैं और जो कर्म बधन के मूलस्थान हैं वे ही शब्दादि गुण है। इस प्रकार कर्मबधन का प्रमुख कारण आसक्ति है अत साधक को अनासक्त रहना चाहिये। दशवैकालिक सूत्र में भी ममत्व को ही परिग्रह बतलाते हुए कहा है "मुच्छा परिग्गहो वुत्तो" अत साधक को ममत्व का त्यागी बनना चाहिये। आगम की इस गहन वाणी को आचार्य श्री ने अपने व्यवहार क्षेत्र मे पूर्ण महत्ता प्रदान की है।

यद्यपि आप श्री चतुर्विध सघ के कार्यभार को बडी सजगता से सम्भालते हैं, किंतु आप श्री की किसी भी वस्तु विशेष के प्रति आसक्ति नहीं हैं। वस्तुत आप एक कुशल नेतृत्वकर्त्ता हैं। आचाराग के लोक-विजय अध्ययन म कहा है 'जहेत्थ कुसले णोवलिपिज्जासि'—अर्थात् जो सयम के पालन मे पारगत हैं, वे किसी के प्रति आसक्ति नही रखते। इस वक्त मुझे एक घटना याद आ रही है जो मेरे ही साथ घटित हुई थी। एक बार मैं स्वय जब वैराग्यवस्था में था तब मेरे मन में आचार्य श्री के पुनीत दर्शनो की जिज्ञासा समुत्पन्न हुई और मैं आचार्य श्री के दर्शनार्थ बीकानेर आया। मैंने विधिवत् वन्दन किया। आ श्री ने मुझे ज्यो

ालो से सम्बोधित किया । मैंने कहा भगवन् मेरी दीक्षा लेने की भावना है । ब आपश्री ने 'अच्छा' इतना ही कहा ।

(मैंने भी इस विषय मे श्रद्धेय इन्द्र भगवन् के मुखारविन्द से सुना है— कितना निर्लेप जीवन है आपका कि आपका किसी के प्रति भी ममत्व नही है । आपका जीवन तो इतना निर्लेप है कि आप तो पदवी लेने के लिए भी तैयार नही थे किन्तु इस विषय में कई बार श्रवण करने को मिला है कि श्रद्धेय इन्द्र भगवन् की बहुत अधिक प्रेरणा रही है । उन्होंने समाज एव साधु साध्वियो को इसके लिए बहुत उत्साहित किया और आचाय भगवन् को भी इसके लिए बहुत प्रेरित किया । आपश्री की निर्लेपता का यह सवश्रेष्ठ उदाहरण है । —सम्पादक)

आपश्री सागरवत् गम्भीर एव मेदिनीवत सहनशील है सयमी जीवन मे आने वाले कष्ट एव उपसर्गों को आप हसते-२ झेल लेते हैं । सयम के प्रति आप श्री की उत्कट अभिरुचि है । इस युग मे भी सयम की इतनी सजगता देखकर हम बहुत आनन्द का अनुभव करते हैं । आचाराग सूत्र की यह उक्ति "अरइ आउट्टे से मेहावी खणसि मुक्के ।" अर्थात् जो मेधावी सयम के प्रति अरति से निवृत हो गया है वह क्षण भर मे ही झुक जाता है ।" आपश्री के जीवन पर यह पूर्णतया चरिताथ हो जाती है ।

आपश्री के जीवन का एक अद्वितीय गुण है मितभाषी होना । आपका जीवन प्रारम्भ से ही सुसस्कार निर्मित है, यह आपके जीवन की एक प्रमुख विशेषता है । आप बहुत ही नपे तुले शब्दो का प्रयोग करते हैं । पूव मे आप श्री के इस गुण से प्रभावित होकर स्व मुनिश्री घासीलालजी म सा (छोटे घासीलालजी म सा)कहा करते थे कि आपका बोलना मुझे बहुत प्रिय लगता है। जिस प्रकार घडी टाइम से बोलती है उसी प्रकार आप भी सारगर्भित बात कहते हैं एव अल्पभाषी हैं ।

आप श्री का अध्ययन इतना गहन है कि कोई भी जटिल प्रश्न क्यो न हो, आप उसका बडा ही सुन्दर शास्त्र सम्मत, तर्क सम्मत समाधान देते है । आप आन्तरिक भावो का सूक्ष्म निरीक्षण करने मे कुशल कारीगर हैं । किसी भी साधक की मन स्थिति का सूक्ष्मावलोकन कर शिक्षामृत द्वारा उसका जीवन सयम के प्रति सजग बनाते है । जैसे एक मा अपने बालक को वात्सल्य भाव से सिंचित करती है, पिता अपने पुत्र पर अनुशासन कर उसे सुयोग्य बनाता है, गुरु उसे अमूल्य ज्ञान देकर पारगत बना देता है । इन तीनो का योगदान जीवन मे अत्यधिक महत्त्वपूण है । किन्तु जब आचार्यश्री के सन्निधि मे रहता हू तब मैं स्वय अनुभव करता हू कि माता-सा पवित्र वात्सल्य, पिता-सा श्रेष्ठ अनुशासन और महनीय गुरु सा मागदशन की त्रिवेणी एकमात्र शासनेश मे पूर्णतया विद्यमान है । आप अकेले ही महत्त्वपूण कार्यो को सहज मे ही कर डालते है ।

आगम मथन और अध्ययन के प्रति आपका उच्चतम दृष्टिकोण है ।

आपका अध्ययन इतना तलस्पर्शी है कि गूढ रहस्यात्मक शास्त्रीय स्थलो को सरल प्राञ्जल भाषा मे समझा देते हैं ।

आप श्री की गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा भक्ति थी । आपश्री ने 'अन्तेवासी' शब्द को सार्थक बनाया है। अन्तेवासी का तात्पय है समीप मे रहना । आप सदा ही स्व आ श्री गणेशीलालजी म सा के सामीप्य मे रहकर "आणाय धम्मो" की उक्ति चरितार्थ करते थे । स्व आ श्री जैसा आदेश दे देते थे आप वैसा ही परि- पूण रूप से पालन करते थे । उसी श्रद्धा भक्ति का परिणाम देख रहे हैं कि आप श्री आज हमारे गणनायक के रूप मे सुशोभित हैं । दशवैकालिक सूत्र मे कहा है—

"जे आयरिय उवज्झायाण सुस्सूसावयण करा । तेसि सिक्खा पवड्ढंति, जल सित्ता इव पायवा ।" अर्थात् जो कोई साधक आचार्य उपाध्याय की सुश्रूषा करता है, उनकी आज्ञा का पालन करता है । उसकी शिक्षा जल से सिंचित पादप की तरह निरन्तर वृद्धिगत होती है ।

आप श्री बडे ही कर्तव्य निष्ठ, सेवापरायण एव आज्ञापालक शिष्य थे। उन्ही आन्तरिक गुणो का विकास आप श्री को इस महनीय पद पर सुशोभित कर रहा है ।

समता की अद्वितीय प्रतिमूर्ति आचाय श्री का जीवन ही समतामय है आपका जीवन उस चन्द्रमा की भाति है जिसे देखकर प्रत्येक श्वेत कमल सोचता है अहा ! निशाकर कितना सौम्य है । अपनी शीतल रश्मियां मेरी तरफ प्रसा- रित कर रहा है । किंतु वह तो सामान्य रूप से सभी को प्रतिभासित करता है इसी प्रकार आचाय श्री का तो सभी शिष्य–शिष्याओं के प्रति वही वात्सल्य निर्झर प्रवाहित होता है किन्तु प्रत्येक साधक यह सोचता है कि आचाय श्री की मेरे ऊपर महती अनुकम्पा है । वे तो समता विभूति हैं, उनका प्रत्येक काय समता समन्वित है ।

चिन्तन की चादनी मे जो आध्यात्मिक आलोक आचाय श्री ने स्वयं प्राप्त किया और जो कुछ हमे दिया, वस्तुत वह अकथनीय है । आचाय श्री के गुण हिमगिरी से भी विस्तृत एव पयोधि से भी गम्भीर हैं । उनकी खोज तो विशिष्ट ज्ञानी ही कर सकते हैं । उनके गुणों का वर्णन करना असम्भव ही नहीं अशक्य भी है ।

उत्तर–३ वृद्धावस्था के कारण समीक्षण ध्यान का अभ्यास सम्भव नहीं हुआ ।

उत्तर–४ प्रत्येक साधक यह चाहता है कि मेरा नेतृत्व एक कुशल आचाय करे तो मेरा जीवन सफलीभूत बन सकेगा । क्योंकि गुरु में वह शक्ति निहित है जो कि जीवन म सव्याप्त समस्त दुर्गुणो को सद्गुणो मे बदल देता है प्रत्येक

शिष्य के जीवन मे गुरु का बहुत योगदान रहता है । आचाराग सूत्र मे कहा है—जहा से दीवे असदीणे एव सेघम्मे आयरिया पडेसिए ।" अर्थात् जिस प्रकार असंदीपन द्वीप जल में डूबते हुए प्राणियो का रक्षा-स्थान होता है, उसी प्रकार आचाय द्वारा बतलाया हुआ मार्ग ही इस ससार—सागर से तिरने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है। हम कितने भाग्यशाली हैं कि आज अरिहत हमारे सामने विद्यमान नही फर भी उनके द्वारा बतलाया गया मार्ग हम आचाय श्री के तत्वावधान में प्राप्त कर रहे हैं । हमारा सम्पूर्ण सयमी जीवन इन्ही के चरणो मे सुरक्षित है । इससे बढ़कर और क्या योगदान हो सकता है । जो सयम की सुरक्षा आचार्य श्री के सान्निध्य मे है, वह अन्यत्र दुर्लभ है । आचाराग सूत्र मे कहा है "एव वे सिस्सा दिया य, राओय अणुपुव्वेण वाइया" अर्थात् माता जैसे प्रतिदिन पौष्टिक आहार खिलाकर उनका सवर्धन करती है, उसी प्रकार आचार्य श्री द्वारा प्रतिदिन आगम की गूढ वाणी रूपी पौष्टिक भोजन प्राप्त कर शिष्य निरतर बढते रहते हैं ।

श्रद्धेय आचार्य भगवन् का आतरिक एव बाह्य जीवन उन्नत बनाने मे महत्वपूर्ण योगदान है । आप श्री छोटी से छोटी बात को भी इतनी सुन्दर रीति से समझाते है कि वह हमेशा मस्तिष्क मे बैठ जाती है । एक बार हम संत मडल आचाय श्री गणेशीलालजी की सन्निधि मे आहार कर रहे थे । मैं उस समय नव दीक्षित ही था अत हल्का सा क्रोध किसी कारण आ ही गया । वतमान आचाय श्री बडी शात मुद्रा से मेरा अवलोकन कर रहे थे । जब कुछ समय पश्चात् मैं आचाय श्री के समीप गया तो कहने लगे (वतमान आचार्य श्री) ।

"क्यो आज गोचरी के समय कुछ क्रोध" मैंने कहा—'हा, भगवन् ।'

आचाय श्री ने कहा "देखो ! भोजन करते समय क्रोध नही करना चाहिये । क्योकि भोजन के समय क्रोध करने से वह भोजन रस नही बनाता, भोजन विषाक्त हो जाता है और सम्पूर्ण भोजन व्यथ चला जाता है । अत अपने को ऐसा नही करना चाहिये ।" आचाय श्री की उस मधुर वाणी ने इतना प्रभाव दिखलाया कि आज भी जब आहार करने बैठता हू तो आपकी वह मधुर वाणी कानो मे गू ज उठती है और मुझे बहुत प्रेरणा मिलती है । इस प्रकार जीवन को सयमानुकूल बनाने मे आचाय श्री का अवणनीय योगदान रहा है ।

उत्तर—५ आचार्य श्री का सम्पूण जीवन और प्रत्येक कार्य प्रभावशाली ही प्रतीत होता है । आपकी इर्या समिति, भाषासमिति,एषणादि समिति के विषय मे तो इतनी सजगता है कि जिसे देख हम मन्त्रमुग्ध हुए बिना नही रह सकते । इन सब दृष्टि क्रियाओ की बात जाने दीजिए आपका मति श्रुतज्ञान भी इतना निर्मल है कि कई बार भावी सकेत आप वतमान मे ही कर दिया करते हैं ।

एक बार की बात है कि उज्जैन से इन्दौर की ओर आचार्य भगवन् विहार कर रहे थे । उनकी सेवा मे मैं भी था । एक गाव मे हम विहार करके पहु चे

ग्रौर निरंतर मूसलाधार वर्षा होने लगी । मैंने भगवन् से निवेदन किया कि— "आपश्री कुछ देर के लिए विश्राम कर लीजिए क्योंकि अवसरानुसार व्याख्यान भी देना होगा ।" भगवन विश्राम के लिए कक्ष में गये और कुछ ही क्षणों बाद पुन बाहर आये और पूछने लगे कि "गाव के मुखिया दलाल साहब यहाँ हैं क्या" मैंने निवेदन किया "हा, भगवन्" । तो आचाय भगवन् ने कहा कि—"रतलाम, अभी भाई दया पालेंगे, उनको असुविधा न हो । यदि दलाल होते तो उनको संकेत कर देता ।" मैंने कहा—"भगवन् ! यहा रतलाम वाले कैसे दर्शन लाभ आ सकते है ? इन्दौर या उज्जैन से तो भाइयों का आना फिर भी सम्भव है लेकिन रतलाम से ।"

आचाय भगवन् तो कक्ष मे पधार गये लेकिन कुछ ही क्षणो में रतलाम के भाइयों को सम्मुख आया देख मेरे आश्चर्य की सीमा न रही ।

वस्तुत एक ही नही ऐसी अनेक घटनाए हैं, जिनको स्मरण कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं ।

आचाय श्री के ऐसे घटना प्रसंगो ने मुझे सर्वाधिक प्रभावित किया है जो कि उनकी सफल साधना के प्रबल प्रमाण हैं ।

वन्दना

❀ श्री भगवन्तराव गायें

जन्म सायक जो करते हैं, जन-जन के जो उद्धारक ।
यश फैला है जिनका जग मे, दया-धर्म के हैं पालक ॥
गुणगान श्रावक-पाठक करते, समता-दर्शन के जो प्रणेता ।
रूप निज का असली जाने, जागृत चित्त के हैं जो चेता ॥
नाना रूप धारण कर घूमे, जीव हमारा योनि धारे ।
नाना गुरु की वाणी सुनकर, प्राणी मुग्ध हो जाते सारे ॥
समता-सार जो ग्रहण करता है, मुक्ति मार्ग पर जाता है ।
ममता-माया मे फंसता जब, अज्ञान अंधेरा छा जाता है ॥
सार रहे ज्ञान-गंगा से, चिन्तन का मथन सब करलें ।
दर्शन पाकर गुरु नाना के, भावो का शोधन हम करलें ॥

—सी-२३, आदर्श कॉलोनी, निम्बाहेड़ा

उत्तर जो दिये गये-[२]

सच्चे पथ प्रदर्शक

❀ श्री सेवन्त मुनि

१, सयम मार्ग में अग्रसर होने मे आचाय श्री का समुन्नत जीवन ही प्रेरणादायी वना । आपश्री की सयमी जीवन मे सतत् जागरूकता तथा सजगता से मेरे जीवनोन्नति मे प्रेरणा का योगदान रहा ।

वैराग्यकाल मे प्रथम वार ही उदयपुर मे दशनो का शुभ अवसर प्राप्त हुआ था । व्याख्यान श्रवण, साधना मे तन्मयता तथा स्वर्गीय गुरुदेव श्री गणेशीलालजी म सा के सेवा आदि कार्यो मे दक्षता देखकर तो अनूठी प्रेरणा उपस्थित हुई । दशवैकालिक सूत्र की वाचना सव प्रथम आपश्री से ही प्राप्त की । साधु जीवन की मर्यादाओ मे सजगता के साथ-२ व्रतो मे दृढता के साथ वहन करने एव सुसस्कार प्राप्त हुए थे । ज्ञान, दशन चारित्र की आराधना आगम-वीतराग सिद्धातो के अनुरूप करते हुए आत्म-समाधिभाव मे विचरण कर रहे थे । स्वर्गीय गुरुदेव की सेवा मे सतत् जागरूक रहना, शास्त्रोक्त विनय पद्धति से गुरु के चित्त को प्रसन्न करते हुए, शास्त्रो की वाचना लेते हुए मैंने आपश्री को देखा था, जिससे साधु बनकर मुझे भी इसी तरह शास्त्रोक्त विधि से सेवा करना है तथा जीवन का इसी तरह ढालना है, ऐसी प्रेरणा प्राप्त हुई । वास्तव मे प्रेरणा जितनी कहने से नही, उतनी आचरण से प्राप्त होती है । आपश्री की आचरण पद्धति अभूतपूर्व एव अनोखी ही है । आपकी उच्चतर साधना स्थिति ने ही आपश्री को चतुर्विध सघ का शिरोमणि वना दिया । आज की स्थिति मे चतुर्विध सघ आपकी साधना से अत्यन्त सन्तुष्ट एव तृप्ति का अनुभव कर रहा है ।

२ वर्तमान आचार्य-प्रवर श्री नानेश ने आचाय पद प्राप्ति के कुछ समय पश्चात् ही वीतराग सिद्धान्तो का मन्थन करके चतुर्विध सघ को समता-दर्शन की देन दी जिसके चार मुख्य आयाम हैं—

(१) समता सिद्धान्त (२) समता जीवन दशन (३) समता आत्म-दशन और (४) समता परमात्म दशन ।

आपश्री के गरिमामय जीवन व उपदेश से हजारो की तादाद मे धमपाल वन्धुओ ने प्रतिबोध पाकर अपना जीवन उन्नत किया है । वे आज सही मार्ग पर चलते हुए आनन्दमय जीवन का अनुभव कर रहे हैं । समाज-सुधार की दृष्टि से आचाय पद प्राप्ति के वाद आपने कई ग्रामो के तथा शहरो के झगडे मिटाकर समाज को एकता के सगठन से सगठित किया है । आपश्री ने जव से शासन की

बागडोर सभाली तब से लेकर अब तक के कुछ ही वर्षों मे ढाई सौ लगभग मुमुक्षु आत्माए दीक्षित हो चुकी है तथा सघ मे बढोतरी के साथ ही साथ की जो भव्य प्रभावना हो रही है, वह आपसे अपरिचित नही है। मानव की अनेकविध विषमताओ को दूर करने रूप प्रेरणास्पद उपदेश आप से मिल रहा है। आचार्य श्री ने अपने जीवन काल मे अनेक बुद्धि जीवियो को समाधान देकर उनकी ग्रन्थिया सुलझा कर सद्मार्ग पर आरूढ किया है।

राजनैतिक क्षेत्र के उच्च नेता, पदाधिकारी आदि अनेक व्यक्ति आपके द्वारा प्रदत्त समता सिद्धान्त से आकर्षित होकर उस पर अमल कर रहे हैं। आप किसी भी विकट से विकट परिस्थिति मे भी विषम भाव नही आने देते। समता-मय सिद्धान्त आपश्री के जीवन मे मनसा, वाचा, कर्मणा रूप से व्याप्त है। इसी से आपको आज "समता विभूति" के नाम से भी जाना जाता है।

३ आचार्य भगवन् के द्वारा समीक्षण ध्यान के समाचरण से आत्म समुन्नति एव समाधि भाव प्राप्त होता है। यद्यपि समीक्षण ध्यान मे मैं सफल नही हुआ हू, किन्तु आचार्य भगवन् ने जरूर इस समीक्षण ध्यान साधना की सम्यक् आराधना मे बहुत सफल एव उच्चतम स्थान प्राप्त किया है। अपने ऊपर आई हुई किन्ही भी विषम परिस्थितियो को समीक्षण ध्यान के बल से समाहित करके आप समाधिष्ट हो लेते है। जब कभी मैं अदृश्य शक्ति द्वारा सताया जाता तब स्फूर्ति से मैं आचार्य भगवन् के पास पहुचता। आपकी समीक्षण ध्यान साधना आदि शक्तियो से मेरे को सताने वाली वह अदृश्य शक्ति न मालूम कहा गायब हो जाती और मैं पूर्ववत् स्वस्थ एव प्रसन्नचित्त हो जाता। ऐसा एक बार नहीं अनेक बार अनुभव हुआ है मेरा।

४ हमारे सयमी जीवन को पुष्ट बनाने मे आचार्य भगवन् का बहुत ही उच्चस्तर का योगदान रहा है। यथा—अहिंसा, सत्य-अस्तेय, आदि मौलिक सिद्धान्तो के समाचरण मे सर्वप्रथम विशेष ज्ञान प्राप्त कराते तत्पश्चात् मूल गुण और उत्तर गुणो के सम्यक् आचरण, मर्यादा की सुरक्षा के लिए समय-२ पर प्रशिक्षण देते रहे हैं। निर्ग्रन्थ, श्रमण-संस्कृति की सुरक्षा के लिए सतत जागरूक करते रहे हैं। सारणा, वारणा एवं धारणा यथासमय कराते रहे हैं तथा ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार आदि आचारो का सम्यक्रूपेण परिपालन करते तथा कराते रहे हैं। हम मुनियो का सयमी जीवन उन्नतिशील रहे, इसके लिए आचार्य भगवन् का अनेक बार उद्बोधन मिलता रहा है। गुरुदेव की परम कृपा के फलस्वरूप सयमीजीवन सुरक्षित उन्नतिशील है तथा आगे भी होता रहेगा।

५ आचार्य भगवन् का चातुर्मास अमरावती (महाराष्ट्र) मे था, मुझे भी आचार्य श्रीजी के सान्निध्य का अवसर प्राप्त हुआ था। उस चातुर्मास की और विशेषताओ के साथ एक यह भी थी कि अमरावती क्षेत्र

..राती समाज मे एक बहुत बडा झगडा था । उस समाज मे काफी वर्षो से ..र पडी हुई थी । एक सप्ताह के पूण प्रयास से या यो कहू कि आचाय भगवन् - प्रवचनो से प्रभावित होकर वह झगडा समाहित हो गया ।

– इसी तरह महाराष्ट्र मे पुहूर ग्राम मे भी आपश्री के उपदेशो से झगडा ..माप्त हो गया था । भीनासर के सेठिया परिवार मे भी इसी प्रकार आपस मे ..टुपता थी, वह भी आपश्री की अमृतदेशना से समाप्त हो गयी बल्कि उस परि- ..र पर ऐसा असर पडा कि छोटा भाई, बडे भाई के यहा पहले पहुचकर दोनो एक ..थ भोजन करने को तत्पर हुए । ऐसे एक नही अनेक उदाहरण हैं लेकिन उन ..का लिखवाना पृष्ठों को बढाना ही है ।

आपश्री की अमृत देशना का भारत के पूर्व राष्ट्रपति वी वी गिरि के ..पुत्र पर भी अच्छा प्रभाव पडा था । वे बडीसादडी वर्षावास मे आपश्री के ..निध्य मे उपस्थित हुए थे ।

भटेवर के पास एक गाव की घटना भी स्मृति मे है । वहा पर भी ..माज मे कई वर्षो से झगडा चल रहा था, जिसको मिटाने के लिए बडे-२ सत, ..निराजो, समाज के लोगो ने भरसक प्रयास किये, लेकिन वे सफल नही हो सके । ..किन उस गाव का, उस समाज का सौभाग्य ही समझिये कि आचार्य भगवन ..ा वहा शुभागमन हो गया, और एक ही उपदेश उन लोगो ने श्रवण किया कि ..ह झगडा मिट गया, समाज मे प्रेम की धारा प्रवहमान हो गयी । यह है वाणी ..ा अद्भुत प्रभाव । इस तरह अनेको बार मन को आचार्य देव की सयम साधना, ..यान मुद्रा ने आकर्षित किया है, और शासन की भव्य जाहोजलाली मे चार ..ाद लग रहे हैं ।

साधना के क्षेत्र मे ध्यान मुद्रा भी जनसमुदाय को आश्चयचकित करने ..ाली है । मेरे को भी उस साधना ने चमत्कृत कर दिया । हृदय पर अनूठा ..भाव डालने वाली ध्यानमुद्रा को देखने का अवसर प्राप्त हुआ, मानो ध्यान मे ..अभूतपूर्व उपलब्धि हो रही हो, ईश्वर से मानो साक्षात्कार हो रहा हो, ऐसा भी ..अनुपम दृश्य देखने को मिलता है । ऐसी स्थिति को देखकर मन भक्ति-विभोर हो ..जाता है, परम शाति प्राप्त होती है ।

निर्लिप्त जीवन : क्षमाशील स्वभाव

श्री शांति मुनि

उत्तर—१ मुझे सयम धारण करने मे आचार्य श्री नानेश की ओर कोई सीधी प्रेरणा नही मिली है । मेरे सयम–साधना के प्रेरक थे आचार्य प्रवर के गुरु भ्राता श्री सुमेरचन्दजी महाराज । आचार्य श्री से प्रत्यक्ष प्रेरणा प्राप्त नहीं होने का कारण है कि आचार्य प्रवर का व्यक्तित्व अपनी साधना के प्रारम्भ से ही आत्म-केन्द्रित व्यक्तित्व रहा है । उनका सम्पूर्ण मुनि जीवन–काल परिचय विस्तार से बचकर अधिक से अधिक अध्ययन एव साधना की गहराई म पैठने में ही व्यतीत हुआ है । यहा तक कि जब मैं सयम साधना मे प्रवेश का सकल्प लेकर आपश्री के चरणो मे पहु चा, अध्ययन करने लगा, तब भी आप श्री अपने आराध्य देव स्वर्गीय आचार्य प्रवर श्री गणेशीलाल जी म सा की सेवा मे ही लगे रहते थे । हमे समय पर अध्यापन हेतु पाठ देने के अतिरिक्त कभी यह प्रेरणा तक नही दी कि विलम्ब क्यो करते हो, यथाशीघ्र मुनि जीवन मे प्रवेश करो। हा, साधना की कठिनाइयो का शिक्षण आप अवश्य प्रदान करते थे ।

मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि जब आपश्री युवाचार्य पद पर समासीन हो गये थे और आपश्री के प्रथम शिष्य के रूप मे श्री सेवन्तीलाल जी (वर्तमान मुनिश्री) की दीक्षा के प्रयास चल रहे थे, कमठ सेवाव्रती स्थविरपदालकृत श्री इन्द्रचन्दजी म सा ने एक बार आपश्री को निवेदन किया कि वराग जी की दीक्षा के लिये प्रयास करें, आपश्री उनके माता-पिता को समझाए तो कुछ कार्य हो सकता है । इस पर आचार्य श्री का सीधा सपाट उत्तर था—"आप जानो, आपका काम जाने ।"

और यह प्रसग उस समय का है जबकि आपश्री के साथ शौचादि लिये साथ जाने वाला एक भी सहयोगी सन्त नही था । इतनी निस्पृहता व व्यक्तित्व के विषय मे हम सहज समझ सकते हैं कि उनकी प्रत्यक्ष प्रेरणा किसी को कैसे प्राप्त हो सकती है ? हा, आचार्य श्री का व्यक्तित्व अवश्य प्रेरणा का अविरल स्रोत है । आपके जीवन के अणु-अणु से, सम्पूर्ण परिपार्श्व से साधना की प्रेरणा निसरित होती रहती है । और मेरे अपने चिन्तन के अनुसार वाणी की प्रेरणा की अपेक्षा व्यक्तित्व की मूक प्रेरणा ही अधिक प्रभावक होती है । एक आर्ष वाक्य है—"गुरवस्तु मौन व्याख्यान शिष्यास्तु छिन्न सशया ।" अर्थात् गुरु का मौन प्रवचन होता है और शिष्यो के सशय छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ।

न्तु मैं यह कह सकता हू कि सयम मे प्रवेश हेतु मुझे आचार्य देव की यो प्रारम्भक वचनात्मक प्रेरणा तो नही मिली किन्तु उनके भव्यतम व्यक्तित्व ने मुझे साधना मे प्रवेश की अबूझ एव अद्भुत प्रेरणा अवश्य प्रदान की है और आज भी वह प्रेरणा प्रतिपल प्राप्त होती रहती है ।

उत्तर—२ आपने अपने द्वितीय प्रश्न मे आचार्य श्री नानेश के जीवन की मौलिक विशेषताए जाननी चाही हैं, किन्तु इस प्रश्न मे आपने मेरे समक्ष एक अगाध-अथाह सागर खडा कर दिया है और चाहा है कि इसके अन्तरग मे छिपे मणि-मुक्ताओ को खोज दीजिये । आप स्वय बुद्धिनिष्ठ-प्रज्ञाजीवि हैं—विचार करें कि क्या सागर के गर्भ मे छिपी रत्न-राशि का पार पाया जा सकता है ? फिर भी चू कि आपने मौलिक शब्द प्रयुक्त किया है अत मैं उस रत्न राशि-मुक्तानिधि मे से कुछ मणि-मुक्ता निकालने का प्रयास करूगा ।

जहा अन्तो तहा बहि—आचार्य प्रवर के जीवन मे मैंने जो सबसे मौलिक एव महत्त्वपूर्ण विशेषता पाई, वह है उनके जीवन की निश्छलता अथवा अन्तर्बाह्य एकरूपता । "जहा अन्तो तहा बहि, जहा बहि तहा अन्तो," का आगम-वाक्य उनके व्यक्तित्व मे पद-पद पर प्रत्येक कोण मे एकाकार-सा प्रतीत होता है । 'अन्दर मे कुछ और बाहर मे कुछ' यह द्विरूपता उनको अच्छी नही लगती । मैं जहा तक सोचता हू साधक की सच्ची पहचान भी यही है कि वह कितना ऋजुभूत है, अन्तर्बाह्य एकरूप है । धार्मिकता की पहचान कराते हुए प्रभु महावीर ने कहा है—'सोहि उज्जुय भूयस्य धम्मो सुद्धस्य चिट्ठई ।' ऋजुभूत, सरल एव शुद्ध हृदय मे ही धर्म ठहर सकता है । कुटिलता अथवा द्विरूपता मे धर्म का निवास नही हो सकता है । अन्तर्बाह्य की एकरूपता ही साधक को आत्मा के दर्शन करवाती है, और यह एकरूपता ही आचार्य भगवन् के साधक जीवन की विशेषता है ।

दृष्टाभाव—आचार्य भगवन् के जीवन की दूसरी मौलिक विशेषता है—स्थितप्रज्ञता अथवा द्रष्टाभाव । किसी भी प्रकार की शुभाशुभ परिस्थिति हो, अपने मन को, अपने परिपार्श्व को अप्रभावित बनाए रखना आचार्य प्रवर की साधना का मूर्त रूप है । मैंने अनेक बार प्रत्यक्षत अनुभव किया है कि सघीय व्यवस्थाओ मे जब कभी उतार-चढ़ाव आए, एक सर्वतोमहत दायित्व पूर्ण पद पर प्रतिष्ठित होने के कारण, उन परिस्थितियो मे मन का उद्वेलित होना स्वाभाविक था, किन्तु आचार्य प्रवर उन क्षणो मे भी द्रष्टाभाव मे स्थिर हो जाते । मेरे जैसे सामान्य साधको के मन मे कई बार उथल-पुथल मच जाती कि आचार्य प्रवर ऐसा निर्णय क्यो नही ले रहे हैं, किन्तु उनका द्रष्टाभाव अद्भुत ही रहता ।

यो साधना एव अनुशासकता दोनो को समन्वित करके चलना सामान्य बात नहीं है । बिना आन्तरिक सन्तुलन अथवा द्रष्टाभाव के अनुशासकता हो

सकती है, साधना नही । आचार्य देव इतने विशाल सघ के अनुशास्ता होते हुए भी साधक हैं, उच्चकोटि के साधक । हानि-लाभ की सभी परिस्थितियो में आप आपको समत्व मे प्रतिष्ठित बनाए रखते हैं । इस रूप मे आप समत्व योगी तो हैं ही स्थितप्रज्ञ एव द्रष्टाभाव के उच्चतम साधक भी हैं ।

निर्लिप्तता—आचाय प्रवर के जीवन की तीसरी मौलिक विशेषता मैंने देखी 'निर्लिप्तता' । यो साधक जीवन निर्लिप्त जीवन ही होता है किन्तु आचार्य प्रवर महत्तम दायित्वो का निवहन करते हुए भी उन सबसे जल कमलवत निर्लिप्त रहते हैं ।

आम लोगो की यह धारणा होती है कि श्री अ भा साधुमार्गी जन सघ इतनी प्रवृत्तिया चला रहा है, उसका सालाना लाखो का बजट होता है। क्या यह सब आचाय श्री के सकेतो के बिना हो सकता है ? वे अवश्य इन सभी प्रवृत्तियो मे भाग लेते होंगे । लाखो रुपये साहित्य प्रकाशन पर व्यय होते हैं, क्या यह सब विना आचाय श्री की प्रेरणा से हो सकता है ?

किन्तु मैं यहा किसी प्रकार के पूर्वाग्रह से रहित होकर आन्तरिकता पूर्वक कह सकता हू कि आचाय प्रवर इन सब प्रवृत्तियो से सर्वथा निर्लिप्त रहते हैं । यह बात मैं इसलिए नही कह रहा हू कि मैं एक गुरुभक्त शिष्य हू—अपितु यह एक नग्न सत्य,यथाथ का प्रतिपादन है। आचाय प्रवर की निर्लिप्तता के अनेकों प्रसग मैंने अपनी आखो से देखे हैं । मुझे अभी भी अच्छी तरह स्मरण आता है—जब आचार्य प्रवर का बम्बई बोरीवली मे वर्षावास था । मैं भी उस वर्षावास में श्री चरणो की सन्निधि मे ही था । एक दिन श्री अ भा साधुमार्गी जन सघ के तत्कालीन मन्त्री श्री पीरदानजी पारख एव सघ के प्रति सर्वाधिक समर्पित दानवीर श्री गणपतराजजी बोहरा दोनो आचाय प्रवर से कुछ चर्चा करना चाहते थे । दूसरी मजिल में, जहा आचाय प्रवर विराज रहे थे, वहा एकान्त स्थान नहीं होने से वे आचाय भगवन् को निवेदन कर ऊपर तीसरी मजिल पर जहा मैं अध्ययनादि किया करता था, लेकर आए । आचाय भगवन् एक तरफ खड़े हुए थे कि श्री पारखजी ने मुझे सकेत किया कि आप भी चलिये, आचाय श्री से कुछ चर्चा करना है । मैंने पूव मे तो कहा—आप ही कर लीजिये किन्तु उन्होंने आग्रह किया कि आप भी चलिये, तो मैं भी आचाय प्रवर के चरणों मे वहीं निकट खडा हो गया ।

बात प्रारम्भ करते हुए श्री पारखजी ने कहा—"हम सघ अध्यक्ष के लिये श्री चुन्नीलालजी मेहता का चयन करना चाहते हैं, आपश्री की क्या राय है ? आचाय प्रवर ने बडा सीधा और स्पष्ट उत्तर दिया—"क्या आज तक कभी आपने इस विषय मे मुझे पूछा है ? मैंने कभी आपके ऐसे काय मे सुझावात्मक भी भाग लिया है ? फिर आज आप मुझे इस विषय मे क्या पूछ रहे हो ?

इतना कहते ही आचार्य प्रवर सीधे नीचे उतर गए । दोनो सघ प्रमुख अवाक्, एक दूसरे का मुह देखने लगे । मैं स्वय आश्चयचकित रह गया कि इतना सचोट स्पष्ट उत्तर कितनी निर्लिप्तता को अभिव्यक्त करता है । जहा तक मेरी स्मृति मे है आचाय प्रवर की शब्दावली उपयुक्त प्रकार की ही थी ।

कुछ क्षणोपरात दोनो सघ प्रमुख मेरी ओर उन्मुख होकर कहने लगे— "आचाय प्रवर तो कुछ नही फरमाते हैं—आप तो कुछ राय दीजिये ?"

मैने कहा—'जब आचार्य भगवन् कुछ नही फरमाते है तो मैं क्या बोलू ?"

मूल बात यह कि आचार्य प्रवर सघ के शास्ता होते हुए भी जल-कमल वत् निर्लिप्त रहते हैं । ऐसी एक नही अगणित विशेषताए आचाय-प्रवर के व्यक्तित्व मे समाई हुई हैं या यो कहे गुणात्मक विशेषताओ का पु जीभूत रूप ही आचार्य श्री नानेश का व्यक्तित्व है ।

उत्तर--३ आचार्य प्रवर द्वारा प्रतिपादित समीक्षण ध्यान की उपलब्धि के सन्दभ मे आपका प्रश्न कुछ बौना-सा लगता है । आप ध्यानगत अनुभूति या उपलब्धि को शब्द का परिवेश दिलाना चाहते हैं, जो कि मुझे असम्भव-सा प्रतीत होता है । ध्यान होता है- अन्तर्रमणता मे । और क्या अन्तर्रमणता को अथवा अन्तरग अनुभूतियो को शब्दो में व्यक्त किया जा सकता है ? शब्दो के द्वारा तो हम अनुभूति के उथले रूप को ही व्यक्त कर पाते है । फिर भी चू कि आपने पूछा है तो मैं चन्द शब्दो मे उस उथले रूप को ही व्यक्त करने का प्रयास कर रहा हू -

समीक्षण ध्यान की साधना मेरी दृष्टि मे अन्त प्रवेश की बेजोड प्रक्रिया है । चू कि मैने इसके अनेक प्रयोग किये है—हजारो व्यक्तियो को इसके प्रयोग करवाये हैं अत मैं अपने प्रत्यक्षीकृत अनुभव के आधार पर कह सकता हू कि यह साधना आत्म-रमणता की गहराई मे पैठने की सर्वाधिक उपयोगी साधना है । मै जहा तक सोचता हू समीक्षण ध्यान साधना की सर्वाधिक प्रायोगिकता से एव अनुभूतियो मे मै गुजरा हू । चू कि मैने इस ध्यान विद्या पर सैकडो पृष्ठो मे विशालकाय ग्रथ भी लिखे हैं जो व्याख्यात्मक ही नही,प्रयोगात्मक भी हैं । अस्तु म अनेक प्रसगो पर इस भाव भूमिका से अभिभूत हुआ हू कि उसे शब्दो मे अभिव्यक्ति नही दी जा सकती है । प्रयोगात्मक प्रक्रिया के क्षणो मे अनेक बार देहातीत अवस्था की अनुभूति का प्रसग आया है । यो ध्यान-साधना की जो सामान्य उपलब्धिया होती ह—वृत्तियो का सशोधन, प्रशस्त वृत्तियो का उन्मेष, इन्द्रियो का सयमन, कषायो का शमन, विनय-विवेक का जागरण, अन्तराभिमुखता

आदि । इस विषय मे मै कह सकता हू कि समीक्षण ध्यान साधना के प्रयोगों के पश्चात इन सभी विषयो मे मुझे यथेष्ट लाभ प्राप्त हुआ है । किन्तु म इसे समीक्षण ध्यान की अवान्तर उपलब्धियो के रूप मे स्वीकार करता हू । उसकी जो मूल उपलब्धि है वह है साक्षी भाव का जागरण–आत्म रमणता । उसी स्थिति मे अधिक से अधिक पैठने का प्रयास अनवरत गतिशील है ।

उत्तर—४ एक गुरु का शिष्य की साधना को सम्पोषित करने मे जो योगदान होना चाहिये, वही योगदान मुझे आराध्य गुरुदेव का प्राप्त हुआ है–हो रहा है । किन्तु जिस रूप मे, जिस अहोभाव एव आत्मीयता के परिवेश में मुझे योगदान प्राप्त हो रहा है—वह अनुलेख्य है, शब्दातीत है ।

आचाय प्रवर का जीवन ही—जीवन का प्रत्येक क्रियाकलाप अपने आप म मार्गदर्शक होता है । उनके जीवन की सयमीय क्रियाओ के पति सजगता अपने आप मे पथ प्रदशन का काय करती है । उनके आचरण–अनुशीलन का यह दृष्टिकोण मेरी साधना मे सर्वाधिक सहयोगी रहा है कि सयमीय मर्यादाओ की सामान्य सी स्खलनाओ मे 'वज्रादपि कठोर' होकर सचेत करना एव शिक्षा प्रदान करते समय मृदुनि कुसुमादपि की स्थिति मे प्रवेश कर जाना । राजस्थानी कविता के अनुसार—

> गुरु प्रजापति सारखा, घट-घट काढ़े खोट ।
> भीतर से रक्षा करे ऊपर लगावे चोट ।।

आचाय भगवन् का व्यक्तित्व उस कुम्भकार के समान है जो, ऊपर से चोट करते हुए भी भीतर से रक्षा करता है, और इसी व्यक्तित्व का प्रभाव मुझे अपनी सयम साधना मे प्रत्यक्ष परिलक्षित होता है । निष्कष की भाषा में कहूं तो मेरे जीवन मे सयम-साधना का जो कुछ भी है, वह आचाय प्रवर का ही प्रदेय है । मेरा अपना तो अपने पास कुछ है ही नही ।

यहा एक बात और स्पष्ट कर देना चाहता हू कि आचाय प्रवर का योगदान तो वायुमण्डल में बिखरी ऑक्सीजन के समान प्रतिपल बरस रहा है । यह मेरी ही अपात्रता है कि म उसे उतने रूप मे ग्रहण नही कर पा रहा हू ।

उत्तर—५ आपके पाचवे एव अतिम प्रश्न के उत्तर मे अनेक घटना प्रसग मेरी आखो के समक्ष चलचित्र की भाति उभरने लगे हैं, जिन्होंने मेरे मानस पर अमिट प्रभाव अकित कर दिया है । मेरे समक्ष एक समस्या सी खडी हो गई है कि म किन घटना प्रसगो को शब्दो का परिवेश प्रदान करू और किन्हें छोडू ? फिर भी एक-दो ऐसे प्रसग हैं, जो भुलाए नहीं भूले जाते हैं ।

क्रोध-विजय—घटना उस समय की है जब चरितनायक आचाय पद पर आसीन हो रतलाम एव इन्दौर के गौरवशाली ऐतिहासिक चातुर्मास पूर्ण कर

छत्तीसगढ सघ की आग्रह
थे । माग मे कुछ दिन वे
मील दूर) से समाज के
साथियो के साथ दशनाथ
मकान की दूसरी मजिल
चर्चा का दौर आरम्भ
कूल है या प्रतिकूल, इ
खुलकर चर्चा करने ल
जी आचाय देव के स
जा रहे थे । समीपस्थ
एक आचार्य के समक्ष
अधिक हो जाने के व
हो गया है । उत्तेज

…चार्य देव की उस सौम्य मुद्रा मे
…न मुद्रा मे एक मील का विहार
…नेशन एव आद्र कपडो को
… इस दुर्घटना की जान-
… पश्चात् विरक्तात्मा
… हुए । किन्तु धैय
…हव को हस्त
…्वार नही ले
…ता था ।'

एव शात मुद्रा मे कहत … करिये । किसी वात का आग्रह हो सकता है, किंतु … वधक यन्त्र को श्रमण जीवन के लिए उपयोगी मान सकते हैं, किन्तु … दृष्टि से आगमिक आधार के वल पर यदि थोडा गम्भीरता से सोचेंगे तो स्पष्ट हो जावेगा कि यह वात हमे अभी मामूली-सी लग रही है, किन्तु आगे चलकर श्रमण सस्कृति को ही ध्वस्त करने वाली वन जायगी" आदि । किन्तु मुणोतजी उस समय आवेशपूर्ण स्थिति मे थे, अत वे किसी भी तर्क को मानने को तैयार नही थे ।

समय अधिक हो जाने से चर्चा बीच मे ही समाप्त कर दी गई । मुणोत जी उसी समय मागलिक सुनकर चले गये । दूसरे दिन पुन अमरावती से लौटकर चले आये और चरणो मे सिर रखकर क्षमायाचना करने लगे । आचार्य श्री के पूछने पर कि रात्रि मे ही जाकर प्रात काल ही वापिस चले आने का क्या कारण हुआ ? उनके साथी कहने लगे—महाराज श्री ! यहा से कार मे ज्योही रवाना हुए, मैंने मुणोतजी से कहा, यदि ऐसी उत्तेजना पूर्ण चर्चा होने की सम्भावना होती तो म प्रश्न ही नही छेडता, किन्तु एक लाभ अवश्य हुआ है कि इस प्रसग से एक जैनाचाय को पहचानने का मौका मिला । मैंने देखा, तुम अधिक आवेश-शील वनते चले गये, उत्तेजना दिलाते चले गए, किन्तु महाराजश्री के चेहरे पर क्रोध की रेखा पैदा होना तो दूर रहा, आवाज मे भी तेजी नही आई । वडे अद्भुत योगी साधक हैं वे । मेरा इतना कहना हुआ कि मुणोतजी मे पश्चात्ताप की अग्नि प्रज्वलित हो उठी और यह पश्चात्ताप अमरावती तक चलता रहा । प्रात उठकर कहने लगे, 'मैंने उस महापुरुष की वहुत आशातना की है, उनकी उस शान्ति ने मेरा हृदय वदल दिया है । मैं अभी पुन जाकर क्षमायाचना

स्थित हो गए । आचार्य देव ने कहा,
आदि । इस विषय मे मै कह सकता हू हा चर्चा-विचर्चा होती है, स्वर कुछ तेज
पश्चात् इन सभी विषयो मे मुझे यह र क्षमायाचना की क्या बात है ? आदि ।
क्षण ध्यान की अवान्तर उपलब्धि
मूल उपलब्धि है वह है साक्षी घटनाए हमारे चरितनायक के जीवन में घटी हैं
मे अधिक से अधिक पैठने - आपकी शान्ति, निष्क्रोध वृत्ति से प्रभावित होकर
प्रत्याख्यान ले लिए हैं ।

उत्तर—४ एक अदम्य साहस

दान होना चाहिये, ग है जिसने मेरी चेतना को झकझोर दिया । आचार्य देव
रहा है । किन्तु दाय के साथ आरग से रायपुर की ओर बढ रहे थे कि अशुभ
योगदान प्राप्त एक दुर्घटना घटित हो गई । प्रातःकाल आरग से रायपुर की ओर
या । लगभग ढाई मील पर मार्गवर्ती ग्राम रसनी में ग्रामवासियों
मे मागकी देखते हुए लगभग आधा घण्टे तक धर्मामृत का पान कराया, तत्पश्चात्
आप से साढे तीन मील पर स्थित लाखोली ग्राम के बाहर विश्राम गृह पर पधारे।
आहार आदि से निवृत्त हो पुन चार मील पर स्थित नावगाव के लिए प्रस्थान कर दिया । लगभग दो मील माग पार किया होगा कि वर्षा की सम्भावना को देखते हुए उमरिया मोटर स्टैंड पर यात्रियो के लिए निर्मित छपरे मे कुछ समय रुक गये । वर्षा बन्द होने पर पुन विहार किया और लगभग एक मील चले होंगे कि सामने से आते हुए ट्रक से उडने वाले पानी के छींटो से बचने हेतु सडक को छोडकर एक ओर बढ रहे थे कि मिट्टी की चिकनाहट एव सडक के ढलान के कारण अचानक पैर फिसल गया और सम्पूर्ण शरीर का भार दाएं हाथ पर आ गिरा । परिणामत दाए हाथ की कलाई की हड्डी दो जगह से टूट गई तथा लगभग आधा इच हड्डी चमडी सहित ऊपर निकल आई ।

उस समय आचार्य देव के साथ श्री कंवर मुनिजी चल रहे थे । घोर तपस्वी श्री अमरचन्दजी महाराज एव मैं (लेखक) लगभग पचास कदम की दूरी पर पीछे थे । आचार्यदेव को गिरते हुए देखते ही शीघ्र गति से हम भी घटना स्थल पर पहुच गए । आचार्यदेव ने तत्काल जिस अदम्य साहस का परिचय दिया, वह वर्णनातीत है । आचार्य देव ज्योंही बाए हाथ का सहारा लेकर खडे हुए और दाए को देखा तो लगभग एक डेढ इच हड्डी कलाई से ऊपर चढ आई । आचार्य श्री ने तुरन्त सहवर्ती सन्तो से कहा—'हाथ को दोनों ओर से पकड कर जोर से खींचो । सोचता हू उस समय की अपनी दशा को, तो तरस आती है अपने आप पर । आचार्य देव ने दुबारा कहा, तब भी मैं तो अधीर बन रोता रहा । हाथ को खींचना तो दूर रहा, उसे स्पर्श करने मे भी कांप रहा था, परन्तु घोर तपस्वी श्री अमरचन्दजी म सा तथा मधुर व्याख्यानी श्री कंवरचन्दजी म सा ने दोनों ओर से हाथ पकड कर खींचा, जिससे बाहर निकली हुई हड्डी अन्दर बैठ गई और ऊपर से कपडे की पट्टी कसकर बांध दी गई ।

उस असह्य वेदना के क्षण मे भी आचार्य देव की उस सौम्य मुद्रा मे
निक भी अ तर नही आया । उसी शात एव सहज मुद्रा मे एक मील का विहार
र नावा गाव पहु चे । सन्त समुदाय कपडो का प्रतिलेखन एव आर्द्र कपडो को
खाने मे व्यस्त हो गया । इधर रायपुर श्रावक सघ को इस दुघटना की जान-
ारी मिली तो सध्या प्रतिक्रमण प्रारम्भ हाने के कुछ समय पश्चात् विरक्तात्मा
ी सम्पतराजजी धाडीवाल डॉक्टर साहब को लेकर उपस्थित हुए । किन्तु धैर्य
ी प्रतिमूर्ति आचायदेव ने सूर्यास्त हो जाने के कारण डॉक्टर साहब को हस्त
पश के लिए सवथा निषेध कर दिया कि "मैं रात्रि मे कुछ भी उपचार नही ले
कता । यदि आप कुछ समय पूर्व पहु च जाते तो उपचार लिया जा सकता था ।'

चिकित्सक महोदय ने बडे विनम्र शब्दो मे आचायदेव से निवेदन किया—
आचाय श्री, हमने बहुत शीघ्र ही यहा पहु चने का प्रयास किया किन्तु दुर्भाग्य
हें या और कुछ माग मे कार खराब हो गई और हमे कुछ विलम्ब हो गया ।
व आप उपचार नही लेना चाहते हैं, तो कम से कम मुझे हाथ एव अ गुलियाँ
लाकर दूर से ही दिखाला दीजिए, मुझे उसमे भी कुछ सन्तोष हो जाएगा ।"

तदनुसार आचायदेव ने अपनी कलाई एव अ गुलियो को हिलाने का
यास किया किन्तु असह्य वेदना के कारण वैसा नही किया जा सका । चिकि-
सक महोदय वन्दन के साथ यह कहते हुए चले गए कि "स्पर्श किए बिना पूरा
नणय नही लिया जा सकता है, किन्तु सूजन बहुत बढ जाने से लगता है हड्डी
ट गई है । अत कल पुन आकर योग्य उपचार की व्यवस्था की जानी चाहिए ।"

रात्रि मे वेदना असह्य हो गई । हाथ कोहनी तक सूज गया । सामान्य
ा आघात पर असह्य पीडा का अनुभव होता है, किन्तु आचायदेव के मुख-कमल
र झलकने वाले सस्मित सौम्य भाव मे कहीं कोई परिवतन परिलिक्षित
ही हो रहा था । दूसरे दिन उसी वेदना मे वहा से ६-७ मील का विहार कर
ोरा गाव पधारे । तब मध्याह्न तीन बजे के लगभग चिकित्सक आए और अस्थि
ो व्यवस्थित कर पक्का प्लास्टर बाध दिया । वहा से दूसरे दिन रायपुर पधार
ए ।

ऐसी कई घटनाए हैं जिन्हे शब्दो का परिवेश दिया जाय तो विशालकाय
न्थ लिखे जा सकते हैं । सार सक्षेप मे कहू तो आचाय-प्रवर का व्यक्तित्व ऐसी
अनेकानेक घटनाओ का मूत रूप है जो चेतना पर सीधा प्रभाव अ कित करता है ।

सन्तुलित एवं सयमित व्यक्तित्व

❀ श्री विजय मुनि

मै अपने गुरु को सूर्यातिशायी प्रकाश पुन्ज के रूप मे देखता हू, जिन्होंने एक प्रभात मुझे नवज्योति से आलोकित किया ।

सवत् २०२८ कातिक शुक्ला द्वादशी के दिन आचार्यश्री नानेश की दिव्य ज्योति से ज्योतिर्मान होने वाली ९ मुमुक्षु आत्माओ का दीक्षा प्रसग था। बीकाने संभाग परिसर से श्रद्धालु भक्तों की एक विशाल भीड उक्त प्रसग पर उपस्थि थी । मैं बीकानेर बालक मण्डली के सस्थापक, सम्पोषक सरक्षक श्रीमान् जयच लालजी सुखानी के नेतृत्व मे आई बालक-मण्डली की करीब ५०-६० लडकों की टीम के साथ मण्डली के सदस्य रूप मे ही साथ था । मुझे यह पता नही था कि मेरा भविष्य-भाग्य किस ओर मुडने वाला है ? पर अन्तमन में एक अपूर्व उत्सा था, बाल सुलभ मन की तरगें गुरु भक्ति मे अत्यन्त उग्र थीं । इसी का फल था कि हमने एक दिन पूर्व गुरुवर के चरणों मे एक प्राथना की थी—मुझे आ भी याद है उस प्राथना के प्रारम्भिक बोल जो हमारे अ तमन से उद्गीत हुए थे-

म्हारे हिवडे री सुण लो पुकार,
गुरुवर चालोनी ।
म्हारे मनडे री सुन लो पुकार
गुरुवर चालोनी । ..

उसी टीम मे मुझ जैसे कई ऐसे बालक थे जिन्होंने प्रथम बार ही दशनो से अपने नेत्र पवित्र किये थे, गुरुवाणी सुनकर अपने मन को पावन कि था । मेरे लिए ये प्रथम दशन ही सच्चे जीवन दर्शन का वरदान लेकर आये थे प्रथम गुरु वचन ही सम्यक् दिशा बोध दशन का अभियान लेकर आये थे ।

प्रथम दशन से प्राप्त हुई नई ताजगी, नई स्फूर्ति, नई प्रेरणा लेकर अप आप मे एक अजीब-सी अनुभूति लिए मैं अपने सचालक महोदय के साथ आवा स्थान पर आ गया । पूरा दिन अन्तमन के आनन्दोल्लास के साथ सम्पन्न हो गया इधर धीरे-धीरे रात्रि का सघन अधकार घिरा रहा था, उधर मन को नव के साक्षात्कार की प्रभाम किरणें आलोकित कर रही थी । साथियो की बातों साथ रात्रि का समय व्यतीत हो गया । प्रात अन्य साथियो से पहले ही मैं तैय हो गया था । रात्रि मे हुआ एक विशिष्ट अनुभव जो बड़ा ही रोमाचक, मनोहा

पुलकित एव प्रेरित करने वाला था । आज भी वह अनुभव जब स्मृति-पटल पर उभरता है तो रोम-रोम हर्षित हो उठता है ।

सक्षेप मे—उस दिव्य अनुभूति को शब्दो का परिवेश दू तो वह इस प्रकार होगी—प्रातःकाल उठने के पहले करीब २ घण्टे भर पहले का समय होगा—मुझे कोई शक्ति झकझोर रही है और पुकार रही है—'सोया क्या है—उठ जल्दी कर, गुरुदेव के दर्शन करने जाना है, सभी चले जायेंगे, तू पीछे रह जायेगा ।' इस तरह करीबन दो-तीन मिनट तक वह शक्ति मुझे आवाज लगाती रही । मैं हड-बडा कर उठा, इधर-उधर देखने लगा—सभी सो रहे हैं, कोई भी अभी तक जगा नही है । उठकर बाहर आया—देखा तो अभी रात भी काफी लग रही है । मै सोचने लगा—मुझे किसने जगाया ? कोई जगाने वाला नजर नही आया, काफी देर इधर-उधर देखता रहा, कुछ नजर नही आया । आखिर सोचा—कोई न कोई शक्ति ही मुझे जगा रही है, अब नही सोना है, जगता रहा । कल की सारी स्मृतिया उभरने लगी, व्याख्यान मे बोलने की, सम्यक्त्व लेने की, परिचय की, इस तरह दिनभर की अनुभूत स्मृतियो मे खोया रहा । धीरे-धीरे सभी उठने लगे । एक-एक करके सभी से मैंने पूछा—किसी ने मुझे आवाज लगाई सभी ने मना कर दिया । तब यह विचार दृढीभूत हो गया कि किसी दिव्य शक्ति ने ही मुझे झकझोरा है, उसी ने जगाया है । मैंने अपने साथियो से भी यह बात कही । सबने आश्चर्य व्यक्त किया ।

हम सभी साथी एक ही परिवेश मे, एक साथ चल पडे—गुरु दर्शन के लिए । हम सभी मुनिवरो के दर्शन करते हुए महावीर भवन के ऊपरी भाग जहा आचार्य श्रीजी विराजित थे, वहा पहुचे पता चला कि वे उसी क्षण मुझ मे क्राति-कारी परिवर्तन घटित करने के लिए मुनिपुगव मेरे समक्ष उपस्थित हुए । मेरा मत्था उनके श्री चरणो की ओर झुक गया । मुनिश्री कहने लगे—तुझे कुछ नियम लेना है ? मैं सोचने के लिए मजबूर हो गया—एक दो क्षण सोचकर मैंने कहा—जरूर नियम लूगा, क्या नियम दिलवायेंगे ? उन्होने कहा—जो मैं कहूगा वो नियम लेना पडेगा । मैं फिर विचारा मे खो गया । किन्तु अन्त चेतना ने तत्काल जीवट होते हुए कहा—मजूर । जो आप नियम दिलवायेंगे वो लेने के लिए मजूर हू । मुझे कुछ पता नही चला कि वे क्या नियम दिलवायेंगे । पर मन की सकम्पता जो अभिव्यक्त हुई उससे मैं खुद आश्चर्याभिभूत हो गया । मुनिश्री मुझे अकेले को लेकर चल पडे जहाँ समत्व साधना की अटल गहराई मे डूबे आचार्य श्री ध्यानस्थ थे । मैं पूज्य गुरुदेव की उस अप्रतिम मगल मूर्ति को अपलक देखता रहा । थोडी देर के बाद पूज्य गुरुदेव की वह ध्यान प्रक्रिया पूर्ण हुई—उन्होने अपने निर्विकार नेत्रों से मुझे खडे देखा, मेरा तन-मन सम्पूर्ण अतरग पूर्ण श्रद्धा के साथ झुका था, आचार्य देव ने अपनी मधुरिम वाणी मे पूछा—कौन हो भाई तुम ? यहा क्या खड़े हो ? क्या बात है ? पूज्य गुरुदेव की मधुर वाणी इतनी सन्निकटता

से आज ही, इस जन्म मे पहली बार ही सुनने को मिल रही थी। मैं कुछ कह
चाह ही रहा था कि वे मुनिपुगव जो मुझे भीतर खडाकर चले गये थे, पुन उ
स्थित हो गये और गुरुदेव से विनम्र हो निवेदन करने लगे, गुरुदेव ! इसे इस
जीवन मे शादी नही करने का नियम दिलवा दीजिये। कहकर वे मुझे देख
लगा—मैं मन्द स्मिति के साथ गर्दन हिलाकर अनुमति दे रहा हू मेरी अनु
सूचक अवस्था देखकर वे मुनिश्री बाहर हो गये। बाद मे मुझे पता चला व मुनि
पुगव थे—विद्वद्वर्य श्री प्रेम मुनिजी म सा ! पूज्य गुरुदेव मुझे अपार स्नेह
आत्मीयता की भावधारा बहाते हुए देखने लगे—मैंने कहा—गुरुदेव आप
नियम दिलवा दीजिये कि मैं इस जन्म मे शादी नही करूगा—मुझे मुनि बन
है। मैं आपका शिष्य बनकर आत्म-कल्याण करना चाहता हू।

पूज्य गुरुदेव ने मेरी सहज अभिव्यक्ति की सच्चाई को जानने के लि
पूछा—क्या समझते हो भाई तुम शादी मे ? वैसे यह प्रश्न सामान्य है प
गुरुदेव के कहने मे बडा रहस्य भरा था, मैंने इतना ही निवेदन किया—
समझने की क्या बात है, सारा ससार इस प्रपच मे उलझा हुआ है मैं इस
झन मे नही फसना चाहता। मैं तो अपने जीवन को प्रारम्भ मे ही भव्य ब
चाहता हू। मेरी अभिव्यक्ति को सुनकर गुरुदेव ने बात को मोड देते हुए क
अच्छा अच्छा कौन है तुम्हारे पिताजी ? कहा के हो तुम ? मैंने अपना सा
परिचय दिया। गुरुवर ने उस समय इतना ही कहकर मुझे आश्वस्त किय
तुम अपने पिताजी को लेकर उपस्थित होना। फिर सोचेंगे ? म कमरे स
तो खाली हाथ बाहर हो गया। किन्तु निश्चय यह करके निकला कि मैं पि
को लेकर यह नियम लूगा और अपने आपको सयम-साधना के योग्य स
करूगा। पूज्य गुरुदेव की सन्निकटता का वह क्षण वास्तव मे बडा आनन्द
था।

अन्तर्मन मे अनेक विचार तरगें तरगित हो रही थी। मैं कुछ
पश्चात अपने पू पिताश्री को लेकर गुरुदेव के चरणों मे उपस्थित हुआ।
मेरा निश्चय अब आग्रह मे बदल गया—मैंने पूज्य गुरुदेव के समक्ष पिता
कहा—मै दीक्षा लेना चाहता हू इसके लिए म यह नियम लेना चाहता हू
इस जीवन मे शादी नहीं करूगा। इसके लिए आपकी अनुमति चाहिए।
देव ने भी मेरी भावनाओ मे मौन सबल प्रदान किया। पिताश्री दृढधर्मी
थे। उन्होंने कहा—गुरुदेव मेरे नियम हैं। मने तो स्वर्गीय गुरुदेव से वच
ही नियम ले रखा है कि मेरे परिवार से कोई भी दीक्षा लेना चाहगा
कभी उसके मार्ग मे बाधक नही बनूगा। यह बच्चा चाहता है तो मेर
कोई विरोध नही है—आप जैसा उचित समझे। पू पिताजी की अनुमति
तो मेरे हर्ष की सीमा नही रही। मेरा निश्चय साकार हो रहा है, इस बात
बडी खुशी हो रही थी। पर गुरुदेव जो एक महान् निस्पृह साधक हैं, उन

अपनी उसी अल्हड निस्पृहता को अभिव्यक्त करते हुए कहा—भाई ! अभी तुम बच्चे हो, अपरिपक्व हो, इसलिए मैं तुम्हे २५ वष तक अर्थात् २५ वर्ष की तुम्हारी वय-अवस्था न हो जाय तब तक के लिए शादी नही करने का त्याग करवा देता हू । उसके बाद इतना कह ही रहे थे - मैंने चरण पकड लिये, नही गुरुदेव ! ऐसा नही होगा, मुझ तो आप आजीवन के लिए ही त्याग करवा दीजिये । मेरी भावना को देखकर गुरुदेव कहने लगे भाई अभी बच्चे हो बच्चे हो बाद मे कर लेना । तुम अपने निश्चय मे दृढ रहो यही सोचो कि मैं तो आजीवन का त्याग कर रहा हू आदि कहते हुए मुझे समझाने लगे । उस समय मेरा मन बडा आनन्दित था । मैं अपने आप मे आत्मा की अनन्त विराटता का अनुभव कर रहा था ।

उस समय पूज्य गुरुदेव के एक सक्षिप्त कि तु ममस्पर्शी उद्बोधन की अमृत वर्षा मुझ पर हुई—

पूज्य गुरुदेव ने जीवन की साथकता का स्वरूप समझाते हुए फरमाया—कि हमे यह जीवन मौज शौक, आमोद-प्रमोद करने के लिए प्राप्त नही हुआ है । इस जीवन से जितनी सयम की साधना कर ली जाय, उतना ही आत्म गुणो का विकास किया जा सकता है । साथ ही हमे अपनी आत्मा पर अनादिकाल से लगे विकारो को धोने का यही सु दरतम अवसर है । काम, क्रोध, मोह, माया, छल-कपट, ईर्ष्या, द्वेष आदि से सारा ससार भरा हुआ है । जिधर देखो उधर इ ही का बोलबाला है—इनसे निवृत्त होने के लिए जिन शासन मे आचार साधना का जो श्रष्ठतम माग बताया गया है, वही सर्वोत्तम है ।

मैं पूज्य गुरुदेव के अमृत वचनो का एकरस होकर रसपान करता रहा । अपूव आत्म जागृति का अभिनव सचार पाकर मन गद्गद् हो गया । मैं निर्णायक चिन्तन मे स्थिर हो गया, वहा से अपूव निणय लेकर मैं अपनी आत्म साधना की भव्यता मे एव वैराग्य भावना की अभिवृद्धि मे जागरूक रहने के लिए अन त उपकारी कमठ सेवा धायमातृ पदालकृत श्री इन्द्रच दजी म सा की सन्निधि मे रहने लग गया । मुनि भगवन् ने बडी आत्मीयता मे हमारे ज्ञान एव चारित्र की विकास भूमि को प्रशस्त किया ।

मेरे दीक्षित होने के निणय से मेरे पिता श्री, मातु श्री एव लघु भगिनी के भी ये ही विचार बने और वे भी आचाय श्री नानेश के शासन म दीक्षित हुए ।

उत्तर—२ आपने आचाय श्री के साधनागत जीवन की मौलिक विशेषताओ के बारे मे पूछा है । पूज्य गुरुदेव का साधनामय जीवन सभी दृष्टिकोणो से सर्वोत्तम है । उनका अतरग जीवन इतना मध चुका है कि वे अब कैसी भी परिस्थिति क्यो न हो, सदव प्रसन्न रहते हैं । कई बार ऐसी विकटर्सी परिस्थितिया उत्पन्न हो जाती हैं जिनमे हम चिंतित से हो जाते है पर तु गुरुदेव की समता मे कोई फक नही पडता ।

प्रारम्भ से ही अर्थात् मुनि अवस्था से ही गुरुदेव मन से पवित्र हैं, वचन से सयमित हैं, और काय से सेवा परायण हैं। प्रभु महावीर ने आगम मे श्रात्म साधक की भव्यताओ की ओर जो सकेत उपदेश एव महत्त्व बताये हैं व सार अक्षरश पूज्य गुरुदेव के जीवन मे प्रतिबिम्बित हो रहे हैं।

हम कतिपय आगम की आलोक किरणो मे पू गुरुदेव श्री के जीवन को झाकने का प्रयास करेंगे—

यथार्थ निश्चय—प्रभु ने कहा—'दुल्लहे खलु माणुसे भवे'—मनुष्य जन्म निश्चित ही दुलभ है। इस दुर्लभ जन्म को पाकर आचाय श्री ने उसका सदुपयोग करने की तीव्र ललक लिए गुरुणागुरु श्रीमद् गणेशाचाय के श्री चरणों मे अपना सवस्व समर्पित किया। पूज्य गुरु चरणो मे आपश्री ने रत्नत्रय की साधना के लिए—

सव्वाओ पाणाइ वायाओ वेरमण
जाव सव्वाओ राइ भोयणओं वेरमण

अर्थात्—सवथा रूप से प्राणातिपात—हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह एव रात्रि भोजन-पान का आजन्म के लिए त्याग-परित्याग किया। बाह्य पदार्थों का त्याग साधना जीवन का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है लेकिन हमारे आचाय श्री इस पहलू तक ही सीमित नही रहे किन्तु वे इस त्याग के साथ अतरग जीवन-साधना के प्रति प्रणत हो गये—

महापथ-समपण—"पणयावीए महावीहिं"—वीर वही है जो महावीथि—महापथ–साधना जीवन के प्रति समर्पित हो। आचाय श्री की साधना का महापथ कैसा रहा—

"अकुसलमण निरोहो
कुशलमण उदीरण चेंव"

अकुशल–अशुभ विचारो का निरोध तथा कुशल अशुभ विचारो का उदीरण–उदीपन (सविकास) करने की साधना ही हमारे आराध्य देव की रही। अशुभ से शुभ को और शुभ से शुद्ध को प्रकट करना ही प्रत्येक वीतराग साधक का लक्ष्य होता है, यही लक्ष्य रहा आचार्य श्री का। क्योंकि इस लक्ष्य के बिना न धर्म की साधना होती है और न आत्म शुद्धि—

पवित्रता के पुञ्ज—"मनो पुण्ण गमा धम्मा"—मन की पवित्रता से ही धर्म–साधना की पवित्रता साधी जा सकती है। मन की पवित्रता ही वचन एव काया मे प्रतिबिम्बित होती है। आचाय श्री का मनोभाव हर समय पवित्र भावों से ओतप्रोत रहता है। वे 'मित्ति में सव्व भूएसु' मैत्री है मेरी समस्त प्राणियों के साथ—इस अमृत वचन में सदा सारावोर रहते हैं। वे कभी भी किसी को अपना शत्रु नहीं मानते। जब कोई व्यक्ति अज्ञानता से या गलतफहमी से कुछ

निंदा—अपमान के भावो मे बहकर कुछ कह देता है या लिख देता है तो भी उसके प्रति कोई द्वेष नही, रोष नही । मानसिक पवित्रता के पुञ्ज हैं आचाय श्री ।

समत्व के शिखर पर—निम्न आगम वाक्यो पर आचाय देव का जीवन स्थिर है—

चरित्त खलु घम्मो
घम्मो जो सो सम्मो त्ति निद्दिठो ।
मोह परवोह विहीणो
परिणामो अप्पणो हु मखो ।

समत्व वही होता है जहा आत्मा मोह और लोभ से मुक्त होती है । यही निमल, शुद्ध वीतराग भाव से सम्पन्न चारित्र साधना है । आचाय-प्रवर के जीवन मे यह बात सुस्पष्ट है कि उनमे न शिष्यो का मोह है और न किसी घटना या परिस्थिति से क्षोभ पैदा होता है । समत्व साधना के उत्तु ग शिखर पर विराजित आचाय देव की यह भव्य चारित्र साधना है ।

तप से प्रदीप्त चर्या—आगमो मे—'उग्गतवे, दित्ततवे घोर तवे' के विशेषण गौतमादि गणधरो के लिए प्रयुक्त हुए हैं । इस तपस्तेज से आचाय-प्रवर की जीवन चर्या हरक्षण अनुप्राणित रहती है । आभ्यतर विनय, वैयाकृत्य, स्वाध्याय, ध्यान, कायोत्सर्ग मे समर्पित गुरुदेव उग्रतपस्वी, दीप्त तपस्वी एव घोर तपस्वी हैं ।

सेवा के आदश—'जेगिलाण पडियरइ से धन्ने'—जो ग्लान की सेवा मे अभिरत रहते हैं, वे धन्य हैं । पूज्य गुरुदेव आचाय जैसे विशिष्ट पद पर आसीन हैं फिर भी कोई अह नही, किसी कार्य को करने मे ग्लानि का अनुभव नही करते । शक्ष तपस्वी, रुग्ण मुनियो की सेवा मे अहर्निश तत्पर रहते हैं । फलत 'वैयावच्चेण तित्थयर नाम गोय कम्म निवधइ' सेवा का यह उदात्त भाव आपको तीर्थंकर नाम कर्म की सर्वोत्तम पुण्य प्रकृति का बोध करवाने वाला बन सकता है ।

लोकेषणा से मुक्त— **न लोगस्सेसण चरे**
जस्स नत्थि इमा जाइ
अण्णा तस्स कओ सिया ?

साधक को लोकेषणा से मुक्त होना चाहिए । आचाय श्री को नाम की, प्रतिष्ठा की, यशकीर्ति की, अपने व्यक्तित्व एव कर्त्तव्य को प्रचारित, प्रसारित करने की किंचित् भी लोकेषणा नही है । अगर यह लोकेषणा होती तो पद एव प्रतिष्ठा के, मान, सम्मान के बहुतेरे अवसर आये पर आपने श्रमण सस्कृति के प्राण स्वरूप श्रमण जीवन की आचार-सहिता के विरुद्ध समझौता नहीं किया ।

जागरूकता—आचार्य श्री हर समय जागरूक रहते हैं, कौन-सा कार्य किस समय करना है, इस बात के लिए आप विशेष रूप से सजग रहते हैं । आगम वचन के अनुसार आप असमय मे किसी काय को करके पश्चातापित नही होते—

'जेहि काल परक्कतं, न पच्छा परितप्पइ'—प्रत्येक कार्य को करने मे एक विशेष प्रकार की तन्मयता आपश्री की जीवन-शैली है। आपश्री अपनी कर्मण्य शक्ति को कभी गोपन करके नही रहते। 'नो निह्नवेज्जवीरियं'—साधक को अपनी साधना मे आत्म शक्ति नही छिपाना चाहिए—आप इस बात के सजग साधक हैं।

इस तरह अनेक प्रकार की आचार्य श्री के अंतरंग साधना जीवन की विशेषताएँ हैं जो आगम पुरुष के रूप मे प्रत्येक साधक के लिए प्रेरणास्पद हैं।

सक्षेप मे पूज्य गुरुदेव का जीवन, अध्ययन, अध्यापन, चिंतन, मनन, साधना, ध्यान, योग सभी सर्वोत्तम है। आज आप श्री उस परम अवस्था व भाव स्थिति पर प्रतिष्ठित हैं, जहा अनुकूल-प्रतिकूल, सुख-दुःख, सयोग वियोग जन्य विविधताए-विचित्रताए परिव्याधित नही करती। एक अलौकिक आलोक पुञ्ज के रूप मे आप श्री युग चेतना को दिशा एव दृष्टि प्रदान कर रहे हैं। आपश्री का आगम की भाषा मे—

"समाहि यस्सग्गी सिहा व तेयसा
तवो य पन्ना य जस्सो वड्ढइ।"

अग्नि शिखा के समान प्रदीप्त एव प्रकाशमान रहने वाले अन्तर्लीन, आत्म-साधक के तप और यश निरन्तर प्रवर्धमान रहते हैं।

उत्तर—३ आचार्य श्री नानेश के द्वारा प्रदत्त समीक्षण ध्यान-साधना के बारे मे आपने पूछा है। वैसे जब से आचार्य देव के चरणो मे दीक्षित होने का सौभाग्य मिला तब से जीवन का प्रशस्त विकास किस तरफ से हो इस दिशा मे पूज्य गुरुदेव का सतत मार्ग दर्शन मिलता रहा है, यह कहने मे किंचित् भी सकोच नही और न किसी प्रकार की अतिशयोक्ति ही है कि हमे दीक्षित होने के अनन्तर पूज्य गुरुदेव का जो सबल, सरक्षण प्राप्त हुआ, वह अपने आप मे अद्भुत है। उसकी अभिव्यक्ति शब्दो से नही की जा सकती है। शब्द सीमित हैं और गुरुदेव के उपकार असीम है।

ध्यान साधना के बारे मे वैसे प्रारम्भ से ही गुरुदेव श्री के सकेत मिलते रहे हैं, परन्तु अहमदाबाद चातुर्मास मे आचार्य श्री भगवन् ने हमारी योग्यता-पात्रता को देखकर सक्रिय रूप से ध्यान और योग की दिशा मे गतिशील होने के लिए प्रेरित किया। वैसे प्रेरणा तो सतत मिलती ही रहती थी, किन्तु इतनी सक्रिय रूप से नही। जब से प्रेरणा के साथ स्वय आचार्य देव का साक्षात मार्ग दर्शन मिलने लगा तब से मन मे ध्यान-साधना के प्रति जिज्ञासा, पिपासा एवं अभिरुचि विशेष रूप से उभरने लगी। पूज्य गुरुदेव ने स्वय कई प्रयोग करवाये और इस दिशा मे अब तक कई प्रयोग, परीक्षण एव मार्ग-दर्शन मिलते रहे हैं। पूज्य गुरुदेव के द्वारा अभिहित प्रयोगो से हमारे जीवन मे जो कुछ घटित हुआ है, वह अपने आप मे अलौकिक हैं सामान्य कल्पना से परे हैं।

सबसे बडी उपलब्धि हमे हमारे जीवन मे महसूस होती है वह यह कि हमारी वृत्तियो मे एव प्रवृत्तियो मे एक अतिशयकारी परिवर्तन हुआ है। सामान्य तौर पर काफी समय लग जाता है, कई वर्ष लग जाते है साधना जीवन मे, वृत्तियो के रूपान्तरण मे, किन्तु हमे यह अनुभव होता है—यह कोई गव की वात नही है कि वहुत थोडे समय मे हमारे मे जो रूपान्तरण घटित हुआ है, वह वास्तव मे गुरुदेव की ध्यान-साधना का चामत्कारिक परिणाम है। आज भी इस दिशा मे हम आगे बढ़ रहे हैं। यह कहने मे किंचित् भी सकोच नही कि इसी उत्साह, अभ्यास एव आशीर्वाद से हम बढते रहे तो निश्चित है—दीक्षित-प्रव्रजित होने का लक्ष्य वहुत शीघ्र ही प्राप्त करने मे सक्षम वन सकेंगे। वैसे अनुभूति गम्य वातो की अनुभूति ही श्रेयस् होती है, उनको शब्दा का परिवेश नही दिया जा सकता। ध्यान-साधना से हुए अनुभव, हो रहे अनुभव तक ही सीमित रखने के विचार ही इस समय उपयुक्त हैं।

उत्तर—४ आचार्य श्रीजी की सरलता व सहजता बडी गजब की है, वे कृत्रिमता जरा-भी पसन्द नही करते। वातें वहुत सामान्य-सी होती हैं, पर होती हैं वहुत वडी प्रेरक। जव कभी भी किसी शहर मे प्रवेश करने का प्रसग होता है, या दीक्षा-प्रसग होता है, या कोई विशेष अवसर होता है तो हम शिष्यो का एक स्वाभाविक आग्रह होता है कि आज आपको यह नया परिवेश धारण करना है हालाकि वह कोई विशिष्ट-अतिविशिष्ट नही होता, किन्तु फिर भी पूज्य गुरुदेव आनाकानी करने लग जाते है, उनका यह स्वर अ तस्तल को छूने वाला होता है—अरे भाई! हमे क्या दिखावा करना है, जो है वही अच्छा है। जो प्रतिदिन पहना या धारण किया जा रहा है, वही ठीक है। यह केवल पहनावे के सम्बन्ध मे ही सहजता या स्वाभाविकता नही होती। इस तरह की जितनी भी कृत्रिमता वाली बातें होती है उन सब बातो मे गुरुदेव अत्यन्त सहज एव सरल होते हैं।

पूज्य गुरुदेव की एक अन्य विशेषता है कि वे हर समय अत्यन्त सतुलित रहते हैं। उनके सन्तुलन का स्वभाव वडा जबदस्त है। किसी भी बात को लेकर वे क्षणिक सोच भले ही करलें किन्तु उस सोच ही सोच मे उलझे नही रहते हैं। गुरुदेव श्री के पास सभी तरह के अलग-अलग स्वभाव के साधु ह, उनमे कोई मुनि या साध्वी किसी तरह की गलती कर देता है तो गुरुदेव उसे शिक्षा के प्रसग से कह देते है किन्तु वाद मे हर समय उसको टोचना, उपालम्भ देना या हीन दृष्टि से देखना उनका स्वभाव नही है। वे उसको उसी प्रेम, स्नेह और आत्मीयता के नजरिये से देखते हैं। क्षणिक-क्षणिक वातो मे न वे उलझते हैं और न अपने नजरिये को वदलते है।

पूज्य गुरुदेव की विशेषताओ मे एक विशेषता है कि वे सयम जीवन के सजग प्रहरी हैं। किसी को दिखाने के लिए नही किन्तु निश्छल आत्म-भावना से वे छोटी-सी, सामान्य सी वात के लिए अत्यत सजग रहते हैं। सामा य मुनि

या साध्वी यह कह देती हैं कि क्या है इसमे ? छोटी-सी बात है—ध्यान रखा तो ठीक नही तो कोई खास बात नही ? किन्तु गुरुदेव कभी यह बर्दास्त नहीं करते । वे कहते हैं—छोटी बात है क्या ? उसका भी बराबर ध्यान रखो। यह मात्र उनका आदेश ही नही होता बल्कि वे पालन करते हैं । ऐसे पालन करने के सैकडो उदाहरण हैं ।

पूज्य गुरुदेव की मनोवज्ञानिक समझाइश बडी महत्त्वपूण होती है। मनो विज्ञान का बडा गहरा अनुभव एव अध्ययन है आपश्री को । यही कारण है कि आप किसी भी बात के लिए हठात् निणय नही लेते । बहुत सोच विचार करके निणय पर पहुचते हैं । जब निणय ले लेते हैं तो फिर उस पर स्थिर रहते हैं। उस निणय मे हेराफेरी करना आपका स्वभाव नही है । इसका मतलब यह नहीं कि आप सत्य की स्वीकृति के लिए सदा के लिए दरवाजा बन्द कर देते हैं। सत्य के लिए आपके द्वार सदैव खुले रहते हैं । सत्य-हकीकत अगर कोई छोटा बच्चा भी कहता है तो उसे आप बेहिचक स्वीकार करते हैं। और अगर सत्य के विपरीत कोई बात बडा व्यक्ति भी कहता है तो उसे आप स्वीकार नहीं करते। ऐसे अनेक प्रसग रोजमर्रा जीवन मे आते हैं ।

पूज्य गुरुदेव का जीवन कई विशिष्टताओ को लिए हुए हैं । आप में 'वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसमादपि' दोनो प्रकार की अवस्थाए रही हुई हैं।

सक्षेप मे आप निश्छल मानस, वाक्पटु एव व्यवहार कुशल हैं । आप मे साधना की अतल गहराई है, ज्ञान की उच्चतम ऊचाई है, सागर सम-गाम्भीय हैं । सुमेरुसम विराटता है । आचाय पद पर प्रतिष्ठित होने के बावजूद आप निराभिमानी हैं और सर्वाधिक विशेषता है आपकी कि आप सहिष्णुता के प्रताव तार हैं ।

उत्तर—५ हमारे सयम जीवन को पुष्ट बनाने वाली ऐसी अनेक विशेष ताए हैं जो हमारा सतत माग दर्शन करती हैं । अबूझ अवस्था में सबोध का अवसर देती हैं । तनाव विमुक्ति एव आत्म-शान्ति का माग प्रशस्त करती हैं।

—विजय मुनि के भावों मे

उत्तर जो दिये गए-[५]

सागर कभी नही छलकता

❀ श्री ज्ञान मुनि

उत्तर—१ सायम स्वीकार करने प्रेरणा का जहा तक प्रश्न है, मुझे स्पष्ट रूप से किसी की प्रेरणा मिली हो, ऐसा उपयोग मे नही है । हा पारिवारिक सस्कार धार्मिक होने से एव सत मुनिराज एव महासतिया जी म सा के दर्शनार्थ जाने से साधुत्व के प्रति सहज आकर्षण पैदा हो गया । अत बाल्यकाल से ही सयम धारण करने की भावना वनी रही है । पर आचार्य-प्रवर के ब्यावर चातुर्मास मे श्रद्धेय गुरुदेव आचार्य भगवन् का एव साथ ही धायमाता पद विभूषित, कमठ सेवाभावी श्री इन्द्रचन्द जी म सा का सान्निध्य प्राप्त होने से भावना मे विशेष उभार आया । आचार्य-प्रवर के करीब-करीब चारो मास के प्रवचन-श्रवण करने का लाभ लिया । यद्यपि उस समय उम्र ११ वर्ष की ही होने मे प्रवचन पूरा तो समझ मे नही आता था पर प्रवचनो के एव चार मास के सतत सान्निध्य के प्रभाव स्वरूप शीघ्र ही सयम जीवन स्वीकार करने के लिए जागृत हो उठा था और करीब दो वर्ष के वैराग्याभ्यास के बाद गुरुदेव ने दीक्षित कर मुझ अबोध को अपने सान्निध्य मे ले लिया । गुरुदेव के पास दीक्षित शिष्यो मे सर्वाधिक अल्पायु होने पर भी मुझे दीक्षित कर गुरुदेव ने मेरे ऊपर अधिक उपकार किया है ।

उत्तर—२ इस प्रश्न का उत्तर कहा से आरम्भ किया जाए और कहा तक दिया जाए, यह स्वय की शक्ति से वाहर है । आप ही वतलाइये कि यदि कोई यह पूछे कि यह मोदक (लड्डू) किस ओर से मधुर, तो क्या जवाव दिया जाय ? जिस प्रकार मोदक सभी ओर से मधुर होता है, उसी प्रकार आचार्य-प्रवर का सयमी जीवन तो जब से आरम्भ हुआ है, तब से अब तक मौलिक ही रहा है, उनका हर चिन्तन, उच्चारण और आचरण अपने आपमें मौलिक ही रहता है, ऐसी स्थिति मे उन सबको व्याख्यापित कर पाना शक्य नही, यह अनुभूति का विषय है जिसकी पूर्ण अभिव्यक्ति नही दी जा सकती । फिर भी आपने पूछ ही लिया है तो मेरी अल्पमति के अनुसार जो कुछ बातें अनुभूत हुई उनमे से कुछेक आपके सामने प्रस्तुत कर देता हू ।

प्रथम तो आपने जिस लक्ष्य को लेकर साधुत्व स्वीकार किया है, उसके प्रति आपश्री पूर्ण रूप से जागरूक हैं, सयमीय क्रियाओ मे आशिक भी कटौती आपको कतई अभीष्ट नही रही है । इसका आपश्री के वाहरी व्यवहार से सहज

ही अनुमान लगाया जा सकता है। अध्ययन के क्षेत्र मे भी आप श्री ने गम्भार अध्ययन किया है। इसमे विशेष बात यह परिलक्षित हुई कि जब भी किसी भी जटिल विषय को हृदयगम करना होता तो आप श्री उपवास कर लिया करत ताकि जो ऊर्जा शारीरिक कार्यो मे खर्च हो रही, वह भी अध्ययन में ही लग जाने से वह विषय सहज ही हृदयगम हो जाता। किसी के द्वारा किसी भी प्रकार का व्यवहार आपश्री के साथ किये जाने पर भी आपश्री का व्यवहार उनके प्रति विनय, सौहार्द एव सयमीय आत्मीयता के साथ ही बना रहा है, पत्थर मारने वाले को भी आपश्री ने आम्रफल की तरह मधुरता ही दी है। स्व गुरुदेव की सेवा मे सवतोभावेन समर्पित होकर आपश्री ने एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है।

यश लिप्सा, पद प्रतिष्ठा से तो आपश्री का दिल कोसो दूर रहा है। आचाय पद जैसे महान् पद पर प्रतिष्ठित होकर भी आपश्री को अहकार छू तक नही पाया। आपश्री मे इतनी अधिक निस्पृहता समाई हुई है कि कभी किसी भी विरक्तात्मा को शीघ्र दीक्षा देने के लिए उत्साहित न कर, पहल उसकी परिपक्वता का परीक्षण करते रहते हैं। लघुता के भाव इतने अधिक गहरे हैं कि अपने शिष्य-शिष्याओ के लिए भी कभी यह नही कहते कि ये मेरे चेले—चेली हैं। सदा यही फरमाते हैं कि आप सभी मेरे भाई-बहिन हैं। हम सभी इस सघ के सदस्य है। एक विशाल सघ के अनुशास्ता होने के कारण कई प्रकार की समस्याए आती रहती हैं, जिन समस्याओ से सामान्य साधक तो घबरा जाता है, पर आपश्री अपनी विचक्षण प्रज्ञा और स्वस्थता के साथ उन सभी समस्याओं का समाधान करते चले जाते हैं।

सामान्य तौर पर यह देखा जाता है कि आदमी का मानस किसी बात को लेकर तनाव मे आ जाता है तो फिर उससे दूसरा कोई भी कार्य ठीक स नही हो पाता है, वह उस तनाव के कारण सारा समय उदास ही बना रहता है पर आचार्य-प्रवर मे तो यह विलक्षणता है कि कभी किसी भी काय मे, रुकावट, बाधा या समस्या आ भी गई तो भी उससे आपश्री के मन मस्तिष्क म असतुलन की अवस्था नही आती। अन्य सभी कार्यों का आपश्री पूण स्वस्थता के साथ निर्वहन करते हैं, आपश्री मे यह भी गजब की शक्ति है कि आपश्री किसी से कुछ भी बात कर रहे हो, उसे समझा रहे हो, और इसी बीच, तत्क्षण आपश्री का अन्य किसी भी व्यक्ति से भी बात करनी पडे तो, आपश्री के हाव भाव में इतनी अधिक तन्मयता आ जाती है कि सामने वाला व्यक्ति आपश्री की मुखमुद्रा से यह अनुमान कभी नही लगा सकता कि आपश्री पूव मे क्या बात कर रहे थे। किसी भी मानसिक व्यावहारिक दौर मे आपश्री गुजर रहे हो, ऐसी स्थिति म भी यदि कोई साधक आपश्री से कोई प्रश्न पूछ ले तो आपश्री का मूड बनाने

की आवश्यकता नही, आपश्री की सारी प्रज्ञा स्वत ही उसके समाधान मे लग जाती है ।

आप जब भी आए गे आपको करीब-करीब सब समय भक्तो की भीड नजर आएगी, पर आश्चय इस बात का है कि इतनी भीड एव कोलाहल के बीच में भी आपश्री अपने आप मे अकेले है । भीड एव कोलाहल के बीच मे भी अध्ययन मे इतने अधिक तन्मय हो जाते है कि आपश्री को भीड का अहसास ही नही होता ।

गुरुदेव के अनुशासन की यह बडी विशेपता रही है कि आपश्री जल्दी से किमी को कुछ भी आदेश नही देते, पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उसके मन का विश्लेपण करते हुए उसे तदनुकूल गति करने के लिए प्रेरित करते हैं ।

एक विशाल सघ के अधिनायक होने के बावजूद भी आपश्री मे धैर्य, क्षमा, सहनशीलता, सरलता, उदारता आदि गुण कूट-कूट कर भरे हुए हैं । छद्मस्थतावश हम शिष्यो मे से किसी से यदि कोई अविनय भी हो जाए तो आपश्री कभी भी उत्त`जित नही होते । ऐसे प्रसगो पर कभी कभी ऐसा लगता है कि अ`य कोई साधक हो तो तुर`त उत्तेजित हो सकता है, पर सत्य है सागर कभी नही छलकता ।

किसी के द्वारा सयम-मर्यादा के प्रतिकूल यदि काई कार्य हो भी जाए तो आपश्री कभी भी उत्तेजित होकर या आक्रोश मे आकर शिक्षा नही देते, पर इतने प्रेम, स्नेह और आत्मीयता के साथ प्रशिक्षित करते हैं कि सामने वाला अपनी गलती को स्वीकार करता हुआ दण्ड प्रायश्चित ग्रहण कर सदा के लिए सयम मर्यादा मे सुस्थिर होने के लिए तत्पर हो उठता है । सयम पालन मे न्यू-नता लाने वाले बड` से बड` साधक को भी आप श्रीसघ से बाहर करने म नही हिचकिचाते ।

आज भी आप स्वय का काम स्वय करने की ओर सदा उत्सुक रहते हैं । कोई भी काय आदि अवशेप रह जाए, हमारे ध्यान मे न आ पावे, तो उसे पूरा करने के लिए आप श्री सहप लग जाते हैं, और यह फरमाते हैं कि भाई मुझे यह काय करने दो ताकि मेरा शरीर ठीक रहेगा । यह भी आपकी महानता है कि आप सेवा करके भी एहसास नही कराना चाहते ।

निणय लेने की भी आपश्री मे अद्भुत क्षमता है । कभी-कभी तो ऐसे प्रसंग सामने आ जाते हैं कि 'इधर कुआ और उधर खाई' ऐसी स्थिति में भी आपश्री की विचक्षण प्रज्ञा बडी सहज गति से सकटो को हटाती हुई आग बटती जाती है । आपश्री के मुख-मण्डल पर आक्रोश, विपाद, निराशा की रेखाए कभी भी परिलक्षित नही होगी । किसी भी विकट परिस्थिति मे भी आपश्री सदव प्रसन्न मुद्रा मे रहते हैं । इसके पीछे क्या रहस्य है ? इसका मुझे यह अनुभव

हुआ कि गुरुदेव प्रवचन एव बातचीत के दौरान यह फरमाया करते हैं कि मैं जो भी काय करता हू, पहले निणय लेता हू, या फिर निर्देश देता हू, तो उन सब मे सयम को मुख्य रखते हुए नि स्वार्थ दृष्टिकोण के साथ सघ-कल्याण की भावना को लक्ष्य मे रखता हू, इस पर भी यदि परिणाम विपरीत आता है तो मैं उस अच्छे के लिए आया मानता हू।

आपश्री की अन्तर चेतना इतनी अधिक सशक्त है कि जब आपश्री के कधो पर सघ का भार सौंपा गया था, उस समय सघ की स्थिति एक जर्जरित खण्डहर जैसी थी। महल का निर्माण करना उतना कष्टप्रद नही होता है जितना कि खण्डहर को मजबूत बनाना होता है, पर आपश्री ने अपने तप-सयम के प्रभाव से जर्जरित हो रहे खण्डहर को भी एक सुसज्जित विशाल महल के रूप में स्थापित कर दिया।

प्रवचन-पटुता, प्रश्नो का सचोट समाधान प्रस्तुत करने की अदभुत क्षमता आपश्री मे है। समता-दशन, समीक्षण-ध्यान, २५० से अधिक दीक्षाए, धर्मपाल उद्धार आदि विशेषताए तो जग-जाहिर ह।

मानावत जी! आपने आचार्य-प्रवर के सयमी जीवन की मौलिक विशेषताए पूछी, पर मुझे तो उनके जीवन मे कही भी अमौलिकता दिखाई ही नहीं देती। मौलिकता उसकी बताई जाती है कि जिसमे दो चार मुख्य विशेषताए हो, बाकी सब सामान्य हो, पर आचाय-प्रवर का सारा जीवन ही मौलिक है। खान-पान, रहन-सहन, व्यवहार आदि प्रत्येक क्रिया मे सयम की मौलिकता सदा सदा से अनुगुजित रही है। ऐसी स्थिति मे मौलिकता का सम्पूर्ण आख्यान यद्यपि सभावित नही है, तथापि आपकी भावनाओ को लक्ष्य मे रखते हुए समुद्र मे बूद की भाति कुछ बातें प्रस्तुत की है। इन सब विशेषताओ के साथ मैं आचाय-प्रवर के जीवन से अनुभूत किये अनेक सस्मरण भी प्रस्तुत कर सकता हू। पर समाधान की यह प्रक्रिया विस्तृत हो जाएगी। अत केवल विशेषताओ का आशिक सकेत मात्र ही किया है।

उत्तर—३ आचाय-प्रवर ने शारीरिक, मानसिक सभी प्रकार की उलझनो के विमोचन पूवक आत्मा म परमात्मा की अभिव्यक्ति हेतु ध्यान की विशिष्ट प्रक्रिया के रूप मे जनागमो की गहराई मे उतरकर समीक्षण ध्यान का प्रस्तुत किया ह। अहमदाबाद वर्षावास मे स्वय आचाय-प्रवर हमको समीक्षण ध्यान की प्रक्रिया करवाते थे। उसके बाद तदनुसार मैंने उसम गति करने का प्रयास किया, फिर बम्बई प्रवास के दारान गुरुदेव म इस विषय म अन्य अनेक जानकारिया ग्रहण की। तदनुरूप फिर गति करने का प्रयास किया। समीक्षण ध्यान के इस प्रयोग मे मुझे कई उपलब्धिया हुई हैं। उन सबका वणन तो सभव नही है, फिर भी कुछेक प्रस्तुत कर देता हू।

१, प्रथम तो सयम को पालन करने मे सहजता, स्वस्थता एव रूचि मे सवद्धि हुई । २ स्मरण-शक्ति मे विकास हुआ । ३ कषायो के उभार मे पूर्व की अपेक्षा कमी आयी । ४ अन्यो के सद्गुण ग्रहण करने मे विशेष रूचि जागृत हुई । ५ किसी के द्वारा गलत आक्रोश किये जाने पर भी स्वय की सहनशीलता मे प्रगति हुई । ६ विचारो में सहजता, सरलता, क्षमता, सयम ने विशेष प्रगति दी । ७ हर परिस्थिति मे धैर्य, सत्साहस रखने का सवल मिला । ऐसी अनेक उपलब्धियां तो व्यावहारिक जीवन के साथ जुडी हुई हैं । इसके साथ ही समीक्षण-ध्यान करते समय अनुभव मे आने वाली विलक्षण आनन्दानुभूति को तो अभिव्यक्त किया नही जा सकता । उस अनुभूति को यथावत् अभिव्यक्ति का रूप देना सभव नही । गुरु-कृपा से रतलाम, व्यावर, वीकानेर, देशनोक आदि क्षेत्रो मे भव्यात्माओ को समीक्षण-ध्यान सिखाने के लिये शिविर भी किये ।

उत्तर—४ आपने पूछा कि मेरे सयमी जीवन को पुष्ट वनाने मे आचार्य प्रवर का किस प्रकार और क्या योगदान रहा ? पर आपके इस प्रश्न का उत्तर मैं किस प्रकार और क्या दू, यह खोज ही नही पा रहा हू । क्योकि दूध और पानी मे जब एकाकारता आ जाती है तब यह दूध है और यह पानी है यह कह पाना सभव नही हो पाता है । सुइयो के एकीकरण को जब आग मे तपाकर घन पर कुटा जाता है तब उसका विलगीकरण सभव नही होता, ठीक उसी प्रकार मेरे सयमी जीवन को पुष्ट बनाने मे श्रद्धेय गुरुदेव ने एक-दो-तीन प्रकार से ही योगदान नही किया, जिससे कि मैं उसका उल्लेख कर सकू । यह बात तो वैसी होगी कि कोई व्यक्ति घट (घडे) से पूछे कि तुम्हे बनाने मे कुभकार का किस प्रकार और क्या योगदान रहा ? जबकि यह स्पष्ट है कि मिट्टी से घट तक की सारी प्रक्रिया मे सारा का सारा योगदान कुभकार का ही होता है । कुभकार के योग को सख्या दृष्टि से परिगणित नही किया जा सकता । वैसे ही श्रद्धेय गुरुदेव के द्वारा मेरे सयमीय जीवन मे जो योगदान रहा है, उसे गणना के आधार पर अभिव्यक्त कर पाना, कथमपि सभव नही । क्योकि १४ वर्ष की अल्पवय मे ही गुरुदेव ने मुझे दीक्षित कर अपना सयमीय सुखद सान्निध्य प्रदान कर दिया था । जो अवस्था एक मिट्टी के तुल्य ही होती है, उस अवस्था से आज जो कुछ भी मैं आपके सामने हू, उन सब मे आचार्य-प्रवर का सर्वविध योगदान रहा है । आचार्य-प्रवर मेरे लिए ही नही, अपने शिष्यो-शिष्याओ के सयमीय जीवन मे तेजस्विता, पुष्टता लाने के लिए जागरूक सतत रहते हैं । वे एक ऐसे बीज के तुल्य हैं, जो मिट्टी मे मिलकर एक विराट वृक्ष का रूप धारण कर जन-जन को शीतलमय बनाता है । आचार्य-प्रवर ने स्वय साधना-पथ पर चलकर हमे ऊपर उठाया है । इस बात को एक मुक्तक के रूप मे व्यक्त कर देता हू ।

अथक परिश्रम से इस बगिया को, सींचा आमूल चूल से तुमने,
खिलाने पुरुप कलियो को, किया अनुकूल उसे तुमने ।

बहा दी ज्ञान की धारा, करने शुद्ध हम सबको,
बढ़ाया जिनशासन का गौरव, कर जयघोष तुमुल तुमने ॥

उत्तर—५ मैं सोच रहा हू कि आपके इस प्रश्न का उत्तर कहा से आरम्भ करू और कहा पूर्ण करू । क्योकि प्रश्न के समाधान की पूर्ण अभिव्यक्ति करना तो दूर किनार रही, पर उसको पूर्ण रूप से मानसिक स्तर पर भी उतार पाना शक्य नही । आपने आचार्य-प्रवर के जीवन से जुडी महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख चाहा है । जिस प्रकार भूखे व्यक्ति के लिए सामने वाला प्रति का भोजन सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है, इसी प्रकार आचार्य प्रवर के जीवन की लघियसी घटना भी मुझे अत्यधिक प्रभावित करने वाली होती है । जब आचार्य प्रवर का सारा जीवन ही सयम-समता-समीक्षरण से अनुरजित है तो फिर किसी एक घटना को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कैसे समझा जाए ? किसी एक दो घटना के मूल्याकन से अन्य घटनाओ का गौण करना कथमपि अभीष्ट नहीं । इसलिए यह बात मैं पहले ही स्पष्ट कर देता हू कि मैं तो गुरुदेव की सभी सयमानुरंजित घटनाओ से प्रभावित रहा हू । लेकिन जिन एक दो घटनाओ का उल्लेख कर रहा हू इसका तात्पर्य यह नही कि मैं इन्हीं घटनाओ से प्रभावित रहा हू । ये तो मात्र नमूने के रूप मे प्रस्तुत कर रहा हू ।

आज से करीब १५ वर्ष पूर्व का यह घटना प्रसग दीक्षित हुआ ही था। ज्येष्ठ मास का महीना था, वर्षा हो रही थी फिर भी सूर्य प्रचण्डता के साथ तप रहा था । वैसी स्थिति मे विहार होने से मेरे दानो पैरो म छाले उभर आये जिससे चलने मे बडी दुविधा होने लगी थी । तब डॉक्टर के परामर्शानुसार उन छालो पर दवा लगाकर पट्टी बाधना था । गुरुदेव न फरमाया-इधर आओ, मैं पट्टी बांध देता हू । यह कहने के साथ ही आपश्री ने अपने हाथ म पट्टी ले ली । तब आसपास विराजमान सत मुनिराजो ने निवेदन किया कि भगवन, हम बांध देंगे । पर गुरुदेव स्वय ही बाधना चाह रहे थे । इधर मैं भी बच्चा ही था ठहरा अत मैं बोला कि पट्टी तो गुरुदेव से ही बधवाऊगा । तब सत मुनिराज क्या करते ? इधर गुरुदेव तो पहले से ही तयार थे । आखिर पट्टी बांध दी गई । यह उपक्रम लगातार तीन चार दिनो तक चलता रहा । पर एक दिन और भी विचित्र घटना घटी । वह यह थी कि मारवाड में एक श्री बालाजी नामक गाव है । वहा से मध्यान्तर मे विहार होने जा रहा था । आचार्य प्रवर ने पट्टी बाध ही दी थी, पर ज्यो ही माहेश्वरी धर्मशाला से विहार शुरु हुआ, मिट्टी मे ही चल रहे थे, जो कि सूर्य की प्रचण्डता के कारण तप्त हो उठी थी, पैर भी उस पर मुश्किल से रखे जाते थे । इसी बीच मेरे पैर की पट्टी खुल गई। गुरुदेव ने जब यह देखा तो वे तुरन्त ही उस तपती हुई मिट्टी मे विराजकर पट्टी बाधने लगे । निवेदन भी किया कि आगे छाया म बाध ली जाए, पर तब

ालो मे विस्तार न हो जाए, इस दृष्टि से गुरुदेव ने स्वय की परवाह नही कर
ट्टी बाधने मे तन्मय रहे, तत्पश्चात ही आगे विहार हुआ । यह है गुरुदेव की
हानता ।

इसी प्रकार अजमेर वर्षावास के अतिम चरण मे जब मेरे गले के
ॉन्सिल का ऑपरेशन हुआ । उस समय करीब डेढ बजे तपती धूप मे स्थानक
चलकर हॉस्पीटल पधारे । और फिर तो प्रतिदिन पधारते रहे । और जब
ॉस्पिटल से मुझे उपाश्रय लाया जाने लगा तो शारीरिक स्थिति कुछ कमजोर
ने से आचाय प्रवर ने मुझे सहारा देकर उठाया और अपने हाथ के सहारे से
करीव डेढ किलोमीटर की यात्रा करवाई । जब तक उपाश्रय मे सत-महापुरुषो
सस्तारक नही बिछा दिया तब तक मुझे हस्तावलम्बन दिये रखा । जबकि
रुदेव किसी सत को भी सकेत कर सकते थे । इधर हजारो लोग आचाय-प्रवर
प्रवचन मे पधारने का इन्तजार कर रहे थे, परन्तु जब तक मुझे शयनित नही
र दिया, तब तक गुरुदेव प्रवचन देने नही पधारे ।

इसी प्रकार अहमदाबाद मे हो रही १५ दीक्षाओ के समय का प्रसग
। शाहीबाग परिसर मे बन रहे हॉस्पिटल मे आचाय-प्रवर अपने शिष्य परिवार
साथ विराज रहे थे । उस समय एकदा रात्रि के उत्तराध मे मेरे उदर मे
कायक तीव्र वेदना प्रादुर्भूत हुई । पहले तो यथाशक्ति सहन करता रहा पर जब
मता नही रही तो कहराने लगा । गुरुदेव की यह चिन्तन, मनन एव ध्यान-
धना की वेला थी । साधना मे बठने ही वाले थे कि मेरी स्वर-ध्वनि सुनकर
कट पधारे, फश पर ही विराजकर मेरे पेट पर हाथ फेरने लगे । करीब आधे
ण्टे तक पेट पर हाथ फेरने से वेदना के कुछ उपशात होने पर शाति मिली
ौर कुछ ही समय के अनन्तर में स्वस्थता का अनुभव करने लगा । फिर भी
ाधना मे प्रविष्ट होने से पूव पुन मेरे निकट पधारे और कहा कि म यही बैठ
ाता हू । तब मैंने निवेदन किया भगवन् ! म स्वस्थ हू, आप पधारें । सच-
ुच आपश्री का वरदहस्त सर्व रोगोपशारमक है ।

इसी प्रकार राणावास वर्षावास के पूव बूसी गाव का एक घटना-प्रसग
है । जब म कपडो का प्रक्षालन कर रहा था, उस समय मेरे और श्रद्धेय गुरुदेव
के कपडे होने से कुछ ज्यादा कपडे थे । तब गुरुदेव ने सोचा कि इसे धोने मे
समय भी अधिक लगेगा और शारीरिक क्लान्ति भी आएगी । बस फिर क्या
था, मुझे सहयाग देने की भावना से वे मेरे समीप पधारे और बोले-स्थानक के
सभी दरवाजे खिडकिया बन्द कर दो, ताकि बाहर से कोई व्यक्ति भीतर न
झाक सके । पहले तो मै इस बात का रहस्य नही समझ पाया और गुरुदेव के
निर्देशानुसार सब फाटक बद कर दिये । तब गुरुदेव ने फरमाया कि मुझे भी
कपडे धोने दो । वह भी इसीलिए नही कि तुम्हें सहयोग करना है, पर कपडे

धोने से मेरे शरीर मे स्वस्थता रहेगी, क्योकि शरीर की स्वस्थता के लिए श्रम आवश्यक है। सब दरवाजे बन्द हो गए हैं, गृहस्थ कोई नहीं देख रहा। अत तुम्हें कोई यह नही कहेगा कि गुरुदेव से कपडे क्यों धुलवाये। तुम कुछ विचार न करो और मुझे कपडे धोने दो। तब मैं समझा दरवाजे बन्द करवाने का रहस्य। मैंने कहा—गुरुदेव यह कभी सभव नही कि आप वस्त्र प्रक्षालनार्थ यहा विराजें। यह सब तो हो जाएगा, आप किसी प्रकार का विचार न करें। बहुत कुछ अनुनय-विनय करने पर गुरुदेव वहा से उठे। इस घटना का भी मुझ पर विशेष प्रभाव पडा। दूसरा का काम भी करना और यह भी न कहना कि मैं सहयोग कर रहा हू, बल्कि इसलिए कि ऐसा करने से मेरा स्वास्थ्य अच्छा रहेगा। यह अपने आपमे महानता का परिचायक है।

आज भी गुरुदेव अपने काम के लिए किसी सत को संकेत नहीं करते और तो और अन्यो का कार्य भी स्वय करने में तत्पर रहते हैं। यह तो मेरे से सबधित प्रसग रखे हैं, पर इसी प्रकार आचार्य-प्रवर प्रत्येक सत मुनिराज का पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं। गुरु के प्रति शिष्यो की श्रद्धा उनके आदेश के कारण नही, विशिष्ट सयमी जीवन के कारण है।

इसी प्रकार अध्ययन के प्रसगो पर भी जब कभी चर्चा का प्रसग आ जाता है तो गुरुदेव का कभी यह उद्देश्य नही रहता कि मैं कहता हू, वह मान लो। वे सदा यही फरमाते हैं कि मै जो समझा रहा हू वह ५+५=१० है। इस तरह तुम्हे समझ मे आवे तो मानो, नही तो और पूछो, मैं विस्तार से समझा दूगा।

आचार्य-प्रवर के जीवन से सम्बन्धित घटनाओ का उल्लेख करते ही जा तथापि वह पूर्ण होने वाली नही है। मैं अपने आपको धन्य समझता हू कि दुखम आरे में भी ऐसे दिव्य अलौकिक महापुरुष का मुझे सान्निध्य प्राप्त हुआ।

इस पचास वर्षीय दीक्षा पर्याय के पावन प्रसग पर मैं शासनदेव से यह कामना करता हू कि गुरुदेव का स्वस्थ्य रहे और युगो-युगो तक आपका सान्निध्य हमे मिलता रहे।

भव्य दिव्य व्यक्तित्व

❀ साध्वी श्री सूर्यमणि

१ ससार मे प्रकाश पुजो की कमी नही है, किन्तु जो जीवन मे सच्चा प्रकाश फैलायें, उन महान ज्ञाननिधि, सच्चे गुरु की सन्निधि जीवन को प्रकाश से दीप्तिमान बनाकर, सत्पथगामी बना सकती है । जन जीवन के सृजेता की ज्ञान किरणो का प्रकाश समस्त वायुमण्डल मे अविरल गति से गतिमान होकर भव्यात्माओ को प्रभावित करता रहता है ।

और ऐसी विरल विभूति का जब साक्षात् दर्शन-प्रवचन प्रभा का दिव्य प्रसारण हो, तब आत्मा परिवर्तित हुए बिना नही रह सकती । ऐसा ही हुआ, जब अजमेर चातुर्मास मे आचार्य भगवन के वैराग्य गर्भित समता, शान्ति सर्जित प्रवचनो को मैंने श्रवण किया तो ससार की अनित्यता, जीवन की क्षण भगुरता का ज्ञान सत्य रूप प्रवचन के माध्यम मे ज्ञात हुआ । वैराग्योत्पादक आचार्य भगवन की मगल वाणी ने जीवन की धारा मगलता की ओर मोड दी । वैराग्य का बीज अकुरित हुआ सदा-सदा के लिए गुरु चरणो मे समपणा की भावना फूट पडी । मेरा बालक हृदय गुरु चरणो मे आजीवन शादी न करने का सकल्प लेकर उपस्थित हुआ । आचार्य भगवन् ने फरमाया-अभिभावको की साक्षी के बिना मैं प्रत्याख्यान नही कराता । ऐसे निर्लोभी अणगार के प्रति, उनके कठोर अनुशासन के प्रति मेरे मन मे अनन्त श्रद्धा उमड पडी ।

अन्तर हृदय अनासक्त, निलिप्तमान, (शिष्य सम्प्रदाय के प्रति) ऐसे महान योगीराज के प्रति समर्पणा की भावना तीव्रतम हो उठी । पारिवारिक सदस्यो ने इन्कार कर दिया । अभी यह बालिका है, किन्तु मेरे बहुत आग्रह पर आचार्य भगवन् ने पारिवारिक जनो को समझाया । इनकी तरफ से हा न हो तो आप जबरन शादी न करें ।

मुझे "सत्यम् शिव सुदरम्' की अलख जगाने वाले सच्चे दीर्घ द्रष्टा गुरु का अवलम्बन मिल गया । रतनपुरी मे "युग दृष्टि के उन्नायक-आचाय भगवन् मे अपने मुखारविन्द से सयम जीवन अगीकार कराकर मेरी आत्मा को शाश्वत शान्ति का दिव्यमाग प्रदान किया । जन्म-जन्मातरो मे भटकती आत्मा को नया दिशाबोध देकर मुझे निहाल कर दिया । ऐसे प्रेरणापुज महाप्रभु की प्रेरणा पाकर मेरी आत्मा को ससार विरक्ति मोक्ष अवाप्ति का भान हुआ ।

३ आचार्य भगवन् के संयमी जीवन की विशिष्टताए निराली हैं । शासनेश प्रभु महावीर की इस परम्परा को अक्षुण रूप देने मे वे विरल विभूति हैं । प्रभु महावीर के सिद्धान्त "आचारांग सूत्र" मे मूल रूप से कथन किये

गये "समियाए धम्मे" सिद्धान्त आचार्य भगवन् के प्रवचनों मे एव जीवन क रग रग मे व्याप्त पाया जाता है ।

"एकता व सगठन के हिमायती" आचार्य भगवन् के जीवन में कथनी व करणी में एकरूपता पाई जाती है । "मन स्यैक-वयस्यैक कायस्यैक महात्मना" की उक्ति आपश्री के जीवन मे चारिताथ होती है । जिन वचना, जिन आदेशों को आप फरमाते हैं उन्हे स्वय पहले जीवन मे आचरित करते हैं । अत आप "निज पर शासन फिर अनुशासन" की उक्ति से जीवन को अलकृत कर रहे हैं ।

सयम की जगमगाती मशाल "आचाय श्री नानेश' ने संयम विशिष्टताओं पर स्थिर रहते हुए सयम-शिथिलाचार के विरुद्ध क्रान्ति की । अध्यात्म प्रधान भारतीय संस्कृति के इस ज्योतिर्मय सूय ने परिमार्जित धम व्यवस्था का सूत्रपात किया विशाल शिष्य मण्डल का सचालन किया और पवित्र सयम यात्रा पर अडिग रहे । जिन शासन के शिरोमणि आचार्य श्री के पद-चिन्हो पर विशाल शिष्य सम्पदा एव चतुर्विध सघ एक निष्ठा एक शिक्षा एक दीक्षा रूप अगाध श्रद्धा से नत मस्तक हो एक स्वर मे गुजारित हो कह उठते हैं । "हागा प्रभु का जिधर इशारा उधर बढ़ेगा कदम हमारा" इसमें केवल भावात्मक सम्बन्ध ही नहीं वरन् सयम की सत्यता-गुणात्मकता एव तीर्थंकर की परम्परा के अनवरत प्रवाहक आचार्य पद की गरिमा हेतु यथार्थता का सम्प्रेक्षण जुडा है । कैसी भी परिस्थितियां क्यो न हो, प्रभु महावीर की वाणी को हर क्षण आपश्री जीवन म उतारे रहते हैं । "समोनिदा पससासु", "पुढवी समो मुणि हुव्वेज्जा" एव "जे पुण्णस्स कत्थई ते तुच्छस्स कत्थइ" की उक्तियो से जीवन को अलकृत किये रहते हैं ।

इन सयम जीवन की अनुपम विशिष्टताओ से लाखो भक्त गण चरण कमल मे भ्रमरवत् दिव्य आभा रूपी पराग का पान करते रहते हैं ।

३ भौतिकता और विलासिता के युग मे मानसिक तनाव से मुक्ति का अचूक साधन है "समीक्षण ध्यान=सम+ईक्षण अर्थात् सम्यक प्रकार से प्रत्येक क्षण मे आत्मावलोकन करना । क्रोध मान-माया-लोभ व आत्म-समीक्षण की धारा मे मैं अधिक तो नही जा सकी, किन्तु कुछ उग्र परिस्थितियों मे जब इसका चिन्तन मैंने किया, तो प्रत्यक्षफल आत्म-सतुष्टि, तनाव-मुक्ति एव व्यक्तिगत सामजस्यता पाई ।

कुछ अशो का चिन्तन मन में अनुपम सन्ताप, आत्मा को स्थिर करने म सक्षम बनाता है—ता नित्य प्रयोग विधि से मानस-तल दिव्यालोकमय बन सकता है, जो हर पल-हर क्षण सम्यक् दर्शन द्रष्टा की धारा बनाकर आत्मा को उस पथ पर चढाय तो कैसी भी परिस्थिति क्या न हो, वह समता सुख व शांति से जीवन मे आनन्द की घडियो को उपलब्ध कर लेता है ।

४ सयमी जीवन की पुष्टि हेतु एक सफल अनुशास्ता व जीवन निर्माता

का दिव्य अवलम्बन आवश्यक है । आचार्य भगवन् ने अन्तरंग के मूलमत्रो से मुझे अनुगु जित किया । सयमी जीवन की पुष्टि हेतु समता सिद्धान्त, सैद्धान्तिक पक्षों एव सयम अभिवर्द्धित शिक्षाओ का प्रवलतम योगदान दिया ।

जीवन-निर्माता आचार्य भगवन् का परमोपकार रहा, जिन्होने जीवन का परिपूण रूपान्तरण करके नवजीवन प्रदान किया व सयमपुष्टि हेतु समय-समय पर ऐसी जीवन घुट्टिया प्रदान की, जिन घुट्टियो मे जीवन निर्माण की औपधिया थीं । शासन-निष्ठा, विनय गुण सम्पन्न कैसे होना साहजिक योग की साधना, ज्ञान-ध्यान, सयम क्रियाओ मे एक दृष्टि, सर्वोतम समपणा से चलना, इन शिक्षाओ से मेरे जीवन को समय-समय पर सिंचित किया । मेरी जीवन वगिया महकती हुई कम-क्षय करने के क्षेत्र मे समता निधि की सन्निधि मे पुष्पित एव पल्लवित हो रही हैं । यह मेरा परम सौभाग्य है ।

साथ ही आचाय भगवन् की विनय गुण सम्पन्नतामयी जीवन-घटनाओं ने भी मुझे वहुत प्रभावित किया । सयम अस्खलना मे दृढतम मेडीभूत आचार्य को पाकर तदनुरूप जीवन-गरिमा वनाने की भावना मे सक्षम वनने का प्रयास कर रही हू ।

आचाय भगवन् ईर्या भापा-एपणा-समिति गुप्ति का पालन हेतु एव समत्व भावी जीवन निर्माण हेतु दिव्य शिक्षाओ से हमे आत्मकल्याण पर अधिक अग्रसर करते रहते हैं । वे हैं—"पुढवी समो मुनि हव्वेज्जा ' एव "समो निंदा पससासु" आदि अनेक आगमिक उक्तियो जिनका सार गर्भित विश्लेपण सयम जीवन को पुष्ट वनाता है ।

साथ ही महिदपुर के प्रवचन-कणो मे "यह भी नही रहेगा" नामक रूपक ऐसा हृदय मे पैठा कि मेरे जीवन को वहुत कुछ रूपान्तरित कर दिया । सयम जीवन में अभाव जन्म स्थितियो का चिन्तन ही नही रहता । हर क्षण चिन्तन मनन एव शुभ सकल्पो से मन सन्नद्ध होकर सयम निष्ठा मे अधिक जागरूक रहने को प्रेरित होता रहता है ।

५ आचाय श्री के जीवन की विहार चर्याओ, चातुर्मास कालिक घटनाओ के अनेक प्रेरणाश हैं, जिन्हे सम्पूणत रूप से नही लिखा जा सकता । महापुरुपो के जीवन का हर क्षण-चिंतन-मनन-शुभ सकल्पो से युक्त होता है । विचारो-आचार का शुभ सम्प्रेक्षण जनमानस मे हुए विना नही रहता है ।

एक वार विहार चर्या के माध्यम से छोटे से ग्राम मे आचार्य भगवन् का पदापण हुआ । देखा कि ग्राम छोटा है । घर कम है । कुछ ही शिष्य साथ मे थे । शिष्यो ने ग्राम मे जाकर देखा तो आहार-पानी कुछ भी उपलब्ध नही हुआ । दूसरी वार भी नही । महापुरुष चमत्कार नही करते, किन्तु अचानक जो कुछ घट जाता है, वह निराला ही होता है । अचानक आचाय भगवन् ने

फरमाया कि जाओ, आहार पानी मिल जायेगा । संत थके हुए थे लेकिन "आणाए धम्मो" स्वर के अनुपालक थे । चल पड़े, विनम्र भावो व अगाध श्रद्धा को लेकर जिस ग्राम मे कुछ नही था, वही आहार-पानी और निर्दोष प्रासुक वस्तुए उपलब्ध थी । यह है आचार्य भगवन् की साधना का अनूठा प्रभाव ।

यो आचार्य भगवन् जहा भी पधारते कहीं व्याधि मुक्ति, कही दिव्य दृष्टि की सम्प्राप्ति तो कहीं मानसिक टेन्शनो से मुक्ति दृष्टिगत होती है । सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि तो यह है कि विघटित स्थितियो में भी साधना से संगठित प्रेम स्नेह का अनूठा चमत्कार जहा तहा देखा पाया जा रहा है ।

जहा मानवो के हृदय-मशीन मे स्नेहतार ढीला हो गया हो, स्नेह स्रोत, प्रेम का नीर सूख गया हो, तनाव व सन्त्रास से जीवन घुट रहा हो, वहा आचार्य भगवन् अपने धर्मोपदेश व समता-सिद्धान्त से सबको स्नेह-सूत्र में बाध देते हैं, पारस्परिक विग्रह कलह मिटा देते है । कानोड चातुर्मास का प्रसग है । एक परिवार ऐसा भी था जिसमे वर्षों से मा-बेटे, बाप-बेटे बिन बोले रह रहे थे । काफी प्रयास पर भी स्नेह-मिलन नही हो पाया था । श्री सघ भी निराश हो जवाब दे रहा था कि भगवन् हम कोई भी इसमें भाग न लेंगे । आचार्य भगवन् आप भी कुछ कहने या करने का प्रयास न करें । यह मामला बड़ा जटिल है । किन्तु आचार्य भगवन् ने ऐसी अनूठी स्नेह-प्रभा बिखेरी कि पिता-पुत्रो ने, मा बेटों ने, भाई-भाई देवरानी-जेठानियो ने राग-द्वेष मन की कलुषता आचार्य भगवन् की झोली मे बहरा दी ।

ऐसे एक नही अनेकानेक प्रसग हैं, जहा आचार्य भगवन् अपनी अनूठी प्रतिभा से स्नेह के टूट तारो को जोडने की कला अपनाते हैं । आचार्य भगवन उस सेतु बन्ध के समान हैं, जो दो भिन्न-भिन्न किनारो को जोडने का कार्य करते हैं ।

शब्दातीत-वर्णनातीत गुणनिधि के गुणो को किन भावों मे अभिव्यक्त किया जाये, उन घटनाओ को, उन गुणो को शब्दो के माध्यम से अभिव्यक्ति नही दी जा सकती हैं । ऐसे अद्वितीय सयम शिखरारूढ़ आचार्य भगवन् दीर्घायु प्राप्त जिन शासन के समुत्कर्ष मे अपना योगदान प्रदान करें । सदाकाल जयवन्त हों ।

ऐसे आगम मोहदधिका अभिनन्दन अभिवन्दन करते हुए हम सदा-सदा आत्मोन्नति की प्रेरणा चाहते हैं । आचार्य श्री नानेश का भव्य दिव्य व्यक्तित्व सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति के अज्ञान अंधकार को दूर करते हुए, जन जन के प्रेरणा स्रोत बने । इसी मगल भावना से ५० वी दीक्षा जयन्ती के शुभावसर पर अनतानत भाव-प्रसूनों से समर्पणा

आचार्य प्रवर की नेश्राय मे विचरण करने वाले एवं उनसे दीक्षित सत सतियाजी म. सा की तालिका

क्र स	नाम	ग्राम	दीक्षा तिथि	दीक्षा स्थान
१	श्री ईश्वरचन्दजी म सा	देशनोक	स १९९९ मिगसर कृष्णा ४	भीनासर
२	श्री इन्द्रचन्दजी म सा,	माडपुरा	सं २००२ वैशाख शुक्ला ६	गोगोलाव
३	श्री सेवन्तमुनिजी म सा,	कन्नौज	स २०१९ कार्तिक शुक्ला ३	उदयपुर
४	श्री अमरचन्दजी म सा,	पीपलिया	स २०२० वैशाख शुक्ला ३	पीपलिया
५	श्री शान्तिमुनिजी म सा,	मदेसर	स २०१९ कार्तिक शुक्ला १	मदेसर
६	श्री कवरचन्दजी म सा,	निकुम्भ	स २०१९ फाल्गुन शुक्ला ५	वडीसादडी
७	श्री प्रेममुनिजी म सा,	भोपाल	सं २०२३ आश्विन शुक्ला ४	राजनादगाव
८	श्री पारसमुनिजी म सा,	दलोदा	स २०२३ आश्विन शुक्ला ४	राजनादगाव
९	श्री सम्पतमुनिजी म सा,	रायपुर	,, ,, ,, ,,	,,
१०	श्री रतनमुनिजी म सा,	भाडेगाव		सोनार
११	श्री धर्मेशमुनिजी म सा,	मद्रास	स २०२३ फाल्गुन कृष्णा ९	रायपुर
१२	श्री रणजीतमुनिजी म सा,	कजार्डा	स २०२७ कार्तिक कृष्णा ८	वडीसादडी
१३	श्री महेन्द्रमुनिजी म सा,	गोगुन्दा	स २०२७ कार्तिक कृष्णा ८	वडीसादडी
१४	श्री सौभागमलजी म सा,	वडावदा	स २०२८ कार्तिक शुक्ला १३	ब्यावर
१५	श्री रमेशमुनिजी म सा,	उदयपुर	स २०२८ कार्तिक शुक्ला १३	ब्यावर
१६	श्री वीरेन्द्रमुनिजी म सा,	आष्टा	स २०२९ माघ शुक्ला २	देशनोक
१७	श्री हुलासमलजी म सा,	गगाशहर	स २०२९ माघ शुक्ला १३	भीनासर

क स	नाम	ग्राम	दीक्षा तिथि	दीक्षा स्थान
१८	श्री विजयमुनिजी म सा,	बीकानेर	सं २०२९ माघ शुक्ला १३	भीनासर
१९	श्री नरेन्द्रमुनिजी म सा,	बम्बोरा	स २०३० माघ शुक्ला ५	सरदारशहर
२०	श्री ज्ञानेन्द्रमुनिजी म सा,	ब्यावर	स २०३१ जेठ शुक्ला ५	गोगोलाव
२१	श्री धनभद्रमुनिजी म सा,	पीपलिया	स २०३१ आश्विन शुक्ला ३	सरदारशहर
२२	श्री पुष्पमुनिजी म सा,	मडी डब्वावाली	स २०३१ आश्विन शुक्ला ३	सरदारशहर
२३	श्री रामलालजी म सा,	देशनोक	स २०३१ माघ शुक्ला १२	देशनोक
२४	श्री प्रकाशचन्दजी म सा,	देशनोक	स २०३२ आश्विन शुक्ला ५	देशनोक
२५	श्री गौतममुनिजी म सा,	बीकानेर	स २०३२ मिगसर शुक्ला १३	बीकानेर
२६	श्री प्रमोदमुनिजी म सा	हांसी	म २०३३ माघ कृष्णा १	भीनासर
२७	श्री प्रशममुनिजी म सा,	गगाशहर	स २०३४ वैशाख कृष्णा ७	भीनासर
२८	श्री मूलचन्दजी म सा,	नोखामण्डी	स २०३४ मिगसर शुक्ला ५	नोखामण्डी
२९	श्री ऋषभमुनिजी म सा,	बम्बोरा	स २०३४ माघ शुक्ला १०	जोधपुर
३०	श्री अजितमुनिजी म सा,	रतलाम	स २०३५ आश्विन शुक्ला २	जोधपुर
३१	श्री जितेशमुनिजी म सा,	पूना	सं २०३६ चैत्र शुक्ला १५	ब्यावर
३२	श्री पद्मकुमारजी म सा,	नीमगावखेडी	सं २०३६ चैत्र शुक्ला १५	ब्यावर
३३	श्री विनयमुनिजी म सा,	ब्यावर	सं २०३६ चैत्र शुक्ला १५	ब्यावर
३४	श्री सुमतिमुनिजी म सा,	नोखामण्डी	स २०३७ पौष शुक्ला ३	भीम
३५	श्री चन्द्रेशमुनिजी म सा,	फलोदी	स २०३८ वैशाख शुक्ला ३	गंगापुर
३६	श्री धर्मेन्द्रकुमारजी म सा,	साफरा	स २०३९ चैत्र शुक्ला ३	अहमदाबाद
३७	श्री धीरजकुमारजी म सा,	जावद	स २०४० फाल्गुन शुक्ला २	रतलाम
३८	श्री कांतिकुमारजी म सा,	नीमगावखेडी	सं २०४० फाल्गुन शुक्ला २	रतलाम
३९	श्री विवेकमुनिजी म सा	उदयपुर गांधपुरा	सं २०४१ माघ शुक्ला १०	मन्दसौर

महासतियाजी म सा की तालिका

क्र स	नाम	ग्राम	दीक्षा तिथि	दीक्षा स्थान
१	श्री सिरेकंवरजी म सा,	सोजत	सं १९८४	सोजत
२	श्री वल्लभकवरजी म सा, (प्रथम)	जावरा	सं १९८७ पौष शुक्ला २	निसलपुर
३	श्री पानकवरजी म सा, (प्रथम)	उदयपुर	स १९९१ चैत्र शुक्ला १३	भीण्डर
४	श्री सम्पतकंवरजी म सा, (प्रथम)	रतलाम	स १९९२ चैत्र शुक्ला १	रतलाम
५	श्री गुलाबकवरजी म सा, (प्रथम)	खाचरौद	स १९९२	खाचरौद
६	श्री केसरकवरजी म सा	बीकानेर	स १९९५ ज्येष्ठ शुक्ला ४	बीकानेर
७	श्री गुलाबकवरजी म सा (द्वि)	जावरा	स १९९७	खाचरौद
८	श्री धापूकवरजी म सा, (प्रथम)	भीनासर	सं १९९८ भादवा कृष्णा ११	भीनासर
९	श्री ककूकवरजी म सा,	देवगढ	सं १९९८ वैशाख शुक्ला ६	देवगढ
१०	श्री पेपकवरजी म सा,	बीकानेर	स १९९९ ज्येष्ठ कृष्णा ७	बीकानेर
११	श्री नानूकवर म सा	देशनोक	स १९९० आश्विन शुक्ला ३	देशनोक
१२	श्री धापूकवरजी म सा (द्वि)	चिकारडा	सं २००१ चैत्र शुक्ला १३	भीलवाडा
१३	श्री कचनकवरजी म सा	सवाईमाधोपुर	स २००१ वैशाख कृष्णा २	ब्यावर
१४	श्री सूरजकवरजी म सा,	बिरमावल	स २००२ माघ शुक्ला १३	रतलाम
१५	श्री फूलकवरजी म सा,	कुस्तला	स २००३ चैत्र शुक्ला ९	सवाईमाधोपुर
१६	श्री भंवरकवरजी म सा (प्रथम)	बीकानेर	सं २००३ वैशाख कृष्णा १०	बीकानेर
१७	श्री सम्पतकवरजी म सा	जावरा	स २००३ आश्विन कृष्णा १०	ब्यावर पुरानी
१८	श्री सायरकवरजी म सा (प्रथम)	केशरसिंहजी का गुडा	स २००४ चैत्र शुक्ला २	राणावास
१९	श्री गुलाबकवरजी म सा, (द्वि)	उदयपुर	स २००६ माघ शुक्ला १	उदयपुर
२०	श्री कस्तूरकंवरजी म सा (प्रथम)	नारायणगढ	स २००७ पौष शुक्ला ४	खाचरौद
२१	श्री सायरकंवरजी म सा (द्वि)	ब्यावर	स २००७ ज्येष्ठ शुक्ला ५	ब्यावर

क सं	नाम	ग्राम	दीक्षा तिथि	दीक्षा स्थान
२२	श्री चांदकवरजी म सा,	बीकानेर	सं २००८ फाल्गुन कृष्णा ८	बीकानेर
२३	श्री पानकवरजी म सा, (द्वि)	बीकानेर	स २००६ ज्येष्ठ कृष्णा ६	बीकानेर
२४	श्री इद्रकवरजी म सा,	बीकानेर	सं २००६ ज्येष्ठ कृष्णा ५	बीकानेर
२५	श्री बुदामकवरजी म सा,	मेडता	स २०१० ज्येष्ठ कृष्णा ३	बीकानेर
२६	श्री सुमतिकवरजी म सा,	झज्झू	स २०११ वैशाख शुक्ला ५	भीनासर
२७	श्री इचरजकवरजी म सा,	बीकानेर	स २०१३ आश्विन शुक्ला १०	गोगोलाव
२८	श्री चन्द्राकवरजी म सा,	कुकडेश्वर	स २०१४ फाल्गुन शुक्ला ३	कुकडेश्वर
२९	श्री सरदारकवरजी म सा,	अजमेर	स २०१५ आश्विन शुक्ला १३	उदयपुर
३०	श्री शाताकवरजी म सा, (प्रथम)	उदयपुर	स २०१६ ज्येष्ठ शुक्ला ११	उदयपुर
३१	श्री रोशनकवरजी म सा, (प्रथम)	उदयपुर	स २०१६ आश्विन शुक्ला १५	वडीसादडी
३२	श्री अनोखाकंवरजी म सा,	उदयपुर	स २०१६ कार्तिक कृष्णा ८	उदयपुर
३३	श्री कमलाकवरजी म सा, (प्रथम)	कानोड	सं २०१६ कार्तिक शुक्ला १३	प्रतापगढ
३४	श्री झमकूकवरजी म सा,	भदेसर	स २०१७ मिगसर कृष्णा ५	उदयपुर
३५	श्री नन्दकवरजी म सा,	बडीसादडी	स २०१७ फाल्गुन वदी १०	छोटीसादडी
३६	श्री रोशनकवरजी म सा, (द्वि)	बडीसादडी	सं २०१८ वैशाख शुक्ला ८	वडीसादडी
३७	श्री सूयकान्ताजी म सा,	उदयपुर	स २०१९ वैशाख शुक्ला ७	उदयपुर
३८	श्री सुशीलाकंवरजी म सा, (प्रथम)	उदयपुर	स २०१९ वैशाख शुक्ला १२	उदयपुर
३९	श्री शान्ताकवरजी म सा, (द्वि)	गंगाशहर	सं २०१८ फाल्गुन कृष्णा १२	गगाशहर
४०	श्री लीलावतीजी म सा,	निकुम्भ	सं २०२० फाल्गुन शुक्ला २	निकुम्भ
४१	श्री कस्तूरकंवरजी म सा (द्वि)	पीपल्यामण्डी	स २०२० वैशाख शुक्ला ३	पीपल्यामण्डी
४२	श्री हुलासकंवरजी म सा	चिकारडा	सं २०२१ वैशाख शुक्ला १०	चिकारडा
४३	श्री मानकवरजी म सा, (द्वि)	मालदामाडी	सं २०२१ आश्विन शुक्ला ८	पीपलियाकलां

क स	नाम	ग्राम	दीक्षा तिथि	दीक्षा स्थान
४४	श्री ज्ञानकवरजी म सा, (द्वि)	राणावास	स २०२३ आश्विन शुक्ला ४	राजनादगाव
४५	श्री प्रेमलताजी म सा (प्रथम)	सुरेन्द्रनगर	सं २०२३ आश्विन शुक्ला ४	राजनादगाव
४६	श्री इन्दुबालाजी म सा,	राजनादगाव	सं २०२३ आश्विन शुक्ला ४	राजनादगाव
४७	श्री गगावतीजी म सा,	डोगरगाव	स २०२३ मिगसर शुक्ला १३	डोगरगाव
४८	श्री पारसकवरजी म सा	कलगपुर	सं २०२३ मिगसर शुक्ला १३	डोगरगाव
४९	श्री चन्दनबालाजी म सा,	पीपल्या	स २०२३ माघ शुक्ला १०	पीपल्यामण्डी
५०	श्री जयश्रीजी म सा,	मद्रास	स २०२३ फाल्गुन कृष्णा ९	रायपुर
५१	श्री सुशीलाकवरजी म सा, (द्वि)	मालदामाडी	स २०२४ आश्विन शुक्ला २	जावरा
५२	श्री मंगलाकवरजी म सा,	वडावदा	स २०२४ आश्विन शुक्ला १	दुर्ग
५३	श्री शकुन्तलाजी म सा,	बीजा	स २०२४ मिगसर कृष्णा ६	दुर्ग
५४	श्री चमेलीकवरजी म सा,	बीकानेर	स २०२५ फाल्गुन शुक्ला ५	बीकानेर
५५	श्री सुशीलाकंवरजी (तृ) म सा	बीकानेर	स २०२५ फाल्गुन शुक्ला ५	बीकानेर
५६	श्री चन्द्राकवरजी म सा,	रतलाम	स २०२६ वैशाख शुक्ला ७	ब्यावर
५७	श्री कुसुमलताजी म सा	मन्दसौर	स २०२६ आश्विन शुक्ला ४	मन्दसौर
५८	श्री प्रेमलताजी म सा,	मन्दसौर	स २०२६ आश्विन शुक्ला ४	मन्दसौर
५९	श्री विमलाकवरजी म सा,	पीपल्या	स २०२७ कार्तिक कृष्णा ८	बडीसादडी
६०	श्री कमलाकवरजी म सा,	जेठाणा	स २०२७ कार्तिक कृष्णा ८	बडीसादडी
६१	श्री पुष्पलताजी म सा,	बडीसादडी	स २०२७ कार्तिक कृष्णा ८	बडीसादडी
६२	श्री सुमतिकवरजी म सा,	बडीसादडी	सं २०२७ कार्तिक कृष्णा ८	बडीसादडी
६३	श्री विमलाकंवरजी म सा,	मोडी	सं २०२७ फाल्गुन शुक्ला १२	जावद
६४	श्री सूरजकवरजी म सा,	वडावदा	सं २०२८ कार्तिक शुक्ला १२	ब्यावर
६५	श्री ताराकवरजी म सा, (प्रथम)	रतलाम	" " " "	"

क्र सं,	नाम	ग्राम	दीक्षा तिथि	दीक्षा स्थान
६६	श्री कल्याणकंवरजी म सा,	बीकानेर	सं २०२८ कार्तिक शुक्ला १२	ब्यावर
६७	श्री कान्ताकंवरजी म सा,	बडावदा	" " " "	"
६८	श्री कुसुमलताजी म सा, (द्वि)	रावटी	" " " "	"
६९	श्री चन्दनाजी म सा, (द्वि)	बडावदा	" " " "	"
७०	श्री ताराजी म सा, (द्वि)	रतलाम	सं २०२९ चैत्र शुक्ला २	जयपुर
७१	श्री चेतनाश्रीजी म सा,	कानाड	सं २०२९ चैत्र शुक्ला १३	टोंक
७२	श्री तेजप्रभाजी म सा,	अजमेर	सं २०२९ माघ शुक्ला १३	भीनासर
७३	श्री कुसुमकान्ताजी म सा,	जावरा	" " " "	"
७४	श्री वसुमतीजी म सा,	बीकानेर	" " " "	"
७५	श्री पुष्पाजी म सा,	देशनोक	" " " "	"
७६	श्री राजमतीजी म सा,	दलोदा	" " " "	"
७७	श्री मंजुबालाजी म सा,	बीकानेर	" " " "	"
७८	श्री प्रभावतीजी म सा,	बीकानेर	" " " "	"
७९	श्री ललिताजी म सा, (प्रथम)	बीकानेर	सं २०२९ फाल्गुन शुक्ला ११	बीकानेर
८०	श्री सुशीलाजी म सा, (द्वि)	मोडी	सं २०३० वैशाख शुक्ला ६	नोखामण्डी
८१	श्री समताकंवरजी म सा,	अजमेर	सं २०३० वैशाख शुक्ला ६	नोखामण्डी
८२	श्री निरंजनाश्रीजी म सा,	बडीसादडी	सं २०३० कार्तिक शुक्ला १३	बीकानेर
८३	श्री पारसकंवरजी म सा,	बागेडा	सं २०३० मिगसर शुक्ला ९	भीनासर
८४	श्री सुमनलताजी म सा,	बागेडा	सं २०३० मिगसर शुक्ला ९	भीनासर
८५	श्री विजयलक्ष्मीजी म सा,	उदयपुर	सं २०३० माघ शुक्ला ५	सरदारशहर
८६	श्री स्नेहलताजी म सा,	सरदारशहर	सं २०३० माघ शुक्ला ५	सरदारशहर
८७	श्री रंजनाश्रीजी म सा,	उदयपुर	सं २०३१ ज्येष्ठ शुक्ला ५	[illegible]

क्र सं	नाम	ग्राम	दीक्षा तिथि	दीक्षा स्थान
८८	श्री अंजनाश्रीजी म. सा,	उदयपुर	स २०३१ ज्येष्ठ शुक्ला ५	गोगोलाव
८९	श्री ललिताजी म सा,	ब्यावर	" " " "	"
९०	श्री विचक्षणाजी म सा,	पीपलिया	सं २०३१ आश्विन शुक्ला ३	सरदारशहर
९१	श्री सुलक्षणाजी म सा,	पीपलिया	" " " "	"
९२	श्री प्रियलक्षणाजी म सा,	पीपलिया	" " " "	"
९३	श्री प्रीतिसुधाजी म सा,	निकुम्भ	स २०३१ माघ शुक्ला १२	देशनोक
९४	श्री सुमनप्रभाजी म सा,	देवगढ़	" " " "	"
९५	श्री सोमलताजी म. सा,	रावटी	" " " "	"
९६	श्री किरणप्रभाजी म सा,	बीकानेर	" " " "	"
९७	श्री मजुलाश्री जी म सा,	देशनोक	स २०३२ वैशाख कृष्णा १३	भीनासर
९८	श्री सुलोचनाजी म सा,	कानोड	" " " "	"
९९	श्री प्रतिभाजी म सा,	बीकानेर	" " " "	"
१००	श्री वनिताश्रीजी म सा,	बीकानेर	" " " "	"
१०१	श्री मुप्रभाजी म सा,	गोगोलाव	" " " "	"
१०२	श्री जयन्तश्रीजी म सा	बीकानेर	स २०३२ आश्विन शुक्ला ५	देशनोक
१०३	श्री हर्षकवरजी म सा,	अमरावती	स २०३२ मिगसर शक्ला ८	जावरा
१०४	श्री सुदशनाजी म सा,	नोखामण्डी	स २०३३ आश्विन शुक्ला ५	नोखामण्डी
१०५	श्री निरुपमाजी म सा,	रायपुर	स २०३३ आश्विन शुक्ला १५	नोखामण्डी
१०६	चन्द्रप्रभाजी म सा,	मेडता	सं २०३३ मिगसर शुक्ला १३	नोखामण्डी
१०७	श्री आदशप्रभाजी म सा,	उदासर	स २०३४ वैशाख कृष्णा ७	भीनासर
१०८	श्री कीर्तिश्रीजी म सा,	भीनासर	स २०३४ वैशाख कृष्णा ७	भीनासर
१०९	श्री हर्षिलाश्रीजी म सा,	गंगाशहर	स २०३४ वैशाख कृष्णा ७	भीनासर

क्र स	नाम	ग्राम	दीक्षा तिथि	दीक्षा स्थान
११०	श्री साधनाश्रीजी म सा,	गगाशहर	स २०३४ वै कृष्णा ७	भीनासर
१११	श्री अचनाश्रीजी म सा,	गगाशहर	सं २०३४ व शुक्ला १५	,,
११२	श्री सरोजकंवरजी म सा,	धमतरी	स २०३४ भादवा कृष्णा ११	दुर्ग
११३	श्री मनोरमाजी म सा,	रतलाम	स २०३४ भादवा कृष्णा ११	दुर्ग
११४	श्री चपलकवरजी म सा,	कांकेर	स २०३४ भादवा कृष्णा ११	दुर्ग
११५	श्री कुसुमकंवरजी म सा,	निवारी	स २०३४ भादवा कृष्णा ११	दुर्ग
११६	श्री सुप्रतिभाजी म सा,	उदयपुर	स २०३४ आश्विन शुक्ला २	भीनासर
११७	श्री शांताप्रभाजी म सा,	बीकानेर	स २०३४ आश्विन शुक्ला २	भीनासर
११८	श्री मुक्तिप्रभाजी म सा,	मोडी	सं २०३४ मिगसर कृष्णा ५	बीकानेर
११९	श्री गुणसुन्दरीजी म सा,	उदासर	स २०३४ मिगसर कृष्णा ५	बीकानेर
१२०	श्री मधुप्रभाजी म सा,	छोटीसादडी	स २०३४ मिगसर कृष्णा ५	बीकानेर
१२१	श्री राजश्रीजी म सा,	उदयपुर	सं २०३४ माघ शुक्ला १०	जोधपुर
१२२	श्री शशिकांताजी म. सा,	उदयपुर	स २०३४ माघ शुक्ला १०	जोधपुर
१२३	श्री कनकश्रीजी म सा,	रतलाम	स २०३४ माघ शुक्ला १०	जोधपुर
१२४	श्री सुलभाश्रीजी म सा,	नोखामण्डी	स २०३४ माघ शुक्ला १०	जोधपुर
१२५	श्री निर्मलाश्रीजी म सा,	देशनोक	स २०३५ आश्विन शुक्ला २	जोधपुर
१२६	श्री चेलनाश्रीजी म सा	कानोड़,	,, ,, ,, ,,	,,
१२७	श्री कुमुदश्रीजी म सा,	गंगाशहर	,, ,, ,, ,,	,
१२८	श्री कमलश्रीजी म सा,	उदयपुर	स २०३६ वै शु १५	ब्यावर
१२९	श्री पद्मश्रीजी म सा,	महिदरपुर	,, ,, ,, ,,	,,
१३०	श्री करुणाश्रीजी म सा	पीपल्या	,, ,, ,,	

क्र सं	नाम	ग्राम	दीक्षा तिथि	दीक्षा स्थान
१३२	श्री ज्योत्स्नाश्रीजी म सा,	गंगाशहर	सं २०३६ चै शु १५	ब्यावर
१३३	श्री पकजश्रीजी म, सा,	बीकानेर	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१३४	श्री मधुश्रीजी म सा,	इन्दौर	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१३५	श्री पूर्णिमाश्रीजी म सा,	बडीसादडी	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१३६	श्री प्रवीणाश्रीजी म सा,	मन्दसौर	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१३७	श्री दर्शनाश्रीजी म सा,	देशनोक	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१३८	श्री वन्दनाश्रीजी म सा,	गगाशहर	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१३९	श्री प्रमोदश्रीजी म सा,	ब्यावर	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१४०	श्री उर्मिलाश्रीजी म सा	रायपुर	स २०३७ ज्ये शु ३	बुसी
१४१	श्री सुभद्राश्रीजी म सा,	बीकानेर	सं २०३७ श्रा शु ११	राणावास
१४२	श्री हेमप्रभाजी म सा,	केसीगा	सं २०३७ श्रा शु ३	राणावास
१४३	श्री ललितप्रभाजी म सा,	विनोता	सं २०३८ वै शु ३	गगापुर
१४४	श्री वसुमतीजी म सा,	अलाय	सं २०३८ श्रा शु ८	अलाय
१४५	श्री इन्द्रप्रभाश्रीजी म सा,	बीकानेर	स २०३८ का शु १२	उदयपुर
१४६	श्री ज्योतिप्रभाश्रीजी म सा,	गगाशहर	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१४७	श्री रचनाश्रीजी म सा,	उदयपुर	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१४८	श्री रेखाश्रीजी म सा,	जोधपुर	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१४९	श्री चित्राश्रीजी म सा,	लोहावट	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१५०	श्री लधिताश्रीजी म सा,	गगाशहर	सं २०३८ का शु १२	उदयपुर
१५१	श्री विद्यावतीजी म सा,	सवाईमाधोपुर	सं २०३८ मि शु ६	हिरणमंगरी
१५२	श्री विख्याताश्रीजी म सा,	विनोता	सं २०३८ मा कृ ३	बम्बोरा
१५३	श्री जिनप्रभाश्रीजी म सा,	राजनादगांव	स २०३९ चै कृ ३	अहमदाबाद

	नाम	ग्राम	दीक्षा तिथि	दीक्षा स्थान
१५४	श्री अमिताश्रीजी म सा,	रतलाम	सं २०३९ चैत्र कृष्णा ३	अहमदाबाद
१५५	श्री विनयश्रीजी म सा,	दुरखखान	" " " "	"
१५६	श्री श्वेताश्रीजी म सा,	केशकाल	" " " "	"
१५७	श्री सुचिताश्रीजी म सा,	रतलाम	सं २०३९ चै कृ ३	अहमदाबाद
१५८	श्री मणिप्रभाजी म सा,	गगाशहर	" " " "	"
१५९	श्री सिद्धप्रभाजी म सा,	नागौर	" " " "	"
१६०	श्री नम्रताश्रीजी म सा,	जगदलपुर	" " " "	"
१६१	श्री सुप्रतिभाश्रीजी म सा	राजनादगाव	" " " "	"
१६२	श्री मुक्ताश्रीजी म सा,	कपासन	" " " "	"
१६३	श्री विशालप्रभाजी म सा,	गगाशहर	" " " "	"
१६४	श्री कनकप्रभाजी म सा,	बीकानेर	" " " "	"
१६५	श्री सत्यप्रभाजी म सा,	बीकानेर	सं २०४० श्रा शु २	"
१६६	श्री रक्षिताश्रीजी म सा,	पाली	" " " "	भावनगर
१६७	श्री महिमाश्रीजी म सा	अहमदाबाद	" " " "	"
१६८	श्री मृदुलाश्रीजी म सा,	वैशालीनगर	" " " "	"
१६९	श्री वीणाश्रीजी म सा,	वैशालीनगर	सं २०४० का शु २	"
१७०	श्री प्रेरणाश्रीजी म सा,	बीकानेर	" " " "	रतलाम
१७१	श्री गुणरंजनाश्रीजी म सा,	उदयपुर	" " " "	"
१७२	श्री सूर्यमणिजी म सा,	मन्दसौर	" " " "	"
१७३	श्री सरिताश्रीजी म सा,	बीकानेर	" " " "	"
१७४	श्री सुवर्णश्रीजी म सा,	रतलाम		
१७५	श्री निरूपणाश्रीजी म सा	उदयपुर		

क्र सं	नाम	ग्राम	दीक्षा तिथि	दीक्षा स्थान
१७६	श्री शिरोमणिश्रीजी म सा,	डोडीलोहारा	स २०४० फा शु २	रतलाम
१७७	श्री विकासप्रभाजी म सा,	वीकानेर	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१७८	श्री तरुलताजी म सा,	चित्तौड	,, ,, ,, ,, ,,	,
१७९	श्री करुणाश्रीजी म सा,	मोडी	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१८०	श्री प्रभावनाश्रीजी म सा,	वडाखेडा	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१८१	श्री सुयशमणिजी म सा,	गंगाशहर	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१८२	श्री चित्तरजनाजी म सा,	रतलाम	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१८३	श्री मुक्ताश्रीजी म सा,	वीकानेर	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१८४	श्री सिहमणिजी म सा,	बेंगू	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१८५	श्री रजमणिश्रीजी म सा,	बगमुण्डा	स २०४० फा शु २	रतलाम
१८६	श्री ग्रपणाश्रीजी म सा,	कानोड	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१८७	श्री मंजुलाश्रीजी म सा,	भीनासर	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१८८	श्री गरिमाश्रीजी म सा,	चौथ का बरवाडा	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१८९	श्री हेमश्रीजी म सा,	नोखामण्डी	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१९०	श्री कल्पमणिजी म सा,	पीपत्या	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१९१	श्री रविप्रभाजी म सा,	जावरा	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१९२	श्री मयकमणिजी म सा,	पीपलियामण्डी	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१९३	श्री चन्दनवाला श्रीजी म सा,	बडीसादडी	स २०४१ मिगसर सुदी १३	बडीसादडी
१९४	श्री मिता श्री श्रीजी म सा,	गगाशहर	स २०४१ माघ सदी १०	गगाशहर-भीनासर
१९५	श्री पीयूप प्रभाजी म सा,	वीकानेर	स २०४२ कार्त्तिक सुदी ६	घाटकोपर
१९६	श्री सयम प्रभाजी म सा,	शाहदा	,, ,, ,, ,, ,,	,,
१९७	श्री रिद्धि प्रभाजी म सा,	ग्रकलकुवा	,, ,, ,, ,, ,,	,,

क्र स	नाम	ग्राम	दीक्षा तिथि	दीक्षा स्थान
१९८	श्री वैभव प्रभाजी म सा,	अकलकुवा	" " " " "	"
१९९	श्री पुण्य प्रभाजी म सा,	झाहुदा	" " " " "	"
२००	श्री लक्ष्य प्रभाजी म सा,	जागलु	" " " " "	"
२०१	श्री पराग श्रीजी म सा,	कपासन	सं २०४३ चैत सुदी ४	इन्दौर
२०२	श्री भावना श्रीजी म सा,	भीम	सं २०४३ चैत सुदी ४	इन्दौर
२०३	श्री सुमित्रा श्रीजी म सा	बाडमेर	सं २०४४ वैशाख सुदी ६	बाडमेर
२०४	श्री लक्षिता श्रीजी म सा,	बाडमेर	" " " " "	"
२०५	श्री इंगिता श्रीजी म सा	बाडमेर	" " " " "	"
२०६	श्री दीव्य प्रभाजी म सा,	डोडीलोहरा	स २०४४ वैशाख सुदी २	इन्दौर
२०७	श्री कल्पना श्रीजी म सा,	रायपुर	" " " " "	"
२०८	श्री उज्ज्वल प्रभाजी म सा,	राजनांदगाव	" " " " "	"
२०९	श्री अक्षय प्रभाजी म सा,	बडीसादडी	स २०४५ जेठ सुदी २	जावरा
२१०	श्री श्रद्धा श्रीजी म सा,	उदयपुर	" " " " "	"
२११	श्री अर्पिता श्रीजी म सा,	बम्बोरा	" " " " "	"
२१२	श्री समता श्रीजी म सा,	खडेला	" " " " "	"
२१३	श्री किरण प्रभाजी म सा,	नीमच	सं २०४५ माघ सुदी १०	मन्दसौर
२१४	श्री पुनीता श्रीजी म सा,	बाडमेर	सं २०४६ वैशाख सुदी ६	बालोतरा
२१५	श्री पूजिता श्री जी म सा,	वायतु	, " " " "	,
२१६	श्री विवेक श्रीजी म सा,	पाटोदी	" , "	,
२१७	श्री चरित्र प्रभाजी म सा,	विल्लुपुरम	सं २०४६ वैशाख सुदी ५	विल्लुपुरम
२१८	श्री [illegible] श्रीजी म सा	[illegible]	सं २०४६ वैशाख सुदी ५	[illegible]

क्र स	नाम	ग्राम	दीक्षा तिथि	दीक्षा स्थान
२१६	श्री रेखा श्रीजी म सा,	नांदगाव	स २०४६ वैशाख सुदी ६	निम्बाहेडा
२२०	श्री शोभा श्रीजी म सा,	बोल्ठाणा	" " " " "	"
२२१	श्री गरिमा श्रीजी म सा,	नादगाव	" " " " "	"
२२२	श्री स्वण प्रभाजी म सा,	उदयपुर	स २०४६ पौष सुदी ७	उदयपुर
२२३	श्री स्वर्ण रेखा श्रीजी म सा,	ब्यावर	" " " " "	"
२२४	श्री स्वण ज्योति म सा	कोटा	" " " " "	"
२२५	श्री स्वणलता जी म सा,	गगाशहर	" " " " "	"

समूची मानवता के सार्थक पर्याय

❀ श्री राजेश

पच महाव्रतो के प्रतिपालक,
जैन धर्म के गौरव !
आचार्य श्री नानेश! आपका व्यक्तित्व एक सूरज है,
जो नित्य नवीन प्रभात देता है !
एक प्रकाश पुज है,
जो सत्पथ की ओर ले जाता है,
एक जादू है,
जो सन्त्रास हर लेता है ।
एक सागर है,
जो नए रत्न देता है ।

इन सब के मध्य,
मैं आपको खोजता हू ।
आप मेरी जाति के ही नही,
बल्कि समूची मानवता के सार्थक पर्याय हैं !
मेरा प्रणाम स्वीकारें, महामुनि !
जहा आप विराजते हैं,
वहा की माटी,
उजली हो जाती है ।

—जैन बोर्डिंग, भवानीमडी

□

तपोधनी ! तुमको वंदन हो

❀ डॉ महेन्द्र भानावत

तुमने तिल-तिल तापी काया,
दागी देह, मोह और माया ।
ज्योति जगाई जल जल हलहल,
मधुरे-मधुरे धूपी छाया ॥
जिस पर साप जहर देते हैं,
तपसीजी तुम वह चंदन हो ।
तपोधनी ! तुमको वदन हो ॥१॥

तुमने परम आत्म पहचाना,
साधु सत मुनि जिन को जाना ।
कचन काया की छलनी मे,
पतझर के वसत को छाना ॥
पत को तप मे तपा-खपा कर,
तुम तपसी निखरे कुदन हो ।
तपोधनी ! तुमको वदन हो ॥२॥

भारत की आध्यात्म भूमि पर,
सत और सत ही सुर देते ।
तन-भट्टी मे मन को महका,
अन्तस के असुर हर लेते ॥
दलदल से ऊपर उठकर तुम,
पकज से निखरे स्पदन हो ।
तपोधनी ! तुमको वदन हो ॥३॥

—३४२, श्रीकृष्णपुरा, उदयपुर (राज)

□

तृतीय खण्ड

आचार्य श्री नानेश व्यक्तित्व वन्दना
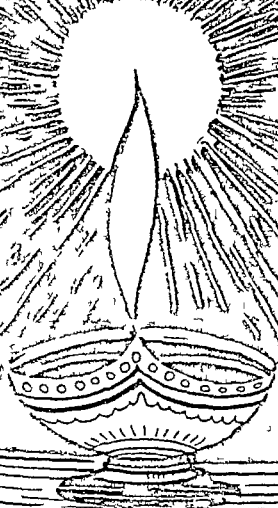
मेरी श्रद्धा के एक मात्र आधार हो तुम !

❀ सकलन—विजय मोगरा

(१)

मेरी जीवन नैया के खेवनहार हो तुम
मेरे हृदय के अनुपम हार हो तुम ।
दिन रात स्मृति रहती है तेरी,
मेरी श्रद्धा के एक मात्र आधार हो तुम ।।

(२)

मेरी साधना सदा तेरा ही अनुगमन करती रहे,
मेरी भावना सदा तेरा ही स्मरण करती रहे ।
एकमेक हो जाय अस्तित्व तुम से,
मेरी धारणा सदा तेरा ही अनुसरण करती रहे ।।

(३)

मन मेरा तेरी ही यादो में खोया रहे,
तन मेरा तेरे ही वादो मे पिरोया रहे ।
तेरे ही पथ पर बढता रहू अविरल,
हृदय मेरा तेरे ही पादो मे सोया रहे ।।

(४)

अस्तित्व की विलुप्त शक्ति को तुमने ही जगाया है,
जीवन-पथ प्रशस्त बनाकर जीना सही सिखाया है।
क्या कहू मैं तेरी गरिमा कही नहीं कुछ जाती,
शासित हो शासक बनकर शासन खूब चमकाया है।।

(५)

सुपुप्त चेतना जगाई तूने शक्ति दीप जगा करके,
प्राण फूक दिया सघ मे, तूने ऐक्य भाव अपना करके ।
सुख स्रोत भी फूट पडा है तेरे अन्तर के तल से,
चमत्कृत किया है जग को तूने समता को अपना करके ।।

(६)

गिरते हुये व्यक्ति को सहारा दिया तूने,
डूबते हुये व्यक्ति को किनारा दिया तूने ।
पालन महाव्रत का करते और करवाते हो,
भ्रमित हुये व्यक्ति को सही इशारा दिया तूने ।।

(७)

चन्द्रमा सम शीतल लग रहा है चेहरा तेरा,
पंकज के सम खिल रहा है चेहरा तेरा ।
देख तुम्हे खुश हो रहा मन मेरा,
सबको आकर्षित करता है चेहरा तेरा ॥

(८)

लौ को जलने के लिये दीपक का सहारा चाहिये,
मीन को तिरने के लिये पानी का सहारा चाहिये।
जीवन नैया को पार करने के लिये मुझको,
हे नरपुगव ! तुम्हारा सहारा चाहिये ॥

(९)

उठती हुई आहो को भरता चल,
जीवन के कष्टो को सहता चल ।
गुरु 'नाना' के सम्बल को पा,
साधना के पथ पर तू बढता चल ॥

(१०)

ज्ञानदीप जलाकर तुमने अधकार मिटाया है,
क्षमाभाव अपनाकर तुमने जीवन खूब सजाया है।
दुगम पथपर अविरल बढकर,
जनमन को तुमने समता पाठ पढ़ाया है।

(११)

रागद्वेप की जडें खोखली करने संयम अपनाया है,
समता, शुचिता अरु क्षमा को जीवन मे खूब रमाया है ।
निर्भय होकर विकट विपत्तियो की रजनी मे,
चन्द्र द्वितीया सम बढकर तुमने शासन खूब चमकाया है ॥

(१२)

अथक परिश्रम को जिसने जीवन मे अपनाया है,
चिन्तन की धारा को जिसने जीवन में बहाया है।
झुक जाता है मस्तक मेरा ऐसे ही के चरणों में,
समता के निर्झर मे जिसने अपने को नहलाया है॥

(१३)

मेरे जीवन के अमूल्य शृगार हो तुम,
मेरी कल्पनाओ के जीवन्त साकार हो तुम ।
बिखरी सरिताए मिलती सब सागर में,
मेरी अभेद सुरक्षा के प्राकार हो तुम ॥

(१४)

समता की है सच्ची आराधना तेरी,
समता ही है सच्ची साधना तेरी ।।
विश्वशान्ति के प्रतीक हो तुम,
समता ही है सच्ची विचारणा तेरी ।।

(१५)

समता का विस्तार करना है जग मे,
समता को ही आधार बनाना है जग मे ।
शान्ति की सुरभि फैलाने के लिये,
समता का ही विचार भरना है अग-जग मे ।।

(१६)

समता साधना के प्रतीक हो तुम,
निशा के जगमगाते दीप हो तुम ।
अपनी ही निर्मित राह पर चलने वाले,
इस दुनिया के आदर्श निर्भीक हो तुम ।।

(१७)

नाना दीपो को जलाने वाले हो तुम,
नाना जीवो को तिराने वाले हो तुम ।
वदामि नमसामि करता हू तुमको,
नाना दु खो को मिटाने वाले हो तुम ।।

(१८)

हजारो हजार पुरुषो के हृदय सम्राट् हो तुम,
हजारो हजार गुणो के धारी गणिराज हो तुम ।
आत्म-शान्ति-पथ दर्शाने वाले,
हजारो हजार आत्माओ के अधिराज हो तुम ।।

(१९)

आत्म-विकास के पथ पर बढते ही जा रहे तुम,
मुक्ति की ओर प्रयाण करते ही जा रहे तुम ।
समता-संयम तप से आप्लावित होकर,
सघोन्नति भी निरन्तर करते ही जा रहे हो तुम ।।

(२०)

भक्तिशील भक्तो के लिये भगवान हो तुम,
भयभीत आत्माओ के लिये सुरक्षित स्थान हो तुम ।
समतारस की सुर-सरिता म कर अवगाहन,
मुक्ति-पथ बतलाने वाले विशिष्ट विद्वान हो तुम ।।

—६५ कुशलपुर, बडा बाजार उदयपुर (राज)

दूरदर्शी आचार्य श्री नानेश

❀ श्री गणपतराज बोहरा, पीपलिया-कलां

सन् १९८५ की घटना है। उन दिनो आध्यात्मिक विभूति पडितरत्न श्री नानालाल जी म सा जावरा विराजमान थे। वे अपने गुरु शान्तक्रान्ति के दाता तत्कालीन शासनेश आचार्य-प्रवर श्री गणेशीलाल जी म सा की सेवा में सवभावेन समर्पित थे। स्व श्री गणेशाचार्य जी म सा पर उन दिनों उपाचार्य के रूप मे श्रमण सघ के काय का दायित्व भी था और पडित रत्न श्री नानालाल जी म सा अपने गुरु के कार्य-दाय की सहज पूर्ति हेतु सदैव सजग रहकर सहयोग मे तत्पर रहा करते थे। मैं उन्ही दिनो में आज से करीब ३१-३२ वर्ष पूर्व गुरुदेव के दशनो हेतु जावरा पहुचा। मैं स्पष्ट बता दू कि मैं गुरुदेव के निकट सम्पर्क मे न था और न ही मुझे ऐसी आशा थी कि गुरुदेव मुझसे कुछ अन्तर परामश कर सकते हैं किन्तु पडित रत्न श्री नानालाल जी म सा ने मुझे विश्वास मे लिया और समाज को उद्वेलित कर देने वाले पाली-काड के विषय मे मुझे पूर्ण वस्तु स्थिति अलग से समझाई। गुरुदेव के इस विश्वास से मुझे निश्चय ही अपार हर्ष भी हुआ और सघ तथा शासन के निकट आने की एक सहज भावना भी मेरे मानस मे विकसित हुई। मैं आज अनुभव करता हू कि यह गुरुदेव की दूरदर्शिता का एक प्रतीक उदाहरण है। चतुर्विध सघ के लिए उपयोगी हो सकने वाले प्रत्येक घटक की पहिचान करना और समय की कसौटी पर उसे पहचान का खरा उतरना, उनकी महान् दूरदर्शिता है।

कालान्तर में मैं शनै शनै सघ कायक्रमो मे तनिक रुचि लेने लगा और इन्दौर अधिवेशन में श्री सरदारमल जी कांकरिया आदि ने मुझे जबरदस्ती सघ अध्यक्ष चुन लिया। रायपुर मे मैंने सघ अध्यक्ष का पदभार जब वहन किया था तो मैं सवथा नया-नया सा था और आज पुन अध्यक्ष पद पर आसीन हू तो लगभग २५ वष पूर्व के उस अध्यक्षीय कायकाल और आज के सघ के बहुआयामी प्रवृत्तियो से सयुक्त विशालकाय स्वरूप की जब कभी तुलना करता हू तो मुझे पुन पुन वर्तमान शासनेश की सहज दीर्घदृष्टि के अनेकानेक उदाहरण याद आ जाते हैं। श्रद्धा से मेरा मन अभिभूत हो उठता है।

सवत् २०४० मे गुरुदेव का भावनगर मे चौमासा हुआ। इस चातुर्मास की सलाह देने मे मैं ही था और आचाय-प्रवर बडी कृपा कर परिषहपूर्ण विहार कर भावनगर चातुर्मास हेतु पधारे। सौराष्ट्र मे स्व ज्योतिधर श्री जवाहराचार्य जी के पश्चात् आप चौमासा करने पधारे, इससे वहा की धर्मप्राण जनता को कितनी अपार खुशी हुई, इसका अनुमान लगाना कठिन है। भावनगर मे बरवाला सम्प्रदाय के आचाय श्री चम्पक मुनिजी म सा के साथ आचाय श्री नानेश का

सयुक्त चातुर्मास कल्पनातीत रूप से सफल रहा । गुरुदेव का नवीन क्षेत्रो मे जाना और जन-जीवन को आकर्षित कर शुद्ध व आदश बनाना, जिनशासन के प्रद्योतन का अहर्निश प्रयास आज भी यथापूर्व जारी है और दक्षिणाचल मे सत-सतीवृन्द का विहार उसी प्रयास का एक अगीभूत साथक यत्न है ।

ऐसे दूरदर्शी, युगद्रष्टा, जिनशासन प्रद्योतक, समता विभूति, समीक्षण ध्यानयोगी आचाय-प्रवर श्री नानेश को मेरे कोटि-कोटि वन्दन । □

समता व क्षमा के देवता

❀ श्री बालमुकन्द शर्मा

मन्दसौर वर्षावास के वाद आपश्री का मगलमय पदापण छोटी सादडी हुआ । करीव २० वर्ष गुजर गये, लेकिन अभी भी प्रसग याद आता है । एक-२ दृश्य सजीव हो जाता है । सचमुच आदश महापुरुषो का सहवास प्राप्त होना पुण्यानुवन्धी पुण्य का ही सुफल है । चाहते हुए भी महापुरुषो का सुअवसर नही मिलता ।

परम पूज्य गुरुदेव एक उच्च कोटि के आदर्श सन्तरत्न हैं । आपके परम पवित्र दशनो का व वचनामृत सुनने का मझे २० वष मे कई बार सुनहरा अवसर मिला है ।

इतने उच्च कोटि के सत होते हुए भी आपका रहन–सहन सीधा–सादा है । समता व क्षमा के तो मानो आप साक्षात् देवता हैं । आपके मुख-कमल पर कभी क्रोध की रेखा परिलक्षित नही हुई ।

आचार्य श्री नानेश की आकृति मे परम शाति व समता-सरलता टपकती है । जैन आचार्य होते हुए भी अन्य धर्मो का आपका गहन अध्ययन है । आप गच्छवाद व साम्प्रदायिकता के सकुचित दायरे से परे हैं ।

आप ज्ञान, दशन चारित्र की सम्यग् प्रकार से आराधना करते हैं । आपकी परम साधना है ध्यान, चिन्तन, मनन, प्रवचन, पठन-पाठन, समाधान, लेखन आदि ।

सद्गुरु मे जो दिव्य गुण होने चाहिए वे सब आपमे सदा ही देखे गये हैं, यथा—संयम, त्याग, चारित्र-बल, समता, व्यापक, गहन, आत्म-चितन निरन्तर प्रगति करना, आगे बढते रहना, अपनी साधना मे प्रमाद करना आदि ।

आप जैसे उच्च–कोटि के सन्त महात्मा, अणगार मैंने नही देखे । आपश्री का सानी सत–साधु दृष्टिगोचर नही हुआ । कितना अदभुत प्रेरणाप्रद जीवन है परम पूज्य गुरुदेव का । आचाय-प्रवर दीर्घायु हो, युगो–२ तक प्रेरणा देते रहे, यही हार्दिक अभिलाषा है ।

—खिडकी दरवाजा, छोटी सादडी–३१२६०४

"यादो की परतो से"

❀ पीरदान पारख
मत्री—श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ

कई दिनो से सोच रहा था कुछ लिखू पर क्या लिखू ? लिखना भी ऐसे महापुरुष के सयमी जीवन तथा उनके सान्निध्य मे हुए अपने अनुभवो से, जिनकी महानता का कोई ओर-छोर ही नही । फिर भी साहस करके लिखने बैठा । आखें बन्द करके याद करने लगा कहा से शुरू करू । धीरे धीरे चिन्तन सन् १९८२ के अहमदावाद चातुर्मास के आसपास घूमने लगा ।

उदयपुर चातुर्मास समाप्त होने के पश्चात् गुर्जर धरा की ओर आचाय श्री नानेश के चरण वढ रहे थे । लम्बे अ तराल बाद हुक्म शासन के पट्टधर के कदम इस धरती की तरफ बढ रहे थे । होली चातुर्मास होना था, साथ ही १५ दीक्षाओ का प्रसग था । अनेक व्यवस्थाए होनी थी, करनी थी । अहमदावाद जैसी जैन नगरी मे यह प्रसग होने जा रहा था, एक चुनौती जैसी लग रही थी। दिन रात एक ही चिन्तन रहता था कसे इस प्रसग को यादगार बनाया जाय, कसे यह सब हो सकेगा ? सारी गुजराती स्थानकवासी जैन समाज इस प्रसग का उत्सुकता पूवक इन्तजार कर रहा था । विभिन्न सप्रदाय व सघ सभी तरह सहयोग हेतु तत्पर थे पर दो मुख्य समस्यायें सामने थी—होली चातुर्मास पर शासनेश का या विराजना कहा हो तथा इतने बाहर से पधारने वाले आगन्तुक महानुभावों की आवासीय व्यवस्था किस प्रकार हो । काफी विचार विमर्श राजस्थान स्थानकवासी जन सघ अहमदावाद के साथियो मे चल रहा था । सभी मे एक उत्साह था कि इस कार्य को जसे भी हो सफल बनाना है ।

काफी चिन्तन के बाद एक भवन पर विचार सभी का ठहरा वह था नवनिर्मित लाजपतराय हॉस्पीटल भवन । कई महीनो से प्रस्तुत भवन बनकर तैयार था पर कुछ आर्थिक कारण, कुछ आपसी विचार भेद काय को आगे बढने नही दे रहे थे ।

सभी साथियो ने मिलकर प्रस्तुत भवन के ट्रस्टीगणो से निवेदन किया पर सीधा उत्तर मिला कि आज तक किसी धार्मिक प्रसग पर इस भवन को दिया नहीं गया अत कसे सभव है । काफी निवेदन किया पर स्वीकृति मिल नही रही थी । अचानक एक विचार सूझा तथा उन्ह निवेदन किया गया कि आप प्रयोग के तौर पर हो सही एक बार इस भवन का धार्मिक उपयोग होने दें । धम के प्रभाव से सब शुभ होगा शायद यह आपका अधूरा काय जो विचार भेद से रुका है शान्त होकर सुलट जायेगा । तब चिन्तन का आश्वासन मिला ।

इधर शासनेश नजदीक पधार रहे थे,गुर्जर सीमा मे प्रवेश हो चुका था । अनायास भवन के ट्रस्टीगण की तरफ से स्वीकृति की सूचना प्राप्त हुई । सभी साथियो के मन मे हर्ष की लहर दौड गई ।

एक बात का समाधान तो हो गया पर आवासीय व्यवस्था का प्रश्न अभी वैसे ही खडा था । जानकारी मिल चुकी थी कि पास मे ही पुलिस कर्मियो वास्ते नये क्वाटर्स बने हैं जिनका कब्जा अभी सोंपा जाना है तथा सख्या भी काफी थी सारा कार्य सुगमता से सलट सकता था । पुलिस कमिश्नर साहब से निवेदन किया गया पर पता चला कि अभी तक ठेकेदार ने कब्जा नही दिया है अत बात उनके अधिकार मे नही है । बिल्डिग ठेकेदार से वार्तालाप करने पर पहले इनकारी मिली पर बाद मे पता चला कि यदि कमिश्नर सा थोडा आग्रह करें तो वह शायद राजी हो जावे । काम कठिन था सभी सोच रहे थे कि कैसे क्या किया जावे कुछ सूझ नही रहा था । अचानक कमिश्नर कचहरी से सूचना मिलने वास्ते आई । वहा जाने पर तत्काल अर्जी देने की राय मिली । उसी अनुसार अर्जी पेश की गई जिसकी स्वीकृति भी आश्चयजनक शीघ्रता से प्राप्त हुई ।

सभी अत्यन्त प्रफुल्लित थे सारा काय निर्विघ्न बढता जा रहा था । यथा समय होली चातुर्मास तथा १५ दीक्षाओ का यादगार प्रसग जो अहमदाबाद के इतिहास मे अनूठा था, सानन्द सम्पन्न हुआ । सभी जगह हर्ष व्याप्त था, सभी साथी सतुष्ट थे । बाहर से पधारे हुए मेहमान प्रसन्न थे । स्थानीय स्थानकवासी समाज मे भी कुछ प्रशसात्मक बाते सुनने को मिल रही थी । इन सभी बातो के होते हुए भी मन मे एक अदृश्य भय समाया हुआ था कि क्या वास्तव मे यह सभी इतना अच्छा हुआ ? क्या हम कसौटी पर खरे उतरे ? इसका निर्णय अभी होना था ।

आगामी चातुर्मास की घोषणा बाकी थी एक ही चिन्तन था क्या हमारी वतमान की सफलता मे एक चाद और लगेगा ? अथवा चातुर्मास कही और घोषित हो जावेगा ?

चातुर्मास घोषणा का दिन था । व्याख्यान पडाल खचाखच भरा था । अनेक स्थानो की विनतिया प्रस्तुत थी । आचाय श्री की अमृतवाणी अबाध गति से प्रसारित हो रही थी । अन्य-अन्य चातुर्मास घोषित हो रहे थे । अब बारी थी स्वय के चातुर्मास घोषित होने की । एक मिनट का सन्नाटा दूसरे मिनट सारा पण्डाल जयघोष से गू ज रहा था । अहमदाबाद की सफलता मे एक चाद और लगने पर ।

आज भी वही दृश्य सामने है । सोच रहा हू कि क्या बिना ऐसे उत्तम सयमी महापुरुष के उत्तम एव त्यागमय जीवन के प्रभाव के यह सब सभावित था ?

—जयपुर (राज)

विलक्षण व्यक्तित्व

❀ श्री गुमानमल चोरड़िया

परम पूज्य चारित्र चूडामणि, समतादर्शन प्रणेता, जिन शासन प्रद्योतक, समीक्षण ध्यान योगी, जिन नही पर जिन सरीखे, प्रात स्मरणीय, अखड वाल-ब्रह्मचारी १००८ आचार्य श्री नानालालजी म सा जैन समाज के विरल आचार्यों मे से एक हैं। आचाय के लिए जो छत्तीस गुण होने चाहिये, वे आप मे सब परिपूण हैं।

बाल्यकाल मे आपको धम के प्रति कोई विशेष रुचि नही थी, लेकिन जब से आप सतो के सम्पक मे आये, तभी से आपकी प्रवृत्ति मे काफी परिवतन आया एव आपकी जिज्ञासा चिन्तनशील बनी, तत्त्वो के प्रति आकर्षित हुई। आप शान्त प्रकृति के एव गभीर है। दीक्षा लेने के पश्चात् आप सामान्य सतो की तरह ज्ञानाभ्यास करते हुए भी गभीरता एव सेवा भावना से ओत प्रोत थे। आपने स्व आचाय श्री गणेशीलालजी म सा की जिस समर्पित भाव से सेवा की, उसी का आज यह प्रतिफल है कि आप एक महान् आचाय के रूप म हमारे समक्ष विद्यमान हैं। सम्यक् ज्ञान, दशन, चारित्र का विशुद्ध पालन करना व करवाना आपको शुरू से विरासत मे ही मिला है।

आप मे विशिष्ट ज्ञान हो ऐसा सहज ही प्रतीत होता है। उदयपुर में जब आप स्व आचाय श्री गणेशीलालजी म सा की, जिन्हे कैंसर जसी भयकर व्याधि थी, सेवा मे थे, डाक्टरो ने यह कहा कि अब आचाय श्री का समय नजदीक है, आप अपना अवसर देख सकते हैं, तब आपने कहा कि मुझे ऐसी बात नजर नही आती। उसके पश्चात् आचाय श्री काफी महीनो तक विद्यमान रहे। सेवा करते करते आपको यह ज्ञान हुआ कि अब आचार्य श्री अधिक समय नहीं निकालने वाले हैं, तब आपने डॉ साहब से पूछा कि आपकी क्या राय है। डॉ साहब ने एक ही जवाब दिया कि आपके ज्ञान के आगे हमारी डाक्टरी चल नहीं पाती है। आपने समय पहचान कर आचाय श्री से अज किया एव तदनुरूप स्व आचार्य श्री को सलेखना-सथारा कराया जो अधिक समय नही चला। ऐसा आपमे विशिष्ट ज्ञान एव दृढ आत्म-विश्वास दृष्टिगोचर होता है।

आप पूर्ण अतिशयधारी हैं। जब आपको आचाय पद प्रदान किया गया, तब आपके पास अल्प मात्रा मे शिष्य समुदाय था, उसमे भी अधिकतर स्थविर ही थे। यदि आपका अतिशय नही होता तो शायद इस सघ की जाहोजलाली जो आज दृष्टिगोचर हो रही है, नहीं होती। आपके हाथ से लगभग २६३ भागवती दीक्षाए हो चुकी है, जो अपने आप मे ही एक विशिष्टता लिए हुए है। आपके

पास रतलाम मे २५ दीक्षाओ का एक साथ प्रसग बना, जो इतिहास के स्वर्णाक्षरो मे अ कित करने योग्य है, कारण लोकाशाह के पश्चात् आज तक इस स्थानकवासी समाज मे एक आचाय के पास इतनी दीक्षाए सम्पन्न नहीं हुई ।

आपकी प्रेरणाए अप्रत्यक्ष ही होती हैं । जो आपके प्रवचन सुनते हैं या आपके चरित्र से प्रभावित होते हैं, वे मुमुक्षु आत्माए आपके पास प्रवजित हो जाती है । प्रत्यक्ष मे आप किसी को विशेष प्रेरणा नही देते, लेकिन आपका सयम, आपका जीवन सबके लिए विशेष प्रेरणास्पद है । आपने भगवान का एक वाक्य हृदयगम कर रखा है "अहा सुह देवाणुप्पिया' अत हे देवताओ के प्रिय, जैसा सुख उपजे वैसा ही करो । पर धम करने मे विलम्ब मत करो ।

आपने स्व दादागुरु आचाय श्री जवाहरलालजी म सा की भावना लक्ष्य में रखकर अछूतोद्धार का काय किया । जब आप रतलाम का प्रथम चातुर्मास पूण कर आस-पास के ग्रामो में विचर रहे थे, तब आपके पास बलाई जाति के लोग आये और उन्होने अपनी व्यथा व्यक्त की एव कहा कि हम धमपरिवर्तन कर लें, इसाई बन जाये या मुसलमान बन जावें या आत्महत्या कर लें, कारण हमे कोई गले नही लगाता, पशुओ से भी बदतर मारी हालत है । तब आचाय प्रवर ने एक बात फरमाई कि आप व्यसन बुराइयो, मदिरा, मास का सेवन बन्द कर दें, समाज आपको गले लगा लेगा। तदनुरूप उन लोगो ने आपकी बात स्वीकार की, बुराइयो का त्याग किया और धमपाल बने । आपने आहार-पानी के परिषह की परवाह किये बिना उधर के ग्रामो मे विचरण किया, जिसका प्रतिफल यह है कि आज लाखों लोग व्यसन-मुक्त हुए हैं, एव हजारो लोग धमपाल बने हैं । यह एक ऐतिहासिक काय हुआ है ।

साहित्य के लिए आपसे निवेदन किया कि साहित्य सघ का दपण होता है, इसके बारे म आप कुछ चिन्तन करें ताकि संघ से हम साहित्य प्रकाशित कर सकें । तदनुरूप आपने बडी कृपा करके जो पाण्डुलिपिया सघ को परठी, वह साहित्य सघ द्वारा प्रकाशित किया गया और हमे लिखते हुए परम सतोष है कि जो साहित्य प्रकाशित हुआ है, एवं होने वाला है, वह अपने आपमे विशिष्टता रखता है ।

सयम-साधना के लिए समता एव ध्यान दोनो ही आवश्यक हैं, और दोनो ही दिशाओ म आचाय प्रवर ने पूण शक्ति लगाकर जो काय किया, वह अपने आपमे एक उपलब्धि प्रतीत होती है । समता के बारे मे आपका साहित्य पठन करने से पाठक समता के आनद मे रस लेने लगता है, आप्लावित हो जाता है । समीक्षण ध्यान के बारे मे आपने जो कुछ लिखा वह भी बहुत ही अनुभवगम्य पाण्डित्य पूर्ण है ।

कषाय-समीक्षण के बारे मे जो विशद विवेचन आपने किया है, उसमे

से क्रोध, मान माया लोभ समीक्षण पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इन सबमें आचार्य प्रवर ने आत्मानुभूति प्रवण सामग्री प्रदान की है।

आप रात्रि मे अल्प समय ही विश्राम करते हैं एव करीब २३ बजे उठकर ध्यान साधना मे मग्न हो जाते हैं। भोपालगढ मे आपका और आचार्य श्री हस्तीमलजी म सा का प्रेम सबध स्थापित हुआ। उस सदभ में हम आपके पास कुचेरा रात्रि ६ बजे पहुचे। कुछ विचार विमर्श हुआ, फिर हमने अर्ज किया कि हमे सवेरे सूर्योदय तक आचार्य श्री हस्तीमलजी म सा के पास जैतारण पहुचना है। ४ बजे आपके दर्शन कर आपके विचार सुनकर उन्हें अर्ज करना है। आपने फरमाया कि मैं तो करीब २-३ बजे उठ जाता हू, आप अपना अवसर देख सकते हैं, ऐसे महान् आचार्य की साधना भी कितनी जर्बदस्त है, इसका हमें तभी आभास हुआ।

आप निरभिमानी एव पूर्ण सेवाभावी हैं। जयपुर चातुर्मास में श्री रवीन्द्रमुनिजी म सा की दीक्षा होने के पश्चात् (बडी दीक्षा के पूर्व) दूसरे दिन रात्रि में, तबियत विशेष खराब हो गई थी, उन्हें वमन काफी हुआ। उस वक्त आपने स्वय वमन मिट्टी से साफ किया। आपने सन्तों की विनती पर ध्यान नहीं दिया, सतो पर यह काय नहीं छोडा, स्वय ने यह सेवा काय किया। इससे आपकी निरभिमानता एव सेवा-भावना अद्वितीय दृष्टिगोचर होती है।

ऐसे आचार्य प्रवर के दीक्षा पर्याय के ५० वर्ष पूर्ण हो रहे हैं। ऐसे आचार्य को पाकर आज सघ निहाल हुआ है। वीर-प्रभु से यही प्रार्थना है कि आपके सान्निध्य मे चतुर्विध सघ ज्ञान, दशन, चारित्र मे अभिवृद्धि करता रहे आपका वरद हस्त रहे एव सान्निध्य हमेशा प्राप्त होता रहे। आप दीर्घायु हो, यशस्वी हो। ऐसे आचार्य प्रवर को हमारा शत-शत वदन।

—भूतपूर्व अध्यक्ष, श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ
सोथली वालों का रास्ता, जयपुर-३

□

नानेश वाणी

❀ सकलन—श्री धर्मेशमुनिजी

० पांच महाव्रतों का पालन करने वाला चाहे किसी भी सम्प्रदाय का हो—चाहे किसी स्थान मे हो, उसके साथ मिलने मे एक सच्चा साधु आनन्द का ही अनुभव करता है।

० ईश्वर के समग्र स्वरूप का जब प्रार्थना के माध्यम से चिन्तन किया जाता है तो उस समय मानसिक धरातल पर पवित्र सस्कारो का उदय होता है तथा अभ्यास के साथ ये पवित्र सस्कार समुज्ज्वल जीवन का निर्माण करते हैं।

आचार्य श्री नानेश : एक सिद्धांतनिष्ठ व्यक्तित्व

❀ श्री पी सी चौपड़ा

समस्त साधुमार्गी जैन सघ का परम सौभाग्य है कि हमारे महान अनुशास्ता, शासन नायक, समता विभूति, जिनशासन प्रद्योतक समीक्षण ध्यानयोगी, महान शासन प्रभावक आचाय-प्रवर श्री नानेश अपने सयमो जीवन के ५० वर्ष पूण करने जा रहे हैं । इस अर्धशताब्दी के पावन प्रसग पर मैं पूज्य श्री के पावन चरणो मे अपनी विनम्र अनुवन्दना समर्पित करते हुए गौरव की अनुभूति करता हू ।

पूज्य आचाय-प्रवर का जीवन विराट और विशाल है । उसे शब्दो की परिधि में बाधना सभव नही है । उनके अनेकानेक गुण-रत्नो मे से किसका बखान करू और किसका न करू, ऐसी असमजस वाली स्थिति मेरे सामने है । फिर भी उनके अनेक गुण मण्डित जीवन के बहु आयामी पहलुओ मे से जिस गुण ने मुझे सर्वाधिक प्रभावित किया है वह उनकी सिद्धा त निष्ठता । आचाय-प्रवर की सिद्धान्तो के प्रति गहरी निष्ठा है कि वे किसी भी स्थिति मे, चाहे कितने दबावो के होने पर भी सिद्धा तो की कीमत पर कोई समझौता नही करते । अपनी इस दृढ सिद्धा त निष्ठता के कारण वे आज के युग के सुविधावादी नवीनता के अन्ध प्रवाह मे न बहते हुए श्रमण-सस्कृत की मूल परम्परा को सुरक्षित रखने के लिए सदव प्रयत्नशील रहते हैं । मैं जब श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ का अध्यक्ष था तब मुझे विशेप रूप से आचाय-प्रवर के इस महान् सिद्धान्त निष्ठता के सद्-गुण का परिचय और प्रमाण मिला । समस्त जन सघ की एकता, स्थानकवासी समाज का सगठन, सवत्सरी की एकरूपता आदि अनेक प्रश्न समय-समय पर उठते रहे और इन प्रश्नो को लेकर सब सम्प्रदायो के अनेक प्रतिष्ठित प्रमुख नेतागण आचाय श्री के सम्पक मे आते रहे और सघ एकता आदि के सम्ब ध मे चर्चाए करते रहे । आज का युग गुण-अवगुण की समीक्षा किये बिना किसी भी कीमत पर एकता और सगठन का हिमायती है और इसके लिए वह सिद्धा तो को एक ओर रखने को भी तैयार हो जाता है । ऐसे माहोल मे भी आचाय-प्रवर दृढ़ता के साथ कहते हैं कि मैं भी एकता और सगठन का पक्षधर हू किन्तु वह सिद्धान्तो के अनुसार होना चाहिये । सिद्धान्तो की अवहेलना करके की जाने वाली एकता कदापि सघ के हित मे नही हो सकती । अनेक बार नेतागण आचाय श्री की इस सिद्धान्त निष्ठना को सगठन मे बाधक समझकर आचाय-प्रवर की आलोचना भी करते हैं किन्तु आचाय श्री इससे तनिक भी विचलित नही होते ।

आचार्य-प्रवर की सिद्धान्त निष्ठता के कारण चतुर्विध सघ में अनुशासन का वातावरण है और साधु-साध्वी समुदाय मे समाचारी के पालन के प्रति जागरूकता है । यही कारण है कि श्री साधुमार्गी सघ पूज्य आचार्य प्रवर के नेतृत्व मे उतरोत्तर प्रगति कर रहा है ।

पूज्य आचार्य श्री अनुशासन के मामले मे जितने सुदृढ और कठोर हैं उतने ही अपने साधु-साध्वी समुदाय के प्रति सवेदनशील भी हैं । एक ओर वे अनुशासन मे वज्र से भी कठोर है जिसका अनुभव मैंने रतलाम चातुर्मास म निकट मे किया । श्री पकज मुनि और श्री अशोक मुनि का निष्कासन प्रतीक है । दूसरी ओर आचार्य-प्रवर साधु-साध्वी समुदाय के सयम पालन में सहायक होते हुए उनकी समुचित देखभाल के प्रति फूल से भी कोमल हैं । ऐसी एक घटना मेरी स्मृति मे उभर रही है—

रतलाम मे २५ दीक्षाओ का ऐतिहासिक समारोह सम्पन्न हो चुका था। आचार्य श्री छोटे सन्त श्री चन्द्रेश मुनि को रतलाम मे विराजित सतों क पास छोडकर विहार कर धराड ग्राम पहुच गये थे । इस पर श्री चन्द्रेश मुनि को अप्रसन्नता हुई । वे आचार्य श्री के साथ ही रहना चाहते थे । थोडे समय पश्चात हम आचार्य श्री के दर्शनार्थ धराड गये तब आचार्य श्री ने सतो के सम्बन्ध में पूछा । हमने कहा कि और तो सब ठीक है परन्तु श्री चन्द्रेश मुनि के भी आखों मे पानी नजर आया । इस पर आचार्य श्री ने तुरन्त सता को भेजकर श्री चन्द्रेश मुनि को अपने पास बुला लिया । घटना साधारण-सी है परन्तु इससे यह तो साबित होता है कि आचार्य-प्रवर अपने अधीनस्थ सतो और सतियो का कितना ध्यान रखते हैं । वे वृद्ध एव ग्लान साधु-साध्वियो की सुव्यवस्थित सेवा सयोजना के प्रतीक हैं । रूग्ण-सता की सेवा के लिए उनमे जीवन्त तत्परता है ।

अन्त मे, मैं आचार्य-प्रवर के ५० वर्ष के सुदीर्घ सयमी जीवन की भूरि भूरि प्रशसा करता हू और कामना करता हू कि आचार्य-प्रवर चिरकाल तक जिन शासन की सेवा करते रहे और उनकी छत्र छाया मे हमारा संघ दिन दूना, रात चौगुना समृद्ध और सुदृढ बनता रहे ।

पूर्व अध्यक्ष—श्री अ भा साधुमार्गी जैन संघ
डालू मोदी बाजार, रतलाम (म प्र) ४५७००१

ज्ञान, दर्शन और चारित्र के सगम

❀ श्री जुगराज सेठिया
पूव अध्यक्ष श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ

प्रात स्मरणीय पूजनीय परम श्रद्धेय आचाय श्री का मैं जीवन-पयन्त कृतज्ञ रहूगा कि उन्होने मुझे धर्मानुरागी बनाया । उनके सम्पक मे आने पर मुझे लगा कि ये ज्ञान, दशन और चारित्र के सगम की प्रतिमूर्ति है। इसकी एक झलक मुझ उस समय मिली, जब आपको उदयपुर मे युवाचार्य पद का गुरुतम भार सौंपा गया । आप उस महान् पद को ग्रहण करने के लिये अनिच्छुक थे, मगर सघ के वरिष्ठ श्रावको ने सवसम्मति से आप पर यह उत्तरदायित्व ग्रहण करने के लिये दबाव डाला, तब कही जाकर आपने स्वीकृति दी । सारे सम्प्रदाय मे एक उल्लास की लहर दौड गई कि शासन को एक योग्यतम नायक मे सुशोभित करने का उनका प्रयास सफल हुवा । आज आपकी शिष्य मण्डली मे शास्त्रीय ज्ञान के प्रकाण्ड सन्त एव महासतिया अपने प्रवचनो मे शास्त्रीय गूढ रहस्या मे जनसाधारण को अवगत कराते हैं तो श्रोताओ को एक अपूव उपलब्धि प्राप्त होती है और अपने जीवन मे वीर प्रभु का उपदेश उतारने की प्रेरणा मिलती है ।

आचाय श्री एक सम्प्रदाय विशेष के आचाय हैं, मगर उनका चिन्तन, मनन सम्प्रदाय तक ही सीमित नही, मानवतावादी है । सकीर्णता के दायरे मे नही, विश्वव्यापी है । सयम की मर्यादा के अन्दर समाज मे व्याप्त कुरीतियो के विरुद्ध एक समतावादी समाज की रचना, असमानता को हटाना, आपके प्रवचनो का सार होता है । आपकी विशेषता यह है कि आत्म चिन्तन और ध्यान को अपने जीवन मे विशेष स्थान दिया और नियमित रूप से आत्म-ध्यान को अपनाया । आपका पठन-पाठन भी अबाध है । क्योकि आप अपने शिष्य समुदाय को स्वय शास्त्रीय वाचना देते हैं ।

—रानी बाजार, बीकानेर

卐

विचार-साकार

❀ श्री सरदारमल कांकरिया

आज से करीब ३२ वर्ष पूर्व मेरे गाव गोगोलाव में स्व आचार्य श्री गणेशीलाल जी म सा का चातुर्मास था । उस समय श्रमण सघ बना ही था और आचार्य श्री गणेशीलाल जी म सा श्रमणसघ के उपाचार्य पद पर सुशोभित थे और श्रमणसघ के मत्री पडितरत्न श्री मदनलाल जी म सा थे । प र श्री मदनलाल जी म सा ने विशेष कारण वश मत्री पद से इस्तीफा दे दिया था और फलस्वरूप श्रमणसघ के सारे कागजात उपाचार्य श्री जी की सेवामे आने लगे । वर्त्तमान शासनेश उस समय पत्र व्यवहार का कार्य सभाले हुए थे । स्वाभाविक रूप से उपाचार्य श्री जी की ओर से पत्राचार का जिम्मा मेरे ऊपर आ गया ।

मैंने पत्राचार के उन अन्तरग क्षणो में पडित रत्न श्री नानालाल जी म सा को निकट से देखा और पाया कि आप शात स्वभावी, दृढ निश्चयी और लगन के पक्के थे । जो गुण आपकी उस युवावस्था मे मैंने आपमे देखे, वे गुण उत्तरोत्तर बढते ही चले गए । आपकी अतुलनीय ग्रहणशीलता ने आपको गुणों का सागर बना दिया ।

मैंने पत्राक्ष से देखा कि श्रमण सघ के अनेकानेक उलझे हुए मामलों मे चाहे वह प्रसिद्ध पाली काड हो या अन्य कोई उलझन, गुरुदेव सदैव शात चित्त रहकर अपनी राय उपाचार्य श्री जी की सेवा मे निवेदन करते थे । निर्णय क उन क्षणो मे वर्तमान आचार्य श्री जी ने समाज के वातावरण मे ढोंगी साधुओं के जीवन को देखा और लगता है मन ही मन शुद्ध श्रमण आचार की गाठ बाध ली । आज के शासनेश श्री नानेश ने अपना वह विचार–साकार किया । पहले स्वय अपने जीवन मे शुद्धाचार को साकार किया और तदनन्तर चतुर्विध सघ मे शुद्धाचार की प्रस्थापना के महनीय कार्य का शुभारम्भ किया ।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि वर्त्तमान आचार्य श्री जी यदि शुद्ध श्रमण सस्कृति की मशाल नही जलाते तो सभव है आज हमे एक अलग ही प्रकार की श्रमणा की स्थिति मिलती । इस शुद्ध सस्कृति की रक्षा का सारा श्रेय आचार्य श्री गणेशीलाल जी म सा एव वर्त्तमान आचार्य श्री जी को है । आपकी क्रिया और आचरण में कठोरता है किन्तु मन मे कोमलता है । आप निर्लिप्त और स्थितप्रज्ञ हैं ।

मैंने विगत ३२ वर्षों मे आचार्य प्रवर को बहुत निकट से देखा है, उन्होंने कभी श्रावक सघ की व्यवस्था मे दखलदाजी नहीं की । कभी पूछा तक नहीं कि किसे अध्यक्ष बनाएगे या मत्री ? अपनी साधना मे मस्त रहने वाले महान् आगम पुरुष की दीक्षा की इस अर्धशताब्दी के अवसर पर मेरा शत-शत वदन अभिनदन और शुभकामना कि आप शतायु होकर धर्म संघ की गौरव पताका फलाते रहें और उसके आदर्शों की रक्षा करते रहें ।

२ ए मर्चीस पार्क, कलकत्ता

त्याग-वैराग्य की पारसमणि-आचार्य श्री नानेश

❀ भवरलाल कोठारी

परम पूज्य आचाय श्री नानालालजी महाराज सा की कपासन मे हुई दीक्षा के समय मैं लगभग छह वप का एक वालक वैरागी था। दीक्षा पूव के सभी कायक्रमो मे निरतर उनके साथ रहा। उनके चेहरे पर कितना अपूव तेज, कितना ओज उस समय था, मुझे आज भी स्मरण है। वैराग्य की वह उत्कृष्टतम स्थिति थी। अप्रमत्त सयमी के सातवें गुण स्थान मे जैसी श्रेष्ठतम मनो दशा रहती है ठीक वैसी ही भाव-धारा उस समय उनकी थी। मेरी पूज्या माताजी की भी गृह त्याग कर उनके साथ ही सयमी जीवन मे प्रवृष्ट होने की अत्यन्त तीव्र भावना थी पर मेरी अल्पवयता के कारण उन्हे उस समय पारिवारिकजनों से आज्ञा नहीं मिली थी। होनहार भावी आचाय-प्रवर की दीक्षा मे उनका आत्यन्तिव व आन्तरिक सहयोग था। उन्हीं की प्रेरणा से मुझे सब समय पूज्य श्री के निकट रहने का तत्र सौभाग्य प्राप्त था। सयम की तेजस्विता से कातिमान दीक्षा पूव के उनके मुख मडल की छवि मेरे मानस पर आज भी अकित है। वही कातियुक्त मुखाकृति और अधिक तजस्विता के साथ विगत ५० वर्षों मे सदा सवदा मैं देखता रहा हू। वही उत्कृष्टता की अखड भाव धारा। तीव्रता से तीव्रतर व तीव्रतम की स्थिति तक पहुचने वाली ऐसी उत्कृष्ट सयम यात्रा ऐसे महान् व विरल युग पुरुषो को ही प्राप्त हो सकती है।

भगवान महावीर ने मुक्तता के आभ्यतर आरोहण क्रम मे विनय, वैय्यावच्च (सेवा), स्वाध्याय, ध्यान एव कायोत्सर्ग की उत्तरोत्तर उच्च स्थिति प्राप्त करने की शृ खला का निरुपण किया है। पूज्य आचाय प्रवर की सयम साधना यात्रा उसी क्रम से निरन्तर ऊर्ध्वारोहण की ओर गतिशील रही है। अपने परम श्रद्धेय गुरु स्व गणेशाचार्य की शारीरिक अस्वस्थता की लबी अवधि मे आपने जिस विनम्रता, एकाग्रता, तन्मयता और समपण भाव से अहर्निश सेवा की है वह शास्त्रोक्त वैय्यावच्च का एक जीवन्त एव अप्रतिम उदाहरण है। गुरु सेवा मे वे उस समय इतने तल्लीन व एकाकार रहते थे कि उन्हे वंदना व सबोधन करने वालो को बहुधा निराश होना पडता था। सेवाभाव की वह उत्कृष्टता आज भी आचाय श्री मे उसी प्रकार विद्यमान है। छोटे से छोटे सत की भी देखभाल करना उनका सहज स्वभाव है। वे दया और करुणा की मूर्ति हैं। सभी पीडित सतप्त जनो के लिए उनके अन्तर से मगल-भावनाओ का निर्झर सदा झरता रहता है।

आचार्य श्री प्रारम्भ से ही अन्तर्मुखी रहे हैं। विनय और वय्यावृत्त्य के साथ स्वाध्याय और ध्यान मे अविचल स्थिति उनकी सहज साधना है। समता दशन और समीक्षण ध्यान उसी साधना की फलश्रुति है। आचाय पद पर आसीन होते ही रतलाम के प्रथम चातुर्मास मे उन्होने समता दर्शन की रूप रेखा प्रस्तुत कर दी। एक जिज्ञासु के "किं जीवनम्" प्रश्न के अपने सूत्रात्मक उत्तर "सम्यक निर्णायकम् समतामय च यत् तद् जीवनम्" की व्याख्या मे जयपुर चतुर्मास के चार माह के नवसमाज सृजनकारी प्रवचनो की अजस्र-धारा प्रवाहित की। आचाराग जैसे गहन आगम ग्रथो के गूढ सूत्रो की अन्तरानुभूति के आधार पर जीवन से जुडी हुई गहरी सटीक व्याख्याए करके आपने अन्तर साधना की अनेक गुत्थियों को सुलझाया। आज की उलझन भरी वैयक्तिक राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के सम्यक् समाधान हेतु विचार मथन करके समता को एक बीज मत्र के रूप में प्रस्तुत किया। सामान्य जन को विकार मुक्त करने के लिए क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायो का द्रष्टाभाव से मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर आपने समीक्षण समभाव पूवक अन्तरावलोकन का अभिनव दिशा निर्देश दिया। जीवन उत्थान के साथ समता युक्त नव समाज रचना के लिए "समता दशन और व्यवहार" व 'कषाय समीक्षण" आदि आचाय श्री के मौलिक ग्रथ इस दृष्टि से इस युग की महान् युगान्तकारी रचनाए मानी जावेंगी।

समतादर्शी समीक्षण ध्यान-योगी आचार्य श्री का उद्दाम साधनायुक्त व्यक्तित्व त्याग और वैराग्य की पारसमणि के समान है। जो भी निकट सपर्क मे आया प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। व्यसनयुक्त व्यक्ति व्यसनमुक्त बन गये। इस युग की एक महान क्राति घटित हुई। रतलाम, जावरा, मदसौर, मक्सी आदि मालवा के सैकडो गावो के हजारा बलाई जाति के परिवारों ने आपके उपदेशो से प्रभावित होकर मास-मदिरा आदि दुर्व्यसनो का त्याग करके धर्मपाल समाज के रूप में एक नए समाज की बुनियाद रखी। पिछडे वर्गों को ऊपर उठाने का यह उत्कृष्ट राष्ट्रीय काय हमारे समय की एक ऐतिहासिक युग निर्माणकारी घटना है।

आधुनिकता के व्यामोह, व्यसन एव फैशन के चगुल मे फसती हुई आज की युवा पीढी को भी आचाय श्री ने कम प्रभावित नही किया है। यह चमत्कार ही है कि भोग-विलास और राग-रग के आकषक माहौल मे अपनी अप्रतिम साधना के बल से २६ वष की आचार्य पद की अवधि मे २५० से अधिक आधुनिक युवक युवतियों को आपने वीतरागता के कठोर सयमी माग पर आरूढ करके भागवती दीक्षाए प्रदान की हैं। जीवन रूपान्तरण का ऐसा प्रभावी उदाहरण भौतिकता की इस चकाचौंध मे अन्यत्र मिलना दुष्कर है।

ऐसे तपोधनी आचार्य श्रीजी के चरणारविंदो मे दीक्षा अर्धशताब्दी वष के पावन प्रसग पर मेरा विनययुक्त वदन। शत शत अभिनन्दन!

जीवन मे परिवर्त्तन

❀ दीपचन्द भूरा
पूर्व-अध्यक्ष–श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ

समस्त प्राणियो मे मानव जीवन को श्रेष्ठ माना गया है। प्रेम, भलाई और सेवा ही जीवन का ध्येय है और अहिंसा, परोपकार व सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया की भावना मे ही विश्व का कल्याण सम्भव है। सचित पुण्य के प्रताप से अच्छे कर्म किए जाते हैं तथा सुफल की प्राप्ति होती है। विरले महापुरुष ही इस धरती पर विश्व कल्याण की भावना का सदेश प्रचारित करने अपनी तेजोमय आभा के साथ अवतरित होते हैं। आज विश्व मे यत्र-तत्र हिंसा, आतकवाद और नृशस कृत्यो का नगा नाच हो रहा है। दुनिया बारूद के ढेर पर बैठी है। कुटिलता, घृणा, धोखाधडी अविश्वास, आडम्बर, विलासिता और चारो तरफ-अनैतिक आचरण का बोलबाला है। इस वातावरण मे धर्मप्रधान भारत देश पूज्य सत महात्माओ, गुरुजनो और उपदेशको के प्रभाव से बचा हुआ है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवानराम, सत्य और अहिंसा का सदेश देने वाले भगवान महावीर, बुद्ध और महात्मागाधी के देश मे शाति पाठ पढाने वालों का अभाव नही है। भारतवर्ष मे सुख व शान्ति उन्ही का प्रभाव है। सभी धर्माचार्यों की शिक्षा मे शान्ति का ही सदेश है।

हमारा सौभाग्य है कि हमें महान मनीषी, सयम विभूति, आचार्य श्री पूज्य नानालालजी जैसे गुरुवर मिले है जो अर्द्ध शताब्दी से उदारमना कल्याण कार्यों मे सतत रत हैं। पारस के स्पर्श से लोहा भी सोना हो जाता है, उसी प्रकार पूज्य-आचार्यश्री के सान्निध्य मे ज्ञात-अज्ञात अनेक भाई-बहिनो के जीवन मे अप्रत्याशित विलक्षण परिवर्त्तन हुआ और हो रहा है। आज के भौतिकवाद मे सासारिक प्रपचादि मे फसे प्राणी को आभास ही नही होता कि वह क्या कर रहा है और उसे क्या करना चाहिए? कर्त्तव्य की दिशा मे प्रवृत्त कराने के लिए गुरुदेव की कृपा रश्मि आवश्यक है जो उसे भटकने से रोके और सही पथ प्रदर्शन करे।

परम पूज्य आचार्यश्री की महिमा का वर्णन करना सूर्य को दीपक दिखाना है। गुरुदेव की वाणी से कितने ही लोगो को मार्गदर्शन मिला है कितने ही भाई-बहिनो ने ससार का त्याग किया है और आत्मकल्याण की ओर अग्रसर हुए हैं। कितने श्रावक-श्राविकाओ ने अपने जीवन को सुधारा है। उनकी महिमा असीमित है और हमारी दृष्टि सीमित है। मैं जब अपने ही परवेश मे देखता हू तो पाता हू कि देशनोक श्री सघ ने शासन सेवा मे कितने भाई-बहिन दिए हैं

और कितने ससार मे रहते हुए भी आत्मा का कल्याण कर रहे हैं। फिर भग
पूरे देश मे परम पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म सा के सम्प्रदाय के आचार्यों व
सतियो ने कितनी आत्माओं का कल्याण किया होगा, गिनती सम्भव नहीं है।
पूज्यश्री के सम्प्रदाय मे आढ्यापाठ चल रहा है जिसकी व्याख्या करना तो मेरे
लिए सम्भव नही है। परन्तु इतना जरूर जानता हू कि मेरे पूज्य नानाजी
श्री बुद्धमलजी दफ्तरी परम भक्त थे और उन्हीं की कृपा से मेरी माताजी का
सयम पालने वाले सतो से सम्पर्क बना रहा। उनके आशीर्वाद से हमारा पूरा
भीखमचन्द भूरा परिवार इस सम्प्रदाय को मानने वाला है। पुण्योदय के कारण
चरित्रवान सतों का ही मुझे सान्निध्य मिला है जिनके सबल और कर्मठ कार्यकर्ता
श्री सरदारमलजी काकरिया की प्रेरणा से मैं श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी
जैन सघ की किंचित सेवा कर सका।

मैं इस लेख को अनुभूत घटनाओं के आधार पर व्यक्तिपरक बनाते हुए
आचार्यश्री के सम्पर्क द्वारा जीवन मे हुए परिवर्त्तन पर प्रकाश डालना चाहता
हू। गुरुदेव के सम्पर्क मे आने से मैंने आत्म विश्लेषण करने पर पाया कि
अपने जीवन मे काय एव व्यवहार द्वारा बहुत पाप किए हैं और उस पाप की
गठडी का बोझ ढोना बहुत दुष्कर है। सुयोग से आचार्यश्री का चातुर्मास देशनोक
मे वि स २०३२ मे हुआ। मैंने अपने मन का बोझ विनीत भावना के साथ
गुरुदेव के चरणो मे बैठ कर समर्पित किया। अपने दोष मन खोलकर प्रकट
किए। करुणानिधान आचार्यश्री ने असीम कृपा कर मुझे कुछ प्रायश्चित दिए
जिनका मैंने पालन शुरू किया और १४ वर्षों से कर रहा हू। तभी से मेरे मन
मे शान्ति का स्फुरण और जीवन मे अभूतपूर्व परिवर्त्तन हुआ है। महापुरुषों की
शरण मे आने वालो को उनके कृपा प्रसाद से बडी शान्ति मिलती है।

पूज्य गुरुदेव श्री नानालालजी म सा की अर्द्धशताब्दी दीक्षा महोत्सव
के उपलक्ष मे स्वर्ण जयन्ती समारोह प्रत्येक गाव, कस्बा, नगर में त्याग और
तपस्या के साथ मनाया जा रहा है। मैं भी अपने हृदय से उनके दीर्घजीवी होने
की कामना करता हू कि वे चतुर्दिक अपनी मधुरवाणी से ज्ञानामृतपान कराते
रहें और हमारे जीवन को आलोकित करते रहें। आप तो स्वय सूर्य है, प्रकाश
पुज हैं। आपके जीवन पर हम क्या प्रकाश डालें, हम तो उसके प्रकाश में अपनी
राह पाते हैं। आप तो चन्द्र हैं, हम चकोर हैं। आप तो पूज्य हैं, हम पतित
हैं। आपके आशीर्वाद के लिए हम नतमस्तक है।

·····जे पीर पराई जाणे रे।

❀ श्री फतहलाल हिंगर
मत्री, आगम अहिंसा समता एव प्राकृत सस्थान

परम श्रद्धेय आचाय-प्रवर श्री नानेश का यह दीक्षा अधशताब्दी वष है। उनकी अपनी सयम साधना के पचास वर्ष पूरे होने जा रहे है। इस काल मे हमारे आराध्य देव ने अपनी कठोर सयम साधना द्वारा जिनशासन की अपूर्व अनुपम सेवा की है। यह सर्व विदित है। इन्द्रिय सयम के साथ-साथ प्राणी सयम द्वारा अपने व्यक्तित्व के अन्तरतर मे अहिंसा-सयम तप की त्रिवेणी को निरन्तर प्रवहमान करके आचाय-प्रवर ने नये कीतिमान स्थापित किये हैं। समता दर्शन की गहराइयो मे बैठकर अपने जीवन को समता की कसौटी पर कसते और अपने जीवन मे पूर्ण स्थान देते हुए कथनी और करनी को साकार किया है आचाय श्री नानेश ने। वैराग्य अवस्था सयम साधना क्षेत्र मे प्रवेश का प्रथम चरण है, प्रथम सीढी है। इस अवस्था मे रहते हुए सयम मार्ग मे उपस्थित होने वाले कठोर परिषहो को सहन करते हुए सयम पथ पर निरन्तर अग्रसर होने की स्पष्ट भूमिका निर्माण करनी होती है। मनसा, वाचा, कमणा-'आत्मवत् सर्वं भूतेषु' के स्वरो को आत्मसात करना होता है।

आचाय-प्रवर ने अपनी मुमुक्षु अवस्था मे ही आत्मा-अनात्मा के स्वरूप को समझते हुए भोग को रोग एव इन्द्रिय विषयो को विष तुल्य माना था। पूण विरक्ति शरीर सम्बन्धी ममत्व के परित्याग द्वारा आत्माराधना की—तल्लीनता युक्त अपने मानस सरोवर मे पूर्ण वैराग्य की उर्मिया लहराने लगी थी। इस अवस्था के इनके जीवन सस्मरण को याद करते हुए उक्त कथन की पुष्टि हाती है।

उदयपुर नगर की ही बात है जब हमारे श्रद्धा के केन्द्र आचार्य-प्रवर वैराग्य अवस्था मे भागवती दीक्षा अगीकार करने के कुछ ही समय पूव नगर मे ही मुमुक्षु जीवन व्यतीत करते हुए अध्ययनरत थे। सभी जन परिवारो की इच्छा सदव प्रबल बनी रहती थी उनको इनके आतिथ्य का सौभाग्य प्राप्त हो।

इसी शृ खला मे (मेरे पितामह के अनुसार) हमारे परिवार को अतिथि सत्कार का सौभाग्य मिला मिलता रहा। एक दिन की बात। प्रासुक भोजनोपरात-हस्तशुद्धि के प्रसग से एक स्थान की ओर इ गित कर दिया गया। स्थान को अयोग्य ठहराते हुए जल को ऊचे स्थान से गिरने पर पृथ्वी पर चलने वाले जीवो की हिंसा होना स्वाभाविक है, ऐसा निरूपित किया। ऐसी आदश अहिंसक

शास्त्रो के उद्भट विद्वान्

❀ श्री धनराज बेताला

आचाय पूज्य श्री नानालाल जी म सा के जैन भागवती दीक्षा के अर्धशताब्दी वप के दृश्य देखने वाले हम सब अत्यन्त सौभाग्यशाली हैं। आचाय श्री जी ने अपनी साधना के इन ५० वर्षों मे कितनी क्या उपलब्धि की है, इस निरन्तर साधना से वे कितने आगे बढ गये हैं इसका आकलन विशेष तो उनके सान्निध्य में साधनारत साधक ही कर सकते है हम श्रावको के द्वारा तो सभव नही है।

आचार्य श्री जी का सयमी जीवन, साधना के क्षेत्र मे जहा एक विशिष्ट स्थिति तक पहुचा हुआ प्रतीत होता है वहा ज्ञान के क्षेत्र मे वे जितनी ऊचाइयों तक पहुचे हैं उसकी झलक तो कई अवसरो पर विद्वानो के उल्लेख से प्राप्त होती है। आचार्य श्री जी द्वारा व्याख्यानो मे प्रतिपादित समता दर्शन व आगमों के निचोड रूप जो व्याख्याए प्राप्त हुई है उसका जिन्होंने अध्ययन किया है वे इतने प्रभावित हो जाते हैं कि हृदय आदर से ओत-प्रोत हो जाता है।

श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ ने आचाय श्री जी द्वारा उद्घाटित आगमों के विचारो के कुछ अशो को पुस्तकाकार प्रकाशित किया है लेकिन सघ भी अपने सीमित साधनो के कारण आचाय-प्रवर से जो प्रज्ञा प्राप्त कर सकता है वह नही कर पा रहा है फिर भी जो प्रकाशन सघ ने समाज के सम्मुख किया है उसका इतना सुदर प्रभाव अकित हुआ है कि वह अपने आप में बेमिसाल है।

इसी अर्धशताब्दी वप के चातुर्मास काल के प्रारम्भ मे कानाड मे श्री जन विद्वद् परिषद द्वारा समता सगोष्ठी का आयोजन किया गया था जिसमे भारत भर के विद्वान सम्मलित हुए। उदयपुर विश्वविद्यालय के प्रोफेसर श्री डॉ प्रेमसुमन जन ने बतलाया कि मैंने एक शोध विद्यार्थी को जन सिद्धान्त के एक विषय पर शोध निबध लिखवाया। उक्त विद्यार्थी ने विभिन्न विद्वानो के ग्रथा के आधार पर लेख तयार किया व उक्त लेख के सन्दर्भ ग्रथो का उल्लेख किया। श्री जन ने बताया कि उन सब सन्दर्भो मे हर सन्दर्भ स्थान पर आचाय पूज्य श्री नाना लालजी म सा द्वारा व्याख्यायित पुस्तक "समता दर्शन और व्यवहार" का उल्लेख था। तात्पर्य यह कि उक्त एक पुस्तक से उसने सारे सन्दर्भ प्राप्त किय।

जैन दशन के जो भी विद्वान् आचाय पूज्य श्री के सम्पक मे आया वह उनमे अत्यत प्रभावित हुआ। ध्यान के क्षेत्र मे आचाय श्री जी की समीक्षण ध्यान विधि जब साधकों के सामने आई तो उसका एक अनूठा प्रभाव पड़ा।

वतमान युग मे समीक्षण ध्यान विधि के सामने आनें से पूर्व कई ध्यान विधिया प्रचलित हो गई थी अत सबका ध्यान उन विधियो से तुलनात्मक दृष्टि से देखना अस्वाभाविक नही लगता । अन्यान्य ध्यान पद्धतियो के प्रायोजको की आलोचना भी सामने आई प्रेक्षाध्यान पत्रिका मे आलोचना प्रकाशित हुई । तो आचार्य-प्रवर के सन्मुख समीक्षण ध्यान के विषय मे विवेचन हेतु निवेदन किया गया । जो समाधान प्राप्त हुआ वह विद्वदजनो के लिए माग दर्शक रूप था । वह श्रमणोपासक मे प्रकाशित किया गया । श्रमणोपासक मे प्रकाशन से पूव डॉ श्री नरेन्द्र भानावत से मैंने समीक्षण ध्यान के सम्बन्ध मे प्राप्त समाधान के अवलोकन का निवेदन किया तो डॉक्टर श्री भानावत ने फरमाया कि उत्तर प्रत्युत्तर मे नही पडना चाहिए कि तु मैंने पुन निवेदन किया तो डॉक्टर सा ने आद्योपा त अवलोकन किया व हर्ष मिश्रित विस्मय पूर्वक कहा कि समीक्षण ध्यान के इतने शास्त्रीय उदाहरण तो विशिष्ट ज्ञाता ही दे सकते हैं ।

समीक्षण ध्यान की चर्चा के साथ ही आचार्य श्री जी द्वारा व्याख्यायित एवं क्रोध समीक्षण, मान के रूप मे प्रकाशित पुस्तकें पाठक वृन्द के हाथो मे है। क्रोध समीक्षण की पाडुलिपि प शोभाचन्द्र जी भारिल्ल को अवलोकनाथ प्रेषित की गई जिसको सरसरी तौर पर देखकर पडित सा ने बिना किसी टिप्पणी के लौटा दी । इस पर पाडुलिपि उनको भेजकर पुन निवेदन किया कि आप इस पाडुलिपि को देखकर यह बताए कि इस मे कही शास्त्रीय विचारणा के विरुद्ध कोई सामग्री तो नही है । पडित सा ने पाडुलिपि का सावधानी पूवक अवलोकन किया और पुस्तक के बारे मे बताया कि क्रोध समीक्षण के सबंध मे इतने शास्त्रीय प्रसग भी हो सकते हैं यह तो शास्त्रीय ज्ञान मे विशिष्ट पैठ रखने वाले अनुभवी प्रज्ञाशील आचार्य-प्रवर जैसे ज्ञाता द्वारा ही सभव है ।

उपर्युक्त उदाहरणो को प्रस्तुत करने का तात्पय यह है कि आचाय भगवन् से जो विशाल ज्ञान का नवनीत हमे उपलब्ध कर लेना चाहिए वह नही कर पाये हैं । इसके लिए आचाय श्री के इस दीक्षा अर्ध-शताब्दी प्रसग के अवसर पर हम सकल्प पूवक सलग्न होकर उन अनुपलब्ध अप्रकाशित ज्ञान विन्दुओ को प्रकट कर जनमानस के सन्मुख यदि प्रस्तुत कर सकें तो हमारे प्रयत्नो की साथकता होगी । इसी शुभाशसा के साथ ।

मत्री, श्री सु साड शिक्षा सोसायटी, नोखा
पूर्व मत्री, श्री अ सा साधुमार्गी जैन सघ

मेरी सफलता का राज

❀ श्री सोहनलाल सिपानी

साधारणतया धर्म संस्कार मुझे मेरे माता-पिता से मिले हैं। मेरे पिताजी आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा और आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा के अनन्य उपासक थे। इससे उनके प्रति मेरी श्रद्धा-भक्ति और बढ़ गई। उपासना और भाव-भक्ति स्थायी पूंजी के रूप में मुझे और मेरे परिवार को प्राप्त हुई है। मैंने इस पूंजी की बड़े धैर्य और विवेक के साथ रक्षा करते हुए किसी भी मंगल अवसर को हाथ से नही जाने दिया है।

उसी पूंजी और आचार्यों की भाव-भक्ति से ही मेरे जीवन का निर्माण हुआ है, धर्म के प्रति दृढ़ आस्था बनी है, मानस में अटूट श्रद्धा जमी है। धर्म के प्रताप से ही आज मैं सुखी हूं। बड़े परिवार का संपादन करते हुए भी मुझे कोई असंतोष नही है।

इन आचार्यों की छत्रछाया और सान्निध्य से ही आज सांसारिक काम करते हुए और परिवार का उत्तरदायित्व निभाते हुए मैं अपने कर्त्तव्यों से विमुख नही हुआ हूं। कठिन परिस्थितियों में भी धर्म सम्बन्धी न्याय नीति के विचार नहीं त्यागे हैं।

इसी सफलता से मेरा आत्म-बल बढ़ता गया और मैं आचार्य श्री नाना लालजी म सा का अनन्य भक्त बन गया और सम्यक्त्व मेरी जीवन धारा में उतर गया। इस सारी सफलता के मूल में कोई एक अदृश्य शक्ति मेरे मानस में चेतना जगाती रही है। जो भी संकट आया, टलता गया, बाधाएं आयी मिटती गई और मेरा मार्ग प्रशस्त होता गया। इन सारी प्रच्छन्न प्रक्रियाओं में आचार्य श्री की सद्भावना ही मुख्य है।

आचार्य श्री का महान् व्यक्तित्व, उनका तेजस्वी संयमित जीवन, उनकी प्रेमपूर्ण आत्मीयता ही मेरी सफलता का राज है। मैंने घण्टों आचार्य श्री के निकट भाव-भक्ति में व्यतीत किये हैं।

उनकी दीक्षा के अर्द्ध शताब्दी वर्ष पर मेरी मंगल-कामना है कि वे स्वस्थ और दीर्घायु बनकर चतुर्विध संघ की सेवा करते हुए वीर शासन के गौरव को उज्ज्वल बनावें और सन्त-सतियों में अदम्य उत्साह और साहस भरें, ताकि साधुमार्गी संघ का यशस्वी इतिहास बन सके।

इन्हीं मंगल-कामनाओं के साथ।

—नं. ३, बनरगट्टा रोड, बंगलोर

तीन लोकोपकारी प्रसंग

❀ श्री लूणकरण हीरावत

(१) मौसम ही बदल गया

परम श्रद्धेय आचार्य श्री के जीवन के महत्त्वपूण सस्मरण—

देशनोक चातुर्मास की घटना है। आचाय प्रवर के चरणो मे नगर पालिका अध्यक्ष श्री हरिरामजी मू दडा ने उपस्थित होकर अर्ज किया कि माननीय जिलाधीश महोदय आपका दर्शन व प्रवचन सुनने को उत्सुक हैं। उस समय सघ अध्यक्ष श्री दीपचन्दजी भूरा व मैं लूणकरण हीरावत (मत्री) उपस्थित थे। मू दडा जी ने कहा कि गर्मी अधिक है, सो पखे लगाए विना जिलाधीश महोदय नही बैठ सकेंगे। हमने कहा कि ऐसा यहा नही हो सकेगा। कुछ वार्तालाप के पश्चात् आचाय भगवन् ने सहज भाव से पूछ लिया कि जिलाधीश महोदय का कव तक आने का प्रोग्राम है? उत्तर मे मू दडाजी ने कहा कि करीव दस-बारह दिन बाद का प्रोग्राम है। आचार्यश्री जी ने सहज भाव से फरमाया कि देखें उस समय क्या कुदरत बनती है? आपको शायद पखा लगाने की सोचने की आवश्यकता भी न पडे। पखे तो यहा लगने का प्रश्न ही नही है। यह हमारी मर्यादा के विपरीत हैं। उस समय मुझे व अध्यक्ष महोदय को दृढ विश्वास हो गया कि जिलाधीश महोदय के आने से पूव वर्षा अच्छी होकर मौसम जरूर वदल जावेगा। आचाय भगवन् के वचन कभी खाली नही हो सकते। ठीक वैसा ही हुआ। जिलाधीश महोदय के आने के एक दिन पूव ऐसी वरसात हुई कि मौसम ही वदल गया।

(२) गरमी बिल्कुल शान्त रही

ऐसी ही एक घटना सरदारशहर चातुर्मास के पूव और घटित हो गई। आचायश्री थली प्रान्त मे राजलदेसर विराज रहे थे। महावीर जयती के प्रसग पर आचाय प्रवर ने चातुर्मास सरदाशहर व कुछ सभावित दीक्षाए गोगोलाव की स्वीकृति फरमायी। इस घोषणा से श्रावक लोग कुछ चिन्तित हो गए। चिन्तित होना स्वाभाविक था, क्यो दीक्षा का प्रसग जेठ मास मे था। थली प्रान्त मे भयकर गर्मी पडती है। राजलदेसर से गोगोलाव पधारना व पुन चातुर्मासार्थ सरदारशहर पहु चना भयकर परिषह दृष्टिगोचर हो रहा था। इस रास्ते मे सतो के कल्पनीय पानी भी पूरा मिलना कठिन दिखाई दे रहा था। हम लोग चिन्तित अवस्था म बठे हुए थे कि आचाय भगवन् बाहर से पधार गए। श्रावकों को उदास देखकर सहज भाव से पूछ लिया—क्या बात है? हम लोगों ने अर्ज किया,

भते ! आपकी घोषणा से हम वडे भयभीत हो रहे हैं । कहा सरदारशहर व कहा गोगोलाव ? भयकर गर्मी का मौसम रहेगा । पूरा पानी भी आपके कन्तर मिलना कठिन है । उस समय आचार्य भगवन् ने फरमाया कि चिता जसी कोई बात नहीं है । हम लोग परिषहो से घबराने वाले नही है । उस समय देखें क्या कुदरत बनती है । आचार्य भगवन से पुनवानी से आपके मुखारविन्द की निक शब्दो से ऐसा हुआ कि गोगोलाव दीक्षा प्रसग पर जोरदार बरसात होकर ऐसा दिखने लगा मानो सावन-भादो आ गया है । इतना ही नही बल्कि गोगोलाव से लेकर सरदारशहर तक समय-समय पर बरसात होकर मौसम ऐसा ठडा रहा कि गर्मी बिल्कुल शात रही ।

(३) चरण-रज का प्रभाव

गगाशहर-भीनासर प्रवासकाल की घटना है । श्री गगानगर (राज) मे एक अर्जन भाई के मस्तिष्क मे काफी अर्से से भयकर दद हो रहा था । उसने अनेक जगह जाकर बडे-बडे डाक्टरो व वैद्यो से इलाज करवाया लेकिन कोई लाभ प्रतीत नही हुआ । वह बिल्कुल निराश हो गया । वह इस बीमारी से अति चिन्तित भी हुआ । उस समय देशनोक निवासी श्री तोलारामजी आचलिया ने उस भाई को कहा कि आचाय श्री नानालालजी महाराज साहब अभी भीनासर विराज रहे हैं । वे बडे प्रतापी व उच्च कोटि के आचार्य हैं । हालांकि मैं तेरा पंथ को मानने वाला हू, लेकिन मेरी आचायश्री जी के प्रति पूण श्रद्धा व आस्था है । तुम गगाशहर-भीनासर जाकर आचाय श्री जी म सा जब बाहर जगल के लिए पधारें तो तुम पीछे-पीछे जाकर उनके चरणो की रज लेकर अपने मस्तिष्क पर रगड लेना । ऐसा प्रयोग थोडे दिन करने पर ही तुम्हे आरोग्य लाभ प्राप्त हो जाएगा, ऐसा मुझे पूण विश्वास है । वह अर्जन भाई बीमारी से बहुत दुखित था । श्री तोलारामजी के कहने पर तुरंत गगाशहर-भीनासर आकर आचार्य भगवन के चरणो की रज लेकर श्रद्धा से लगाने लगा । उस अजन भाई का ऐसा चमत्कार हुआ कि अति शीघ्र बिल्कुल स्वस्थ हो गया । इस घटना का वृत्तांत मैंने एक अति विश्वसनीय व्यक्ति से दिल्ली मे सुना था । जब कुछ समय बाद मेरा बीकानेर जाने का सयोग बना तो श्री तोलारामजी आचलिया मुझे हॉस्पिटल मे अनायास ही मिल गए । मैंने उपयुक्त घटना की उनसे जानकारी लेनी चाही तो श्री आचलियाजी ने मुझे कहा कि आपने जो सुना, बिल्कुल सत्य घटना है वैसे आचाय भगवन के चरण-रज मे पूण श्रद्धा रखने वाले कई व्यक्तियों ने लाभ पहुचा सुन रहे हैं, लेकिन यह घटना मेरी जानकारी मे बिल्कुल सत्य है

—देशनाग

मेरे अटूट श्रद्धा केन्द्र : आचार्य श्री नानेश

❀ श्री चम्पालालजी डागा

सहमन्त्री–श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ

समता विभूति, परम पूज्य, प्रात स्मरणीय, जिन-शासन प्रद्योतक, आचार्य प्रवर श्री नानालालजी म सा के दीक्षा अगीकार किये पचास वष सम्पन्न हो रहे हैं। जिसको प्रतीक वर्ष मानकर हम श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ के सदस्यगण दीक्षा अर्द्ध शताब्दी वष के रूप मे मना रहे हैं। आचार्य प्रवर एक ऐसे महान सत, एक ऐसे विशिष्ट योगी हैं जिनके साधनामय जीवन में जो इनके निकट आया वह अभिभूत हुए विना नही रह सका है। आचार्य श्री के जीवन-साधना के विभिन्न आयामो से यदि हम उनके जीवन प्रसगो को उद्घाटित करने लगें तो प्रचुर सामग्री हो जाती है।

हम धन्य हैं कि चरम आधुनिकता के इस युग मे श्रमण सस्कृति के अडिग रक्षक के रूप मे आचाय श्री जी की जीवन साधना युगो-युगो तक साधको को प्रेरित करती रहेगी। आज चारो ओर से वैज्ञानिकता को आधार मान कर कई प्रवृत्तियो मे युगान्तरकारी परिवर्त्तन हेतु वातावरण वनाकर प्रभावशाली ढग स प्रस्तुत किया जाता है लेकिन सयम माग मे सिद्धान्तो की सुरक्षा के साथ यदि काई परिवत्तन की वात सामने आती है तो उस पर आचार्य श्री जी द्वारा मार्ग दर्शन व मान्यता प्राप्त हो जाती है लेकिन सिद्धान्तो के विपरीत परिवर्त्तन की वात पर आचाय श्री जी कभी समझौता स्वीकार नही करते हैं। ऐसे विशिष्ट योगी के समक्ष अपनी वात प्रस्तुत करने वाला व्यक्ति स्वय ही नतमस्तक हो जाता है।

आचाय प्रवर के दीक्षा का यह अर्द्ध शताब्दी वर्ष हमे प्राप्त हुआ है। आचाय प्रवर के सान्निध्य स्मरण मात्र से अनेक सस्मरण प्रस्फुटित होते हैं जिनको लिपिवद्ध किया जाय तो न मालूम कितने पृष्ठ चाहिए।

श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ के क्षेत्र विस्तार, आचाय प्रवर के विचरण, आचाय प्रवर से प्रेरित होकर दीक्षित होने वाले साधक–साधिकाओ, आचाय श्री जी द्वारा मालव प्रान्त मे प्रदत्त उद्वोधन मात्र से सप्त कुव्यसन त्याग कर वने धर्मपाल वन्धुओं के विशाल क्षेत्र, समीक्षण ध्यान निधि के प्रयोग एव उन पर व्याख्यायित अनुभवो को पिरोकर पुस्तकाकार प्रस्तुति इत्यादि अनेका-नेक कार्यो को सम्पन्न करने मे मेरा भी जो योगदान रहा है। उसमे कई वार कई स्थलों को यथोचित विधि से न समझ पाने के कारण मेरे एव सघ कार्यालय द्वारा त्रुटिया होती रही हैं। लेकिन उन स्थलों की समीक्षा के समय आचार्य

प्रवर जिस समता भाव से मार्ग-दर्शन प्रदान करते हैं, उससे हमें अपनी का विधि का बौनापन नजर अवश्य आता है लेकिन निराशा के स्थान पर उत्साह का ही सचार होता है । आचार्य प्रवर की वाणी से जो विलक्षणता प्रस्फुटित होती है वह तो अनुभव करने वाला व्यक्ति ही समझ सकता है ।

मैंने आचार्य प्रवर के सर्व प्रथम दर्शन राजनान्दगाव में किये। प्रथम दर्शन से मुझे अपार आत्म सतोष हुआ एव मेरी श्रद्धा प्रगाढ हुई, जिससे मैं प्रतिवर्ष दर्शन हेतु निरन्तर लालायित रहता । सघ की गतिविधियों के नजदीक आने पर कई बार समस्याओ से घिर जाने से दूर हटने का मन मे सकल्प आता परन्तु ज्यों ही आचार्य प्रवर के दर्शन का सौभाग्य मिलता, समस्या का पुनः समाधान हो जाता । उसके पश्चात् तो अनेक बार व्यक्तिगत, सामाजिक आदि समस्याओ का समाधान तो आचार्य प्रवर के नाम स्मरण मात्र मे ही होने लगा। मुझे मेरे कार्य में कभी कोई बाधा ज्यादा समय तक रोके नहीं रही ।

मैं जो भी यत्किंचित कार्य कर रहा हू वह परम पूज्य आचार्य प्रवर की महती कृपा एव उनके अतिशय का परिणाम है व मेरी अटूट श्रद्धा का फल है । चूंकि मेरा सारा परिवार एकनिष्ठ श्रद्धा रखने वाला परिवार है, जिसका मेरे पर भी प्रभाव पड़ा है ।

साधुमार्गी जैन सघ की विभिन्न गतिविधियों-कार्य का सचालन करते हुए आचार्य प्रवर के चरण कमलो मे निवेदन करने, समस्या प्रस्तुत करने व मार्ग दर्शन प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे हर समय प्राप्त होता रहता है । यह हर सम्पर्क मेरे लिए अविस्मरणीय बन गया है ।

ऐसे युग निर्माता, जीवन निर्माता, कथनी व करनी के धनी, समता धारी, दीर्घ द्रष्टा, समीक्षण ध्यान योगी मेरी श्रद्धा के केन्द्र, (जिनकी कृपा मुझ पर हर समय बनी रहती है) परम श्रद्धेय, परम पूज्य आचार्य प्रवर श्री नाना लालजी म सा दीर्घायु हो एव सदा स्वस्थ्य रहें यही शुभ कामना है, मगल भावना है,

—नई लाईन, गगाशहर (राज)

Δ

卐

जीवन-झलक

❀ छन्दराज 'पारदर्शी'

(मनहरण कवित्त)

(१)

सतो ने ससार सारा, सत्य से सजा-सवारा,
ज्ञान का ही दान, नाना विद्वेष मिटाये हैं ।
चित्तौड जिले की शान, 'दाता' गाव खास जान,
यही लिया जन्म गुरु 'नानेश' कहाये हैं ।
पिता मोडीलाल प्यारे, माताजी शृ गारवाई,
पोखरना गोत्र धार, 'नाना' गुरु आये हैं ।
साहस-शक्ति के धनी, 'नाना' गुरु नाना गुणी,
'पारदर्शी सही राह, जग को बताये हैं ।

(२)

आठ वर्ष की आयु मे, पिता साथ छोड चले,
व्यापार सम्हाला पर, मन नही भाये हैं ।
गुरु जवाहरलाल, मिले भोपालसागर,
दर्शन व्याख्यान सुन, वैराग्य सुहाये हैं ।
पुण्य कर्म उदय से, गये जब आप कोटा,
युवाचार्य गणेशीलाल, ज्ञान समझाये हैं ।
उन्नीसो छियाणु साल, पौष शुक्ला अष्टमी को,
"पारदर्शी" कपासन, दीक्षा गुरु पाये हैं ।

(३)

ज्ञान-ध्यान तप किया, तन को तपाय लिया,
समता मे सार जानो, गुरु समझाया है ।
दो हजार उन्नीस मे, आचार्य पदवी पाये,
जैन शासन की शान, मान को बढाया है ।
अछूतो को अपनाया, सही पथ बतलाया,
'धर्मपाल' नाम दिया व्यसन छुडाया है ।
गुरुदेव उपकारी, समता हृदय धारी,
'पारदर्शी' सच्चा ज्ञान, हमे समझाया है ।

राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र जैसे प्रान्त,
मध्यप्रदेश मे दर्श, पाये नर-नारी है ।

गाव गाव घर-घर, पैदल ही घूमकर,
अज्ञान-तिमिर हटा, बने उपकारी हैं ।

'नाना' के हैं नाना रूप, समता के मूतरूप,
राग-द्वेष जीत 'नाना,' नाना गुणधारी हैं ।

'पारदर्शी' का वन्दन, मिटे जग का क्रदन,
जुग-जुग जीयें गुरु, प्राथना हमारी है ।

—२६१, तावावती मार्ग, उदयपुर-३१३००१

करुणा के असीम सागर

❀ श्री हृपव एस भामाणी

आचार्य श्री हमारे यहा पधारे । एक दिन पूरा विराजे और दूसरे दिन विहार किया । गुरुश्री जिस कमरे मे रहे वहा गुरुश्री के जाने के बाद हम दोनो भाई उस कमरे मे गये । हम दोनो भाईयो के रोम-रोम खडे हो गये, हमारी समझ मे नही आया, यह क्या हुआ ? ऐसे रोम रोम कैसे खडे हो गये । और वहा हमे परम शांति का अनुभव हुआ । हमारा बडा भाई आज हमारे बीच नही है । पूज्यश्री गुरुदेव के चातुर्मास के समय उनकी बीमारी कुछ ज्यादा थी फिर भी पूज्यश्री के सान्निध्य से, उनके मागलिक से हमारे बडे भाई ने जो साता पाई, जो शान्ति मिली उसका वणन लिखने के लिये हम असमर्थ है । उनकी चरणरज हमारे लिये अमृततुल्य सिद्ध हुई ।

कानोड के श्रावक-श्राविकाओ को पूज्य श्री का सान्निध्य और चातुर्मास प्राप्त हुआ । आचार्य श्री के श्रीमुख से महावीर वाणी सुनने का अवसर प्राप्त हुआ । ५० वी दीक्षा जयंती मनाना देवी सपति को अनुमोदन देकर के अपनी ओर आकर्षित करना है ।

कर्मयोगी पू आचार्यश्री करुणा के असीम सागर हैं । सत्य के निभय प्रचारक हैं । अति सरल-प्र[illegible] पुजारी-स[illegible] तेजपुज है । पूज्यश्री के सत्कार्य की [illegible] बढ़ती रहे । बत्ती की तरह आपका जीवन अधिक [illegible] । और [illegible] भांति अधिक प्रकाशमान बनता रहे [illegible] प्रसग मनिषा है ।

—२३१, आर [illegible] [illegible]-४

मैने स्वर्ण को तपते, निखरते देखा है, अब दमकते देख रहा हूँ !

❀ श्री शान्तिचन्द्र मेहता

विचार और आचार मे महानता एव अनुभाव और व्यवहार मे लघुता यह है सार स्वरूप दमकते हुए स्वण के समान उस व्यक्तित्व का, जिसके समथ धनी हैं आचार्य श्री नानेश । मैं चालीस वष से भी अधिक समय से आचाय श्री के निकटतम वैचारिक सम्पक मे हू तथा न केवल अब इस दमकते हुए स्वर्ण को देख रहा हू अपितु इस स्वण को मैंने तपते और निखरते हुए भी देखा है ।

जब कोई सफल व्यक्तित्व अपने विकास के उच्चत्तम शिखर पर खडा होता है तब उसे सभी देखते हैं, सराहते हैं एव पूजते हैं, किन्तु लोगो की यह देखने की कम चेष्टा रहती है कि उस व्यक्तित्व ने शिखर पर पहुच जाने के पहले तलहटी से लेकर ऊपर तक कितने पत्थरो से टक्कर ली है, कितने काटो के घाव सहे हैं और कितनी गहरी जीवन–साधना सम्पादित की है । चित्तौडगढ (राज) के दाता ग्राम की चट्टानो से ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया वि स १९७७ को उद्‌भूत इस स्वर्णिम व्यक्तित्व को कठिन परीक्षाओं मे से होकर गुजरना पडा है । और वहीं से अभिलाषा जगी कि स्वर्ण को मिट्टी से अलग हो जाना चाहिये । पौष शुक्ला अष्टमी वि स १९९६ को उन्होने तत्कालीन युवाचाय श्री गणेशीलालजी म सा के समीप भागवती दीक्षा ग्रहण कर ली और यही से स्वण ने तपना शुरु किया ।

स्वण ने तपने के लिये प्रवेश किया ज्ञानार्जन और चारित्राराधना की विशुद्ध अग्नि मे । प्रारम्भ से आप कुशाग्र बुद्धि एव एकाग्रचित्री थे । अल्प समय मे ही डेढ सौ, दो सौ स्तोत्रो, दशवैकालिक-उत्तराध्ययन से लेकर सभी सूत्रो, नव्य न्याय, षड्दर्शन, गीता, वेद, पुराण आदि आध्यात्मिक साहित्य तथा सस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओ पर आपने अधिकार कर लिया । यही नही, आधुनिक दशन, मनोविज्ञान, राजनीतिक विचार-धाराओ आदि से सम्बन्धित साहित्य का भी आपने गहन अध्ययन किया । ज्ञान के साथ क्रिया की भी उतनी ही कठिन साधना वे करते रहे । जवाहर को ज्योति और गणेश की गरिमा लेकर फलौदी (जोधपुर) से लेकर आज तक देश के अधिकतम भागो को अपने पचास चातुर्मासों की शृ खला में अपने पादस्पश एव वाणी से आप पावन बना चुके हैं ।

यो स्वर्ण मे निरन्तर निखार आता गया और उज्ज्वलतम निखार आया

सेवा की अनुपम साधना एव विनम्रता की अनूठी भावना से । अपने गुरु आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा की जो आपने वर्षों तक भाव-प्रवण सेवा की, वह सेवा के क्षेत्र मे एक आदर्श है । छोटे-बडे, सभी सन्तो की सेवा के प्रति आप सदा उत्सुक एव सचेष्ट रहे है । अपने को सदा 'नाना' कहने और मानने वाला यह निखरा हुआ स्वर्ण आज महानता की दीप्ति से प्रदीप्त है । अष्टम पाट की भविष्य वाणी को सत्य सिद्ध करता हुआ यह स्वर्ण आज दप् दप् दमक रहा है आत्मिक एव आध्यात्मिक तेजस्विता से ।

विचारो का सुदृढ़ धरातल आपके पावो के नीचे है—चाहे वह आगमों का विश्लेषण हो या समता-दर्शन का प्ररूपण, आधुनिक वैज्ञानिक विषयों की समीक्षा हो या सामाजिक समानता की चर्चा । आपकी प्रवचन धारा, प्रश्नोत्तरा एव ज्ञान वार्ता सदा ठोस चिन्तन पर आधारित होती है । कहने को माइक्रोफोन का साधु द्वारा प्रयोग एक छोटी-सी बात लगती है किन्तु इसका प्रयोग न करने के सम्बन्ध मे आपका तर्क अकाट्य है कि मूल अहिंसा व्रत मे स्पष्ट दोष (माईक से अग्नि-वायु के जीवो की हिंसा होना विज्ञान सिद्ध है) लगाकर साधु अपना साधुत्व को स्थिर और शुद्ध नही रख सकता है । साधुत्व खोकर कोई साधु कितना लोकोपकार कर लेगा ?

स्वर्ण की दमक प्रखर होती ही गई माघ कृष्णा द्वितीया वि स २०१६ से, जब आप आचार्य पद से प्रतिष्ठित किये गये । 'जय गुरु नाना' लाखो युवक युवतियो, वृद्धो बालको, धनिको व निर्धनो का कंठ स्वर बन गया । आपके प्रति लोगो की भक्ति का आवेग देखते ही बनता है । अपनी जयकार के गगनभेदी नारो के बीच मे भी आपकी विनम्र मुखाकृति नई क्रांति, नई शान्ति की समन्वित प्रेरणा बन जाती है ।

आज यह स्वर्ण दमक रहा है अपने सम्पूर्ण निखार के साथ । वह नई चेतना दे रहा है, नया दर्शन दे रहा है, नई कान्ति फूक रहा है । परंतु प्रश्न है कि उनकी भक्ति क्या उनके तेज दर्शन तक ही सीमित है या उसे दृढ़ता के साथ कर्म क्षेत्र मे भी उतरना चाहिये ? कर्म क्षेत्र मे वह नही उतरी है, ऐसा मैं नही कहता किन्तु समता मय एक नया और व्यापक परिवर्तन लाने के लिये इस भक्ति को अतिशय कर्मठ बनना होगा । स्वर्ण को कुन्दन के स्वरूप में संस्थापित करने के लिये ऐसी कर्मठता अनिवार्य है ।

आचार्य श्री दीर्घायु हों, उनकी तेजस्वी क्रान्तिकारिता अमर बने ।

धैर्य, क्षमा, शान्ति और दृढ़निष्ठा की सजीव मूर्ति

❀ श्री जोधराज सुराणा

विरल विभूतियो के विषय मे लिखना अनधिकार चेष्टा ही नहीं, गू गे के गुड के स्वाद की भाति माना जायगा, फिर भी भक्तिवश श्रद्धानत होकर कुछ लिखने के लिए आशान्वित हू ।

आचाय श्री की दीर्घ सयम-साधना के ५० वर्षों मे जैसे सोना अग्नि मे तप कर अपने वास्तविक गुणो से निखर उठता है, उसी तरह आचार्य श्री अपनी सयम-साधना के अनेक झझावातो को पार कर धैर्य, क्षमा, शान्ति और दृढनिष्ठा की सजीव मूर्ति के रूप मे विराजमान हैं । उनकी सयम-साधना तीव्रगति से आगे बढती जा रही है और 'चरैवेति–चरैवेति' के शब्दो को सफल करती हुई अपने प्रकाण्ड पाडित्य से आह्वान कर रही है ।

आपका आगम की तरह खुला हुआ पावन जीवन, गगा के निर्मल स्रोत की तरह, प्रवाहित होता हुआ ज्ञान, दर्शन और चारित्र के शीतल जल से चतुर्विध सघ का सिचन कर रहा है ।

आप ध्यान, स्वाध्याय, व्याख्यान, प्रश्नोत्तर और अपने शिष्य–समुदाय के साथ धार्मिक चर्चाए, धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन और आगमो के तत्त्वो को गूढ रहस्य समझाना और बडे स्नेह और आत्मीयता के साथ वर्तमान गतिविधियो की समालोचना करते हुए, साधु-समाचारी का दृढता के साथ पालन करने का बोध देते हैं, वीर-सदेश को हर क्षण स्मरण कराते हुए आगे बढने की प्रेरणा देते हैं। यही कारण है कि आज साधु-साध्वी समुदाय की आचाय श्री नानेश के प्रति अनुशासनात्मक पूरी निष्ठा है, जो जीवन उत्थान के लिए आवश्यक है ।

पद–प्रतिष्ठा की आपको चाह नही । आप साधु समाचारी का जीवन–व्यवहार मे पालन करते और कराते हुए निरन्तर गतिशील है साध्य की ओर ।

मुझे स्मरण है, सन् १९३० को जब मैं बीकानेर मे पढता था, तब से आचाय श्री के निकट रहने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है, आपके प्रति मेरी श्रद्धा दिनोदिन बढती ही रही है ।

मेरी हार्दिक कामना है कि आपके अन्त करण और रोम-रोम मे समाई हुई समता, शान्ति और करुणा का घर-घर मे प्रचार हो । आपकी कर्त्तव्य निष्ठा और साहस का सम्मान करते हुए हम आगे बढें । इसी मगलमयी श्रद्धा और भक्ति के साथ शत-शत वन्दन, कोटि-कोटि अभिनन्दन ।

—श्री जैन शिक्षा समिति,
न २०, प्रीमरोज रोड, बंगलोर–२५

भीड़ में भी अकेले

🟏 डॉ महेन्द्र भानावत

वे भीड मे भी अकेले रहते । न वे उसे जोड पाते न भीड ही वहा पप पाती । वे अकेले के अकेले होते । अपने गुरु के पास । गुरु जो आचाय था। बहुत बडे सघ का । सघ स्थानकवासी जैनो का । भीड बारहो मास । उफनती नदी की तरह । चातुर्मास मे तो जैसे समुद्र उमडता ।

भीड धम की । अध्यात्म की । त्याग की । विराग वराग्य की । समता की । व्रतधारियो की । सयमशीलों की । साधकों की । भाइयों की । बाइयों की। जैनो की । अजैनो की ।

यह भीड रूकती नही थी मगर झुकती तो थी । धम संदेश नहीं सुनता थी मगर जीवन मगल की मुस्कान तो लेती थी । एक ऐसी मुस्कान जो बच्चा सोते में दे जाता है । जो उसकी समझ की नही होती । होने के लिए होती है। यह मुस्कान सबको प्यार देती है । सबका स्नेह लेती है । बच्चा किसी का हो। कोई हो ।

यह सब देखा मैंने बीकानेर मे । एक बत्तीसी पूर्व । जब कॉलेज का छात्र था ।

और आज देख रहा हू वे भीड से घिरे हैं । थमती हुई भीड नमती हुई नदी की तरह । तब वे साधु थे । अब आचार्य हैं । तब वे नानालाल थे । अब नानेश हैं ।

उदयपुर के दांता गाव मे पोखरना परिवार से जुडे आचाय नानेश १६ वप की उम्र मे दीक्षित हुए । २६ वप पूव उदयपुर मे ही आचाय पद पाया। साधु जीवन मे सर्वाधिक सान्निध्य अपने गुरु आचाय गणेशीलालजी का ही लिया।

मालवा में शोषित एव दलित बलाई जाति के लोगो को धम संदेश देकर धमपाल बनाया जिनकी सख्या आज अस्सी हजार के करीब है ।

अपने दीक्षा जीवन के ५० वप मे हजारो मीलो की पदयात्रा कर प्रांत प्रांत घूमने और जन जन में सुधर्म का जागरण किया ।

जन जीवन म व्याप्त विपमता की विविध ग्रन्थियों का दूर कर उन्हें शुद्धाचार और स्वच्छ वायुमण्डल प्रदान करने के लिए समता दशन सिद्धात का प्रतिपादन किया ।

मानसिक विकारों के शमन और परिशोधन के लिए समीक्षण ध्यान पद्धति का सूत्रपात किया ।

बाल-विवाह दहेज मृत्यु भोज जैसी सामाजिक कुरीतियो को त्यागने की प्रेरणा दी । समाज मे अण्डा, मास और नशीले पदार्थों के सेवन की वढ रही प्रवृत्ति को घातक बताते हुए सकल्पपूवक इनका त्याग करने और जीवन शुद्धि को वढावा दिया ।

समाज मे व्यक्ति-व्यक्ति के वीच भाईचारा वढे । ममता भाव जागे । तनावो व टकरावो से मुक्ति मिले । विश्वशाति का माग प्रशस्त हो । चारित्रिक एव नैतिक मूल्यो का विकास हो, इसके लिए आचाय नानेश ने जहा अपने साधु-साध्वियो के सिघाडे तैयार किये हैं वहा श्रावक-श्राविकाओ के कई सगठन इस काय मे लगे हुए ।

आगामी ४ जनवरी को आचाय श्री नानेश ने अपने दीक्षा जीवन की अद्ध शताब्दी को पूरी की है । वे इस आधी शताब्दी को पूरी शताब्दी दें और जन जन को अपने समता रस से समरसता प्रदान करते रहें, यह मगल-कामना हमारी सबकी है ।

—निदेशक, भारतीय लोकल मण्डल, उदयपुर

☐

विनम्रता और सेवाभाव

❀ श्री शकर जैन

[१]

व्यावर चातुर्मास हेतु गुरुदेव भीम से विहार यात्रा पर थे । प्रवास मे एक युवा सत वीमार थे, फिर भी पैदल प्रवास कर रहे थे, व्यावर जो पहुचना था । रात्रि मे सत थकान से शिथिल होकर लेट रहे थे । थकान के कारण कराहने की धीमी-धीमी आवाज आ रही थी । कुछ ही दूरी पर गुरुदेव सो रहे थे, वे जग गये तो उठकर सत के निकट गये व उनके पैर दवाने लगे । सत बोले—गुरुदेव आप कष्ट मत कीजिये । गुरुदेव वोले—मैं नाना हू वोलो मत, अन्य सत जग जायेंगे और सत के पैर दवाने का क्रम जारी रखा ।

[२]

घटना उन दिनो की ही है जब जवाजा के आसपास एक सत वीमार हो गये और उन्हे दस्त लगने लगे । गुरुदेव खुद मल साफ करते, मल वाहर डाल कर आते । रोगी सत की विनम्रतापूवक उन्होंने सेवा की । वे आचाय थे किन्तु अनुशासन के कठोर आचाय को इस प्रकार की सेवा करते देख सब कोई अचम्भित थे । सतो मे सनसनी थी—आचरण मे नियमो के प्रति कठोर दिखने वाले गुरुदेव कितने विनम्र हैं ।

—एडवोकेट , भीम (उदयपुर) राज

संयम जिनका जीवन है

❀ डॉ प्रेमसुमन जन

जिस युग मे प्रचार-प्रसार के, आत्म-प्रदशन के, सम्मान प्रतिष्ठा क आयोजन समारोहो के इतने द्वार खले हो कि व्यक्ति भ्रमित हो जाय बनता प्रसिद्धि और पदपूजा के लिए, उस युग मे अपने मूल धम और समाचारी ग्रहन के समय ली गयी प्रतिज्ञाओ के निर्वाह मे सहजता से लगे रहना किसी सन्त, निस्पृही साधु के ही वश की बात है । ऐसे साधु ही साधुमार्ग/मुनिमार्ग के सत्र पथिक कहे जाते हैं । उनका जीवन और सयम एक दूसरे के पर्यायवाची होत हैं। ऐसे सयमी साधको मे अग्रणी हैं—समता-दर्शन प्रणेता आचाय श्री नानालाल जी महाराज । जन-जन के मन मे प्रतिष्ठित आचाय श्री नानेश ।

आचार्य नानेश ने सयम को वह प्रतिष्ठा प्रदान की है, जिससे जन धम श्रमण धम का प्राचीन/असली स्वरूप उजागर होता है । महावीर की वाणी में धम अहिंसा, संयम और तप रूप है । इस त्रिगुणी धम की जो परम्परा इस देश मे चली, उसमे तप को प्रमुखता मिली । तप के कठोर से कठोर रूप साधु-समाज मे अपनाये जाते रहे । अहिंसा भी सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती चली गयी । खान-पान में विभिन्न रूपो मे वह प्रविष्ठ हो गयी, किन्तु सयम की पकड दिना-दिन जन समाज के घटको से शिथिल होती गयी । उसी का परिणाम है कि साधुवग और श्रावक समुदाय उन अनेक क्षेत्रो मे प्रवेश कर गया, जहा जाने की अनुमति मूल श्रमण धर्म नही देता । परिग्रह की वृद्धि, व्यवसाय मे हिंसा, सस्कारो मे शिथिलता, प्रदशन हेतु भागदौड, साहित्य-लेखन मे प्रवचना आदि सब असयमित जीवन के ही परिणाम हैं । समाज के कुछ इने-गिने जिन साधु-सन्तो ने असयम की प्रव त्तियो को रोकने का प्रयत्न किया है, उनमे आचाय नानेश के सयमी प्रयत्न विशेष ध्यान देने योग्य हैं, मननीय हैं ।

आज से बाईस वष पूव जब आचाय श्री नानेश के सम्पर्क में आने का सौभाग्य मुझे मिला तब उनके स्वयं के जीवन मे और उनके सघ म सयम की जो मशाल प्रज्वलित थी, वह आज और अधिक देदीप्यमान हुई है । उसने कई आयाम ग्रहण किये हैं । आचार्य श्री ने सयम को समता के साथ जोड़ा है। उनके चिन्तन का निष्कर्ष है कि यदि साधु ने, श्रावक ने जीवन में सयम का पालन किया है, व्रत-नियम धारण किये हैं, सामायिक की है तो उसके जीवन म समता के फूल झरने चाहिए । सयम में वृक्ष का समता फल है । और जब समता फल लगता है तो वह व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एव विश्व को बिना शान्ति

प्रदान किये नही रह सकता । इसीलिए आचार्य ने समता–दशन को स्पष्ट आकार प्रदान किया है । वे कहते हैं कि सयम का पालन विना सिद्धान्त-दर्शन के नही हो सकता । अत प्रत्येक व्यक्ति को अपनी दृष्टि यथायदृष्टि वनानी होगी, जिससे वह हेय–उपादेय, कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य को पहिचान सके । सिद्धान्त–दशन से हम जीवन को समझ सकेंगे । जीव-मूल्य की पहिचान से ही व्यक्ति उसके जीवन को मूल्यवान समझ सकेगा । 'जियो और जीने दो' की साथकता जीवन–दशन को आत्मसात् करने से ही आयेगी । समस्त जीवो के प्रति समता के भाव को प्रतिष्ठित करने से ही हम अपनी आत्मा के विभिन्न आयमो को समझ सकेंगे । आत्मा के गुणो का विकास तभी सम्भव होगा । यही हमारा आत्म–दशन होगा । आत्म साक्षात्कार की निरंतर साधना हमे समता के उस विकास पर ले जायेगी जहा आत्मा परमात्मा का स्वरूप ग्रहण करता है । आत्मा के श्रेष्ठतम ज्ञान के द्वार समता की साधना से ही खुलते हैं । यही परमात्म–दशन है । इस तरह आचाय नानेश ने सयम से समता का न केवल उद्घोष किया है, अपितु समता को व्यवहार मे लाने के लिए अनेक माग भी प्रशस्त किये हैं ।

समता-व्यवहार का एक आयाम है—धर्मपाल प्रवृत्ति । इस अभियान के द्वारा न केवल हजारो अनपढ ग्रामीण और साधनहीन लोगो के जीवन मे सयम के वीज बोये गये हैं, अपितु उनको समाज मे प्रतिष्ठा देकर समता का प्रथम पाठ भी उन्हे पढाया गया है । समाज–सेवा का सयम के साथ यह गठबंधन है । व्यसन–मुक्ति से जन–जीवन को ऊचा उठाने का यह नैतिक प्रयास है । समता–व्यवहार का दूसरा आयाम है—समीक्षण ध्यान । सयम की साधना केवल लौकिक उपलब्धियो मे ही न रम जाय, प्रदशन की वस्तु न वन जाय, इसलिए आचार्य नानेश ने सयमी व्यक्ति को, समताधारी का समीक्षण–ध्यान मे उतरना अनिवाय किया है । समीक्षण ध्यान का अथ है–राग द्वेष के बन्धनो से निरन्तर मुक्त होने का प्रयत्न करना । साधुजीवन का प्रमुख प्रतिपाद्य यही है । अत वह सयम की यात्रा से समीक्षण के पडाव तक पहुचे, यही साधना का लक्ष्य है चाहे वह साधु हो या श्रावक । सयम के इन आयामो का पालन करने मे, उपचार करने मे, व्याख्या करने मे दीक्षा–जीवन के इन पचास वर्षों मे आचाय नानेश ने असयम के साथ कोई समझौता नही किया, यही मात्र उनकी कठोरता है, कट्टरता है, अन्यथा उनके जसे निरभिमानी, सौम्य सरल, समताधारी व सन्त व आचार्य आज हैं कितने ? जो हैं, सादर प्राणम्य है । सक्षेप में यही कहा जा सकता है कि सयम जिनका सत्य है, सयम जिनका जीवन है, उन नानेश के चरणो मे शत-शत प्रणाम ।

—अध्यक्ष, जैन विद्या एव प्राकृत विभाग
सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

□—□

मगलकारी नानागुरु जी

❀ श्री भीखमचन्द भसाली

आचार्य श्री नानेश के दीक्षा अर्द्ध शताब्दी महोत्सव के अवसर पर हम सबकी खुशी का कोई ओर-छोर नजर नही आता । आज के पवित्र दिन मुझे एक घटना याद आ रही है जो बार-बार श्रद्धा के अतिशय क्षेत्र मे एक चमत्कार की भाति अपनी चमक बिखेरती है ।

उन दिनो भारत वर्ष के सन्त-समाज की विरल-विभूति आचार्य श्री नानेश का विचरण सवाई माधोपुर क्षेत्र मे हो रहा था । गुरुदेव का स्वास्थ्य ठीक न होने के समाचार पाकर मैं अपनी धर्मपत्नी सहित कलकत्ते से रवाना होकर सवाई माधोपुर की ओर चल पडा । हम दोनो चौथ का बरवाडा पहुँचे । गुरुदेव वहा से करीब ५-६ किलोमीटर दूर एक गाव मे विराज रहे थे, जहा पहुचने के लिए बैलगाडी के अलावा और कोई उपाय नही था ।

हम दोनो तथा पडित श्री लालचन्दजी मुणोत बैलगाडी मे बैठकर आचार्य श्रीजी के दर्शनार्थ रवाना हो गए । मार्ग मे एक नदी पडती थी, जिसे पार किए बिना गाव मे जा सकना सम्भव नही था । गाडीवान ने कहा कि आप लोग यहीं उतर कर रेल की पटरी के सहारे पैदल चल कर नदी के उस पार आइये, मैं गाडी सहित नदी पार करके आता हू । हम लोगो ने पैदल चल कर रेल की पटरी से नदी पार कर गाव मे प्रवेश किया और गुरुदेव के दर्शन वदन का लाभ भी लिया किन्तु गाडीवान को नदी पार करने मे करीब २ घण्टे का समय लग गया ।

दिन भर करीब ३ बजे दोपहर तक आचार्य-प्रवर की सेवा मे रहने के बाद हम वापस चौथ का बरवाडा जाने को तैयार हुए । इधर हम लोगों ने प्रस्थान किया और उधर आकाश मे घनघोर घटाएं छा गईं । आशा थी कि वर्षा एक-डेढ घण्टे ठहर कर आवेगी किन्तु कुदरत ने कुछ दूसरा ही खेल दिखाया । जैसे ही हम रवाना हुए कि करीब १० मिनट बाद ही जोर से बारिश आने लगी । बरसते मेह में नदी को पार करने की समस्या से घोर चिन्ता होने लगी ।

गाडीवान ने नदी के किनारे हमे उतारा और हम फिर रेल की पटरी के सहारे बरसात मे भीगते हुए नदी को पार करने लगे । हमने करीब आधा घंटे मे रेल पटरी के सहारे चलते हुए नदी पार की । यद्यपि हम मार्ग मे बैलगाडी से नदी पार आने मे कम-से-कम एक-डेढ घण्टा लगेगा, ऐसा सोचते हुए चिन्तित हो रहे थे, किन्तु जब नदी पार पहुचे तो बैलगाडी आगे हमे ले जाने को तैयार खडी थी । हम तीनो उस गाडी मे बैठकर चौथ का बरवाडा पहुच गए । मार्ग

मे इतना पानी बरसा और हम इतने भीगे कि पडित श्री मुणोत जी के बीमार पडन का तो पक्का विश्वास हो गया। किन्तु किसी को कोई तकलीफ नहीं हुई।

यह एक प्रकार से गुरुदेव के अतिशय का ही प्रभाव था। यह एक आश्चय-जनक घटना थी। बैलगाडी का बरसते मेह और बढते जल प्रवाह मे सहज ही पार उतरना और उस स्थिति में किसी का भी बीमार न होना, सच्ची श्रद्धा के सदभ मे गुरुदेव की महान कृपा का ही सुफल है, ऐसी मेरी दृढ आस्था है।

हमने बाद मे ईसरदा गाव से वनस्थली तक सेवा का लाभ लिया और सदैव सभी प्रकार से कष्ट मुक्त रहे। भगवान से मेरी व मेरी धमपत्नी की प्रार्थना है—

जुग-जुग जीये, नाना गुरुवर
धम ध्वजा फहराओ
पावनकारी, मंगलकारी
म्हारा नाना गुरुवर हो

—७५ नेताजी सुभाष माग, कलकत्ता

नानेश-वाणी

सकलन—श्री धर्मेश मुनिजी

❀ व्रतो और नियमो के कठोर पालन से साधु इधर-उधर डिगे नही, इस दिशा में निरन्तर प्रयत्नशील रहने वाला ही वास्तविक अर्थो मे साधु को समाधि पहुंचाता है।

❀ श्रावक-श्राविकाओ को तथा सघ को पूरी सावधानी रखनी चाहिये कि साधु के साथ वैसा ही व्यवहार हो, जिससे उसके साधु-जीवन की तया सुरक्षा हो। इसका सघ पर विशेष उत्तरदायित्व होता है।

❀ समाज मे गुणवान और विद्वान् का पूरा सम्मान हो धनवान से भी अधिक तथा उनकी सदाशयी शक्ति का सघ की उन्नति मे यथेष्ट रूप से उपयोग किया जाय।

❀ सेवक की सेव्य के प्रति सेवा इस उद्देश्य से होती है कि सेवक भी सेव्य के तुल्य बन जाय और सेव्य की सी सवशक्ति, सर्वज्ञता एव सवदर्शिता सेवक की आत्मा मे भी व्याप्त हो जाय।

आचार्य श्री का संयम-साधना

※ श्री प्रतापचन्द भूरा

जब तक मनुष्य को मनपयव ज्ञान की प्राप्ति नही हो जाती तब तक वह किसी दूसरे प्राणी के अ त करण को देख नही सकता और उसके गुणों का स्पष्ट दशन नही कर सकता किन्तु फिर भी यदि वह चाहे और प्रयास करे तो अपने आराध्य गुरुदेव के कुछ गुणो की झाकी अपने मागदशन के लिए पा ही लेता है । मोटे रूप मे आचार्य श्री नानेश की सयम साधना के दो पक्ष दिखाई देते हैं । पहला पक्ष-भाव सयम और दूसरा है—द्रव्य सय । उनके भाव सयम और द्रव्य सयम को निम्नलिखित चित्रो से समझा जा सकता है और अपने स्मृति पटल पर हमेशा के लिए अ कित किया जा सकता है ।

भाव यम—

∘ प्रतिक्रमण (प्रायश्चित) ∘ लक्ष्य की स्थिरता ∘ लक्ष्य प्राप्ति की साधना

द्रव्य सयम—

∘ सुखानुभूति से मुक्ति ∘ दु खानुभूति से मुक्ति ∘ भौतिक इच्छा से मुक्ति
∘ पूण अप्रमत् दशा ।

प्रतिक्रमण (प्रायश्चित) यदि मनुष्य अपने कर्मों से मुक्त होना चाहता है तो उसे अपने पूर्वकृत दोषो का स्मरण करके उसके लिए पश्चाताप करना और प्रायश्चित् लेना आवश्यक है जिससे अशुभ कम कर सकें या कुछ हल्के कर सकें । ऐसा करते समय उसे अपना ही दोष देखना चाहिए और दूसरों का दोष देखने से पूण रूप से बचना चाहिए । यह साधारण प्रतिक्रमण से बिल्कुल भिन्न है और आत्मा से पाप-मल को दूर करने मे मनुष्य की सहायता करता है।

लक्ष्य की स्थिरता—श्री नानेशाचार्य ने समीक्षण ध्यान की व्याख्या करते हुए यह स्पष्ट किया है कि मनुष्य जीवन का अन्तिम और एकमात्र लक्ष्य सिद्ध पद की प्राप्ति ही है । मानव जीवन ही एक ऐसा अवसर है जबकि इस पद की प्राप्ति की साधना की जा सकती है अत "सिद्ध बनूगा" इस सकल्प को बार बार दोहराकर स्थिर करना चाहिए ।

लक्ष्य प्राप्ति की साधना—श्री नानेशाचाय ने अनुकूल और प्रतिकूल दोनो परिस्थितियों में स्वय ही समता धारण की है और हमारे सामन यह आदर्श उपस्थित किया है कि हम भी अपने जीवन को समतामय बनावें । इसके लिए यह आवश्यक है कि हम अपने अवगुणों की सूची बनावें । ये अवगुण अन्दर क्या टिके हुए हैं, इस बात को समझें । इन अवगुणों पर किन सूत्रों से

विजय प्राप्त की जा सकती है, इन विचारो का (१) बारम्बार स्वाध्याय करें (२) उन पर चिंतन करें (३) भविष्य मे घटित होने वाली घटनाओ मे समता भाव रखने की कल्पना द्वारा अभ्यास करें, जिससे हमारा जीवन समतामय बनने की ओर आगे बढ सके ।

सुखानुभूति से मुक्ति—श्री नानेशाचाय अपने दैनिक जीवन मे, भौतिक सुखो मे रस नही लेते । वे कठोर सयमी जीवन बिताते हैं और सुखो की इच्छा नही करते ।

दु खानुभूति से मुक्ति—श्री नानेशाचाय के आख के ऑप्रेशन के समय उनमे असाधारण समता देखी गई । विरले ही मनुष्य ऐसे मिलेंगे जो इतना कष्ट होते हुए भी समता रख सकें । वास्तव मे उन्होने दु ख को अपना कर्म काटने वाला मित्र समझा ।

भौतिक इच्छा से मुक्ति—जो मनुष्य भौतिक सुखो और दुखो से मुक्ति पा लेता है वह भौतिक इच्छाओ का शिकार हो ही नही सकता । आचाय श्री जी का कहना है कि 'अशुभ च्छाओ का निरोध और जीवन निर्माण में सहायक इच्छाओ का शोधन करना लाभदायक रहता है ।'

पूण अप्रमत्त दशा—यह देखा गया है कि नानेशाचाय पाच महाव्रतो के पालन मे, अपने दैनिक जीवन मे और अपने सामाजिक जीवन मे हमेशा पूण अप्रमत्त दशा और समता भाव मे रहते हैं ।

उनके जीवन से हमे यह शिक्षा मिलती है कि हमे दुर्भावना, क्रोध, अहम् भावना, कम फल-चेतना, मोह आदि से मुक्त रहकर सिद्ध पद प्राप्ति के माग मे बढते रहना चाहिए ।

—नई लेन, गगाशहर

□

नानेश वाणी

❀ **सकलन—श्री धर्मेशमुनिजी**

◦ सेवा करने वाले व्यक्ति को यह सोचना चाहिये कि मैं सेवा अन्य की नही कर रहा हू, अपितु अपने आपकी ही कर रहा हू । अन्य की सेवा के निमित्त से स्वय की ही आत्मा का परिमार्जन कर रहा हू ।

◦ सकल्प मजबूत हो और विश्वास अटल बन जाय, तब सेवा की सच्ची साधना सभव बनती है । वह चाहे किसी भी वेश में हो—एक सच्चा सेवक कहलाता है ।

महान् तेजस्वी आध्यात्मिक संत

※ सेवाभावी श्री मानवमुनि

भगवान महावीर के २५०० सौ वष बाद भी महावीर का चातुर्विध तीथ श्रावक श्राविका, साधु-साध्वी हैं। यही जैन धर्म भी कहता है। युग पुरुष आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा ने स्वराज्य के पूव देश को निभयता के साथ खादी-ग्रामोद्योग एव आत्म साधना का सदेश दिया जिसके कारण राष्ट्रपिता महात्मा गाधी, श्री ठक्कर बापा आदि अनेक राष्ट्र नेता प्रभावित हुए। जन धर्म का गौरव बढाया। उन्ही सिद्धातो को स्वराज्य को गतिशील बनाने में वर्तमान अहिसक क्राति के मसीहा, बालब्रह्मचारी, समतादशनधारी, समीक्षण ध्यान योगी धमपाल प्रतिबोधक आचार्य श्री नानालालजी म सा विज्ञान युग के महान तेजस्वी आध्यात्मिक सत हैं जो निभय-निर्वैर हैं। आपने स्थानकवासी जन समाज का एव अ भा साधुमार्गी जैन सघ का गौरव बढाया है।

समाजवाद, साम्यवाद, सर्वोदय के विचारो का गहराई से चिन्तन कर आपने कहा-हिंसा का मूल कारण परिग्रह है, असमानता है। आपने समता का नया दर्शन दिया। स्वय के समतामय जीवन से परिवार का नया ढाचा ढलेगा। इस परिवतन के साथ समाज राष्ट्र एव विश्व मे भी आध्यात्मिक अनुशासन का प्रसार हो सकेगा। सयम साधना द्वारा ही जीवन-विकास आत्मोन्नति एव परमात्म स्थिति तक सहजता से पहुचा जा सकता है।

पूज्य आचार्य श्री से मेरा विशेष सम्पक धमपाल प्रवृत्ति से प्रारभ हुआ। मैंने देखा कि गांधीजी ने अछूतोद्धार का जयघोष किया पर समाज उसे अपना नही सका पर आचार्य श्री नानेश ने २५ वष पूव धर्मोपदेश देकर बलाई जाति का हृदय-परिवतन कर उसे व्यसनमुक्त करवा कर नये समाज का अभ्युदय किया। धमपाल प्रवृत्ति के रूप मे इसका प्रभाव अ भा साधुमार्गी जन सघ पर हुआ। इन्दौर अधिवेशन मे सघ ने इसे अपनी प्रवृत्ति मान ली। हजारो परिवारो को अहिसक बनाया। स्व राज्यपाल पाटस्करजी ने तो चर्चा के दौरान कह दिया था कि गाधी का अधूरा काय आपने पूण किया, स्वप्न साकार किया। यह इस युग का महान क्रान्तिकारी कार्य हुआ जिससे मैं अधिक प्रभावित हुआ।

आचार्य श्री के प्रभाव का एक प्रसग स्मरण आ रहा है। गुजरात से रतलाम की ओर आपका विहार हुआ। मध्यप्रदेश का झाबुआ आदिवासी क्षेत्र पूण पहाडी इलाका। वहां प्रत्यक्ष देखा कि आदिवासी परिवार वालो मे आपको देखकर अपनी भाषा मे कहते 'यो धोला कपडा वाले भगवान आवी गयो।' आप कुछ समय रूक जाते व उनको समझाते 'मनुष्य जन्म मिल्यो है तो पाप नही

करणो, किणी जानवर को नही मारणो । तुम सब राम का भगत हो । मनख थमारो पवित्र अच्छो वणाश्रो ।' इतनी बात सुनते ही उनके मन का अज्ञान रूपी अधकार दूर हो जाता व धम रूपी ज्ञान का प्रकाश उनके हृदय मे प्रवेश पा जाता । नियम-साधना आध्यात्म का ऐसा प्रभाव देखा । आदिवासी लोगो ने कहा—'पहिला घणा साधुडा आया पण तमारा जैसा हमणो पहिली वार देखा ।' थोडी देर तक के साथ भी चले । आदिवासी महिलाओ ने भीलडी भाषा मे राम का गीत सुनाया । अनेक परिवारो ने शराब, मास का त्याग किया । ऐसे अनेक प्रसग हैं । लिखने लगू तो समय भी लगेगा व लम्बा भी होगा । इतना अवश्य है कि आपके सत्सग के सहवास से मुझे सयम साधना मे शक्ति मिली, भोजन मे भी २० द्रव्य की मर्यादा थी, जीवित सथारा भी पच्चक्खाण किया ।

मैंने देखा है कि आपने समय को साधा है । एक क्षण भी आपके जीवन मे प्रमाद नही है । भगवान महावीर ने गौतम स्वामी से कहा था—'समय गोयम मा पमायए ।' हे गौतम ! एक क्षण भी प्रमाद मत कर । वही दशन आचार्य श्री जी के जीवन का है । ऐसे महापुरुष के चरणो मे कोटि-कोटि वदन ।

□

नानेश वाणी

❀ सकलन—श्री धर्मेशमुनिजी

◦ क्या आप अपनी मृत्यु को जल्दी से जल्दी बुलाना चाहते हैं ? यदि नही, तो छोटे और वडे सभी प्रकार के दुर्व्यसनो को तुरन्त त्यागने की तैयारी कर लीजिये ।

◦ सच्चा योग यही है कि कोई अपने मन, वचन एव काया की योग-वृत्तियो को सवृत बनाकर उन्हें 'कु' से 'सु' की दिशा मे मोड दे । जो योग का सच्चा अथ नही समझते हैं, वे विचारहीन शारीरिक क्रियाओ मे योग को ढूढते हैं ।

ककश, कठोर, मर्मकारी, असत्य आदि भाषा के दूषणो का त्याग हो तथा मन मे सरलता का निवास हो तभी मौन व्रत का ग्रहण करना साथक एव सफल कहलाता है ।

◦ हे साधक, तू यदि सहज योग की साधना के साथ जीवन का अति उत्कृष्ट बनाने का इच्छुक है तो ईर्या समिति की सम्यक् पालना के साथ चल ।

वर्षावास का आनन्द ले लिया

❀ श्री फकीरचन्द मेहता

आज से २० वर्ष पूर्व आचार्य श्री नानालाल जी महाराज अमरावती (महाराष्ट्र) का वर्षावास करके खानदेश की ओर पधार रहे थे। उनकी सेवा में मैं अकोला पहुचा। उनसे विनम्र निवेदन किया कि कृपया भुसावल पधारें।

महाराज जी ने फरमाया कि मैं उस तरफ आ रहा हू। आपकी विनती मेरी झोली मे है। फिर फतेहपुर होते हुए जामनेर पधारे तब वहा व श्री राजमलजी सा ललवानी का फोन आया कि आचार्य श्री संत मण्डली सहित जामनेर पधारे हैं, आप आ जावें।

इस तरह भुसावल के कुछ श्रावको को लेकर मैं जामनेर पहुचा। होली चातुर्मास पर भुसावल पधारने बावत विनती की। जवाब मे उन्होंने स्वीकृति फरमाई। यह वार्ता भुसावल के कुछ विशिष्ट श्रावको के हृदय में अच्छा नहीं लगी क्योकि वे श्रमण संघ मे नही हैं। यह क्षेत्र श्रमण संघ का मानने वाला है इस वास्ते भुसावल के कुछ लोग आचार्य जी की सेवा मे जामनेर पहुचे। उनसे कहने लगे कि आप भुसावल नही पधारना। यह श्रमण संघ का क्षेत्र है। आचार्य श्री ने फरमाया कि मैंने मेहताजी की विनती स्वीकार करली है। मैं भुसावल आऊंगा और होली चातुर्मास का प्रतिक्रमण करूगा। यह बात सुनकर गए हुए श्रावको के मन में खलबली मच गई।

आचार्य श्री ने अपने निर्णयानुसार भुसावल की ओर विहार किया। मेरे विद्यालय के २५००/३००० बच्चो को लेकर मैं आचार्य श्री की अगवानी में भुसावल शहर के बाहर पहुचा। उस दिन मुस्लिम लोगो का त्योहार भी था। उसी रोड से वे लोग भी हजारो की तादाद मे निकलते रहे थे। इस तरह आचार्य श्री का भव्य स्वागत भुसावल मे दिखाई दिया। वहा से शहर में होते हुए आचार्य श्री संत मण्डली सहित हिन्दी विद्यालय के प्रांगण मे पधारे। उनका ८ दिवसीय कार्यक्रम तय किया जिसमे वहां के नगर निगम हाल व अन्य विद्यालयो मे प्रवचन रखे गये। हजारो की तादाद मे जनमेदिनी उनके व्याख्यान में आती रही। यह सब चर्चा भुसावल के श्रावको के नजर मे आई और उनका भी आना शुरू हो गया।

आचार्य श्री फरमाने लगे कि 'मेहता! तुमने तो वर्षावास का आनन्द ले लिया।' महाराज श्री विराजे तब तक उनके धर्मानुरागी श्रावक-श्राविकाएं बाहर गांव से सैकड़ो की तादाद मे आते रहे। मुझे भी इन सबकी सेवा का लाभ मिला। तब से अभी तक आचार्य श्री के नजर मे भुसावल का वह होली चातुर्मास अमिट छाप लिया हुआ है।

—पारस, ६ भंडारी मार्ग, न्यू पलासिया, इन्दौर-१

प्रभावशाली व्यक्तित्व

❀ श्री रतनलाल सी बाफना

परम श्रद्धेय आचार्य श्री नानालाल जी म सा ने महती कृपा कर स २०४६ का चातुर्मास यहा किया। चातुर्मास के प्रवेश पर आचाय श्री का सवप्रथम प्रभाव हम पर यह पडा कि प्रवेश पर किसी मुहूत का विचार न करते हुए नवकार मन्त्र के उच्चारण के साथ प्रवेश किया। प्रवेश के मुहूर्त की जब हमने चर्चा की तो आचार्य श्री ने स्पष्ट कहा कि मैं मुहूत मे विश्वास नही करता।

चातुर्मास प्रवेश पर आचार्य श्री ने जो उद्‌गार फरमाए, मेरे मन-मस्तिष्क मे तरोताजा है—"यह जल का गाव है। जहा जल है वहा क्या कमी रहती है ? जहा प्राणीमात्र के लिए जरूरी है वहा समृद्धि का कारणभूत होता है," सच मानिए जब से इन आचार्यो की कृपा दृष्टि जलगाव पर हुई, जलगाव की समृद्धि मे उत्तरोत्तर वृद्धि हुई। यह सब गुरु कृपा का ही चमत्कार समझता हू।

पहले ऐसा सुनने मे आया था कि आचाय श्री व उनके सत 'गुरु आम्नाय' का चक्कर बहुत चलाते हैं, पर चार मास मे किसी सत के मुह से गुरु आम्नाय का चक्कर सामने नही आया। पूरा चातुर्मास धमध्यान के साथ सानन्द बीता। श्रावक व्यवस्था मे आचाय श्री ने किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप नही किया। जब कभी व्यवस्था के बारे मे पूछा जाता, यही जवाब मिलता—आपकी व्यवस्था आप जानो।

हमें डर था कि आचाय श्री लाउडस्पीकर वापरने की मान्यता वाले नही होने से व्याख्यान का मजा नही आयेगा पर आचाय श्री की ओजस्वी वाणी से सवत्सरी महापव के दिन भी इस कमी का अहसास नही हुआ। पूरे चातुर्मास में आपको समता विभूति के रूप मे देखा। समय की पाबन्दी, क्रिया मे निष्ठा व प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले आचाय श्री वस्तुत दशनमूर्ति हैं।

भौतिकवाद के इस युग मे जहा तक मुझे ख्याल है आचार्य श्री के आचाय काल मे सबसे ज्यादा सत-सतियो की वृद्धि हो रही है। सामूहिक दीक्षाए इसका प्रमाण है।

आचार्य श्री दीर्घायु प्राप्त करें व अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व से समाज का मागदर्शन करते रहें, ऐसी नम्र कामना के साथ वन्दन करता हू।

—"नयनतारा' सुभाष चौक, जलगाव ४२५००१

अन्तरावलोकन का राजपथ :- समीक्षण ध्यान

❀ श्री मगनलाल मेहता

परम श्रद्धेय आचार्य श्री नानेश की मानव, समाज को आज जो सबसे बडी देन है वह है 'समीक्षण' और 'समता' की विचारधारा। समता प्रतिफल है और समीक्षण वह राजपथ है जिसके द्वारा उसे प्राप्त किया जा सकता है। आचार्य श्री का अद्भुत व्यक्तित्व, उनकी अनुपम शात मुखमुद्रा और एक क्राति मय आभामण्डल इस बात का प्रतीक है कि उन्होंने इन सिद्धान्तो को केवल उपदेशित ही नही किया है वरन जीवन मे आत्मसात् भी किया है। हम जब भी उनके सामने होते हैं ऐसा प्रतीत होता है जैसे एक शान्त अमृतमय सुधारस हमारे मे प्रविष्ट हो रहा है और हमे भी पवित्र कर रहा है। उनके सामने से हटने की इच्छा ही नही होती। यही कारण है कि आज वे हजारो लाखो लोगों के श्रद्धा के केन्द्र बने हुए हैं और लोग केवल उनकी एक पावन झलक के लिये तरसते है। उनका सान्निध्य प्राप्त कर उपदेशो के हृदयगम करने वाले तो निश्चय ही सौभाग्यशाली हैं।

समीक्षण का सीधा सा अर्थ है स्वय का आत्म निरीक्षण, अन्तरावलोकन और उसके द्वारा समता भाव की प्राप्ति। आज हमारे देखने का दृष्टिकोण ही भिन्न बना हुआ है। हम लोग सदैव बाहर दूसरे की ओर देखते हैं लेकिन स्वय को कभी नही देखते। दूसरे के पास क्या है और क्या कह रहा है इसे भी मैं अपने दृष्टिकोण से देखता हू। लेकिन मैं स्वय क्या हू और क्या करता हू इसे देखने का मैंने कभी प्रयास नही किया। जिस व्यक्ति को मैं अपना समझ रहा हू, वह मुझे प्रिय है लेकिन वही व्यक्ति यदि किसी दूसरे का हो जाता है तो मुझे अप्रिय हो जाता है। जो सम्पत्ति मेरी है वह मुझे प्रिय है लेकिन वही सम्पत्ति यदि दूसरे के पास होती है तो मुझे द्वेष हो जाता है। इस तरह जीवन की प्रत्येक घटनाओ के और व्यवहारो के देखने के मेरे दृष्टिकोण भिन्न-२ होते हैं। इन्ही कारणों से हमारे भीतर कषायो की उत्पत्ति होती है और हम राग और द्वेष की भयकर अग्नि मे अपने आपको जलाते हुए दु ख, क्लेश और सतापो का आमन्त्रित करते रहते हैं।

समीक्षण विचारधारा सबसे पहले हमारे दृष्टिकोण को बदलने पर जोर देती है। हम बाहर की ओर देखना बन्द करें और स्वयम की ओर देखने का प्रयास करें। मैं कौन हू ? क्या हू ? मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है ? मैं क्या कर रहा हू ? और क्या मुझे करना चाहिये ? यद्यपि भीतर की ओर दृष्टि

मोडना कोई सरल काय नही है क्योकि हमारा मन एक बेलगाम घोडे की तरह प्रतिक्षण बाहर की ओर भागने का अभ्यस्त है। अत साधना के मार्ग पर अग्रसर हुए व्यक्ति के लिये सबसे पहले इस मन को एकाग्र करना अत्यन्त आवश्यक है। मुझे वह क्षण आज भी अच्छी तरह याद है जब रतलाम चातुर्मास के पूर्व आचार्य भगवन ने मेरे तथा हमारे कुछ साथियो पर अत्यन्त अनुकृपा कर साधना का वह माग हमे बताया और उस पर चलने के लिये हमे प्रेरित किया। मन की एकाग्रता के लिये द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की शुद्धि के साथ श्वास और प्राणायाम के प्रयोग बहुत ही लाभकारी होते हैं। स्वत श्वास पर मन को केन्द्रित करना, पूरक, रेचक और कुभक की क्रिया, अर्हम् अथवा किसी भी शुद्ध स्वरूप या ध्वनि पर मन को केन्द्रित करना, भ्रामरिक गुजार, शरीर मे स्थित विभिन्न शक्ति केन्द्रो पर मन ही एकाग्र करना आदि अनेक ऐसे प्रयोग हैं जो मन को एकाग्र करने मे सहायक होते है। यद्यपि इसके लिये भी सतत प्रयास और प्रतिदिन के अभ्यास की आवश्यकता होती है।

मन की एकाग्रता साधने के बाद हमे हमारे बाहरी नेत्रो को बन्द कर भीतर की ओर देखना होता है। हमारे भीतर कितना गहन अन्धकार और कषायो की गन्दगी भरी पडी है, यह हमे स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगेगा। मैं चाहता हू कि प्रत्येक व्यक्ति मेरी आज्ञा का पालन करे, मेरी इच्छा के अनुसार चले और मेरी स्वाथ पूर्ति मे किसी प्रहार की बाधा न बने। इन्ही असभव अपेक्षाओ और आशाओ के कारण मैं स्वय का कितना बडा अहित कर लेता हू। मानसिक तनाव, बुद्धिविनाश, हेमरेज, हाट अटेक आदि अनेक बीमारियो को मैं अनायास ही आमन्त्रित कर लेता हू। अहकार का भूत दूसरो को तुच्छ समझने के लिये मुझे सदैव प्रेरित करता रहता है। जरासा सुख, जरासी सम्पत्ति, जरासा अधिकार, थोडा-सा ज्ञान, थोडा-सा तप मुझे आसमान पर बिठा देता है। अपने इसी अहकार के नशे मे मैं बडे-छोटे, मान-सम्मान के सब रिश्ते भूल जाता हू। स्वार्थ पूर्ति और लोभ की भावनाओ के वशीभूत होकर मैं कितने छल, कपट, झूठ, चोरी, हिंसा, व्यभिचार और यहा तक की हत्या जैसे भयकर दुष्कृत्य भी करने को तत्पर हो जाता हू। स्वार्थ की पूर्ति के अवसर पर मुझ भाई-बहन, पिता-पुत्र, प्रिय गुरुजन, बडे-छोटे किसी का कोई भान नही रहता है। मैं अन्धा हो जाता हू। "मैं" और "मेरा" शब्द मेरे राग की उत्पत्ति के कारण हैं और "तू" और "तेरा" मेरे भीतर द्वेष की वृत्ति को जागृत करते हैं।

समीक्षण साधना अन्तरावलोकन का राजपथ हमे बताता है कि इस भौतिक ससार मे कुछ भी मेरा नही है। परिवार और भौतिक वस्तु मे तो ठीक यह शरीर भी मेरा नही है। प्रत्येक व्यक्ति खाली हाथ आता है और खाली हाथ ही चला जाता है। केवल अपने सुकृत्य और ज्ञान दृष्टि ही प्रत्येक आत्मा के

सहायक तत्व हैं । जैसे-तैसे व्यक्ति अन्तरावलोकन, आत्म निरीक्षण और वस्तु के चिन्तन की ओर अग्रसर होता है उसे स्वय के कषाय और राग-द्वेष की वृत्तिया स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगती है । एक बार जब हम हमारी बुराई और अज्ञान को समझ लेते है, उसे दूर करने की स्वत प्रेरणा जागृत हो जाती है। सतत प्रयास से हम निश्चित रूप से अपने मन को निर्मल करते हुए आत्मा के शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर सकते हैं, कषायो से मुक्त राग-द्वेष हीन दशा ही आत्मा की मुक्त अवस्था है । यही मोक्ष है जिसके हम अभिलाषी है ।

पूज्य गुरुदेव के आत्म बोध के इस सन्मार्ग का ज्ञान कराने और उस पर अग्रसर होने की प्रेरणा देने के लिये पुन शत्-शत् वन्दन, अभिनन्दन और उपकार के लिए नतमस्तक ।

—चादनी चौक, रतलाम

□

नानेश वाणी

❀ सकलन—श्री धर्मेशमुनिजी

○ प्रतिकार करने का सामर्थ्य है, किन्तु सात्विक भावना के साथ वह प्रतिकार के बारे मे सोचता भी नही तथा हृदय से सदा के लिये उसको क्षमा कर देता है—यही वास्तविक एव सात्विक क्षमा होती है ।

○ क्रोध से बच गये तो समझिये कि जीवन के पतन से बच गये ।

○ भेद-भाव के विचार मनुष्य के आचरण मे बराबर हिंसा को स्थान देते रहते हैं । भेद समानता की विरोध स्थिति होती है । भेद का अर्थ हैं कि या तो अपने को बडा समझे या अपने को हीन मान्यता के साथ छोटा समझें । बडा समझने पर मदोन्मत हिंसा आती है और हीन समझने पर प्रतिक्रियात्मक हिंसा का जन्म होता है । अभिप्राय यह है कि जहां भेद-भाव आता है, वहा किसी न किसी रूप में हिंसा भी आती ही है ।

○ बुद्धि, धन, बल या विद्या—किसी की भी शक्ति स्वय के पास हो तो उसका कर्त्तव्य माना जाना चाहिये कि वह अपनी शक्ति का दूसरो के हित के लिये सदुपयोग करें ।

अनेक गुणो के धारक : आचार्य नानेश

❀ प लालचन्द मुणोत

जह दीयो दीवसय पइप्पए जसो दीवो
दीव समा आयरिया दिव्वति पर च दिवति

जिस प्रकार दीपक स्वय प्रकाशित होकर अन्य सैकडो दीपको को प्रकाशित करता है। उसी प्रकार आचार्य ज्ञान-दशन-चारित्र द्वारा स्वय प्रकाशित होकर अन्य को प्रकाशित करते हैं।

इसी शास्त्रीय कथन को परम श्रद्धेय आचाय प्रवर पूज्य श्री नानालालजी म सा के सत्सान्निध्य मे रहकर वर्षो तक सघीय कार्य करते हुए मैंने उनके जीवन मे अनेक रूपो मे देखा तथा अनुभव किया। आचाय श्री नानेश समता की अद्वितीय साक्षात् प्रतिमूर्ति, अदम्य साहसी, उत्साही, आत्मबली, कष्ट सहिष्णु, निराभिमानी, गुप्त तपस्वी, प्रवचन प्रभावक समभावी, समीक्षण-ध्यान योगी, दीघ द्रष्टा, यशस्वी, तेजस्वी, छुआछूत की कृतिमता के विरोधी, दलितोद्धारक, धमपाल प्रतिबोधक, शासन के सफल सचालक, अनुशास्ता, सगठन के हिमायती, चमत्कारिक वचनसिद्धि जिनशासन प्रद्योतक कमठ सेवाभावी चारित्रनिष्ठ अद्वितीय ज्योतिधर महापुरुष हैं। वे स्वय इन गुणो से प्रकाशित हैं तथा जन-जीवन को प्रकाशित किया है और कर रहे हैं।

आचाय श्री नानेश के जीवन मे ये उपयुक्त गुण कितने साथक हैं। इनसे सबधित घटनाए यथावत तो मेरे स्मृति पटल पर नही है पर कई घटनाए मेरी स्मृति में हैं उनमे से कुछ इस प्रकार है—

१ आचाय श्री नानेश के जीवन मे क्रोध जनित कोई भी समस्या उत्पन्न हुई तो आपने उसे धैयपूर्वक सहनशीलता एव समता भाव से सहन किया। प्रकट रूप मे उत्तेजित होना तो दूर मुख मडल पर भी क्रोध की किंचिदपि रेखाए तक परिलक्षित न हुई और न होती है।

२ आचाय श्री नानेश अदम्य उत्साही एव कष्ट सहिष्णुता के परम उपासक हैं। आचाय पद प्राप्त होने के पश्चात जब आप रतलाम का प्रथम ऐतिहासिक चातुर्मास पूण करके मालव प्रान्त के छोटे-२ अचलो मे विचरण कर रहे थे तब उनको ज्ञात हुआ कि इधर छोटे-२ गावो मे खेती करने वाले बलाई जाति के हजारो हिन्दू परिवार रहते हैं, उनको ईसाई बनाने के लिए ईसाइयों की मिशनरी प्रचार कर रही है तो आचाय श्री का करुणामय हृदय द्रवित हो उठा और ग्रीष्मकाल की प्रचण्ड गर्मी मे गावो की ओर विहार कर भूख-प्यास व सर्दी-गर्मी आदि के परिषहो को सहन करते हुए उन गावो मे अहिंसा का मार्मिक उपदेश दिया एव हजारो लोगो को मद्य-मासादि कुव्यसनो का त्याग कराकर जीवन मे सदाचार की ओर प्रवृत किया तथा अछूत कही जाने वाली बलाई जाति को धमपाल नाम से घोषित किया।

आचाय श्री नानेश अपने मुनि जीवन मे हमेशा एकान्त मे ज्ञान-ध्यान,

चिन्तन-मनन आदि मे तल्लीन रहते । क्योकि आप गृहस्थो से विशेष परिचय को मुनि जीवन के लिए हानिकारक समझते हैं । आचार्य पद प्राप्त होने के बाद शासन को चलाने के लिए श्रावको से सात्विक परिचय रखना आवश्यक हो जाता है सो रखते हैं । फिर भी उसमे विशेष रुचि हो, ऐसा नही लगता ।

आचाय श्री नानेश आभ्यन्तर एव गुप्त तप के महान तपस्वी हैं । तप के वारह भेदो में से बाह्य तपो मे शारीरिक क्रिया की मुख्यता रहने से वे प्राय दूसरो को दृष्टिगोचर होते है और आभ्यन्तर तप मे मानसिक वृत्तियो की मुख्यता रहने से वे प्राय दूसरो को दृष्टिगोचर नही होते । बाह्य तपो मे भी जितना अनशन तप दृष्टिगोचर होता है, उतने अन्य पाच तप नही ।

आचार्य श्री नानेश को वेला, तेला, पचोला, अठाई आदि वाह्य अनशन तप करते प्राय बहुत कम देखा गया । आप वाह्य तप नहीं करते हो ऐसा नहीं वल्कि आपकी बाह्य तपस्या भी ऐसी होती है जो प्राय हर व्यक्ति को मालूम नही होती । मैंने देखा है तथा सतो से भी सुना है कि आपकी अधिकतर ऐसी तपस्या होती है कि अमुक आहार अमुक मात्रा मे ही ग्रहण करना, अधिक नहीं। अमुक समय तक गोचरी आ जावे तो ग्रहण करना अन्यथा नही । निर्धारित समय मे लाये गये आहार म से अमुक चीज हो तो नही लेना स्वादिष्ट, रसयुक्त व चट पट पदार्थ हो तो नही लेना या लेना तो अमुक ही लेना या अमुक मात्रा से अधिक न लेना ।

आचाय श्री नानेश व्यक्ति की अपक्षा गुणो को विशेष महत्त्व देते हैं । व्यक्ति की श्रेष्ठता गुणो पर आधारित है अत छुआछूत की कृत्रिमता पर करारा प्रहार करते हैं और फरमाते हैं कि—

गुणो पूजा स्थान न च लिंग न च वय

आचार्य श्री नानेश चारित्र निष्ठ, शुद्ध सयम पालक कुशल महान् अनुशासक हैं । आप स्वय शास्त्रीय नियमोपनियमो का पालन करने मे हर समय तत्पर रहते हैं और अपने शिष्य परिवार के लिए भी सयमी मर्यादाओ का पालन कराने मे हर समय जागरूक रहते हैं । आप नवनीत के समान अतिकोमल पर सयमीय मर्यादाओ के पालन कराने मे अनुशासन की दृष्टि से महान् कठोर अनुशासक है ।

आचाय श्री नानेश चारित्र के साथ-२ ज्ञान की तरफ भी विशेष लक्ष्य रखते हैं जिससे सयमी मर्यादाओ का पालन करते हुए आपके सत्सान्निध्य में कई साधु-साध्वी उच्च कोटि के विद्वान तैयार हुए हैं और हो रहे हैं ।

आचाय श्री नानेश दीर्घ दृष्टा महापुरुष हैं । परम श्रद्धेय आचाय श्री गणेशीलालजी म सा के जावरा चातुर्मास मे शारीरिक अस्वस्थता ने उग्र रूप धारण कर लिया । ऐसी स्थिति मे जिस क्षेत्र मे उपचार के सब साधन उपलब्ध हो, वहा ले जाना अत्यावश्यक था । अत सत महात्मा अपनी भुजाओ पर उठा

कर रतलाम ले आये । पर आचार्य श्री नानेश को रतलाम उपयुक्त नही लग रहा था । कारण वहा उपचार के पर्याप्त साधन उपलब्ध होना कठिन था । फिर वहा से मदसौर नीमच ले आये । सभी सघ अपने यहा उपचार कराने हेतु आग्रह भरी विनती कर रहे थे । पर आचाय श्री नानेश को उदयपुर के सिवाय अन्य कोई क्षेत्र उपयुक्त नहीं लग रहा था । आखिर डाक्टरो की राय भी उदयपुर की होने से उदयपुर ले आये । ज्योतिषियो का कहना हुआ कि अब उम्र अधिक नही है पर आचार्य श्री नानेश की अन्तरात्मा साक्षी नही दे रही थी । आचाय श्री गणेशीलालजी म सा का उदयपुर मे किडनी का आपरेशन हुआ । तत्पश्चात धीरे-२ स्वास्थ्य मे सुधार आया और फिर अधिक अस्वस्थ हो गय तब अनका की राय हुई कि अब पूर्ण सथारा करा दिया जाय पर आचाय श्री नानेश ने नाडी देख कर कहा अभी पूण सथारा कराने जैसी स्थिति नही है । अत तीन दिन तक अचेतनावस्था मे सागारी सथारा चलता रहा । तीन दिन बाद चेतना आई और करीब तीन वर्ष तक जीवित रहे । यह सब आचाय श्री नानश की दीघदृष्टि का प्रतीक है ।

आचार्य श्री नानेश कर्मठ सेवाभावी हैं । स्व आचाय श्री गणेशीलालजी म सा की रुग्णावस्था मे यह देखा गया कि आपने अहर्निश अनन्यभाव से जो सेवा की उसका शब्दो द्वारा वणन किया जाना अशक्य है । इतना ही नही, छोटे से छोटे साधु के अस्वस्थ हो जाने पर भी रात-दिन अपनी सारी शक्ति सेवा मे अर्पण कर देते हैं ।

आचाय श्री नानेश महान् आत्मबली, साहसी एव उत्साही महापुरुष हैं । उदयपुर मे स्व आचाय श्री गणेशीलालजी म सा का स्वगवास हो जाने के बाद अब आपका साधु मर्यादा के अनुसार विहार होना आवश्यक होने से हाथीपोल से विहार होने की हलचल मची । तो स्थानीय सघ के तथा अन्य सदस्यो ने प्राथना की कि हाथी पोल होकर जाने मे आज उस तरफ दिशा शूल है । अन्य दरवाजे से विहार होना उपयुक्त है । आपने फरमाया सीधे माग को छोडकर चक्कर खाकर अन्य दरवाजे से विहार करना उपयुक्त नही है। मुहूत के चक्कर मे न पडें। जिस समय जिस काय को करने मे जिसका अतिउत्साह हो वही समय उसके लिए अत्युत्तम मुहुत है आदि कहकर हाथीपोल के दरवाजे से विहार कर दिया ।

आचाय श्री नानेश जो कुछ कहते वह सोच समझ कर फरमाते । इस पर कोई बाधा उपस्थित हो जाती तो कष्टो की तनिक भी परवाह न करते हुए अपने वचन का पूरा ध्यान रखते हैं । अत आपकी कथनी-करनी मे एकरूपता है।

आचाय श्री नानेश उच्च कोटि के महान् प्रभावक महापुरुष है । आपके प्रवचन प्रभाव से अनेक जगह अनेक परिवार झगडे समाप्त कर परस्पर आत्मीयता के साथ आनद ले रहे हैं ।

आचाय श्री नानेश महान चमत्कारिक महापुरुष है । नोखा मडी में एक

प्रज्ञा चक्षु वृद्धा बहिन की विनती पर आपश्री उसको दर्शन देने के लिए उसके घर गये और मांगलिक सुनाकर वापस लौटे कि उसके बाद उस वृद्धा की आंखों मे रोशनी आ गई ।

आचार्य श्री नानेश अलौकिक महापुरुष है । आपके प्रति जो व्यक्ति शुद्ध सात्विक श्रद्धा भक्ति रखता हुआ सच्चाई के साथ यथाशक्ति न्याय नीतिपूर्वक चलता है और धर्म पर भी श्रद्धा रखता है वह उपस्थित आपत्ति से जल्दी या देरी में अवश्य छुटकारा पाता है और अपनी उचित आवश्यकताओं की पूर्ति से वंचित नही रहता है ।

आचार्य श्री नानेश अध्यात्म प्रधान भारतीय संस्कृति के ज्योतिर्मय दीपक ही नही बल्कि सूर्य हैं । विषमता के युग मे समता का पाठ पढाने वाले महान समताधारी है । शिथिलाचार के विरुद्ध कडा प्रहार करने वाले क्रांतिकारी महापुरुष है । पूजा-प्रतिष्ठा, मान सम्मान के विरोधी हैं और शुद्ध सात्विक संगठन के पूरे हिमायती है ।

आचार्य श्री नानेश समीक्षण ध्यान के महान योगी पुरुष है । आप प्रतिदिन नियमित रूप से प्रात ३ बजे से पूर्व अपनी शय्या त्याग कर ध्यानारूढ़ हो जाते हैं । ध्यानावस्था मे आपके मुखमंडल पर अलौकिक तेज प्रस्फुटित हुआ देखा गया है ।

आचार्य श्री नानेश प्रदर्शन एव आडम्बरी प्रवृत्तियो से सदा विलग रहे हैं पर भक्तजन भक्ति के वश होकर विहार, नगर प्रवेश, तपस्या आदि की सूचनाओं को तथा जन्मोत्सव, दीक्षा महोत्सव, अर्द्ध शताब्दी वर्ष महोत्सव, स्वर्ण जयन्ती महोत्सव आदि को धर्म प्रचार-प्रसार व प्रभावना मे सहायक समझकर आयोजन करते हैं । पर इसमें केवल यही बात नही है । दूसरी तरफ भी देखना चाहिए । यदि इन बाह्याडंबर मे संत जन भी लिप्त हो जाते हैं तो संयम साधना मे धीरे २ शिथिलता आकर संयम विघातक बडी-बडी त्रुटियों का पनपना भी सहज स्वाभाविक है यही कारण है कि आचार्य श्री नानेश समय-२ पर आडंबरी प्रवृत्तियों का निषेध करते रहते हैं ।

अन्त मे मेरा यह निवेदन है कि परम श्रद्धेय आचार्य श्री नानेश के इस दीक्षा अर्द्ध शताब्दी वर्ष के प्रसंग से आचार्य श्री के उपरोक्त गुणों से प्रेरणा लेकर निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की सुरक्षा हो । कोई भी श्रावक साधु मर्यादा से विपरीत किसी भी छोटे-से छोटे कार्य मे भी न तो साधु समाज को प्रेरित करे और न ऐसे कार्य मे साधु समाज का सहयोगी बने ।

दूसरी बात दीक्षा अर्द्ध शताब्दी वर्ष के उपलक्ष में ५० हजार श्रावक-जन-आजन्म के लिए सप्तकुव्यसन के तथा मांगणी करके दहेज लेने के त्यागी हो साथ ही ५० हजार आयम्बिल तप भी करें ।

—विचरली मोहल्ला, ब्यावर (राज)

सागरवर गभीरा आचार्य श्री

❀ श्री रखवचन्द कटारिया
अध्यक्ष श्री साधुमार्गी जैन सघ

चरित्र चूडामणि, समता दर्शन प्रणेता अध्यात्म योगी, जिनशासन प्रद्योतक, समता विभूति आचाय श्री नानालाल जी म सा मे इतने गुण विद्यमान हैं कि उनका वर्णन किया जाय तो एक बडा भारी ग्रन्थ तयार हो सकता है फिर भी मैं सक्षिप्त मे लिख रहा हू ।

एक समय उदयपुर की वात है जब आचाय श्री गणेशीलाल जी म सा उदयपुर विराज रहे थे । उस समय आचाय श्री गणेशीलालजी म सा का स्वास्थ्य अव्यवस्थित रूप से नही चल रहा था । आचाय श्री नानालाल जी म सा भी सेवा मे लगे रहते थे । उस समय हम चार पाच जने दर्शनार्थ उदयपुर गये थे और आचाय श्री गणेशीलाल जी म सा से वातचीत चल रही थी कि युवाचाय श्री नानालाल जी म सा को ही बनाया जावे । तब श्री सूरजमल जी पिरोदिया ने कहा कि आप किनको युवाचाय बना रहे है ? ये किसी से भी वालते नही है । हम तो जब तक आप रहेगे तब तक स्थानक आवेंगे उसके वाद स्थानक मे नही आवेंगे । तब आचाय श्री गणेशीलाल जी म सा ने फरमाया कि तुम अभी तक नही जान सके, मैंने इनकी सारी परीक्षा करके देख ली है । ये सब वार्ते बाद मे नजर आयेंगी ये सयम पालन मे एकदम चुस्त हैं । सेवा का गुण भी इनमे गजब का भरा हुआ है । यह आप देख ही रहे हैं । सरलता, नम्रता आदि अनेक गुणो से ये सम्पन्न हैं । जिनशासन को ऐसा दीपायेगा कि लाग देखते रह जायेंगे । वास्तव मे ये सभी वार्ते आज प्रत्यक्ष मे दिखाई दे रही हैं । चारो दिशाओ में आचाय श्री नानालालजी म सा की जय-जयकार हो रही है ।

दिल्ली, बम्बई, राजस्थान, मध्यप्रदेश, पूना, मद्रास, बैंगलोर आदि क्षेत्रो को सत-सतिया ने फरसा है, उधर धर्म की ध्वजा फहराई है और चारो ओर नानागुरु की जय-जयकार हो रही है । ऐसे आचाय श्री सागरवर गभीरा हैं । रतलाम की वात ले लीजिये, जितने लोग रतलाम के दर्शनार्थ जाते हैं प्राय सभी से वातचीत होती है । कोई किसी की बुराई करता है तो कोई किसी की अच्छाई बताता है फिर भी आचाय श्री सभी की वातो को पी जाते हैं एक भी वात सामने नही आती है ।

हम दो व्यक्ति श्रीसघ की आज्ञानुसार भावनगर गये थे और आचार्य श्री

के सामने दीक्षा रतलाम मे हो ऐसी विनती रखी थी तो आचाय ने हमारी विनत शीघ्र ही मजूर करली । आचार्य श्री का हृदय कितना विशाल है कि दा व्यक्ति विनती लेकर गये और मजूरी प्रदान कर दी रतलाम नगर मे दीक्षा का भव्य आयोजन हुआ । उसमे २५ दीक्षा का भव्य वरघोडा निकाला गया था जो ऐतिहासिक रहा । विना बुलाए बोहरा समाज का बैंड दीक्षा जुलूस में शामिल हुआ जो वड मुल्ला सा के सिवाय किसी के यहा भी नही जाता है । यह एक लब्धि का कार्य हुआ । यह सब आचाय श्री के अतिशय का ही प्रताप है कि आचार्य श्री विहार कर जहा–जहा पधारते हैं वहा मेला–सा दृश्य दिखाई देने लगता है।

मुझे आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा, आचाय श्री गणेशीलालजी म सा, आचाय श्री नानालाल जी म सा, तीनो आचार्यों के दर्शनो का सौभाग्य प्राप्त हुआ लेकिन जो शासन व्यवस्था दीक्षा-शिक्षा, नियम–मर्यादा आदि आपश्री के शासन मे चल रही है वह अद्वितीय है । अनेक साधु–साध्वी को आपश्री ने दीक्षित किया, यह एक चामत्कारिक बात है ।

आचाय श्री नानेश का रत्नपुरी वर्षावास इतिहास मे स्वर्णाक्षरो में लिखा जायगा । २५ वष पश्चात् यह सम्पन्न हुआ । इस चातुर्मास मे अनक प्रकार की तपस्याए हुई जिसमे ६३ मासखमण ने सारे रेकाड तोड दिये और अनेक प्रकार के शीलव्रत, प्रत्याख्यान, अट्ठाई, सामूहिक आयंबिल व्रत, सामायिक साधना आदि अनेक प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान हुए । इस चातुर्मास मे आचाय श्री की प्रेरणा से ५६ विकलागो को नि शुल्क पैर लगवाकर मानवता की सेवा का महान् काय किया गया ।

—नौलाईपुरा, रतलाम (म प्र)

□

नानेश वाणी

० भोजन की आवश्यकता से भी अनावश्यक (प्रतिक्रमण) की आवश्यकता ऊपर है ।

० प्रवचन मूल रूप मे आगमों/शास्त्रो के ज्ञान प्रकाश मे अपनी आत्म साधना के धरातल पर निसृत श्रेष्ठ एव विशिष्ठ वचन होता है ।

० कैसा ही पापी, हिंसक या क्रूरतम व्यक्ति क्यो न हो–यदि उसके हृदय में वात्सल्य भावना उडेली जाय तो वह अपना श्रेष्ठ प्रभाव अवश्य ही दिखाती है ।

अनन्त अतिशयधारी श्री "नानेश"

⁂ श्रीमती लता 'काजल'

परम श्रद्धेय आचार्य प्रवर के महिमारजित व्यक्तित्व का वर्णन लेखनी की शक्ति से बाहर है, वह सर्वतोमुखी सुवासित अनुभूति तो केवल अन्तर्ग्राह्य एवं वाणी के क्षेत्र से अछूती ही है, परन्तु मैं अपनी हृदयस्थ भावनाओ को अभिव्यक्ति का स्वर देने के उल्लास मे निज की अज्ञानपूर्ण सामर्थ्य विस्मृत करने का दुस्साहस करने चली हू । कहते हैं न 'जादू तो वह जो सिर चढकर बोले' इस उक्ति के अनुसार इस समय मन की विचित्र दशा है—कहने की अकुलाहट है और अज्ञ शक्ति हीनता की हिचक भी । आचार्य भगवन् का चमत्कारिक व्यक्तित्व ऐसा ही प्रेरक, प्रभावक और विपुल अतिशय-सम्पन्न है । दर्शन करने से भी पूर्व मैं तो अदृश्य श्रद्धा-डोर से बद्ध हो चुकी थी । केवल सुनने भर से गुरुवर 'नानेश' का व्यक्तित्व मेरे रोम-रोम मे समाहित हो गया—इतना विलक्षण प्रभाव-युक्त है मेरे आराध्यदेव का व्यक्तित्व इस उथले प्रयास मे भले ही मैं उपहास-पात्र बनू, किन्तु बालक की तोतली भाषा दूसरो की समझ मे न आने पर भी उसको अपने भावो के प्रकटीकरण का हर्ष प्रदान करती ही है ।

सद्गुणो का प्राधान्य एवं प्रचुरता महामहिम पुरुषो का सामान्य लक्षण होता है । पचमहाव्रत धारी मुनिराजो मे सद्गुणी जनो से अनन्त गुणी उत्कृष्टता होती है । उन उत्कृष्ट सत प्रवरो के आचार्यश्री मे उनकी अपेक्षा अनन्त रत्नत्रयादिक सिद्धिया हुआ करती हैं—अनन्तगुणी नेतृत्व कुशलता एवं विशेषता-बाहुल्य होता है, और हीरक-माणिक समान सर्वगुण सम्पन्न आचार्यों मे कोई एक दिव्य, तेजस्वी प्रखर सूर्यमण्डल-सी आभायुक्त विलक्षणता, जब समग्र रूप मे एक स्थान पर पुञ्जीभूत होती है—अतिशय-ज्योति जिसके समक्ष बौनी बनकर नमन करती है—उस परम चारित्र चूडामणि को हम आचार्य श्री 'नानेश' कहते हैं ।

आचार्य प्रवर का जीवन समग्रत समताभिमुख है । उनके योग और प्रयोग, चिन्तन और ध्यान, साधना और निराली छटापूर्ण वैराग्य, वाणी और कर्म, आचार और व्यवहार, नेतृत्व-कौशल और वात्सल्य स्निग्ध मातृहृदय—ये सारे ही श्रद्धेय आचार्य भगवन् के विराट व्यक्तित्व-सागर की बूदे-मात्र हैं । उनके अनन्त प्रतिभापुजो की किरणें हैं । आचार्य 'नानेश' का अतिशययुक्त व्यक्तित्व तो उपर्युक्त गुणों से भिन्न विचित्र गरिमामय तथा अद्भुत-अपूर्व है ।

मैंने पूज्यवर के अतिशयो का सकेत करते हुए प्रथम मे उल्लेख किया है कि स्वय साक्ष्य अनुभव से मैंने देखा है—किस प्रकार अप्रत्यक्ष, अबोले और असम्पृक्त रहकर भी वह चुम्बकीय आकर्षण जनमानस की उर-परिधियो को गहरे

तक स्पर्श करता है। न केवल स्पश करता है, अपितु तरल तारतम्यता स्थापित करता हुआ सभी को स्पन्दित करने की महती शक्ति रखता है।

पूज्यपाद आचाय भगवन् के अतिशय-वणन का लगडा प्रयास मैंने कुछ इस प्रकार किया है —

तज —तेरे हुस्न की क्या तारीफ करू —
तेरे अतिशयो की महिमा गाऊ, यह सोच के ही रह जाती हू।
जिह्वा-जीवन यदि चुक जाए, तो भी महिमा अधूरी पाती हू॥
सीमित है शक्ति वाणी की,
और गुण है अनन्त-असीम प्रभो,!
कैसे पूरा हो इष्ट मेरा,
ये काय कठिन सभीम, प्रभो।
फिर भी गुण-गरिमा चिन्तन से, कहने को बहुत ललचाती हू।
जिह्वा-जीवन यदि चुक जाए तो भी महिमा अधूरी पाती हू॥
बुद्धि तो है अल्प अति, अतिशय—
विस्तार बहुत ही गहरा है।
शब्दो और भाषा के ऊपर,
मेरे तुच्छतम ज्ञान का पहरा है।
महसूस ये होता है जैसे, खुद को ही छलती जाती हू।
जिह्वा जीवन यदि चुक जाए तो भी महिमा अधूरी पाती हू॥
रत्नत्रय का समन्वित तेज प्रखर,
उसको कैसे कह पाऊ भला।
व्यवहार व सचालन-पटुता—
का वणन भी कर पाऊगी क्या!
अ कन अपनी सामर्थ्य का कर, फिर तुच्छता से भर जाती हू।
जिह्वा-जीवन यदि चुक जाए, तो भी महिमा अधूरी पाती हू॥
प्रत्यक्ष रहो या परोक्ष, प्रभु!
बोलो अथवा तुम मौन रहो।
छाते उर-अणु परमाणुओ में,
हर भाव बनाकर गौण, अहो।
प्रति पल निस्सीम निकटता से, निज चेतन भरती जाती हू।
जिह्वा-जीवन यदि चुक जाए, तो भी महिमा अधूरी पाती हू॥

परम आराध्य भगवन् के विस्तीर्ण प्रभामण्डल का तेज क्षण प्रति-क्षण जीवन्त-सजीव बनकर प्रत्येक श्रद्धानिष्ठावान् साधक के आत्मप्रदेशो का गुञ्जित करता हुआ लक्ष्यसिद्धि की अदृश्य किन्तु सशक्त-वात्सल्यभरी प्रेरणा देता है। यह

आभास मेरे जैसी अनेको मुमुक्षु आत्माओ ने बहुश किया है, जैसे वे ज्योतिपुञ्ज देव हमारा पथ-प्रदर्शन करते हुए प्रत्येक अवस्था मे हमारे अस्तित्व में लय रहा करते हैं।

अनेकानेक चमत्कार पूर्ण घटनाए आचार्यश्री के जीवन मे सहजता से घटित हो जाती हैं और जब कोई असाध्य रोग तत्काल दूर हो जाता है, नेत्रो मे ज्योति आजाती है, प्रबल विरोधी निन्दक स्वयमेव अभिभूत होकर चरणनत हो जाता है, सामर्थ्यहीन होने पर भी मात्र नामोच्चारण से सफलता चरण चूमने लगती है, विपत्ति-आपदा-परिषह प्रभावशून्य बन जाते हैं और स्मरण करते ही तथा दर्शन करते ही आत्मा समस्त परितापो को उपशमित करके शीतलता का सस्पर्श करती है—तब स्वाभाविक ही आचार्य प्रवर के सूक्ष्मव्यापी विराट व्यक्तित्व की झलक मिल जाती है।

कितनी ही वार देखा गया है कि आचार्य भगवन् बिना कुछ फरमाए मौन विराज रहे हो, तव भी अदृश्य रूप से सबको सब कुछ प्रचुरता से मिलता रहता है। अनेक वार प्रवचन मे शास्त्रीय विषय गहनता की परिसीमाए छूने लगता है और सामान्य बुद्धि-क्षेत्र से परे होता है, तब भी सभी व्यक्ति मंत्रमुग्ध बने गुरुदेव के श्रीमुख-चन्द्र की सुन्दर-भव्य छटा का चकोरवत् पान करते रहते हैं। अनपढ और अल्प-शिक्षित वर्ग के श्रोता भी आचार्यश्री के प्रवचन-भावो को उसी प्रकार ग्रहण करते रहते हैं, जैसे अन्य प्रवुद्ध-वर्ग! भले ही उस वर्ग की ग्रहणता मे शब्दश वही भाव न रहें, लेकिन अनुभूतिजन्य बोधत्व मे किसी भी प्रकार न्यूनता नही आने पाती।

अतिशयो का अर्थ-परिक्षेत्र न समझते हुए भी उनके अदृश्य किन्तु व्यापक प्रभाव को समग्र जनचेतना अनुभव करे, यही तो महापुरुषो के अतिशयो का विलक्षण जादू होता है। पूज्यवर के व्यक्तित्व से नि सरित ऊर्जा-रश्मिया समस्त वायुमण्डल को तेजोद्दीप्त करती हुई जव हम अपने चारो ओर अन्दर-बाहर फैलती देखते हैं, उनके आलोकमय आनन्द का रसास्वादन प्रतिपल करते हैं, तो अनायास ही श्रद्धाभिभूत होकर कह उठते हैं—

दिव्य अलौकिक अद्भुत योगी।
'नानेश' की समता क्या होगी!
तेरे चमत्कारो की कहे क्या!!
जय 'नाना'—गुरु 'नाना'—जय 'नाना—गुरु 'नाना'!!

अन्तस् के भावों को सर्वाशत व्यक्त करके परमकृपालु, आचार्यश्री के अतिशययुक्त व्यक्तित्व का गुणानुवाद करने के लिए तो अनेक जन्मो की—अनन्त-अनन्त बुद्धि व शक्ति की अपेक्षा है—मैंने पूज्यश्री के चमत्कारिक स्वरूप की आह्लादक झाकी सभी को मिले, इस विचार से नगण्य-सा यह प्रयास किया तो, मगर बन नही पाया और अपनी भावुकतापूर्ण अल्पज्ञता मे घिर कर ही रह गई।

अन्त मे परमपूज्य श्री चरणो के कृपा प्रसाद की सदा सर्वदा याचना करते हुए मेरी हार्दिक कामना है—

अल्प ना हो कल्पना, रहने निकटतम भाव की।
दित्व सारा दू मिटा, सृष्टि हो अविनाभाव की।
गुम हो गहरे गर्त्त मे, प्रत्यक्षता का प्रश्न फिर,
स्वर्ण रञ्जित हो अमर, अक्षर मेरे इतिहास के।
चीर 'काजल'—आवरण, अपने मनोऽहंकार के,
तव वचन से हो विपुल घन छिन्न तुच्छाभास के,
बन सकू तव तुल्य तव प्रसाद से तव ग्रास के ॥

—द्वारा-भैरूलालजी सरूपरिया, मदेसर (चित्तौड) ३१२६०२

नानेश वाणी

० प्रवचन-प्रभावना के लिए आप झूठी प्रतिष्ठा पाने के प्रदशनकारी आडम्बरो को छोडिये और गिरे हुए स्वधर्मी व अन्य भाईयो के जीवन को ऊपर उठाने के लिए अपनी वात्सल्य-वर्षा को बरसाइये।

० आत्म-प्रशसा क्षुद्रता का दूसरा नाम होता है।

० आप जब दूसरे के गुणो को देखें तो उसे भरपूर सम्मान दें और उन गुणो को अपने जीवन मे भी उतारने का प्रयास करें। गुणपूजा से गुणग्राहकता की वृत्ति पनपती है।

० दूसरो के दोष देखने की बजाय दूसरो के केवल गुण देखें और अपने केवल दोष देखें—तब देखिये कि आत्म-विकास की गति किस रूप मे त्वरित बन जाती है।

० जिन धर्म की तात्विक दृष्टि सिद्धान्तो के जगत् में अलौकिक मानी गई है। स्याद्वाद रूपी गर्जना से मन घडन्त सिद्धान्तों के हरिण झाडियो मे घुसकर अपने को छिपा लेते हैं।

० अपनी निष्ठा और कर्मठता मे किसी भी आयु मे यदि तरुणाई समा जाय तो नया और नई खोज उसके लिये स्फूर्ति का विषय बन जाती है।

० दहेज सट्टे से भी बढ़कर है।

भविष्य के अध्येता

❀ डॉ सुभाष कोठारी

मेरा परिवार बचपन से ही साधुमार्गी जैन सघ के अनन्य भक्तो मे रहा है और इसी का प्रभाव मेरे पर भी प्रारम्भ से ही पडना शुरू हो गया था। प्रतिवर्ष आचाय श्री के दशनाथ जाना एक नियमित क्रम सा हो गया परन्तु तब तक मैं आचार्य श्री द्वारा पारिवारिक स्तर से जाना जाता था।

१६–१७ वर्ष तक की आयु मे मेरा विचार व्यापार अथवा सी ए करने का था इसी कारण मैंने स्नातक तक कॉमस विषय पढा। इन्ही दिनो उदयपुर विश्वविद्यालय मे जैन विद्या एव प्राकृत विभाग की स्थापना भी श्री अ भा सा जन सघ के सहयोग से हुई तब महज कुतुहल से मैंने भी जैन विद्या मे डिप्लोमा मे प्रवेश ले लिया। डिप्लोमा कोर्स मे सर्वाधिक अक आने के बाद जब आचार्य श्री से मिलना हुआ तो उन्होने जैन विद्या एव प्राकृत के क्षेत्र मे ही निरन्तर काय करते रहने की प्रेरणा दी और न जाने किस भावना के वशीभूत होकर मैं इसी क्षेत्र की ओर मुड गया और इसी पथ पर अग्रसर होता गया। आज मैं सोचता हू तो लगता है कि मैंने उस समय आचाय श्री की प्रेरणा से जो रास्ता अपनाया वह कितना नैतिक एव पवित्र है। वरना अन्य कोई व्यवसाय, व्यापार या सर्विस करने पर मेरा पेशा उज्ज्वल रह पाता या नही। अत मेरी सफलता का सारा श्रय आचाय श्री के चरणो मे ही न्योछावर है।

बाद में १९८३ से आगम अहिंसा समता एव प्राकृत सस्थान से जुडने के बाद मेरा आचार्य श्री से व्यक्तिगत सम्पर्क बढता गया कभी सस्थान के काय के बहाने कभी लेखो के माध्यम से, कभी समता युवा सघ की गतिविधि के बारे म एव कभी साधु-साध्वियो को अध्ययन–अध्यापन के माध्यम से। मैं निरन्तर आपश्री के सम्पक मे आता रहा और हर सम्पर्क मेरे लिए अविस्मरणीय बनता गया।

ऐसे जीवन निर्माणकारी, समताधारी दीघदृष्टा एव भविष्य के अध्येता आचार्य श्री नानेश दीर्घायु हो एव सदा स्वस्थ रहें, यही प्राथना है।

—आगम योजना अधिकारी, आगम अहिंसा, समता एव प्राकृत सस्था पदिमनी माग, उदयपुर (राज) ३१३००१

समता का उद्गम स्थल

❀ श्री विनोद कोठारी

आचाराग सूत्र का "समियाए धम्मे' पद जब-जब स्मृति पटल प उभरता है उस-उस समय श्रद्धास्पृद्ध, पुण्याणुवन्धी पुण्य के धनी आचाय श्री जीवन से सम्वन्धित घटना प्रसग सहसा मन मे तरगित हो उठते हैं। समत मय जीवन के प्रेरणास्पद प्रसंग आपके बाल्यकाल युवावस्था एव सयमी जीवन साथ-२ गतिमान होते रहे।

शात क्राति के अग्रदूत गणेशाचाय जब सघ अध्यक्ष श्रीमान कुन्दनमि जी खीवेंसरा के बंगले पर विराज रहे थे और स्वास्थ्य मामान्य रूप से चल र था सभी दर्शनार्थी शातचित्त से आते और सतो के दशन कर पुन गन्तव्य स्थ पर चले जाते, यही क्रम था। एक दिन कमरे के बाहर बरामदे मे वत्त म आचार्य-प्रवर अपनी पूज्यनीया मातुश्री से वार्त्ता कर रहे थे कि एक सज्जन बगैर हिचकिचाहट के आपसे निवेदन किया कि आप वार्त्तालाप न करें, आच श्री जी को शाति की आवश्यकता है। आचाय श्री ने मृदु हास्य स्मित चेहरे स्नेहासिक्त से शब्दा उस बात को स्वीकार किया उस समय का व्यवहार जो आर से ही आपकी आत्मा मे अनुस्यात था, वह था 'समता'।

ऐसा ही प्रसग पौपधशाला भवन का है जब गणेशाचाय का स्वास्थ्य निरन्तर गिरता जा रहा था कुछेक स्वधर्मी बन्धु रात्रि मे वहीं पर सोते थे। प्रात प्रतिक्रमण के पूर्व आचाय-प्रवर के दशन करने पहुचे वहां पर वतमान आचाय-प्रवर सेवामे सलग्न थे उस समय उन सज्जन के एव आचार्य-प्रवर क सिर टकराये। अविवेक के लिए आचाय-प्रवर से श्रावको को पहले क्षमायाचना करनी चाहिए थी उसके पूव ही आचाय-प्रवर ने क्षमायाचना कर ली।

ये प्रसग है समता दशन के उद्गम् के। छोटे-२ प्रसगो पर सम्यक प्रकारेण समताभाव बनाये रखना। ऐसे महान् हैं हमारे आचार्य-प्रवर।

—१६ वापना स्ट्रीट, उदयपुर-३१३००१

सच्चे सुख का आधार : समता

❀ श्रीमती शान्ता देवी मेहता

संसार का प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है । दुःख कोई भी नही चाहता । यदि हम गहराई से अध्ययन करें तो हमारे जीवन का प्रत्येक व्यवहार केवल इस एक उद्देश्य की प्राप्ति के लिये ही हो रहा है । परन्तु इतनी दौड-धूप, भागम भाग, हाय तोबा करने पर भी क्या हमे सुख की प्राप्ति हो रही है, तो इसका एकमात्र उत्तर होगा, नही । इसका कारण क्या है ? इस पर हमने कभी गहराई से चिन्तन नही किया । हम सुख प्राप्ति का उपाय वहा कर रहे हैं, जहा उसका अश मात्र भी नही है ।

मनुष्य परिवार मे सुख की खोज करता है और उसके लिये परिवार बढाता चला जाता है । पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री, पौत्र-पौत्री, मित्र, सगे-सम्बन्धी जितना-२ वह परिवार बढाता जाता है, और जिससे वह सुख की अपेक्षा करता है उसी से उसे और अधिक दुख की प्राप्ति होती है । फिर भी वह नही समझता है और परिवार, मनुष्य, धन–वैभव, मे सुख की खोज के लिये भटकता है, कल्पनातीत दौड लगाता है । निन्यानवें का फेरा । हजारपति, लखपति, करोडपति, अरबपति, झोपडी, मकान, बगला, महल एक नहीं अनेक । साईकल, स्कूटर, गाडी, हवाई जहाज । नगर पालिका का सदस्य, विधायक, सासद, मत्री, प्रधानमत्री, राष्ट्रपति । नही और आगे । कही सन्तोष नही–जीवन के किसी भी क्षत्र मे देखिये, मनुष्य की दौड जारी है बेतहासा । और इस भौतिक सुख प्राप्ति के उपाय में मनुष्य इतना अधा हो जाता है कि उसे पिता, पुत्र, भाई, गुरुजन मित्र आदि कुछ भी दिखाई नही देता है, यहा तक कि वह इस स्वार्थ पूर्ति के लिये हत्यायें भी कर देता है । इतना करने पर भी क्या हमे सुख की प्राप्ति हो रही है ? नही । जिस क्षेत्र मे जितनी अधिक दौड हम लगाते हैं उतना ही दुख हमारे पल्ले पडता है ।

सुख प्राप्ति का एक मात्र उपाय है समता, सन्तोष । जहा जो है, जैसे है उसमे सन्तोष । आचार्य श्री नानेश ने धर्म की व्याख्या करते हुए हमारे लिये सुख प्राप्ति के केवल दो उपाय बताये हैं । और वे हैं "समता" और "समीक्षण" । ये ही दो मार्ग हैं जिन पर चल कर हम सच्चे सुख की प्राप्ति कर सकते हैं ।

हमारी व्यवहारिक भाषा मे प्रतिदिन हम इस शब्द का प्रयोग करते हैं । समता धारण करो, सन्तोष रखो, परन्तु व्यवहार मे प्रयोग का जब भी

अवसर आता है हम स्वार्थी और असन्तोषी बन जाते हैं और दुख को आमंत्रित करते हैं ।

सच्चे सुख की प्राप्ति के लिये यह समता शब्द क्या है इसे भी थोड़ी गहराई से समझ लेना हमारे लिये आवश्यक है । समता का एक अर्थ है सतोष। हम जहा हैं जैसे हैं, जो भी हमें प्राप्त हो रहा है, उसमे सन्तोष । प्रत्येक मनुष्य को जीवन मे जो भी प्राप्त है, वह उसी के द्वारा उपार्जित कर्मों का फल है, अत मैंने जो कर्म किये हैं उसी के अनुसार मुझे फल की प्राप्ति होगी, इसलिए मेरे लिये न तो स्वय के प्रति असन्तोष का कारण है और न दूसरे की ओर देखकर दुख के कारण पैदा करना है ।

समता का दूसरा अर्थ है समभाव की प्राप्ति । आत्मिक दृष्टि से ससार का प्रत्येक प्राणी समान हैं । अत जैसा मुझे अपना जीवन प्यारा है वसा ही प्रत्येक प्राणी को अपना जीवन प्यारा है । ससार की जो जो वस्तु और जसा व्यवहार मुझे प्रिय हैं वैसा ही व्यवहार मैं प्रत्येक प्राणी के प्रति करू । मेरे और तेरे का भेद ही जीवन मे विषमता पैदा करता है, और प्रत्येक प्राणी को ससार मे भटकाता रहता है ।

आचाय नानेश की इस धर्म व्याख्या के सन्दभ मे जब हम उनका स्वय का जीवन देखते हैं तो हमे एक अद्भुत आलोक, एक दिव्य दृष्टि एक शान्त निर्झर प्रवाह के दर्शन होते हैं जो प्रत्येक दर्शनार्थी में एक अलौकिक शान्ति का सचार कर देता है । समता की प्रतिमूर्ति–साधना का प्रतिफल । मैंने अनेक अव सर ऐसे देखें हैं, जब थोड़ा-सा भी क्रोध उत्पन्न हो जाना एक साधक के लिए भी स्वाभाविक है परन्तु आचाय श्री के चेहरे पर वही शान्ति, वही मुस्कान, वही करूणा का स्रोत और वही प्रेम पूर्ण प्रत्युत्तर । आचाय श्री का शान्त समतामय आभामण्डल हमारे मन मे एक असीम सुख और शान्ति का प्रवाह उत्पन्न करता है यही इच्छा होती है कि हम सामने ही बैठ रहे और उस शान्त सुधारस का पान करते रहें । ईश्वर हमे सद्बुद्धि दें कि हम भी उसी समता साधना के माग पर चलकर सच्चे सुख और आनन्द की अनुभूति करें । जिसका अन्तिम छोर है मुक्ति सिद्धावस्था ।

आचाय श्री नानेश के ५० वें दीक्षा जयन्ती वर्ष पर उनकी इस अनुपम व्याख्या और भूले भटके राही के लिये राजपथ के निर्माण के प्रति शत–शत वन्दन अभिनन्दन । —चांदनी चौक, रतलाम (म प्र)

शान्तिदाता शरणभूत हो तुम !

❀ श्री कमलचन्द लूणिया

समता–सौरभ से सुरभित हो मानस,
भावना हम हृदय मे सजाये ।
लक्ष्य से पूर्ण जीवन हो सारा,
सद्गुणो के ही स्वर गुन गुनायें ।।टेर।।

आन्तरिक स्रोत बहता अपूरब,
भक्तगण आके कलिमल हैं धोते ।
नित चरण–रज लगा के तुम्हारी,
बीज–भक्ति का अनुपम हैं बोते ।
होती आशालता मुग्धकारी,
हम अमर कल्प पादप हैं पायें ।।

तेरे भक्ति पुरस्सर गुणो को,
हम भला किस तरह से संजोयें ?
देख आभा अलौकिक तुम्हारी,
मन की पीडा नही नभ को धोवें ।
शान्तिदाता शरण भूत हो तुम,
सौख्य–साम्राज्य मानस में छाये ।।२।।

कैसे हम हो समीक्षण के ध्याता,
जागरण का बने भी उपक्रम ।।
जिसकी सयोजना से मिटा दे,
भौतिक वेदना का रहा तम ।
ऐसी शक्ति "कमल" लब्ध होवे,
जन्म–भीति से छुटकारा पायें ।।३।।

—बीकानेर

युग पुरुष आचार्य श्री नानेश

श्री मिट्ठालाल मुरडिया, 'साहित्यरत्न'

वीर प्रसविनी मेवाड भूमि को कौन नहीं जानता ? जिसके कण कण मे साहस, शौर्य और रक्त बिखरा हुआ है, जहा कमवती, जवाहर बाई और पन्ना धाय ने अपना बलिदान दिया था, जहा बप्पा रावल, राणा सागा, राणा लाखा और प्रताप ने देश-प्रेम और देश-भक्ति की बलिदान ज्वाला प्रज्ज्वलित की था। उसी देश के दाता गाव मे जन्म देने वाले पिताश्री मोडीलालजी और माताश्री शृगार बाई को क्या मालूम था कि एक दिन उनका पुत्र लाखो का वन्दनीय बन कर समाज राष्ट्र और धर्म को गौरवान्वित करेगा।

श्रमण सस्कृति के अमर गायक, जैन सस्कृति के यशस्वी सन्त, युग का मोड देने वाले प्रतापी आचार्य और इतिहास बनाने वाले, कीर्ति पुरुष आचार्य श्री नानालालजी म सा की दीक्षा के अर्द्ध शताब्दी वर्ष के मगल प्रसग पर हम उन्हें उनकी दीर्घ साधना, अनुशासन, दृढता, अदम्य आत्मबल, साहस, सत्यनिष्ठा और समता मूलक जीवन दृष्टि हेतु शत-शत वन्दन करते हैं।

इस युग पुरुष ने ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य के बल पर चतुर्विध संघ को निर्भीकता का, सिद्धान्तो का, मर्यादाओं का और सकल्पो के साथ लोक जीवन को नया पाठ पढाया।

ये सकटो मे अटल रहे, मुसीबतो मे दृढ रहे—इससे इतिहास बनता गया, कथाए निर्मित होती गई और साहित्य सर्जन आगे बढता रहा—ऐसे आगमज्ञ, तत्वदर्शी आचार्य ने कभी हिम्मत नहीं हारी, सकटों से जूझते हुए निरन्तर प्रगति पथ पर आगे बढते गये और जन-जीवन को अपने ज्ञान का निर्भीक चिन्तन दिया।

ये इस युग के उन महापुरुषो मे से हैं जिनके पीछे लाखो व्यक्ति चलते हैं। साधु मर्यादाओ मे अपनी आन, बान और शान के साथ सात आचार्यों की कीर्ति कथा को और गौरवान्वित कर रहे हैं। ये इतिहास के यशस्वी पुरुष हैं, जिनके रोम-रोम मे प्रेम, सद्भावना और एकता का भाव भरा हुआ है, जिनके दिल में दया और करुणा का स्रोत बह रहा है।

हिसक को अहिंसक बनाने वाले, क्रूर से क्रूर को सन्मार्ग देने वाले, उनका जीवन बदलने वाले और जीवन जीने की कला सिखाने वाले युग पुरुष तुम्हें शत शत वन्दन, शत-शत अभिनन्दन।

ऐसे युग पुरुष, अध्यात्म पुरुष, इतिहास पुरुष, कर्मण्य पुरुष, आचार्य, महात्मा और महामना को उनकी दीक्षा अर्द्ध शताब्दी पर वन्दन-अभिनन्दन।

—२०, ग्रीमरोज रोड बगलोर २५

प्रभावक व्यक्तित्व

—❀ श्री गणेशलाल बया

मेरी आयु ८३ वर्ष की होने से स्मरण शक्ति बहुत ही कमजोर हो गई है और ता २६-११ को बस यात्रा मे बस के उलट जाने से मेरे सर मे भी बहुत बडी चोट आई, लगलग आधा किलो खून निकल गया व २३ टाके आने से बहुत ही कमजोरी आ गई है, इसलिये विशेष स्मरण तो नही, पर इतना अवश्य याद है कि मैंने आचार्य श्री श्रीलालजी म सा, आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा, आचार्य श्री गणेशलालजी म सा के दर्शन किये, व्याख्यान सुने व सेवा का लाभ लिया। आवागमन का इतना साधन नही होते हुए भी काफी महानुभाव बाहर से सेवा मे आते थे, स्थानीय तो आते ही थे। गुजरात आदि मे विचरण पर देश के नेता महात्मा गाधी व प जवाहरलाल नेहरु आदि भी सेवा मे उपस्थित हुए। उन पर भी अच्छा प्रभाव पडा। उस समय आचार्यों ने एलान किया कि आठवा पाट अच्छा चमकेगा। उसी अनुसार आचार्य श्री नानालालजी म सा का प्रभाव भी सारे देश में बढ रहा है व दीक्षाए भी ऐतिहासिक हुई हैं व हो रही हैं।

—E-२६, भूपालपुरा, उदयपुर-३१३००१

卐

नानेश-वाणी

❀ यदि विनय नही आया—मूल ही नही लगा तो धर्म का वृक्ष पल्लवित, पुष्पित एव फलित कैसे बनेगा ?

❀ जैसे गृहस्थावस्था मे सम्मान प्राप्त करने के लिए व्यक्ति सोने के कडे प्राप्त करने की कोशिश करता है, वैसे ही मोक्ष के चरम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भी सोने के कडो की तरह पुण्य के योग की जरूरत पडती है।

ध्यान-साधना का वैशिष्ट्य

❀ श्री शान्तिलाल धींग

आचार्य नानेश ध्यान साधना के धनी हैं। जब आप साधना में बैठे हैं, दिव्य-ज्योति प्रकाशित रहती है। आपकी ध्यान-साधना अनूठी है। ध्यान-साधना से उठते ही, जिस पर प्रथम बार आपकी नजर पड जाती है, वह निहाल हो जाता है। कानोड चातुर्मास मे घटित कुछ प्रसंग इस प्रकार हैं—

१ श्री मोतीलालजी धींग एक दिन ३ बजे ही रात्रि को उठकर सामायिक मे बैठ गये। तीन सामायिक एक साथ ले ली। आचार्य भगवन् का पूर्ण श्रद्धा से ध्यान करते गये और आखो की ज्योति की कामना करने लगे। सामायिक तीनो ही करके उठे तो आखो मे ज्योति बढी। आंखो की ज्योति बढ़ते ही वे सीधे आचार्य भगवन् के दर्शनार्थ गेट के बाहर बैठ गये। बाहर जो सन्त थे उन्हें उक्त घटना बता दी। आशीर्वाद स्वरूप हाथ का इशारा किया। आशीर्वाद पाते ही आखो की ज्योति में वृद्धि हो गई। श्री धींग हर्षोल्लास के साथ घर आये और अपने परिजनो को उक्त प्रसग से अवगत कराया।

२ श्री देवीलालजी भाणावत जिनको वर्षों से चश्मा लगता था और वह भी हाई पावर का। श्री भाणावत के ५ की तपस्या थी। प्रात काल उठ आचार्य भगवन् के दरवाजे के बाहर दशनार्थ बैठ गये। दर्शन करते ही बिना चश्मे के उनकी आंखो से अच्छा दिखने लग गया। चश्मे का उपयोग हट गया।

३ श्री हेमा रावत पीपलवास का रहने वाला है। वह कई वर्षों से पेट दर्द से पीडित था। कई बार देवी-देवता के जा चुका था, अस्पताल की दवाइया भी ले चुका था मगर फर्क नही पडा। थोडी-२ देर मे पेट दद शुरू हो जाता था। एक दिन वह कानोड मे था। सायकालीन मागलिक के लिए लोग दौड-२ कर जा रहे थे। उसने एक सुनार महिला से पूछा—ये सभी लोग कहां जा रहे हैं? सुनार महिला ने बताया—यहा बहुत बडे सन्त आये हुए हैं। उनका मगल पाठ सुनने जैन-जैनेतर सभी जा रहे हैं।

मगल पाठ सभी दु खो से छुटकारा दिलाता है। [तो वह भी मन में भावना लेकर आचार्य भगवन् की मागलिक सुनने आया। मगल पाठ सुनवा जा रहा था और श्रद्धा से कहता जा रहा था—मेरा पेट ठीक हो जाय। उस समय क्या चमत्कार हुआ ईश्वर ही जाने—वह हेमा रावत यह कहता बाहर निकला कि मेरा पेट दद ठीक हो गया है। उसकी आचार्य भगवन् पर इतनी श्रद्धा हो गई कि यह सप्ताह में चार मंगलपाठ सुनने ५ कि मी से चलकर आता था।

४ श्री नौरतमलजी डडिया ब्यावर के पेट मे एक दिन इतना दर्द हुआ कि अत्यन्त कष्ट हो रहा था । रात्रि जैसे-तैसे निकाली प्रात काल उठते ही उनकी पत्नी, आचार्य भगवन् जगल जाते हैं, वहा रास्ते मे खडी हो गई । आचाय भगवन् के परो की धूल लाई और पेट पर फिरा दी । ठीक एक घण्टे मे आराम पड गया । तुरन्त बाद आचार्य भगवन् के दशनार्थ डेडिया सा पहुचे ।

उक्त घटनाओ से आचार्य भगवन् के प्रति श्रद्धा व भक्ति वढना स्वाभाविक है ।

—मत्री, श्री साधुमार्गी जैन श्रावक सघ, कानोड

卐

नानेश वाणी

- यह कैसा मानस हो रहा है कि आज कुत्ते और मोटर की सार-सम्हाल करेंगे किन्तु गाय–भैंस को रखने का विचार नही होता । शहरो मे बाजार के खाने-पीने पर ज्यादा निभर करते हैं जबकि ग्रामो में ऐसा कम होता है । बाजार के खाने-पीने मे त्रस जीवो तक की घात का कितना प्रसग रहता है—यह आप श्रावको के लिए सोचने की बात है ।
- आप कुछ भी सोचें या करें किन्तु यह तथ्य है कि स्वय का विवेक सर्वाधिक शुद्ध और प्रभावशाली होता है ।
- सन्तति-निरोध भी अग-विच्छेद के जरिये नही, बल्कि ब्रह्मचय एव सयम के जरिये होना चाहिये । स्वाभाविक उपाय छोडकर कृत्रिम उपाय का सहारा लेना विवेक-हीनता ही कहलायेगी । यह अग-विच्छेद श्रावक के लिये अतिचार है ।
- आगम उन वीतराग देवो की उस वाणी का सग्रह है, जो उन्होंने अपने ज्ञान एव चारित्र की परिपक्वता की अवस्था मे सवज्ञ व सवदर्शी के रूप मे ससार के कल्याणार्थ उच्चरित की । इसी पवित्र वाणी मे विश्व निर्माण का अमोघ उपाय छिपा हुआ है ।

"समता–विभूति"

❀ गोकुलचन्द सूरा

समता विभूति नाना पूज्यवर, सबकी आखो का तारा ।
घोर विषमता के इस युग मे, जनमानस का सबल सहारा ।टेर।

दाता की माटी मे जन्मा, पोखरणा कुल शान महा ।
मोडीजी के राज दुलारे, उज्ज्वल सूर्य समान जहा ।
ऐसी अमूल्य निधि को पाकर, धन्य हुई माता शृगारा ॥१॥

समतामय बना निज जीवन, फिर समता सदेश दिया ।
विषम भाव की कलुष कालिमा, परित्यागत उपदेश दिया ।
समता दशन का प्रणेता, अखिल विश्व का दिव्य सितारा ॥२॥

भारत के कोने कोने मे घूम-घूम सद् ज्ञान दिया ।
व्यसनमुक्त बन लाखो जन ने, समता रस का पान किया ।
धमपाल प्रतिबोधक कितने भव्य जीवो का जन्म सुधारा ॥३॥

समीक्षण ध्यानी योगीश्वर ध्यान का मर्म बताते हैं ।
जैन जगत की विरल विभूति, समता सबक सिखाते हैं ।
पति पावन विश्व वदनीय आप जगत के तारणहारा ॥४॥

जिनशासन की अभिवृद्धि हो, यही भावना भाते हैं ।
दीक्षा जयती मना हम, फूले नही समाते हैं ।
तुम जीयो हजारो साल, साल के दिवस हो पचास हजार ॥५॥

—हैण्डलूम कारपोरेशन, गाहा

समत्व भावों का प्रत्यक्ष अनुभव

❀ श्रीमती कांता बोरा

भारतीय संस्कृति का मूलाधार उसकी धार्मिक चेतना है। भारत वसुन्धरा को ऋषि मुनियों की अमूल्य निधि प्राप्त है। ऋषि मुनियों ने अपनी तपो साधना से इसे आलोकित किया है। उसी परम्परा के हुक्म संघ के अनुशास्ता अष्टम पट्टधर मुमुक्षों के प्राणाधार आचार्य श्री नानालाल जी म सा अपना प्रमुख स्थान रखते हैं।

आप यथा नाम तथा गुण के धनी हैं। आपकी अनेक विशेषताओं ने अगणित अज्ञानी (अबोध) जीवों को कल्याण मार्ग पर लगाया है। कठोर तप साधना के साथ विद्वता एवं समता सहिष्णुता के अनुपम समन्वय ने आपके आकर्षक व्यक्तित्व को चुम्बकीय शक्ति के दिव्य-प्रकाश से आलोकित कर दिया, केवल जैन ही नहीं अन्य धर्मावलम्बी भी आपके दर्शन मात्र कर लेता है तो वह आपके प्रति अटूट श्रद्धावान हो जाता है। आप में साम्प्रदायिकता और आग्रह नहीं है। आप सदा समता सिद्धान्त के अनुरूप प्राणीमात्र के साथ समत्वभाव रखते हैं तभी तो अनेक जिज्ञासु एवं विभिन्न धर्मों के अनुयायी भी नतमस्तक होकर आपके सान्निध्य में बैठकर अपनी जिज्ञासाओं का समाधान प्राप्त करते हैं एवं परम सन्तुष्ट होते हैं।

आचार्य भगवान के लगभग ११ माह इन्दौर में विराजने पर हमने प्रत्यक्ष देखा कि आपके जीवन में सरलता की सौरभ महक रही है एवं स्वाध्याय और सुध्यान का शीतल समीर बह रहा है। आपका बाह्य व्यक्तित्व जितना नयनाभिराम है उतना ही आभ्यांतर व्यक्तित्व भी। इन्हीं गुणों के कारण सहज ही विषमता समाप्त हो जाती है ऐसे कई उदाहरण हमें प्रत्यक्ष देखने को मिले हैं।

इन्दौर का इन्दु प्रभा काण्ड समस्त जैन समाज के लिये बड़ा ही कलंकित काण्ड हुआ, उन दिनों में इन्दौर में साधु-साध्वियों के प्रति जनमानस में आशंका के भावों का प्रादुर्भाव हो गया था। ऐसे में इन्दौर में दीक्षा होना बड़ा ही विचारणीय प्रश्न था। आचार्य श्री नानेश के कदम जैसे-जैसे म प्र की ओर बढ़ रहे थे, वैसे-वैसे स्वतः ही जनता का मानस बदलने लगा।

मुझे पूना प्रवास में सतीवृन्द का दर्शन करने का सौभाग्य मिला। महासतियाजी म सा ने कहा कि आचार्य श्री के सान्निध्य में कई दीक्षायें होती हैं यदि इस समय में भी दीक्षा प्रसंग हो तो इस माहौल का रंग बदल जावेगा। मैंने कहा—इस समय दीक्षा होना बड़ा कठिन काम लगता है। लेकिन जैसे-जैसे आचार्य श्री इन्दौर के समीप पधारे वातावरण स्वतः ही शांत हो गया, यह सब आपके तप, संयम और साधना का ही प्रतिफल है और उस समय इन्दौर में पांच बहिनों की भागवती दीक्षायें सानन्द सम्पन्न हो गईं।

समत्व भाव में रमण

❀ श्री रतनलाल जैन

आचार्य श्री नानेश एक विशिष्ट आध्यात्मिक योगी हैं, जिनका तप और त्याग देश–विदेश के मानवो को आकर्षित किये बिना नहीं रहता, जिनका आकर्षण अत्यन्त ही अद्भुत एव चमत्कारी है। भगवान् महावीर की सस्कृति का वे सजगतापूर्वक पालन कर रहे हैं। श्रावकाचार के प्रति वे सजग हैं। निर्ग्रन्थ श्रमण-सस्कृति के नियमो की वे सूक्ष्मतापूर्वक पालना कर रहे हैं।

जब मार्च, १९८४ मे इन्ही साधना सुमेरू, समता पथ के प्रदाता आचार्य श्री नानेश की नेश्राय मे २५ मुमुक्षु आत्माए भौतिक युग के सुखाभास को छोड कर आगार धर्म से अणगार धर्म मे प्रवृत्त हो रही थी, ऐसे समाचार श्रवण किये तो मेरा मन भी उत्सुक हो गया आचार्य श्री नानेश के पावन सान्निध्य पाने को। मन मे बडी खुशी थी कि आज मुझे विरल विभूति की सेवा का अवसर प्राप्त होने जा रहा है। जब मैं उदयपुर सघ की बस मे रतलाम पहुचा तब के अथाह जनसमूह को देखकर, सोचने लगा कि जैसा सुना था, उससे भी बढ़कर आपका आकर्षण है।

मैंने यह भी प्रत्यक्ष मे देखा है कि आचार्य श्री किसी भी परिस्थिति म, किसी भी प्रकार के प्रतिकूल वातावरण मे कभी भी समता से दूर नही हटते। जब गुरुदेव बम्बई मे १९८५ का चातुर्मास सम्पन्न कर पूना की तरफ बढ़ रहे थे, उस समय उधर के व्यक्तियो को मालूम हुआ कि इस महाराष्ट्र प्रान्त में आचार्य श्री जनता को अपनी ओर आकर्षित करने हेतु पधार रहे हैं। यह देख कर कई व्यक्तियों ने आचार्य श्री के सन्मुख आकर महाराष्ट्र मे विचरण नहीं करने की बात कही। कई व्यक्ति उत्तेजना मे कुछ बोलते तो कई प्रवचन मे उटपटांग प्रश्न पूछकर सभा मे उत्तेजनापूर्ण वातावरण बनाने का प्रयास करते, लेकिन मैंने आचार्य श्री के चेहरे पर कभी भी प्रतिकूल वातावरण होने पर भी खिन्नता नहीं देखी, बल्कि उस समय मे भी मैंने गुरुदेव में अद्भुत समता की विशालता देखी। मुस्कराते हुए हर प्रश्न का उत्तर समता से ओत–प्रोत होकर फरमाते जिससे अगला व्यक्ति पानी की भांति शीतल होकर समता के अनुरूप बन जाता। कितना ही अनुकूल एवं प्रशसनीय वातावरण हो, आचार्य श्री निर्लिप्त रहकर अपने समताभाव मे रमण करते रहते हैं।

जहां भी आपका पदार्पण होता है वहां समता का वातावरण बना रहता है। बम्बई जसे महानगर में आपके एक नही, दो वर्षावास सम्पन्न हुए। इस

अवधि में शायद ही शहर मे कभी अशाति हुई हो । यहा तक कि उस अवधि मे नगर कभी कर्फ्यू ग्रस्त नही हुआ । बल्कि दोनो चातुर्मास तक क्षेत्रीय वातावरण अत्यन्त ही सुदर रहा । आचार्य श्री नानेश की समता का यह प्रभाव कहा जा सकता है । लगभग ११ माह के आस-पास का आपका सान्निध्य इन्दौर को भी मिला । उस दरम्यान भी पूरे इन्दौर मे समता का वातावरण प्रसारित होता रहा । यद्यपि जब आचार्यश्री का इन्दौरागमन हुआ, उस समय नगर में उत्तेजनात्मक वातावरण था । जैन धर्मानुयायियो पर उस समय एक घटना घटित हो गयी थी जिस कारण जनता मे कुछ दूसरा ही वातावरण था, किन्तु आचार्य श्री का आकर्षण कहू, समता का प्रभाव कहू कि ऐसे वातावरण मे भी आपकी वाणी ने जादू का सा असर दिखाया । आप श्री के पधारते ही नगरवासी शाति का अनुभव करने लगे तथा दीक्षा सम्बन्धित जो समस्या थी, उसका भी आपश्री ने अपनी नेश्राय मे पाच मुमुक्षु आत्माओ को भागवती दीक्षा देकर, मार्ग प्रशस्त कर दिया ।

आचार्य श्री जी की समता की मशाल एक मानव-मन मे नही, अपितु अनेकानेक मानव हृदयो मे जल रही है । जब आचाय भगवन को यह जानकारी मिल जाती है कि अमुक व्यक्तियो के अमुक परिवार मे, झगडा चल रहा है, तब आप उस परिवार के व्यक्तियो को ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करते हुए समझाते हैं कि वे पूर्व की सारी बातें भूल कर, विवाद को पूज्य श्री के चरणों मे समर्पित कर देते हैं और भविष्य मे प्रेमपूर्वक रहने को सकल्पित हो जाते हैं ।

ऐसे-२ भी उलझे हुए अनेकानेक प्रसग देखें हैं जिनका निराकरण बडा से बडा न्यायाधीश भी नही कर सका, वैसे-२ विवादो को आपश्री ने सहज ही मे सुलझा कर विषमता मे समता का वातावरण व्याप्त कर दिया । और आज वे अपने आराध्य के रूप मे आपकी आराधना करते हैं । आपकी सबसे बडी विशेषता यह भी देखने को मिली कि विवाद चाहे किसी भी जाति या व्यक्ति का हो, आप सबको एक ही दृष्टि से देखते हैं । आचार्य-देव समता के पथ प्रदर्शक हैं । समता की राह दिखाने वाले हैं । जो भी एक बार सम्पर्क मे आ जाता है, वह आपसे आकर्षित हुए विना नही रहता ।

—उखलाना (टोक) पो अलीगढ, रानपुरा–३०४०२३

वाणी का अद्भुत प्रभाव

❀ श्री रतनलाल जैन

आचार्य श्री नानेश के व्यक्तित्व और वाणी मे अद्भुत प्रभाव है। उनके दशन मात्र से राग-द्वेप मिटा कर समतामय जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है। कुछ वर्षो पहले आचार्य श्री हमारे क्षेत्र श्यामपुरा (स मा) मे पधारे। पास ही के इण्डवा गाव मे चार पार्टिया चल रही थी। इनमें परस्पर बोलचाल तक न थी। आचार्य श्री के उपदेश का ऐसा प्रभाव पडा कि उनका मन-मुटाव समाप्त हो गया और आज वे आपस में मिल-जुल कर समताभाव से रह रहे हैं। इसी तरह बावई गाव मे भी आचाय श्री ने वहा के सारे मन-मुटाव को अपनी झोली मे लेकर सबको समता का उपदेश दिया। आज वहा सभी मे शाति का वातावरण है।

—श्यामपुरा (सवाई माधोपुर)

❀❀
❀❀

सारा वैर-विरोध शान्त हो गया

❀ श्री मूलचन्द सहलोत

५ जून, १९८९ को निकुम्भ वासियो को आचार्य श्री के सान्निध्य में उनकी जयन्ती मनाने का अवसर प्राप्त हुआ। इस अवसर पर विभिन्न त्याग-प्रत्याख्यानो के साथ १३ व्यक्तियों ने सजोडे शीलव्रत के नियम स्वीकार किये। आचाय श्री की अमृतवाणी का ऐसा प्रभाव पडा कि सारा वैर-विरोध शांत हो गया। किसी बात को लेकर श्री मूलचन्दजी सहलोत एव श्री भैरूलालजी सहलोत मे-कई वर्षों से मन मुटाव चल रहा था। श्री भंवरलालजी सहलोत व उनके दोना पुत्रो में आपसी झगड़े का मुकदमा चल रहा था। श्री राजमलजी व बसन्तीलाल जी धींग इन दोनो भाइयों मे गहरा मन-मुटाव था। श्री चन्दनमलजी दक किसी बात को लेकर समाज से अलग-थलग थे। आचार्य श्री के ७ दिन यहा विराजने से सब वैर-विरोध शांत होकर स्नेहमय वातावरण बन गया।

—शाखा संयोजक, श्री साधुमार्गी जैन संघ, निकुम्भ (चित्तौड़गढ़)

टूटे दिल जुड़े : बिखरे परिवार मिले

❀ श्री शान्तिलाल मारू

हमारे यहा श्री मागीलालजी नादेचा एव उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री मदनसिहजी के बीच आपसी विवाद के कारण कोर्ट मे केस चल रहा था। पिता-पुत्र में आये दिन लडाई-झगडा होता रहता था। आचाय श्री नानेश का २६ अप्रेल, ८६ को हमारे गाव सरवानिया मे पदार्पण हुआ। यहा आपके प्रेरणादायक आत्मस्पर्शी दो व्याख्यान हुए। इन व्याख्यानो से प्रेरित-प्रभावित होकर उक्त दोनो पिता-पुत्रो ने आचाय श्री के सम्मुख अपने मुकदमे उठाने की घोषणा की व आपस मे गले मिले। सास-बहू, जिनमे काफी समय से बोल-चाल नही थी, वे भी परस्पर गले मिली। इससे श्रीसघ व आस-पास के गावो मे आनन्द की लहर दौड गई।

जावद से विहार कर आचाय श्री ६ कि की दूर स्थित बागडा (राज) गाव पधारे, तो वहा भी मेल मिलाप का अनूठा दृश्य देखने को मिला। इस गाव मे खेती के बटवारे को लेकर दो परिवारो मे आपसी झगडा चल रहा था। एक-२ पार्टी के ५०-५० हजार रुपये तक खच हो चुके थे और दोनो पार्टी के लोग एक-दूसरे की शक्ल तक नही देखना चाहते थे। आचाय श्री नानेश को जब इस बात का पता चला तो उन्होने दोनो पार्टियो के लोगो को बुलाकर समझाया। आचाय श्री के उपदेश का ऐसा प्रभाव पडा कि दोनो पार्टियो ने मुकदमे खारिज करवाने की घोषणा कर दी, इससे पूरे गाव मे खुशी का वातावरण छा गया और घर-२ मिठाई बाटी गई।

यह है आचार्य श्री की वाणी का अदभुत प्रभाव। इस प्रकार आचाय श्री के धर्मोपदेश से न जाने कितने बिखरे परिवार मिले हैं और टूटे दिल जुडे हैं।

—मत्री, श्री साधुमार्गी जैन श्रावक सघ, सरवानिया (म प्र)

स्वर्ण जयती का स्वर्ण अवसर

❀ श्रीमती रत्ना ओस्तवाल

अध्यात्म की साधना का एक ही काम है कि वह साधक को भीतर के जगत से परिचित करा देती है । अध्यात्म की साधना जैसे-जैसे आगे बढती है वसे-वसे अनेकात का जीवन दशन, जो बीज रूप से उपलब्ध हुआ है, विराट वृक्ष बनकर हमारे सामने लहराता है, तव जीवन सौरभ चारो दिशाओ मे महकने लग जाती है । यह स्वण अवसर अद्ध शताब्दि बन आज हमारी अध्यात्म साधना मे उगते सूय की भाति चमक रहा है । समता की समस्त धारा को नवीन दिशाबोध देकर जीवन मे समाहित करने की प्रेरणा दे रहा है ।

आज जनमानस को अनन्त उपकारी महायोगी आचायश्री नानेश ने अपने ५० वष की अध्यात्म साधना का निचोड "समता सदेश" देकर समता की उच्चतर श्रेणियो पर आरूढ होने व परम पद की ओर अग्रसर होने का सुलभ मार्ग बताया है ।

साधना का माग बहुत कठिन माग है । यह निश्चित है कि निराश व्यक्ति इसमे आ नही सकता और प्रमादी व्यक्ति इसमे सफल नही हो सकता इसमे परिश्रम, प्रयत्न और पराक्रम करना पडता है । यह भ्रात धारणा है कि ध्यान करके, आखें बद कर बैठ जाना निठल्लापन है । ध्यान साधना व अध्यात्म साधना मे जितना पराक्रम चाहिए उतना पराक्रम खेती मे लगाने की जरूरत नहीं होती । साधना का माग मीठी बातो का माग नही है । वह अथहीन बातो का रास्ता नही है । साधना की बातें कडवी होती है, पर वे हैं साथक इसीलिय लोगो को वह माग निराशा का माग लगता है ।

आचाय प्रवर ने साधना के माग को अपने सयमी जीवन के पराक्रम से संजोया । साधना का माग है जीवन की शाति का, मन की शांति का । जीवन और चित की शाति धन-वैभव से प्राप्त नही होती । आचाय श्री ने यह सब जाना एव बाल्य-अवस्था मे ही जीवन को पराक्रमी बना दिया, अन्तत संपूर्ण सयमी जीवन मे समता के धरातल पर आचाय श्री नानेश ने एकाग्रता समीक्षण ध्यान का परिचय जन मानस को दिया । जिससे आज के आधुनिक मानव को अपनी आवश्यकता सीमित करने तथा यथार्थ जीवन जीने की राह दिखाई ।

प्रगति का प्रथम चरण है सकल्प और दूसरा चरण है प्रयत्न, मनुष्य की आवश्यकताए और इच्छाए असख्य और अनेक प्रकार की होती है । यदि मनुष्य एक आवश्यकता को पूर्ण करता है तो दूसरी आवश्यकता सामने खडी हो जाती है, जीवन पयन्त अपनी सभी आवश्यकताओ की पूर्ति नही कर सकता । असीमित

आवश्यकताओ के कारण ही नये-नये आविष्कार होते रहे हैं। फलस्वरूप समाज की प्रगति होती है। जब यह प्रगति धर्मोत्थान मे होती है तब सकल्प व प्रयत्न रूपी साधन एकजुट हो जाते हैं। इस एकजुटता के परिणाम से धर्म प्राण या धम प्रतिपाल का उदय होता है। धीर-वीर-गभीर आचाय श्री नानेश भी उसी परिणाम के उदीयमान नक्षत्र हैं।"

मनीषी उन्हें कहा जाता है जो दीपक की तरह जलते हैं और अधकार को मिटाकर माहौल को प्रकाशवान बनाते हैं। यह एक प्रकाशस्तम्भ की भाति मूक सेवा है जो भटकते जलयानो को दिशा दिखाने व चट्टानों से टकराने से बचाते हैं। सामाजिक जीवन मे हर व्यक्ति के समक्ष ऐसे ही अनेकानेक अवरोध आते रहते हैं उनसे जूझने के लिए पर्याप्त मनोबल चाहिए आत्मबल चाहिये। वह प्रचूर मात्रा मे सबके पास हैं। पर जो भी उसे जगा लेता है वह मनीषी की भूमिका निभाते हुए अपनी नाव को स्वय खेता है तथा अनेको को पार करा देता है। इसीलिये तो कहते हैं उन्हे "तिनाणम तारयाण'। "बुध्धाणम् बोहियाण।"

प्रगति के इस सकल्प-पूण, प्रयत्नशील, पराक्रमी जीवन मे आचाय श्री नानेश ने समता को जीवन की दृष्टि कहा। जैसी दृष्टि होगी वैसा ही आचरण होगा। जसा मनुष्य देखता है वैसी ही उसकी प्रतिक्रिया होती है। यही आचाय श्री का मूल सदेश है।

विचारशीलता ही मनुष्य की एक मात्र निधि है, इसी आधार पर उसने उच्च स्थान प्राप्त किया है, इस शक्ति का यदि दुरुपयोग होने लगे तो जितना उत्थान हुआ है, उतना पतन भी सभव है। बुद्धि दुधारी तलवार है वह सामने वाले को भी मार सक्ती है, और अपने आपको काटने को भी प्रवृत्त हो सकती है। आज यही तो हो रहा है। जहा भेद है वहा विकार है, पतन है, आचाय प्रवर ने इस भेद को समता सदेश से सुलझाया है। ऐसे आचायश्री नानेश की छत्रछाया मे जीवन यापन कर अपने आपको भाग्यशाली कहने मे सकोच नही करते।

इतनी लबी साधना का निरतर सयमित जीवन जीने वाले, अनुशासन प्रिय सघ एव समाज को नैतिक दिशा-बोध का माग बताकर शुभ कम की ओर प्रेरित करने वाले ऐसे महान् प्रणेता की स्वर्ण जयती, स्वण अवसर बन आज हमारे बीच दर्पण की भाति विद्यमान है, हम सब तप-साधना, सयम-साधना व मन-वचन-काया से समतामय बन स्वण अवसर का लाभ लें, ताकि हम स्वण बन सकें।

—कामठी लाईन, दिल्ली दरवाजा के पास, राजनांदगाव (म.प्र)

□

दिलो को जोड़ने आया हूं, तोडने नहीं

ॐ ओम प्रकाश बरलोटा

जैनाचाय श्री नानालालजी म सा ने सन् १९६५ में रायपुर के सुराना भवन मे शानदार चातुर्मास सम्पन्न किया। आपके प्रेरक प्रवचन, अध्यात्म, दर्शन एव जैन धम के विचारो के सबध मे होते थे। प्रवचन मे जैन समाज के स्त्री-पुरुष तो भारी सख्या मे सम्मिलित होते ही थे किन्तु अन्य धर्मों के मानने वाले लोग भी उपस्थित रहते थे। २५ वष पूव उस समय की एक घटना का जिक्र मुझे आज भी याद है। ईद मिलादुनबी के जुलूस मे सम्मिलित कुछ लोगो द्वारा सदरबाजार जैन मदिर के सामने सडक के आरपार लगा बनर फाड दिया गया। बैनर मे जैनाचाय श्री नानालालजी म सा के प्रवचन सबधी सूचना अकित थी। उस बैनर को फाडते ही समाज के कमठ श्रावक श्री भीखमचदजी बद एव जैन समाज के लोगो म क्षोभ व्याप्त हो गया। जैसे-तैसे बडी मुश्किल से जुलूस तो आगे बढ गया किन्तु वातावरण थोडी ही देर मे गभीर बन गया। रातो रात यह खबर फैल गयी कि कल मौलाना हामिद अली स्वय जैनाचाय नानालालजी म सा के पास प्रवचन के समय जावेंगे और क्षमायाचना करेंगे। दूसरे ही दिन चातुर्मास स्थल पर जैनाचाय एव जैन समाज के पुरुष एव महिलायें भारी सख्या मे प्रवचन सुनने उपस्थित हुये। सब लोगो की उपस्थिति मे आचार्य श्री को सबोधित कर मौलाना हामिदअली ने कहा कि कल बैनर फाडने की घटना से आचाय जी के नाम की तौहीन हुई है एव जैन समाज के लोगों को क्षोभ हुआ है जिसका मुझे हार्दिक दु ख ह। उक्त घटना के प्रति मुस्लिम जमात की ओर से खेद व्यक्त करते हुए उन्होने जैन समाज से माफी मागी एव आशा व्यक्त की कि अब जैन बधु सद्भावना बनाये रखेंगे। क्षमा याचना करते हुये एक नया बनर भी भेंट किया।

कांग्रेसी सांसद महन्त लक्ष्मी नारायणदासजी ने कहा कि रायपुर की यह गौरवमयी परम्परा रही है कि विषम परिस्थिति उत्पन्न होने के पश्चात् भी यहां के हिन्दू एव मुसलमान भाई सद्भावना बनाये रखे। नगर में सदैव साम्प्रदायिक सद्भाव कायम रहा है एव भविष्य मे भी यह परम्परा कायम रहगी।

मौलाना हामिद अली साहब के खेद प्रकाश के उत्तर मे जैनाचाय श्री नानालालजी म सा ने कहा कि बैनर फाडे जाने की उस घटना को मैं अपना अपमान नही समझता और बैनर फाडने से मेरे नाम की तौहीन होने का प्रश्न नही उठता। मैं आपके नगर मे आया हू तथा आप लाग मुझे जसा रखना चाहेंगे उसी प्रकार से मैं रहू गा। जैनाचाय श्री ने कहा मैं लोगो के दिलों को

जोडने आया हू, तोडने नही । जन समाज के लोगो से भी मैं कहता हू कि मेरे सम्मान या तिरस्कार पर ध्यान न दें सद्भाव एव शाति के प्रयासो मे मुझे सहयोग दें। हम सव भाई-भाई हैं, इसे मानकर आप चले आचार्य श्री ने कहा कि रायपुर साम्प्रदायिक सद्भाव का एक आदर्श नगर वने तथा देश के सभी सम्प्रदायो को साम्प्रदायिक एकता कायम रखनी चाहिये । आचार्य श्री ने आशा व्यक्त की कि रायपुर की यह परम्परा सम्पूर्ण छत्तीसगढ एव एक दिन भारत मे फैलेगी । आपने उपस्थित लोगो से साम्प्रदायिक सद्भाव बनाये रखने की अपील की ।

जैन समाज की ओर से श्री महावीरचन्दजी धाडीवाल ने कहा कि हम आचार्य श्री का आदेश शिरोधार्य करते हैं एव यह विश्वास दिलाते हैं कि मुस्लिम भाइयो के प्रति हमारे हृदय मे कोई दुर्भावना नही है । आपने जैन समाज के बधुओ को सद्भाव वनाये रखने की अपील की और मालानाजी से भी अपेक्षा की कि वे यह प्रयास करेंगे कि भविष्य में ऐसी घटनायें न हो ।

इस प्रकार सौहार्द एव शाति पूर्ण वातावरण मे जो अप्रिय घटना घटी थी उसका सुखद पटाक्षेप हो गया और चातुर्मास तप और त्याग के माध्यम से सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ । इस चातुर्मास की सबसे बडी उपलब्धि समाज के कर्मठ कार्यकर्ता श्री सम्पतराजजी धाडीवाल एव श्रीमती रम्भादेवी धाडीवाल की रही जिन्होने स्वय जैन धर्म की दीक्षा अगीकार करली । इनके साथ ही साथ राजनान्दगाव मे और भी भाई-वहनो ने दीक्षा लेकर आचार्य श्री के छत्तीसगढ आगमन को सफल बना दिया ।

आचार्य श्री के सयम साधना के ५० वें दीक्षा वर्ष पर यही कामना करते हैं कि ज्ञान, दर्शन और चारित्र के माध्यम से जनताजनार्दन उत्तरोत्तर प्रगति करें । साथ ही आचार्य श्री के दीर्घायु की भी कामना करते हैं ।

—पेटी लाइन, गाल बाजार, रायपुर (म प्र)

□

नानेश वाणी

• साधुओ का आचार अपने लिये स्वय साधुओ ने नही बनाया है वल्कि तीर्थंकर देव ने वनाया है । उसका पालन ईमानदारी से यदि साधु नही करता है तो वह उस धर्मशासन के प्रतिवफादार नही कहलायेगा । शासन को धोखा देना है, वह सारे ससार को धोखा देना है और स्वय को भी धोखा देना है तो ऐसा द्रोही और दभी समता की स्थिति मे कैसे आ सकता है ?

हे सर्वज्ञ सत् पुरुष

❀ फूलचन्द बोरदिया, 'आनन्द'

हे सर्वज्ञ सत् पुरुष, तव गुण गौरव पुनीत ।
मम अपराध करें क्षमा, मैं पामर अति अविनीत ॥१॥

पाप पंक अनुरक्त मैं, बाध्या कर्म अनन्त ।
शुचिभाव हिये विलोकी, अवलोकी करुणानिकन्त ॥२॥

मन मयूर अति चंचल, अन्तर्द्वन्द्व अनेक ।
अचल अमरत्व पद चहू, जागे हृदय विवेक ॥३॥

विकल थिरत चिंतन सदा, हे कृपा सिन्धु भगवंत ।
सदा लवलीन तव चरण, दो आशीष करुणाकंत ॥४॥

तव चरणरज महिमा अति, क्या जानू मैं मति हीन ।
ज्ञान बिना अधीर हुआ, अति कातर अति दीन ॥५॥

भक्ति भाव उमगे सदा, अविरल आठो धाम ।
अवलम्बन त्रिलोकी आप, सुन्दर सुखद ललाम ॥६॥

शरणागत मैं चरणरज, हे दिव्य ज्योति महान् ।
गुरुवर प्रकाश पुंज हो, आनन्द कंद सुख धाम ॥७॥

३६१, आनन्द स्थल, भोपालपुरा

卐

समतामय हो सारा देश

❀ देवेन्द्रसिंह अमरावत

सत आविया पामणा, उदयापुर मेवाड़ धरा ।
सता रा है भक्त घणा, उपनगर हो गया पावन खरा ।।

मेवाड की राजधानी उदयपुर जो भारतवष मे झीलो की नगरी नामक उपनाम से सुप्रसिद्ध है । यहा पर उत्तरी भारत से लेकर दक्षिण भारत पूर्व से पश्चिम भारत के लोग भ्रमण एव अध्ययन हेतु सुदुर के देशो से भी आवागमन होता रहता है, इससे यहा पर आधुनिकता का रोग आना स्वाभाविक ही है । हडताल आदि होना भी आम वात सी हो गई है । वर्तमान के परिपेक्ष्य मे तो हर स्थान पर अशात वातावरण ही मिलेगा, पर अचानक आजकल एक शुद्ध शोर वायुमण्डल मे गु ज रहा है, मानो मैं कोई सपना देख रहा हू । क्योंकि इस आधुनिकता मे डुवे हुए उदयपुर मे ऐसी आवाज की कभी कल्पना ही नही थी । और आवाज है "समतामय हो सारा देश ।" जिस दूषित वातावरण मे विषमता की तीव्र लहरें उठ रही हो, वही पर अचानक 'समता' शब्द का सुनाई देना सपने की तरह ही आभास हुआ अर्थात् यह मधुर आवाज आश्चर्यजनक प्रतीत हुई । और साथ ही यह भी जिज्ञासा पैदा हुई कि इस अशुद्ध, अशात वातावरण मे यह अति पावन, पवित्र लहर किसके अपार पुण्योदय से उठ रही है ।

इस विपयक जरा गहराई में उतरने पर परिलक्षित हुआ कि यह मधुर शब्द शात लहर एक महान् विभूति, समीक्षण ध्यानयोगी, समता से परिपूण, धर्मवीर, धर्माचाय श्री नानेश के मगलमय पदापण का सुपरिणाम है, जिनका हर क्षण शात साधना मे व्यतीत होता है, जिनकी हर श्वास, प्रत्येक धडकन विश्व शान्ति के लिए है, जिनका हर चिन्तन-मनन विश्व को शाति सूत्र मे वाघने के लिए है ।

जिस महान् आत्मा के शात चित से निकलने वाली ऊर्जा यहा के वायु-मण्डल को पवित्र बनाने में पूर्ण रूप से सफल रही है । ऐसे धर्मवीर के सान्निध्य से उदयपुर की जनता हर्ष विभोर हो रही है ।

मेवाड की पावन धरा पर दो प्रकार के वीर रहे हैं, एक कमवीर और दूसरा धमवीर । कर्मवीरो मे महाराणा प्रताप, शक्ति सिंह आदि की विशिष्ट भूमिका रही है, साथ धर्मवीरो का भी यह खजाना ही है जिनमे विशिष्ट हैं गणेशाचार्य, नानेशाचाय आदि । तो इन्ही धमवीरो मे से निकली एक पवित्रात्मा विश्व की शाति एव समता का सदेश देती हुई वातावरण को शात एव शीतल बनाती हुई अग्रसर हो रही है ।

नाना रो कहयो मने साचो लागो, यो कहणो स्वीकार वण जा थू कमवीर।
अहिसा रो धारणो मने चोखो लागो, सत्य घम धार वण जा थू धमवीर॥

धर्मवीर श्री नानेश जिस प्रकार कर्मवीर अपनी मातृभूमि की रक्षाय, शत्रुश्रो पर विजय प्राप्त करने हेतु मा से आज्ञा एव आशीर्वाद लेकर मुकुट पहन, कवच धारण कर हाथ में ढाल-तलवार लिए, घोडे पर सवार होकर सैनिको के साथ निकला करते थे । ठीक इसी प्रकार घमवीर नानेश क्रोध, मान, माया, लोभ आदि शत्रुश्रो पर विजय प्राप्त करने हेतु माता शृगारा से आज्ञा व आशीर्वाद लेकर समता रूपी मुकुट पहन, संयम रूपी कवच धारण कर, अहिसा रूपी ढाल-तलवार लिए, महाव्रत-रूपी अस्त्रो-शस्त्रो से सजकर मधुरता, सरलता, उदारता, सहनशीलता, क्षमाशीलता आदि गुणो की विशाल सेना लेकर नगर-नगर, घर-घर शाति, समता का सन्देश वितरण हेतु विचरण कर रहे हैं ।

हिन्द रत्न, मेवाड का लाल, दाता का दाता आज से करीव ७० वर्ष पूर्व अरावली की तराइयो मे बसे एक छोटे से ग्राम मे अवतरित हुआ । जिनका प्रारम्भिक नाम गोवधन था, पर सयोगवश घर मे सबसे छोटे होन के कारण उस परिवार जनो ने "नाना" उपनाम रख दिया । उसी नाना ने अपनी अल्प आयु मे विराट वुद्धि से ससार को दखा, तो मन काप उठा । ससार पर कपायो का साम्राज्य देखा । ऐसी स्थिति से ससार को वचाने और उसे शातमय बनाने हेतु उचित राह की खोज मे निकल पडे । उस उचित मार्ग मे आने वाले विराट प्रलाभन, कठिनाइया, परिस्थितिया भी विचलित नही कर पायी एव वे लक्ष्य की ओर आगे वढते गये—

विपत्तियो मे भी तुम मुस्कराते रहे, गति रोकने वाले भी चकराते रहे ।
कट कटीले पथ पर भी तुम, सत्य समता का झण्डा लहराते रहे ॥

और एक दिन लक्ष्य के अनुरूप शात क्राति के जन्मदाता, ज्योतिधर गणेशाचार्य को गुरु स्वीकार कर शाति के दातार वन घर, नगर, समाज एव राष्ट्र मे समभाव से समता दान करने हेतु सन्यासी वन चल पडा ।

आचाय नानेश अपने शरीर की परवाह किये विना समभाव का महत्व देते हुए अपनी अमृतवाणी की वर्षा करते जा रहे हैं, जिसके परिणाम स्वरूप श्रद्धालुश्रो की भीड उमडती हुई नजर आ रही है और प्रत्येक प्राणी अनुपम शाति को प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्नता की अनुभूति कर रहा है ।

ऐसे समता विभूति, शाति के दाता, अहिसा के अवतार नानेशाचाय को कोटिश वन्दना । विश्व के कल्याणार्थे वे दीर्घ जीवी हो तथा उनका समीप सुखद सान्निध्य सदा-सदा हमें प्राप्त होता रहे, यही मगलकामना है ।

—प्रवचन स्टेनो, मरतढी (मावली)

दोहा नानालाल रा

❀ श्री पृथ्वीसिंह चौहान 'प्रेमी'

सत पधारिया पामणा, भींडर की शुभ भोम ।
काँटा सब साँटा हुआ, भाटा हुआ जू मोम ॥ १ ॥

वाणी नाना सत की, जाण गरजती तोप ।
सम्मुख साधक शूरमा, बख्तर धरे न टोप ॥ २ ॥

वाणी नाना सत की, पाणी सू पतलीह ।
प्यास बुझावण वह रही, घर-घर गली-गलीह ॥ ३ ॥

सता रा सत्सग मे, मेलो मच्चे महान् ।
गेलो नाना सत को, गहे सो चेलो जाण ॥ ४ ॥

कधी वणज कीधो नही, रह्यो न कभी दलाल ।
वैश्य वश अवतस है, नाना लाल कमाल ॥ ५ ॥

ब्याज बटो तो लालग्यो, सट्टो गयो सिमटट ।
हुण्डी नानालाल सू, हार गई झट-पट् ॥ ६ ॥

वाणिज रा खत-पानडा, होग्या जमा-खरच्च ।
नानालाल कधी नही, तोल्यो लूण-मरच्च ॥ ७ ॥

पग-२ मे नाना भगत के, जगत रखे अनुराग ।
जोधपुरी साफा झुके, झुके कसूमल पाग ॥ ८ ॥

वाण्याँ बाँचे पानडा, कलम लिख्या तत्काल ।
विना कलम रा सत लिख्या, बाँचे नानालाल ॥ ९ ॥

वणज कियो इस विश्व ने, पूरी तौर-पिछाण ।
आना को आया नही, नाना के नुकसाण ॥ १० ॥

तोकी कधी न ताकडी, मारी कधी न मूठ ।
तोल कह्यो नाना भगत, जगत सफा है झूठ ॥ ११ ॥

—भीण्डर (राज)

अनुभूति के झरोखे से

❀ श्री सुरेश धींग

[१]

सन १९२३ मे स्व आचाय श्री जवाहरलालजी म सा का बम्बई के उपनगर घाटकोपर मे चातुर्मास हुआ था । स्व आचाय श्री एक निर्भीक वक्ता थे । उनकी वाणी में एक अनन्य-सा जादू था । उनके प्रवचन अहिंसा और दया से ओत-प्रोत हुआ करते थे । उस समय विश्व को अहिंसा और सत्य का पाठ पढाने वाली इस भारत भूमि पर जीव हिंसा का घोर ताडव मचा हुआ था । जगह-जगह पर कत्लखाने बने हुए थे । आचार्य श्री से मूक प्राणियो का वध नहीं देखा गया । दया से परिव्याप्त उनका हृदय पसीज उठा । उन्होंने श्रमण भगवान महावीर की वाणी 'दाणाण सेट्ठ अभयप्पयाणं' का उद्घोष कर तत्कालीन जन-मानस का इस ओर ध्यान आकर्षित किया । परिणामस्वरूप घाटकोपर मे जीव-दया केन्द्र की स्थापना हुई, जो आज भी विद्यमान है । उसी के समीप राष्ट्रीय राजमाग पर उनका चातुर्मास-स्थल था ।

वतमान आचार्य श्री नानेश का पाद-विहार था घाटकोपर से बोरीवली की ओर । न जाने क्यो आचाय श्री ने ऐसे रास्ते का चयन किया जो उपयुक्त दोनो स्थलो को पीछे की ओर छोड देता है । राजमार्ग पर पहुचने पर मैं आचाय श्री को अगुली से सकेत करते हुए बताने लगा कि उस नीम के वृक्ष के पास वाले स्थल पर स्व आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा ने अपना चातुर्मासकाल व्यतीत किया था और आगे जो स्थान है, वह जीवदया मण्डल का परिसर है जहां मृत्यु के मुख से बचने वाले प्राणी निवास करते हैं । मुझ अत्यन्त आश्चय हुआ कि आचाय श्री ने इगित स्थान की ओर न तो अपनी दृष्टि ही मोडी और न इतना कहने के बावजूद भी उनकी मुख-मुद्रा पर कोई अभिव्यक्ति ही परिलक्षित हुई, अपितु वे अपनी उसी गति से ईर्या समिति का पूर्ण रूप से अनुपालन करते हुए गतव्य दिशा की ओर बढ़ रहे थे ।

सामान्य व्यक्ति के मस्तिष्क मे कल्पना होना स्वाभाविक है कि आचाय श्री नानेश जिस धम परम्परा का नेतृत्व कर रहे हैं, उस परम्परा के एक तेजस्वी आचाय के प्रति उनके हृदय मे ममत्व निश्चित रूप से होगा । और विशेषकर उन स्थलों के प्रति भी जिन्हें सर्वसाधारण तीर्थ स्थल की संज्ञा देते हैं । वस्तुत यह मेरी भूल थी, क्योकि जड और चेतन का स्वरूप समझने वाले, सम्यक् चारित्र का अनुपालन करने वाले उन जड वस्तुओ के प्रति क्या ममत्व भाव रखेंगे ?

बम्बई मे मुझे आचार्य श्री का स्वल्पकालीन सान्निध्य मिला और सान्निध्य फलावह भी रहा । तात्विक-ज्ञान से परिशून्य होने के कारण आचाय श्री से उसके बारे में चर्चा-विचर्चा करना मेरे लिए असम्भव सा था । आज के नवयुवको के मन-मस्तिष्क मे कुछ ऐसे प्रश्न व जिज्ञासाए होती हैं जिनका समाधान प्राय नही मिलता है । यही कारण है कि उनका धम के प्रति लगाव नही वत् है । मैं स्वय भी उसी वग से सम्बन्धित था । मुझे भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रश्नो के तार्किक उत्तर मिले और आत्मिक जिज्ञासाओ का सचोट समाधान भी ।

आचार्य श्री का कहना है कि "जिस व्यक्ति के मस्तिष्क मे प्रश्न व जिज्ञासाए उत्पन्न नही होती वह या तो सर्वज्ञ-सवदर्शी की श्रेणी में आता है या ज्ञान से बिल्कुल शून्य ।" लेकिन मुझे तो ऐसा लगता है कि मैं इस सत्य का बिल्कुल अपवाद हू । आचाय श्री की नम्रता, वाक्पटुता, आचार-विचार की एकरूपता और कठोर सयमी जीवन आदि गुणो को देखकर मेरा मस्तष्क श्रद्धा से पूरित हो, झुक जाता है, मानो आचार्य श्री की समीपता ही मेरे प्रश्नो के उत्तर एव जिज्ञासाओं का समाधान बन चुकी हो ।

आचाय श्रीजी के कदम पूना की दिशा मे गतिमान थे । बीच मे कामसेट नाम का एक छोटा-सा गाव था । जब आचार्य श्री आदि सन्त समुदाय का उपाश्रय मे प्रवेश हुआ, उसी समय एक कुत्ता भी वहा आया, शायद सन्त-सान्निध्य की परिकल्पना मन मे सजोये हुए । प्राथना, व्याख्यान एव ज्ञान-परिचर्चा उसका दैनिक क्रम-सा बन गया था । व्याख्यान वाणी श्रवण करने की उसम अत्यन्त उमग दृष्टिगत हुई । वहा से अगले गतव्य की ओर प्रस्थान करने पर वह प्राणी भी विहार में सम्मिलित हो गया ।

बम्बई-पूना राष्ट्रीय राजमाग अतिव्यस्त राजमार्ग है । वाहनो की गतितीव्रता के कारण दुघटनाए भी अधिक होती हैं । आयुष्य की प्रबलता ही कहिये कि वह कुत्ता दो बार दुर्घटना से बच गया, लेकिन तीसरी बार तो वह शिकार हो ही गया । रक्त की धारा नदी के प्रवाह की भाति सडक के उस किनारे पहुच गयी । ऐसा लगा जैसे कि उसने मृत्यु का आलिंगन कर लिया हो । फिर भी आचाय श्री ने उसे मागलिक श्रवण करायी । उसकी अवस्था बेजान-सी थी । लेकिन न जाने क्यो मागलिक के समय उसकी आखें स्वत ही आचाय श्री की तरफ हो गयी । उसे सेवा-परिचर्या की आवश्यकता महसूस हो रही थी । अतः मैं स्वय और चाकण गांव के दर्शनार्थी उसकी परिचर्या मे जुट गये । इसी बीच आचार्य श्री दो-तीन कि मी आगे बढ़ चुके थे । उसकी स्थिति मे सुधार की झलक न देखकर हम भी उसे सडक के किनारे छोड बडगाव की ओर चल पडे ।

करीब आधा कि मी की दूरी तय करने के बाद हमने देखा कि कुत्ता उठा उस जख्मी अवस्था मे कामसेट की ओर चल पडा ।

उस तिर्यंच पचेन्द्रिय प्राणी का आचाय श्री व उनके शिष्य-समुदाय प्रति कितना प्रगाढ प्रेम एव वात्सल्य था कि उस असक्त व जख्मी अवस्था वह लगातार सन्त-मुनिराजो की खोज मे भटकता रहा और अत मे खोज ह लिया वह स्थान जहा आचाय श्री विराजमान थे । हम लोगों को नाम-मात्र भ आशा नही थी कि वह प्राणी जीवित बच पायेगा और बचने पर आचार्य श्री के पास पहुच सकेगा । जिस समय वह वहा पहुचा उसकी हालत अत्यन्त दयनीय व नाजुक थी । वह आते ही उपाश्रय में सन्तो के निकट सो गया । उसे उस स्थान से उठाने के अनेक प्रयत्न किये गये । लेकिन सभी निष्फल रहे । वह उसी अवस्था में अपने जख्म का दु ख सहन करता रहा और साथ ही सन्त-समागम का अभूत-पूव आन द लेता रहा । उसके लिए किया गया खाने-पीने का प्रब ध भी व्यथ रहा । अगले दिन तक उसकी अवस्था में कुछ सुधार हुआ और उसी दिन रात्रि को दर्शनार्थ आये कामसेट के नवयुवक उसको उसकी इच्छा के विपरीत गाडी में डालकर ले गये ।

इस घटना से यह आभास होता है कि तिर्यंच अवस्था में भी प्राणी के मन मे सन्त-सान्निध्य एव धम की प्रबल भावना उत्पन्न होना सम्भव है, जिसके हम साक्षी हैं ।

—२/१६, तैयब बिल्डिग, एस जी रोड,
जेकब सर्कल, बम्बई–४०००११

नानेश-वाणी

- समता के भावो के साथ असभव घटनाए भी सभव हो जाती है ।
- पुरुषार्थ आत्मा को पतन की खाई से उठाकर उत्थान के उच्चतम शिखर तक पहुचने की क्षमता रखता है, बशर्ते कि यह दृढ़तापूर्वक जारी रहे ।
- विश्व के गूढ़ रहस्यो का ज्ञान आत्मिक शक्तियो द्वारा ही सम्भव बनता है ।

तीन भव्य झांकियां

❀ श्री रावलचन्द सांखला

जैन जगत् के भव्य भास्कर, समता-सरोवर के राजहस मेरे परम आराध्य आचाय श्री नानेश के साधना-शिखर पर आरोहित दिव्य जीवन के शुभ सुमिरन से मेरे परिवार मे शान्ति का जो झरना प्रवाहित हुआ, उसकी भव्य झाकी यहां प्रस्तुत है—

(१)

नेत्र-ज्योति जगमगा उठी

मेरे पौत्र का जन्म जनवरी १९७३ मे हुआ । वह जन्म से ही नेत्रहीन सा था । हमने बहुत उपचार किया किन्तु नेत्र ठीक नही हुए । हमारे परिवार के लोगो ने एक ही केन्द्र विन्दु बनाया आचाय भगवन श्री नानेश को कि आप ही हमारे पौत्र की आख के औषधिस्वरूप बनकर नेत्र ज्योति प्रदान करें । परिवार के समस्त लोगो का ध्यान आचाय भगवन के ऊपर टीका हुआ था । एक चमत्कार हुआ उसके जन्म के ठीक एक माह पश्चात् हमारे पौत्र की नेत्र ज्योति वापस मिल गई । हम अपने पौत्र को आचार्य भगवन के दशन हेतु ले गये । उस समय आचार्य श्री का चातुर्मास देशनोक मे था ।

(२)

निराशा मे आशा का दीप जल उठा

घटना यू बनी । जब मेरा यही पौत्र जो नेत्र से पीडित था, पाच वर्ष की आयु में अपने पूरे शरीर मे छाले (माता) से पीडित था । इतनी अधिक तकलीफ हो गई थी तथा एक समय तो ऐसा आया कि हम उसकी सारी उम्मीदें छोडकर आचार्य भगवन की आराधना मे ले गये थे । ऐसा चमत्कार हुआ एक घन्टे के अन्दर कि हमारे उस पौत्र ने मा कहकर आवाज दी तथा क्रमश छालों में सुधार हुआ । हम लोग राजेश को लेकर आचार्य भगवन के दशन हेतु अजमेर गये ।

(३)

स्वस्थता फिर लौट आई

मैं स्वय ५ वष की अवधि मे ३ बार पेरालिसिस तथा २ बार हार्ट अटक से पीडित हुआ, किन्तु आचार्य भगवन की अनन्य कृपा से मेरे शरीर में अभी कोई तकलीफ नहीं है । मेरी उम्र अभी ७० वर्ष की है एवं धमध्यान में लीन हू ।

मेरी धर्मपत्नी आज से ४ वर्ष पूर्व बहुत शारीरिक तकलीफ से पी
थी । शरीर के समस्त अ ग अपना काय बन्द कर चुके थे किन्तु आचाय भग
आशीर्वाद से आज वह पूण स्वस्थ्य है एव धम मे लीन है ।

उपयु क्त सभी चमत्कारिक घटनाओ से प्राप्त प्रेरणा से हमने
निजी निवास स्थान पर "समता भवन" का निर्माण स २०४२ मे कराया
जिसमे सभी स्वधर्मी नित्यदिन धार्मिक प्राथना, सामायिक, प्रतिक्रमण, इत
करते हैं ।

—कैलाश नगर, राजनादगाव-४९१४४१ (म

नानेश वाणी

○ यदि सदा के लिए शाति अनुभव करनी है ता त्याग माग पर चलना होगा, त्याग का माग ही शाश्वत-शान्ति का माग है।

○ ईर्ष्या-राक्षसी होती है, इसका जिसके मन पर असर हो जाता है वह जीवन के स्वरूप को बिल्कुल नही देख पाता । वह जीवन का अपव्यय करके उसे नष्ट कर डालता है ।

○ शब्द अनन्त विचारो के वाहक हैं । विचार शब्दा पर आरूढ़ होकर बाहर आते हैं । शब्द कैसे ही हो, वाहन का महत्त्व नहीं है, महत्त्व सवार का है ।

○ व्यक्ति अपने जीवन पर, अपने यौवन पर, अपनी शक्ति और सम्पन्न शीलता पर एव अपने शरीर पर अभिमान करता है । मैं ऐसा कर रहा हू मेरे अन्दर ऐसी शक्ति आ गई है । इस प्रकार अहंवृत्ति जब आत्मा पर छा जाती है तो वह आत्मा अपने विकास को अवरुद्ध कर डालती है ।

○ एक सम्यक् दृष्टि महारम्भ और महातृष्णा की क्रिया में नरक का आयुष्य भी बाध सकता है ।

मार्गदर्शक चिन्तन

⚛ श्री रतन पाटोदी

आचार्य श्री १००८ श्री नानालाल जी म सा से व्यक्तिगत चर्चा का सौभाग्य तो मुझे मिला नही, हा उनके प्रवचन सुनकर मैंने यह अवश्य महसूस किया है कि आज भारतवर्ष धम और राजनीति के जिस सकट काल से गुजर रहा है, उस सकट से देश को मुक्ति दिलाने के लिये आचार्य श्री का चिंतन देशवासियो का मागदर्शन कर सकता है ।

महापुरुष एक जैसा सोचते है । स्व दार्शनिक डॉ राममनोहर लोहिया ने कहा था कि धर्म और राजनीति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । लोहिया का कहना था राजनीति अल्पकालीन धर्म है और धम दीघकालीन राजनीति है । धम का काम है हर अच्छे काम को करना और उसकी प्रशसा करना तथा राजनीति का काम है हर बुराई से लडना और उसकी आलोचना करना । यही धरातल आचाय श्री १००८ नानालाल जी महाराज साहब के चिन्तन का है । जिसे शान्ति मुनि की पुस्तक आचाय श्री नानेश विचार दर्शन मे पढकर मैंने अनुभव किया है । अधिकाश सता का चिन्तन "तुझे पराई क्या पडी अपनी आप निबेड ।" के सिद्धान्त पर जहा आधारित रहता है वहा आचाय श्री ने भारतीय उपनिषदों के सम्पत्ति क मोह से मुक्त होने के सिद्धान्त और समतावादी समाज की स्थापना के लिये अपने प्रवचनो मे मार्गदर्शन देकर मानव मात्र को भौतिकवादी ससार के दु खो से मुक्त करने के लिये, समतावादियो की अहिंसक सेना की उनकी कल्पना यदि साकार हो जावे तो भारत अपने विश्व गुरु के पूर्व स्थान पर पुन स्थापित हो सकता है । इस अहिंसक समता सेना के प्रयास से भौतिकता के चक्रव्यूह में फसी मानवता को सम्पत्ति के मोह से छुटकारा मिलना सभव हो सकेगा ।

आचाय श्री समता का यह सिद्धान्त वतमान मे तो उपदेश ही है । इस उपदेश को अभी मानव समाज अपने स्वभाव मे नही उतार पाया है । प्रसन्नता इस बात की है कि एक सत आज समता का सपना देख रहे हैं और इस सपने को एक ठोस धरातल देने का प्रयास कर रहे हैं । यह सपना साकार होना है तो मानव हिलेगा और वत्तमान समाज-व्यवस्था मे विस्फोट होगा और इस विस्फोट से निकलेगा नया समाज और नये विचार वाला इन्सा नजो आध्यात्मिक समता, भौतिक समता भाईचारे और शाति के गीत गावेगा ।

मानव आज दोराहे पर खडा है । एक तो मानव असुरक्षा की भावना से ग्रसित होकर नित ऐसे नये—नये हथियारो का निर्माण कर रहा है । जिनका यदि उपयोग हुआ तो मनुष्य जाति का विनाश होगा या फिर आचाय श्री का अहिंसक समता सेना वाला रास्ता जिस पर चलकर स्थायी शाति की स्थापना की जा सकती है । दोनो मे से एक रास्ता आज मानव को चुनना है— विनाश या शाति ।

—रगमहल, सर हुकुमचन्द मार्ग, इन्दौर

तू ताज बना, सरताज बना

❀ श्री समरथमल डागरिया, रायपुर

ओ जैनधम के महाऋषियो, ओ दशवैकालिक की मर्यादाओ ।
ओ इतिहासो के स्वर्णिम पृष्ठो, ओ आगम की सब गाथाओ ।
तुम्ही बताओ, जिनशासन मे, किसने बाग लगाया है ?
किसने नव यौवन को फिर से, चिन्तन का पाठ पढाया है ?

किसने सयम-सामायिक की, घर-घर मे बीन बजाई है ?
किसने समता दशन की सुरसरिता, हर दिल मे आज बहाई है ?
नन्ही सी काया है जिसकी पर, हिमगिरि झुक-झुक जाता है,
कई सदियो मे ऐसा ऋषिवर, इस भूतल पर आता है ।

तो सकल्प करो ओ जवा जुझारो, हम उसकी पीडा पी जावेंगे,
हम इसके आदर्शों को, घर-घर मे जाकर पूजवायेंगे ।
तो लाल किले की इस भूमि पर, मैं आवाज लगाता हू ।
पच महाव्रतधारी मुनि का, मैं इतिहास सुनाता हू ।।

तू ताज बना, सिरताज बना, और चमका चाद-सितारो से ।
जिन्दावाद है नाना गुरुवर, तू गू जे जय जयकारो से ।।

सदियो का सौरभ पाया है, ऐसा गुरुवर मिले कहां ?
अब यदि तुम चुक गये तो, बतलाओ फिर ठौर कहां ?
जिसके जप तप सयम पर, जिनशासन इटलाता है ?
मन-मन्दिर मे झाक के देखो, कौन नजर तुम्हे आता है ?
तू आन बना, अभिमान बना, हम भूमे मस्त नजारो से ।।जिन्दा०।।

धर्मपाल के वदत चरण पर, मानवता हर्षाई है ।
शुभ घडी जिनशासन मे गुरुवर तुझ से आई है ।।
ओ महावीर के लोह लाडलो, युग ने तुम्हें पुकारा है ।
बलिदानों का स्वर्णिम अवसर, आता नहीं दुबारा है ।।
तू शान बना, वरदान बना और झुक गये शीश हजारो से ।।जिन्दा०।।

दीवानो के दिल उछले हैं, फिर तूफान उठाने को,
मस्तानो की मस्ती झूमी, अपना मार्ग बनाने को ।
बदला-बदला यौवन लगता, उसने ली अगडाई है ।
गुरुदेव ! तुम्हारी वाणी ऊपर मचल उठी तरुणाई है ॥
तू साज बना, आवाज बना, कोई बात करें इन जुझारो से ॥जिंदा०॥

बहिनो ने उलझी सुलझी बातो के रिश्ते तोड दिये,
सावन-फागुन महावर मेहदी से यू रिश्ते तोड दिये ।
सन्नारी ने काम, क्रोध, मद, लोभ को ठोकर मार दी,
घर-घर मे अरे दया धर्म की नीव गहरी गाड दी ॥
तू राह बना, उत्साह बना, ये धधक उठी अगारो से ॥

अभिनन्दन है, वन्दन गुरुवर तेरी बात निभायेंगे,
जिनशासन को तेरे अरमानो की भेट चढायेंगे ।
ढूढ़ रहा हू उन शेरो को, जिनका लहु हुआ नही पानी,
जो हरगिज सह नही पायेगा, अब मौसम की मनमानी ॥
तू प्राण बना, भगवान बना, बस जियो बरस हजारो से ।
जिन्दाबाद है नाना गुरुवर, तू गूजे जय-जयकारो से ॥

Δ

नानेश वाणी

• व्रत ग्रहण के प्रारम्भ मे एक नई निष्ठा जन्म लेती है और अव्यक्त रूप से ही-सही—वह निष्ठा सम्पूर्ण प्रवृत्तियो को नियन्त्रित करती है । अत व्रत ग्रहण के महत्त्व को समझना चाहिये एव यथाशक्ति यथा सुविधा कुछ न कुछ व्रत अवश्य ग्रहण करते रहना चाहिये ।

• यदि श्रावक अपने व्रतो पर अडिग रहे और उसका प्रभाव चारो ओर फैले तो इस राष्ट्रीय एव सामाजिक वातावरण को भी परिवर्तित किया जा सकता है ।

• सम्यक-दृष्टि और सम्यक-ज्ञान के बाद सम्यक् आचरण का ही प्रमुख महत्त्व होता है यदि दृष्टि और ज्ञान के साथ आचरण न हो तो वह ज्ञान सार्थक नही बनता है ।

• अपने भाग्य की निर्माता स्वय आत्मा है ।

• सरल होता है, वह औरो मे भी सरलता की ही कल्पना रखता है ।

दो गजल

❀ श्री कैलाश पाठक 'म

(१)

तेरे दर्शन के लिए लोग तरसते हैं यहा,
अश्क आंखो से मोहब्बत के बरसते हैं यहा ।

तेरा दर राहे खुदा का है बताता सबको,
भूले भटके सभी इसान सवरते हैं यहा ।

दुनियादारी के झमेलो मे फसा इन्सा है,
ना ना-हा हा मे कई लोग बदलते हैं यह ।

इन्सा आता है जमी पर और चला जाता है,
लाल दडी मे कई बार निकलते हैं यहा ।

एक 'अनवर' ही नही भाई रूपावत भी है,
दर्द वाले ही तेरे पास पहुचते हैं यहा ।

(२)

दया सागर तुम्हारा नाम है,
क्षमा करना तुम्हारा काम है ।

फर्ज बनता है हर एक इन्सान का,
वन्दना करना सुबह और शाम है ।

जहां जाऊ वहा अरिहन्त मिलता,
मिली समता तुम्हारा धाम है ।

कोई प्यासा अगर पहुचा वहा तक,
भरा तुमने उसी का जाम है ।

मिटाने कष्ट 'अनवर' के गुरु नानेश,
चलते रहे वनवास मे ज्यू राम है ।

—बी/२०७, यशोधमनगर, मन्दसौर

卐

विशुद्ध जीवन के प्रतीक

❀ श्री जितेन्द्र कुमार बांठिया

महापुरुषों का जीवन जनता के लिये प्रेरणास्पद व मार्ग दर्शक होता है और हमे आदर्श जीवन बनाने की भव्य प्रेरणा देता है। इसलिये जन्म जयन्ती, दीक्षा जयन्ती आदि का आयोजन किया जाता है।

पवित्रता, साधुता और विशुद्ध जीवन के प्रतीक महा यशस्वी परम पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री नानेश के सयम साधना के ५० वर्ष के पुनीत प्रसग से हम अपने जीवन को रूपान्तरित करें। सयम साधनामय आपके निर्लिप्त जीवन एव त्याग-वैराग्य से ओत-प्रोत आपकी अमृतमय वाणी से पिछड़े वर्गों के लाखो भाई-बहिनों ने दुर्व्यसनो का त्याग कर सदाचारी सस्कारी जीवन स्वीकार किया है।

आधुनिकता एव भोग-विलास के वातावरण मे पोषित सहस्रो पारिवारिकजनो ने सम्यक् आत्मबोध प्राप्त कर व्रती जीवन अपनाया है, और गत २६ वर्षों मे २५१ मुमुक्षु भव्य आत्माओ ने सासारिक विषयाशक्ति से पूर्णतया विरक्त होकर सयम-साधनामय सर्वव्रती साधुत्व अगीकार किया है।

आपके जीवन मे आकाश की निर्मलता, गगा की पवित्रता, चन्द्रमा की शीतलता व सूर्य की तेजस्विता के साथ दर्शन होते हैं। आप समता की साकार मूर्ति हैं, अज्ञानान्धकार–विनाश तथा आत्म प्रकाशक ज्ञान-ज्योति हैं और समता साधनामय उत्कृष्ट साधुत्व के अनुपम आदर्श हैं। आपकी वाणी मे ओज है और श्रोताओ को मन्त्रमुग्ध करने की अपूर्व क्षमता है। आपने शिथिलाचार को कभी प्रोत्साहन नहीं दिया। आपने अपने शिष्य को आचार से जरा भी विमुख होते हुए देखा तो उसे अपनी समुदाय से अलग कर दिया। श्रमण वर्ग के लिए एक आदर्श अनुपम उदाहरण है आपका अनुशासन।

१९ वर्ष की युवा-अवस्था मे दीक्षित पूज्य गुरुदेव विगत ५० वर्षों से निर्मल साधना मे निरतिचार से सतत सलग्न हैं। आपश्री का जीवन आत्म-ध्यान की अलख जगाने के लिए मस्ताने साधक का जीवन है। सयम, समता, तप, जप, ब्रह्मचर्य से निखरता आपका आत्म तेज, अलौकिक है। जादूसा मंत्रमुग्ध समर्पण है इस साधक मे आपके दर्शन से अपूर्व शाति की अनुभूति होती है। आपकी शान्त, प्रशात, सौम्य मुद्रा से अमृत झरता है। आपश्री के सम्पर्क मे जो भी आता है वह निहाल हो जाता है। स्वय को भाग्यशाली मानता है।

श्रद्धेय आचार्य-प्रवर के साधनामय जीवन के इस अर्धशताब्दी के स्वर्ण अवसर पर प्रशस्त सयमी जीवन से समाज दीर्घकाल तक लाभान्वित होता रहे। आचार्य-प्रवर दीर्घायु हो इसी हार्दिक मगलकामना के साथ शत सहस्र वन्दन अभिनन्दन

—लक्ष्मी बाजार, बाड़मेर (राज) ३४४००१

नाम संकटहारा रे नाना गुरु म्हारा रे

❀ कुमारी कल्पना बरला

दलित-पतित-शोपित मानवो को सस्कारित कर 'धमपाल' के रूप में रूपान्तरित करने वाले, विश्व विषाक्त विषमता के विनिवारणार्थ समतादशन का प्रवतन करने वाले, तनावग्रस्त मानवो को तनावमुक्ति एव आत्मशाति- अनुभव करने हेतु समीक्षण ध्यान योग को आविष्कृत करने वाले, श्रुति की अनुभूति के साथ प्रवचनो के माध्यम से जन-जन के मन को आनन्दित करने वाली अभिव्यक्ति देने वाले, जिनशासन नमोमणि आचाय श्री नानेश का शत्-शत् वदन ।

वतमान युग मे दूसरो को चलाने की प्रक्रिया अधिक चल रही है, स्वय के चलने की प्रक्रिया प्राय निष्क्रिय होती जा रही है । कहा गया है—

"आदर्श तो बहुत बडे-बडे बतलाते हैं,
ज्ञान भी बहुत बढा-चढ़ा दिखलाते हैं ।
किन्तु आदर्श और ज्ञान के मुखौटे मे,
आचरण की तो शून्यता ही बतलाते हैं ।"

इस प्रकार के आचारण शून्य व्यक्ति कभी विश्व को सही निर्देशन नहीं दे सकते हैं ।

सही एव प्रभावकारी निर्देशन वही दे सकते हैं जो जैसा कहते हैं, वसा करते हैं बल्कि स्वय के जीवन को समता की प्रकप साधना मे निमज्जित कर इतना अधिक शात–प्रशात बना लेते है कि सामने वाला व्यक्ति स्वत ही प्रभावित हो जाये । आज के युग मे ऐसे पुरुष विरले ही सुनने एव देखने को मिलते हैं । उन विरल विभूतियो मे एक विभूति है—

जिनशासन प्रद्योतक, धमपाल प्रतिबोधक, समता दशन प्रणेता, बाल *ब्रह्मचारी, विद्वद्शिरोमणि "आचार्य श्री नानेश" । उनकी सतत् साधना से* अनुरजित अनुभूति पुरस्सर अभिव्यक्ति ने लाखो व्यक्तियो के मनो को आदोलित किया है। उनका नाम ही ऐसा महान है जिसको लेने मात्र से ही सारे सकट दूर हो जाते हैं । मेरे जीवन मे भी ऐसे कई सकट आये जो बहुत ही कष्टदायी थे, परतु पूज्य गुरुदेव का नाम लेने मात्र से ही वे सारे सकट दूर हो गये ।

घटना नवम्बर सन् १६७७ की है, जब हम अपने पिताजी, जो भारतीय स्टेट बैंक मे उच्च पदाधिकारी हैं, के साथ कार से स्थानातरण होने पर भोपाल से कोरबा जा रहे थे कि रास्ते मे दुर्ग के समीप कार का निरीक्षण करने पर विदित हुआ कि कार के करियर पर बधी हुई चार अटैचियो मे से एक अटैची गायब है, जिसमे हम सभी भाई-बहिनो के स्कूल-कॉलेज के सर्टिफिकेट्स तथा जेवर आदि रखे हुये थे । हमने गुरुदेव का स्मरण किया कि हे गुरुदेव, आप ही इस सकट में हमारी सहायता कर सकते हैं । हम वापिस देवरी (जहां हमने रात्रि विश्राम किया था) की ओर मुड ही रहे थे कि एक ट्रक हमारे पास आकर रुका । उसके ड्राइवर सरदारजी ने हमसे पूछा कि आप लोग इतने परेशान क्य

है तथा क्या आपकी कोई वस्तु गुम गई है ? हमारे द्वारा यह कहने पर कि देवरी व दुर्ग के बीच मे कही हमारी एक अटैची गिर गई है। उन सरदारजी ने ट्रक से वह अटैची निकालकर हमे दी। हमने उनका पूण परिचय पूछा एव भेंट-स्वरूप कुछ देना चाहा तो उन्होने बस इतना ही कहा कि यह सब तो "वाहे गुरु" की कृपा थी जो आपको आपका सामान वापिस मिल गया। यह सब गुरुदेव का स्मरण करने का ही प्रतिफल था कि हमारी इतनी बहुमूल्य अटैची हमे कुछ ही समय पश्चात् वापिस प्राप्त हो गई थी।

एक और घटना हमारे साथ मई सन् १९८२ मे घटी। जब हम कार द्वारा रायपुर से बम्बई होते हुये गुरुदेव के दर्शनार्थं साबरमती (अहमदाबाद) जा रहे थे। बम्बई मे हमारी कार की एक अन्य कार के साथ भयकर दुघटना घट गई। उस समय हमने गुरुदेव का ही स्मरण किया कि हे गुरुदेव ! अब आप ही हमारे रक्षक हैं। गुरुदेव का स्मरण करने मात्र से ही इस भयकर दुघटना मे भी हम पारिवारिक छह सदस्यो मे से किसी को भी किसी भी प्रकार की शारीरिक खरोंच तक नही आई थी। दुघटना को देखकर सभी प्रत्यक्षदर्शी एव पुलिस अधिकारी भी चकित रह गये कि इतनी भीषण दुघटना मे भी सभी सकुशल बच गये। यह सब गुरुदेव के स्मरण का ही प्रताप था।

कुछ ही समय के उपरात बम्बई के उस व्यस्ततम माग पर एक सज्जन हाथ मे लौटा लेकर कार के समीप आये और बिना हमसे बातचीत किये कार को, जो कि जखवत हो गई थी, ठीक करने लगे जिसमे वे स्वय लहूलुहान भी हो गये परन्तु उन्होने अपने बहते खून की परवाह नहीं करते हुये भी कार को एक तरफ कर दिया। हमने उन सज्जन से उनका परिचय जानना चाहा तथा भेंट स्वरूप कुछ देना चाहा तो उन्होंने लेने से मना कर दिया एव कुछ ही क्षणो मे वे हमारी आखा से ओझल हो गये। यह सब गुरुदेव के स्मरण का ही चमत्कार रहा कि देवतुल्य सज्जन बम्बई के उस भीडभाड भरे स्थान मे भी हमारी सहायता के लिये आये। जिस शहर मे जहा लोगो को दूसरो की कोई परवाह तक नही रहती, उस शहर मे भी हमारी सहायता के लिये किसी सज्जन पुरुष का आना गुरुदेव का चमत्कार नही तो और क्या हो सकता है ?

ऐसे कई सकट मेरे जीवन मे आये और गुरुदेव के स्मरण मात्र से ही दूर हो गये। परिवार जो धम के बारे मे ज्यादा नही जानता था, पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य मे आने के बाद ही धम की ओर उन्मुख हुआ है। यह उनके समतामयी जीवन-साधना का ही प्रभाव है। धन्य है ऐसे महान् तपस्वी, तेजस्वी गुरुदेव को जिन्होने हमारे परिवार को शाति का माग बतलाया है।

"शाति की खोज मे भटक रही थी मैं जहा तहा।
पर देखती हू नानेश तुझको, तो मिल जाती है शाति वहा ॥"

—६ कचन बिल्डिंग, १०१, इस्ट हाइकोर्ट रोड, रामदासपेट, नागपुर ४४००१०

अप्रमत्त संयमी जीवन

❀ श्री महेन्द्र मिन्नी

स्यम की देदीप्यमान मशाल आचार्य श्री हुक्मीचन्द जी म सा की विशुद्ध उज्ज्वल परम्परा मे आचाय श्री नानेश ऐसे प्रथम आचार्य हैं जिनके दो पुनीत प्रसग दीक्षा अर्धशताब्दी एव आचार्य पद के २५ वर्ष पूर्ण होने जा रहे हैं। यह निश्चित ही मणि-कचन सयोग है।

समुत्कृष्ट चारित्र के धनी आपश्री की जीवन चर्या से स्पष्ट झलकता है कि आपका एक क्षण एक पल कभी व्यर्थ नही जाता। दिन हो या रात, अन्धकार हो या प्रकाश, जीवन साधना की कोई न कोई क्रिया अनवरत गतिशील वनी ही रहती हैं। चिन्तन-मनन, ध्यान-स्वाध्याय, लेखन-अध्यापन, जप-तप क रूप मे आपका समय साथक वना रहता है।

आगमवाणी मे "समय गोयम मा पमायए' के रूप मे जसा प्रमादरहित जीवन विताने का उल्लेख है, आप दृढ सकल्प के साथ उसका अनुसरण करते हैं।

आपश्री के जीवन मे वडी-२ विशेषताए है। समय का मूल्याकन आगम का सिद्धान्त है कि "काले-काल समायरे" यानी समय का काम समय पर ही करना। आप पूण दृढता और तत्परता से इसका अनुपालन करते हैं और कराते हैं। आपके जीवन का हर काय समय पर ही होता है। कव कौनसा काय करना है, घडी की तरह कार्य सहज सम्पादित होते रहते है। कसी भी विकट परिस्थिति क्यो न हो, चर्या दोपरहित होती है।

आपका आत्मबल, मनोबल अत्यन्त उच्च व दृढीभूत है। गम्भीर से घम्भीर परिस्थिति होने पर भी आप विचलित नही होते, मुख मुद्रा पर चिन्ता की स्वल्प रेखा तक दृष्टिगोचर नही होती। ब्रह्म तेज से चमकता मुखमण्डल निर्विकार सुलोचन, शान्त–प्रशान्त प्रखर प्रतिभा सम्पन्न आप जैसे महायोगी को देखकर जन–जन के मानस मे अपूर्व आन्तरिक सुखद अनुभूति का सचार हो जाता है।

आपश्री के पवित्र सान्निध्य मे विकथा और प्रमाद भरे आचरण को कतई स्थान नहीं है। निरन्तर आध्यात्मिक वातावरण से वायुमण्डल पावन और पुनीत बना रहा है। आपका जीवन परम सादा, अन्त करण निमल एव विचार परमोच्च हैं। सयम साधना की आराधना में आप पूण सजग एव सावधान रहते हैं। अधीनस्थ सन्तवृन्द के लिए आप सर्वस्व हैं।

आपश्री सन्त-सतीवृन्द की हर गतिविधि पर पूर्ण ध्यान रखते हैं। शिथिलाचार को आप कभी प्रोत्साहन नहीं देते। आपश्री की सुदृढ़ धारणा है कि अनुशासन-मर्यादा सघ सरक्षण-सवर्धन के प्रमुख अग है।

आपश्री का जीवन बडा ही सधा हुआ, त्याग-वैराग्यमय एव अप्रमत्त। आप निरन्तर आत्म साधना मे सलग्न रहते हैं। लम्बे समय तक आराम नहीं करते। रात में ब्रह्ममूत में शीघ्र शय्या त्यागकर ध्यान, चिन्तन-मनन-स्वाध्याय मे तल्लीन रहते हैं।

अपनी प्रशसा से दूर, प्रवचन सभा मे या अन्य समय मे जब कभी आपकी स्तुति की जाती है व प्रशसात्मक भाषण होते हैं तो आप आख बन्द कर लेते हैं, ध्यान मे मग्न हो जाते हैं ध्यान आपश्री को बहुत प्रिय है। आप चहल पहल, धूमधाम व दिखावा बिल्कुल पसन्द नही करते। आपश्री को एकान्त प्रिय है। आपको आगमो का गहन एव विशाल अध्ययन है। सस्कृत व प्राकृत के अनुपम महापण्डित होते हुए भी आप नित नया अध्ययन करते रहते हैं। आचार-विचार की एकरूपता जैसा सामजस्य आपके जीवन में आपश्री की उल्लेखनीय विशेषता है कि प्रवचन-शैली, शास्त्रीय ज्ञान एक-एक शब्द तोलकर बोलने का अभ्यास तथा स्मरण-शक्ति बहुत गजब की है।

आत्मानुशासन मे आचार्य-प्रवर की नेतृत्व शक्ति अद्भुत है। आपकी सयम-साधना के ५० वर्ष पूरे हो रहे हैं। आपके प्रशस्त सयमी जीवन से हम प्रेरणाए ग्रहण करें। परम पूज्य गुरुदेव दीर्घायु हो। हार्दिक मगलकामनाओ के साथ शत-शत अभिनन्दन-वन्दन।

—शाखा सयोजक, नई लाईन, गगाशहर-३३४४०१

□

नानेश वाणी

० अध्ययन, अभ्यास, चिन्तन, पृच्छा और शका समाधान का क्रम आप नियमित बना सके तो अपने दर्शन को विशुद्ध बना सकने मे काफी सफलता प्राप्त कर सकेंगे।

० तीर्थंकर अपने शरीर मे रहते हुए सारी क्रियाए इरादे से करते हैं—वे अपने आप नही हो जाती है। इसी मान्यता मे उनकी आत्मा का गौरव समाया हुआ है।

० दर्शन शुद्धि समूचे आत्म-विकास का मूल है।

भरत मिलाप : एक संस्मरण

❀ श्री वी के मेहता

परम पूज्य बाल ब्रह्मचारी, समता-विभूति, समीक्षण ध्यानयोगी, धर्मपाल प्रतिबोधक आचार्य श्री नानालालजी म सा, रतलाम चातुर्मास के पश्चात ग्रामानुग्राम विहार करते हुए राजस्थान की ओर प्रस्थान कर रहे थे। प्रवास के दौरान, मन्दसौर के निकट ग्राम दलौदा मे, अचल के हजारो श्रद्धालु, पूज्यश्री के दर्शन व प्रवचन का लाभ लेने के लिए एकत्रित हो गये।

समाज द्वारा दलौदा रेल्वे स्टेशन के निकट श्री भण्डारीजी के मकान के पास धर्मसभा का आयोजन किया गया। प्रसग, दिनाक २ जनवरी ८९, प्रात पूज्य श्री के व्याख्यान के अवसर का है। पौष बदी दशमी का यह दिन भगवान श्री पार्श्वनाथ का जन्मदिन था। दलौदा का बच्चा-बच्चा अपने आपको कृत-कृत्य महसूस कर रहा था, आचार्य श्री सत-मण्डली सहित पाट पर विराजमान हुए। प्रातकालीन शात वातावरण, निर्मल आकाश एव भानुदय की स्वर्ण रश्मि पाकर ओस रूपी मोतियो से शृगारित वसुन्धरा मानो स्वय आचार्य श्री के स्वागत के लिए आतुर प्रतीत हो रही थी।

यह तो सर्व-विदित है कि लब्धप्रतिष्ठ आचार्यश्री ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का विनियोजन सदैव समाज मे नैतिक, चारित्रिक तथा आध्यात्मिक अभ्युत्थान की चेतना के सचार के लिए किया है। जीवन मूल्यो के प्रति आस्था निर्मित करते हुए आपने मानवता को गौरवान्वित किया है। उत्कृष्ट आचार पालन के परिणामस्वरूप, त्याग-मूर्ति के रूप मे पूज्यश्री के अमृत-वचनो का प्रभाव मत्र की भाति होता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण, इस धर्मसभा मे उपस्थित सकडो धर्मप्रेमियो को, देखने, सुनने व अनुभव करने पर, स्वमेव ही मिला।

दलौदा ग्राम निवासी श्री मूलचदजी भण्डारी निष्ठावान, विवेकशील, श्रद्धालु श्रावक हैं। इनके अग्रज श्री माणकलालजी एडवोकेट, जावरा के प्रबुद्ध प्रतिष्ठित नागरिक हैं। पूर्वभव के कर्म-दोष को ही कारण मानें, अन्यथा दोनो भाइयो मे विरोध का कभी कोई कारण नही रहा है, फिर भी विगत आठ-दस वर्षों से, दोनो मे वैमनस्य चरम स्थिति पर पहुच गया था। एक दूसरे के मध्य व्यवहार तो दूर वार्तालाप भी न था। परिवार, जाति, समाज मे मगल या शोक के कई प्रसगो पर स्वजनो तथा रिश्तेदारो ने इस खाई को पाटने एव दो सगे भाइयो मे पुन मेलजोल कराने के अनेक बार प्रयास किए, परन्तु वे सब निष्फल ही रहे। दूरी निरन्तर बढ़ती ही गई थी।

सयोग से आचार्य श्री की इस धर्मसभा मे दोनो भाई उपस्थित थे।

पूज्यश्री नें सदैव की भाति धर्म के मर्म की विवेचना करते हुए, पारिवारिक तथा सामाजिक मर्यादाओ का पालन एव नैतिक उत्थान के लिए राग-द्वेष पर विजय प्राप्त करने की आवश्यकता का मार्मिक रूप मे प्रतिपादन किया । मन्त्र-मुग्ध श्रोता गुरुदेव के वचनामृतो का पान करते हुए भाव-विभोर थे । व्याख्यान समाप्त करते हुए गुरुदेव ने श्री मूलचन्दजी भण्डारी का संबोधित किया । वे करबद्ध गुरुदेव के सम्मुख खड़े हो गये । पीछे श्री माणकलालजी वकील बैठे थे, आचार्य श्री ने जसे ही उनकी ओर दृष्टि की, वे उठकर श्री चरणो के निकट आ गये । चमत्कार कहें, मन्त्र प्रभाव या दिव्य दृष्टि का आदेश, सारे विगत कटु-प्रसगो को विस्मृत कर दोनो भाई एक दूसरे के गले लग गए । कोई शिकवा नही, कोई शिकायत नही, कोई मान-अपमान की चर्चा नही, बस अश्रुधाराए बह निकली । उपस्थित जन-समुदाय भी भाव-विह्वल हो गया । यह नही, दोनों परिवार की महिलाए भी इस अवसर पर एक दूसरे के गले लग गई । प्रेम-सरिता मे सारी क्लुष-कटुता बह गई । सभी ने दृश्य काव्य के रूप मे इस अभिनव 'भरत-मिलाप' का प्रसग देखा, उसके साक्षी बने । आचार्यश्री ने इसी प्रकार सुवासरा, सीतामऊ आदि अनेक गावो मे बिछुड़े हुए अनेक परिवारो को पुन मिलाकर असामान्य उपकार किया है ।

इन्ही दिनो दलौदा मे एक और चमत्कार देखने को मिला । अहमदाबाद निवासी श्री कमलचन्दजी सा बच्छावत (मैसस केशरीचन्द कमलचन्द बच्छावत, कलकत्ता), आस-पास के क्षेत्र मे समर्पण भाव से आचार्य श्री की सेवा में रहे । अनायास उन्हें दलौदा मे "ब्रेन-हेमरेज" हो गया । अति करूण दृश्य था, तत्काल मन्दसौर स्थित धर्मनिष्ठ सुश्रावक श्री मूलचन्दजी पामेचा के सुपुत्र समाजसेवी, कुशल डॉ सागरमलजी पामेचा के अस्पताल मे उन्हें भरती किया । पूज्य श्री के आशीर्वाद का पुण्य-प्रताप ही समझिए कि उनका यह असाध्य रोग भी केवल चार-पाच दिन मे ही ठीक हो गया, जबकि भारतवष आज भी इस बीमारी से पीडित, मुश्किल से एक प्रतिशत मरीज भी जीवित नही रह पाते हैं ।

युग-युग से धर्मोपदेश होते रहे हैं, परन्तु सच तो यह है कि फिर भी मनुष्य, मनुष्यत्व को प्राप्त नही सका है । उपदेश तभी मन्त्र बनते हैं, जब उपदेशक की वाणी से उत्कृष्ट आचार व सयम की स्वस्फूतकारिणी शक्ति विद्यमान हो । आचार्य श्री तो अपने जीवन मे हर पल-क्षण उपलब्धियो के वन्दनवार सजाए जा रहे हैं । शत-शत प्रसंगो मे यह एक अनुभूति का सुयोग है, जिसका सौभाग्य से मैं प्रत्यक्षदर्शी रहा हू ।

श्री चरणो मे श्रद्धायुक्त शत-शत नमन ।

—अधीक्षण मन्त्री, मध्यप्रदेश विद्युत् मण्डल, मन्दसौर

☐

अमृत भरी वाणी

-श्री बाबूलाल गणधर बापना

विराट विश्व मे सत महापुरुषो का दिव्य भव्य जीवन जनता के लिये अनुकरणीय व मार्ग दर्शक रहा है । जैनागम साहित्य का अनुशीलन परिशीलन करने पर विदित हो जाता है कि सत स्वय तो तिरते ही हैं, साथ ही अपने ज्योति मय जीवन से, सद् प्रेरणाओ से अनेक राहगिरो को सम्यक् पथ-दर्शन देकर उनका कल्याण भी करते हैं ।

अनतानत श्रद्धा के केन्द्र परम-पूज्य गुरुदेव आचाय श्री नानेश का जीवन इसी तरह ज्योतिमान है । आचार-विचार, त्याग-वैराग्य, ज्ञान-ध्यान का पावन सगम आपके तेजस्वी व्यक्तित्व मे स्पष्ट परिलक्षित होता है । आपकी साधना आत्मनिष्ठ साधना है । आपश्री के वचनो मे सहिष्णुता, मधुरता, सरलता तथा समता है । आप व्याख्यान-वाचस्पति हैं, प्रवचन-प्रभाकर हैं । आपकी वाणी में सूक्ष्मता, रोचकता एव प्रभावकता का त्रिवेणी सगम है ।

एक आध्यात्मिक प्रवचनकर्त्ता मे जिन मौलिक विशेषताओ का समायोजन अपेक्षित होता है, वे सभी विशेषताए आचार्य देव की नैसर्गिक सम्पदा हैं । आपकी प्रवचन शैली मे न मालूम ऐसा क्या जादू भरा आकर्षण है कि हर समय हजारों की भीड लगी रहती है । आपकी बौद्धिक प्रतिभा अद्भुत है । विलक्षण शैली तथा विस्मयकारी प्रवचनो से हजारो-हजार लोगो को आत्म-विकास के महापथ पर बढने की प्रेरणा मिलती है । अनुगू जित है आपके प्रवचनो मे अन्तर चिन्तन का सगीत ।

परम पूज्य गुरुदेव एक कुशल प्रवचनकार के रूप में विख्यात हैं । आपकी वाणी मत्र की तरह अद्भुत चमत्कार पूर्ण है । आपके प्रवचन की विशेषता है कि सभा-चातुर्य श्रोताओ में किस तत्व विवेचना की जिज्ञासा है तथा उनकी आध्यात्मिक बुभुक्षा कौन-सी खुराक चाहती है, उसे आप जन-समूह पर दृष्टिपात करते ही भाप लेते हैं । उपस्थित हजारो श्रोताओं मे सबको अपनी मनचाही बात मिल जाती है । आपकी प्रवचन सभा मे प्रमुख श्रोता धर्म-श्रद्धालु, तत्व जिज्ञासु, विद्वान् तथा सामान्यजन होते हैं । सबको अपनी समस्या का समाधान मिल जाता है । जहां भावो की गहराई चाहने वाले विचारो की गहराई में डुबकी लगाते हुये तल का पता नही पाते, वही सासारिक ज्वाला की पीडा से पीडितजन प्रवचन के

एवं २ शब्द को अमृत की तरह पान कर सुखद अनुभूति करते हैं। आचार्य प्रवर की भाषा पतित-पावनी गंगा की तरह स्वच्छ प्रवाह वाली एवं आत्म-शुद्धि कारक है। आपकी वाणी में ओज, माधुर्य, प्रसाद तीनों गुण एक साथ पाये जाते हैं। मध्यानुगामिनी, मधुर वाणी जन-२ को परम सुहानी प्रतीत होती है। उसमें समता दर्शन की झलक, नैतिक, आध्यात्मिक रस तथा अमृतधारा प्रवाहित होती रहती है।। आप आगमिक धरातल पर गंभीरतम सिद्धांत को सरल, सुगम एवं सुबोध शैली में रूपकों एवं लघुकथा के माध्यम से जिज्ञासु मुमुक्षु को हृदयगम कराते हैं। श्रोतागण आत्म विभोर हो जाते हैं। ज्ञान, तप, संयम, रूप, सौरभ से जनमानस की बगिया सुरभित हो उठती है। महान् ज्ञान-साधना की परम पावन ज्योति आपके हृदय में आलोकित है।। आप युग-२ तक भू-मण्डल पर विचरण कर भव्य जीवों को मार्ग-दर्शन एवं पुनीत पथ पर चलने के लिये प्रेरित करते रहें। यही भावना है।

—रेल्वे क्रोसिंग नं. २, बालोतरा-३४४०२२

समत्व साधना के मूर्तिमन्त स्वरूप

श्री गुलाब चोपड़ा

जय गुरु नाना का जीवन—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, संयम तप, समता, क्षमा, रूप, आध्यात्मिक जगत की एक असाधारण विभूति, समीक्षण ध्यान का साक्षात् परम दिव्य अलौकिक जगमगाता जीवन है। आप जन जन में धर्म की निर्मल गंगा का स्रोत बहाकर उनके हृदय-मानस को परम पवित्र, स्वच्छ बना रहे हैं।

ऐसा कौनसा व्यक्ति जैन समाज में है जो आपके नाम—विशुद्ध संयमी जीवन, ज्ञान में विशालता, अनुशासन में कठोरता, वाणी में मधुरता, ब्रह्मचर्य में तेजस्विता, आगम सापेक्ष विशुद्ध निर्ग्रन्थ परम्परा में अचल सुमेरु पर्वत के समान महाव्रतों में एवं संयम में दृढ-सागर के समान गंभीर प्रखर प्रतिभा से सम्पन्न जैन एवं जैनेतर तत्वज्ञान के निष्णात सर्वतोमुखी अध्येता, व्याख्याता समता विभूति से परिचित न हो।

आप तप, त्याग तथा सद्ज्ञान की प्रखर ज्योति-किरणो से भारत के विभिन्न प्रान्तो को प्रकाशित एव जनमानस की सुपुप्त चेतना को जाग्रत कर समता सिद्धान्त का शखनाद कर रहे हैं। आचार्य श्री का जीवन निसगत समग्रत समत भिमुख जीवन है। आपके जीवन की प्रत्येक क्रियान्विति, चिन्तन, ध्यानयोग, प्रयोगवाणी और कर्म, आचार और व्यवहार, आहार-विहार, साधना और सकल्प पूणत समतानुप्राणित हैं। आपका-साहित्य समत्व का विवेचन है और सान्निध्य समत्वानगु जित ! अपनी साधना की अतल गहराई से आप समत्व का रस प्रवा हित करते है। आपका समग्र जीवन समता-साधना की एक जीव त प्रयोगशाला है। आप चेतनानुलक्षी समत्व साधना के मूर्तिमन्त स्वरूप हैं।

आप चरम तीर्थंकर देवाधिदेव प्रभु महावीर के धर्म शासन की भव्य प्रभावना कर रहे हैं। आचाय प्रवर के सुखद सान्निध्य मे शिक्षा दीक्षा चातुर्मास विहार और प्रायश्चित आदि होते हैं। आपकी आज्ञा ही सर्वोपरि है। मुनि वृन्द एव सती वृ द तदनुरूप आचरण मे सलग्न हैं। आपश्री की प्रेरणा से चतुर्विध सघ निरन्तर प्रगति के पथ पर गतिशील एव आध्यात्मिक विकास की ओर अग्रसर है।

आपका व्यक्तित्व बडा ही अद्भुत एव प्रभावशाली है। जो व्यक्ति एक वार आपके परिचय में या पावन श्री चरणो मे आ गया, वह सदा के लिये आपका अनुयायी बन गया। आपश्री अप्रमत्त एव निर्विकार भावना से सतत सयम का आराधना में सलग्न रहते हैं।

ऐसे महामानव का पथ-प्रदशन सुदीर्घकाल तक जन-जन को मिलता रहे। जिनशासन प्रद्योतक साधना-गगन के प्रकाशमान दिव्य नक्षत्र, ऐसे महिमा मडित आचार्य प्रवर को युग चेतना के शतशत वन्दन।

—सचिव, मारवाड जैन समता युवा सघ
जिनजिनयाला (जोधपुर) राजस्थान

नानेश-वाणी

- अवहेलना का भाव है तब तक अहकार है और जब अहकार पूरे तौर पर गल जाता है तब आज्ञानुवर्तिता आती है।
- शास्त्रीय आधार लिए अगर इस पचमकाल मे दूसरा कोई प्रामाणिक एव सशक्त आधार नही है, जिससे उच्चतम विकास का सही मार्ग ढूढा जा सके।
- भोजन की आवश्यकता से भी आवश्यक (प्रतिक्रमण) की आवश्यकता ऊपर है।

पैर की वेदना छूमन्तर हो गई

❀ श्री भीखमचन्द गोलच्छा

कार्तिक कृष्णा तृतीया सवत् २०४० को मेरे पैर मे जबरदस्त दद उठा, और इतनी पीडा हुई कि खाना-पीना हराम हो गया । आखो मे नीद नही । किसी से बोलना या सुनना मन को बिलकुल सुहाता नही था ।

डॉक्टर को बताया लेकिन यहा पर आराम नही मिलने से पारिवारिक सदस्यों ने मुझे तुरन्त जोधपुर अस्पताल मे भर्ती कराया । ४८ घन्टो मे तीन हजार रुपये पानी की तरह बहाये लेकिन कुछ फायदा नही हुआ ।

पुन घर पर आये । इन्जेक्सन लगाते रहे लेकिन शान्ति नही मिली । एक दिन के अन्दर दस लाख वाइके, पेन्सिलिन ७ इंजेक्सन लगाये लेकिन कोई परिणाम नहीं निकला ।

यहा पर चातुर्मास मे पण्डितरत्न श्री पारसमुनिजी म सा और तरूण तपस्वी सेवामूर्ति पदममुनिजी म सा थे । मेरा मुनिवरो से सम्पर्क हुआ । मुनिवरा के मुखारविन्द से पूज्य आचार्य गुरुदेव नानेश के अलौकिक विशिष्ट अद्भुत साधना के बारे मे जानकारी प्राप्त हुई । मुनिश्री की प्रेरणा पूज्य गुरुदेव के दर्शन के लिये हुई । बाडमेर से अहमदाबाद पहुचे । बडे डॉक्टर को दिखाया तो उन्होंने पर काटने की सलाह दी । पैर की हड्डी खराब हो गई अत पूरा पैर काटना पडेगा । एक्स-रे लिया गया । दवाई भी दी । तीन दिन के बाद पैर कटने वाला था । मन मे बहुत अशान्ति हो गई थी ।

सहसा जय गुरु नाना पूज्य गुरुदेव का स्मरण हो आया, तुरत भावनगर पहुचा । वहा पर हजारो आदमी पूज्य गुरुदेव अमृतमय वाणी सुन रहे थे । प्रवचन के बाद पूज्य गुरुदेव के कमरे मे मैं गया । गुरुदेव विराजे हुए थ । मैंने जाकर गुरुदेव का पैर उठाया और अपने हाथ से गुरुदेव के पैर की तलाई को घीसा और अपने पैर पर हाथ फेरा । उससे मेरे पेट मे अचानक दद उठा । लेटरीग जाने की हाजत हो गई । मैं तुरन्त लेटरिंग घर मे पहुचा, उसके बाद ऐसा चमत्कार हुआ कि मैं बिलकुल स्वस्थ हो गया पैर की वेदना छूमन्तर हो गई मैंने पूज्य गुरुदेव से प्रतिज्ञा ग्रहण की । २० दिनो के बाद भोजन व पानी ग्रहण किया । मांगलिक सुनकर पुन अहमदाबाद पहुचा । उसी डॉक्टर को बताया तो आश्चय करने लगे डॉक्टर साहब ।

अब मैं बिलकुल स्वस्थ हू । पैर मे कोई शिकायत नही है । यह सब पूज्य गुरुदेव की असीम कृपा एव कठोर साधना का प्रताप है ।

जब से मेरी पूज्य गुरुदेव के प्रति अगाध आस्था श्रद्धा हो गई है । मुझमे धार्मिक भावना भी जगी है । गुरुदेव की कृपा से मेरी धार्मिक क्रिया सानन्द चल रही है । जब कभी मेरे जीवन या परिवार मे सकंट आता है तो मैं पूज्य गुरुदेव का स्मरण करता हू तो मुझे सफलता मिल जाती है । ऐसे महान् पूज्य गुरुदेव के पावन चरणो में शत् शत् वन्दन-अभिनन्दन ।

—कल्याणपुरा, बाडमेर ३४४००१

बने इतिहास की मिसाल

❀ वैराग्यवती कुमारी रिता बन

शृंगार मा के लाल, तेने किया कमाल,
पोखरणा वश उज्ज्वल, बने हुक्मगच्छ प्रतिपाल ।
जवाहर ज्योति से जगमगाया भाल तेने,
धमपाल का उद्धार कर, बने इतिहास की मिशाल ।।

सफल साधना कर अर्ध शताब्दी की,
वीर वाणी से जीवन सबका सफल किया ।
कर्म जाल की सघनता से तार काटकर,
समता सन्देश से मानव जीवन बदल दिया ।

ओ साधुमार्गी सघ के सरताज,
तुम पर हमको बहुत है नाज ।
युगो-युगो तक साधना सूर्य बन,
समर्पित वरागिन मण्डल का सुधारो काज ।।

—बीकानेर

हे नानेश मैं मुक्ति वरू

❀ वैराग्यवती कुमारी नयना

मर्म स्पर्शी वाणी ने तेरी,
हृदय को मेरे स्पर्श किया
राग रजित स्वजन परिजन का,
स्वरूप सब समझा दिया ।।
राग त्याग, वैराग्य में,
जीवन मेरा बदल गया ।
तव पथानुगामी बनने का,
आशीर्वाद मैंने पा लिया ।।
तेरे शीतल साये मे मैं,
आत्म ज्योति प्राप्त करू ।
पा साधना का सम्बल,
हे नानेश ! मैं मुक्ति वरू ।।

समता विभूति निगूढ़ ध्यान योगी

❀ वैराग्यवती कुमारी मनीषा जैन

अनन्त असीम ससार के सख्यातीत यायावरो की विभिन्न यात्राए विभिन्न थलों पर गतिशील है न कोई ठहराव है न कोई मजिल। फिर भी कोई प्राणी नुपम सुख की श्वास नही ले पाये। काल के सतत प्रवाह मे बहते-बहते उच्च-चो दिशा-विदिशा मे बिना किसी लक्ष्य के आत्माएं भटक रही हैं।

चेतना की इस विवेकमूढ अवस्था को दिव्य दिशा दर्शन देकर जागृति शखनाद फूककर राजमार्ग का राही बनाने वाले उन युगपुरुषो की महत्ता का अकन इसी जागतिक धरापर सदियो से किया जा रहा है। जिन्होने अज्ञान अधकार की दुर्भेद्य दीवालो को तोडकर ज्ञान ज्योति की प्रसृति में परमार्थ की प्रस्तुति की है। ऐसे क्रान्तिकारी युगदृष्टाओ के विशिष्ट व्यक्तित्व की शृ खला में अनुस्यूत **अष्टम पटटधर, समता विभूति निगूढ ध्यान योगी आचार्य श्री** नानेश का जीवनरवि जैन क्षितिज पर उदीयमान है।

एक तरफ २० वी शताब्दी मे भौतिक चक्रवाती लालसाए, अभ्यासी प्रवृत्तिया उभर रही है। वहा पर अध्यात्म की टिमटिमाती दीपशिखा को पुन ज्योति मानकर स्थिर बनाये रखने का दुष्कर काय कर रहे हैं "दिवा समा मायरिया"।

महामहिम प्रवर का ओजस्वी व्यक्तित्व ही एक ऐसा व्यक्तित्व है जिन्होंने युगानुरूप ढलती निष्प्राण चेतना को जीवन्त बनाने का भागीरथ प्रयास किया है और कर रहे हैं। ऐसे सघ शिरोमणि महायोगी पूज्य गुरुदेव के दीक्षा अधशताब्दी के पुनीत क्षणो मे भावपूर्ण आत्मार्चना करती हुई अन्तर मे उद्भावित भावोर्मियो को दर्शाना चाहती हूं:—

ओ जैनाकाश के भाग्य उजागर दिव्य रवि,
दुनिया ने देखी तेरी ही अनुपम सयमी छवि।
श्रद्धाभिभूत हो गया रोम-रोम मेरा,
चरणो की शरण पाने जागी भावना दवी ॥
भावना अतर की मेरी सदैव साकार बने,
आशीष ऐसी मिल जाये गुरुवर महान् की।
सयम पथ की पथिक पुनीत बनकर मैं,
ज्योति जला पाऊ अतस के ज्ञान ध्यान की ॥

—करमाला

□

समता दर्शन के अपूर्व संदेश वाहक

❀ डॉ. गौतम पारख

आचार्य-प्रवर श्री नानालाल जी म. सा. वह धन्य व्यक्तित्व हैं जिन्हें चेतना स्वयं वन्दन कर रही है और धन्य है पौष सुदी अष्टमी का यह पावन दिवस जबकि इस महामनस्वी, महातपस्वी, महायशस्वी, महातेजस्वी, सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी जैन आचार्य की दीक्षा के महिमशाली पचास वर्ष पूर्ण हो रहे हैं।

साधुमार्गी जन समुदाय के अष्टम आचार्य समता दर्शन प्रणेता श्री नानेश अपने विलक्षण सयमी जीवन से सहज ही सवन्द्य हो गये हैं। पाच दशकों की इस सयम यात्रा मे अब तक उन्होंने लगभग २५० मुमुक्षुओ को भागवती दीक्षाएं प्रदान की है। एक लाख से अधिक परिवारो को आचार्य श्री ने धर्मपाल जन बनाया है इनमे दलित, शोषित अस्पृश्य समझे जाने वाले बलाई जाति के वे हजारो मानव शामिल है, जिन्हे व्यसन मुक्ति के सस्कार आचार्य श्री ने दिये। उनके सागरोपम सान्निध्य मे २६० साधु-साध्वियों का विराट समुदाय है। एक ही स्थल पर अपनी अनन्य प्रेरणा से कई दीक्षाए एक साथ सम्पन्न कराने वाले आत्मिक शाति के पाथेय आचार्य श्री नानेश, आचार्य पद के यशस्वी २५ वर्ष पूर्ण चुके हैं।

समीक्षण ध्यानयोगी, चारित्र चूडामणि आचार्य श्री नानालाल जी म सा ने देश के कोने-कोने मे लगभग एक लाख कि मी की पदयात्रा (विहार) कर गाव-गाव शहरो में तीर्थंकर भगवान महावीर के अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह आदि सिद्धान्तो को व्यावहारिक बनाया है। इस वर्ष सम्पूर्ण भारत मे उनकी दीक्षा अर्धशताब्दी समारोह का भी आयोजन किया गया है।

अब तक २५ से भी अधिक साहित्यिक रचनाओं के कृतिकार आचार्य श्री नानेश ने प्रमुखत- समता दर्शन की मीमांसा कर यह कहा कि हर क्षेत्र में समता ही सर्वोपरि होनी चाहिये। मानसिक तनाव से आक्रान्त मानव तथा बढ़ते औद्योगीकरण से विघटित हो रहे हैं समाज को आज जिस चीज की सबसे अधिक आवश्यकता है, वह यही 'समता' है।

आचार्य श्री द्वारा प्रस्तुत 'समता' दर्शन वैचारिक, दार्शनिक एव व्यावहारिक क्षेत्रो में समता का समुद्घोष कर अहिंसक उत्क्रान्ति का आधार रखने वाला साम्प्रदायिक घेरे-बन्दियो से मुक्त, वैचारिक और व्यवहारिक रूपरेखा तैयार करने वाला है। यदि चिन्तको दार्शनिकों तथा समाज व राष्ट्र के कर्णधारो की चेष्टाए इस दर्शन के अनुरूप हों, तो मैं समझता हू कि, निर्विवादेन विश्व शांति का प्रयास एव आश्वस्त किया जा सकता है।

समता या समानता का कोई यह अर्थ ले कि सभी लोग एक ही विचार के या एक से शरीर के बन जावें अथवा बिल्कुल एक सी स्थिति मे रखें जावें तो यह न सभव है और न व्यावहारिक । वस्तुत समता का अर्थ है कि पहले समतामय दृष्टि बने तो यही दृष्टि सौम्यतापूर्वक कृति मे उतरेगी । इस तरह समता, समानता की वाहक बन सकती है । आप ऐसे परिवार को लीजिए, जिसमे पुत्र अर्थ या प्रभाव की दृष्टि से विभिन्न स्थितियो मे हो सकते हैं । किन्तु सब पर पिता की जो दृष्टि होगी वह समतामय होगी । एक अच्छा पिता ऐसा ही करता है । उस समता से समानता भी आ सकेगी ।

समता-कारण रूप है तो समानता कार्यरूप क्योकि समता मन के धरातल पर जन्म लेकर मनुष्य को भावुक बनाती है तो वही भावुकता फिर मनुष्य के कार्यो पर असर डालकर उसे समान स्थितियो के निर्माण मे सक्रिय सहायता देती हैं । जीवन मे जब समता आती है तो सारे प्राणियो के प्रति समभाव का निर्माण होता है । तब अनुभूति यह होती है कि बाहर का सुख हो या दुख, दोनो अवस्थाओ मे समभाव रहे । यह है स्वय के साथ स्थिति । अन्य सभी प्राणियो को आत्मतुल्य मानकर उनके सुख दुख मे सहभागी बनें, यह है दूसरों के साथ व्यवहार की स्थिति और यही है विश्व मैत्री का अमोघ अस्त्र ।

समता दर्शन के ऐसे अपूर्व संदेश वाहक आचार्य श्री नानेश को शत् शत् वन्दन ।

—राजनादगाव

नानेश वाणी

० महापुरुष किसी उपक्रम से घबराते नही और किसी भी उत्सर्ग से पीछे हटते नही । उनका आत्मिक साहस वज्र बनकर घनघोर बाधाओ को तोडता रहता है और प्रकाश रूप बनकर युग-प्रवर्तक बन जाता है ।

० आप जिओ किन्तु इस तरह कि दूसरे के जीवन मे आप कहीं भी व्यवधान नही बनो ।

० भावना और साधना के सयुक्त बल का ऐसा उग्र प्रभाव होता है कि आत्म-दर्शन की तृषा शात ज्ञान की ओर बढ जाती है । फिर मार्ग में चाहे जितने कठोर सकटो का सामना हो—आवरणो का चाहे जितना जटिल घनत्व हो, एक भावुक साधक उन सब को गिराता और छेदता हुआ अपने साध्य की ओर बढ जाता है ।

आचार्य-प्रवर का बहुआयामी व्यक्तित्व

❀ श्रीमत विजयादेवी सुराण

मैंने अनेक बार स्व ज्योतिधर आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा ए श्रमण संस्कृति रक्षक श्री गणेशाचार्य जी के दर्शन किए हैं । प्रवचन का लाभ भं प्राप्त किया और अब परम सौभाग्य से प पू गुरुदेव के दर्शन-प्रवचन का भं लाभ मिला, यह मेरा भाग्योदय है । मुझे सर्वप्रथम मेरे धर्म भ्राता स्वर्गीय श्रं महावीर चन्दजी घाडीवाल ने गुरुदेव के विषय मे जानकारी दी थी, मैं उनकं आभारी हू ।

वर्तमान आचार्य श्रीजी की भाषा समिति गजब की है । मुझे कई बा निरन्तर ३-३ घण्टे तक गुरुदेव के प्रवचन सुनने का मौका मिला । उच्चकोटि वे शब्द, आनन्दघनजी की प्रार्थना आध्यात्मिक रस और व्यावहारिक जीवन में सुख जीवन और समता समाज रचना की विवेचना से युक्त उनके प्रवचन बच्चो से लेकर बुजुर्गों तक को समान रूप से प्रभावित करते हैं ।

आचार्य प्रवर की एषणा समिति भी अनूठी है । छत्तीसगढ के डोगरग से विहार के समय आपश्री भाइयो से मार्गवर्ती सालेकसा-दरेकसा गावो में घर आदि की पूछताछ कर रहे थे, मुझे आश्चर्य हुआ किन्तु बाद मे देखा कि दय के सागर आचार्य प्रवर ने केवल एक शिष्य को साथ लेकर विहार कर दिया औ शेष सतो को २-२ की टोली मे विहार कराया । ऐसा ही दृश्य अभी स २०४ के कानोड चातुर्मास मे देखने को मिला । गुरुदेव ने आधाकर्म आहार से बचने के लिए ऐसा किया था ।

एक बार मारवाड के बगडी शहर मे प्रवेश के समय मैंने देखा कि गुरु-देव ने मार्ग की एक छोटी-सी नाली के पानी से गीली सडक का भी लाघा नहीं, बल्कि लबा चक्कर लगा कर ग्राम प्रवेश किया । उनके प्रवेश से जगल मे मगल हो जाता है, यह भी मैंने बगडी के उसी प्रवास मे देखा । बगडी के काफी घर उन दिनो बद थे । मेरे पूज्य पिताजी श्री सुखराजजी दुगड चिंतित थे कि प्रवचन मे उपस्थिति कैसी होगी ? किन्तु जब प्रवचन में देखा तो जैना मे अजनो की सख्या अधिक थी । स्कूल का आगन छोटा पडने लगा ।

आचार्य प्रवर के अनुशासन मे उनके आज्ञानुवर्ती सत-सती वर्ग ने जिन-शासन की जो सेवा की है वह अनुपम है । वे कितनी भी दूरी पर हो, सकेत प्राप्त होते ही तुरन्त सेवा मे पहुंचते हैं । बीकानेर जैसे सुदूर क्षेत्रों में वृद्ध सत-सतियो की जो सेवा हो रही है, वास्तव में उसे देखकर चकित रह जाना पडता है।

धन्य है ऐसे महापुरुष को जो अपनी सयम-साधना के पथ पर सत्याचार सहिता की सजगता के साथ मोक्ष पथ के निकट पहुच रहे हैं और अनेक प्राणियों को भी उस पथ पर अग्रसर कर रहे हैं । —रायपुर (म प्र)

णाणेश--अट्ठगं

❀ डा. उदयच

वीरेस-दिण्ण जयय गुरुय गहित्ता
उज्जोय-सम्म-पभवत्त-लहुत्त-भाव ।
भत मणो मइवक्क-कुमइव्व जाया
णाणेस-आइरियह पणमामि णिच्च ॥१॥

अच्छे-२ एतदखिल तणवित्ति-जुत्तो
णाणा-विकप्प-दविय ण घण समत्थ ।
णाय भवो सि समया सि मण च तुम्ह
णाणेस-आइरिय ह पणणामि णिच्च ॥२॥

उम्मिल्ल-णेत्त-जुयल समयाणुपेही
दिट्ठ सुधम्म-सुसरत्त दिवा सु-सूर ।
गगासमो ससिकला च सु-सीयलो जो
णाणेस आइरिय ह पणमामि णिच्च ॥३॥

ससारिणो विरहिणो सुयवत्तदसी
त धम्मवाल-गुरुण च सुभत्तिए म ।
त दसणं चरिय-णाण-सुसम्म-जायं
णाणेस आइरिय ह पणमामि णिच्च ॥४॥

सता-सय भवसुसतदयाणुदिट्ठी
सिद्ध त-सायर-तरत-पवुद्ध-जाओ ।
अप्प हिय परमिय च विचितए हं
णाणेस-आइरिय ह पणमामि णिच्च ॥५॥

गामाणुगाम-विचरत-समत्त हेउ
आवाल-वुड्ढ-णर-णारि-पवुद्ध-णाणी ।
'णाणा' तुम भव-सुवद्ध-परोवयार
णाणेस-आइरिय ह पणमामि णिच्च ॥६॥

सच्च पहू विसमया-पवड्ढ-सीला
जीवो ण जाणइ इमस्स विराड-रूव ।

घण्ण तुमेव पणाया जणमेत्त-सम्म
णाणेश आइरिय ह पणमामि णिच्च ।।७।।

तुज्झ णमो सु समया करुणावयार
तुज्झ णमो धरमवाल-पवोह-सील ।
तुज्झ णमो विरय-वेहव-अप्पधाम
णाणेस आइरिय ह पणमामि णिच्च ।।८।।

वुद्धि-हीण-विगय-मोहो, उदयचन्दो ण, सोम्मो ण ,सरसो ।
तव भत्तासत्ता अवि, समयाए, लहिउ पवित्तो सि ।।

—३, अरविन्द नगर, उदयपुर–३१३००

卐

वन्दन सौ-सौ वार

❀ श्री चम्पालाल छल्लाणी

'नाना' वीतरागी गुरु,
निमल मन मनीष ।
करुणावर करुणा करो,
कर से दो आशीष ।।

सयम – पथ के सारथी,
श्रमण – सघ शृगार ।
अष्टम् पद आचायवर,
वदन सौ – सौ वार ।।

प्रतिवोधक धमपाल के,
श्रमण–सस्कृति प्राण ।
सघनायक सरदार हे !
सत्–पथ का दो दान ।।

दीक्षा – वष पचासवें,
श्रद्धा–सुमन करें अर्पण ।
स्वीकार करो हे महाऋषि!
सवल सघ का समपण ।।

—आर के वोस रोड, धुवडी ७८३३०१ आसाम

चतुर्थ खण्ड

आचार्य श्री नानेश कृतित्व-समीक्षा

कल्याणकारी उपदेशो के प्रकाशमान स्वरूप

❀ प विद्याधर शास्त्री

आचार्य श्री नानालालजी म सा के प्रवचनों का प्रत्येक वाक्य महाराज साहब के दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक ज्ञान से ओत-प्रोत होने के साथ ही प्रत्येक व्यक्ति का मानसिक एव आत्मिक समुत्थान हेतु प्रेरणा प्रदान करने वाला है।

महाराज का प्रत्येक सुझाव व्यावहारिक होने के साथ ही व्यक्ति की साधना शक्ति से बहिर्भूत नहीं है। आपका यह दृढ अभिमत है कि कोई भी आत्मा स्वभाव से नि शक्त और नि सार नही है। हम सब आध्यात्मिक वैभव के अधिकारी और भगवान् विमलनाथ के समान विमलता एव नाना प्रकार की शक्तियो से सम्पन्न हो सकते हैं।

वर्तमान युग के जीवन की सबसे अधिक शोचनीय विडम्बना यह है कि हमारा भावना-पक्ष प्रबल होने पर भी हमारा कार्य-पक्ष अत्यन्त निर्बल है। हम सब में अमृतमय जीवन बिताने और बनाने की कला विद्यमान है। हम अपने आप उसका सृजन कर सकते हैं परन्तु प्रयत्न के बिना उन शक्तियो का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। यदि हम अपने जीवन की क्रियाओ का प्रयोग शुद्ध आत्मिक लक्ष्य की ओर करें तो यह निश्चित है कि उससे आत्मिक शक्ति प्राप्त होगी ही—

'यदि आप अपने जीवन को विमल बनाना चाहते हैं तो दुनिया की मलिनता के काटो को छू छू कर अपने आपको दु खी क्यो बना रहे हैं ? क्यो नहीं आप अपने जीवन में ऐसे आवरण लगा लेते, जिससे कि सारी दुनिया मलिन काटों से भरी रह परन्तु आपका जीवन तो आबाध गति से इस प्रकार चले कि कोई आपका कुछ बिगाड़ ही नही कर सके।'

खेद है कि आज के लोग अपनी बुराइयो को समझ कर भी उनका हटाने की अपेक्षा उनमें अधिक से अधिक रस ले रहे हैं—

'आज का तरुण-वर्ग कानो मे तेल डाल कर सोया हुआ है। तरुण सोचते हैं कि धर्म करना तो वृद्धों का काम है। हमको तो राजनीति मे भाग लेना है या नौकरी अथवा व्यवसाय करना है। यह वर्ग जीवन के लक्ष्य को भूला हुआ है।'

'आज की युवा-पीढी कई कुव्यसनो से लाछित है। आज का युवक-वर्ग उनका दास बन गया है। क्या यह जीवन के साथ खिलवाड नहीं है ? जो नैतिकता के धरातल को भूल कर उससे गिर जाये तो क्या ऐसे युवक युवा-पीढ़ी में योग्य हैं ? अरे, इनसे तो वे बूढ़े ही अच्छे हैं, जो कुव्यसनो से दूर हैं।'

महाराज के इन वाक्यो से यह प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध हो रहा है कि आपके हृदय मे सामाजिक परिष्करण की जो भावना है, वह कितनी प्रवल है और वे आज के युवको से किस प्रकार के जीवन की अपेक्षा रखते हैं।

यह जीवन साधना का जीवन है—पद-पद पर विषमता को पनपाने की अपेक्षा यह समता-दर्शन के अनुपालन और सर्वत्र क्रिया-शुद्धि का जीवन है। इसमे 'कथनी' की अपेक्षा सर्वत्र 'करनी' की प्रधानता है। महाराज का दृढ़ अभिमत है कि यदि हम क्रिया-शुद्धि के साथ आगे वढें तो हम सव श्रीकृष्ण आदि के समान नाना गुणो के आगार वन सकते हैं—

'आप अपनी शक्ति के अनुसार अपने अन्दर हरि का जन्म कराइये। वह जन्म आपके लिए हितावह होगा।'

'जिन्होने गृहस्थ अवस्था मे अपने जीवन को नैतिकता के साथ रखा है, जिन्होने नैतिकता को प्रधानता देकर आध्यात्मिकता की मजिल तैयार करने की सोची है और जिनका लक्ष्य शुद्ध है, वे इस सृष्टि के वीच चमकते हुए सितारों की तरह हजारो वर्षो तक प्रकाश देते रहेंगे।

किं वहुना, महाराज का प्रत्येक वाक्य श्रोतव्य, मन्तव्य और निदिध्यासितव्य है। शुद्ध नैतिकता को अपेक्षा इसमे किसी विकृत राजनीति या अन्य किसी भी धर्म या वाद विशेष पर किसी तरह का आक्षेप नही है। सर्वत्र कल्याणकारी उपदेशो का प्रकाशमान स्वरूप है, जो शास्त्रीय एव ऐतिहासिक दृष्टान्तो से समर्थित है। □

वन्धन-मुक्त

❀ श्री मोतीलाल सुराना

तालाव को रोना आ गया, सामने कल-कल करती वह रही नदी को देखकर। उसने नदी से पूछा—कहा जा रही है वहन ? तो नदी वोली—अपने घर, पिताजी के पास, वहा मेरी वहनो से मिलने। नदी का मतलव था समुद्र के पास जा रही हू। तेरे पिताजी को कहना—तालाव वोला—मुझे भी वहा वुला लें। पास ही खडे एक महात्मा तालाव और नदी की वात सुन रहे थे। महात्मा वोले—अरे तालाव, तूने तो अपने आपको चार दीवारो मे रोक रखा है। जव तक ये चारो दीवारें दूर न हो, तव तक तू वहाँ कैसे जा सकता है ?

सच तो है, मनुष्य जव तक वधन से अलग न हो तव तक परमात्मा के पास कैसे पहुच सकता है ? वन्धन-मुक्त होना आवश्यक है।

—१७/३, न्यू फलासिया, इन्दौर-४५२००१

समता-दर्शन : व्यापक मानव-धर्म

❀ श्री रणजीतसिंह कूमट

वर्तमान जीवन मे व्यक्ति से अन्तर्राष्ट्रीय जगत् तक व्याप्त विषमता एव उसकी विभीषिका, विग्रह एव विनाश की कगार, असन्तुलन एव आन्दोलन आचार्य श्री ने अपनी आत्म-दृष्टि से देखा एव मानवता के करुण क्रन्दन से द्रवित हो उसे बचाने के लिये उपदेशामृत की धारा प्रवाहित की है।

समता सिद्धान्त नया नही है—वीर प्ररूपित वचन है व जैन दर्शन का मूलाधार है। परन्तु इसे धर्म की सकीर्णता मे बधा देख व उसकी व्यापक महत्ता का ज्ञान जन-जन को न होने से इसे नये सन्दर्भ व दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। यह किसी वर्ग विशेष के लिये नही वरन् प्राणीमात्र के लिये है। यदि मानवता के किसी भी वर्ग ने समता-सिद्धान्त को न समझकर विषमता की ओर कदम बढ़ाये तो समग्र विश्व के लिये खतरा उत्पन्न हो सकता है। इसी दृष्टि-कोण को ध्यान मे रखकर व्यापक मानव-धर्म के रूप मे समता-दर्शन को प्रति-पादित किया है।

समता जीवन की दृष्टि है। जैसी दृष्टि होगी वैसा ही आचरण होगा। जैसा मानव देखता है वैसी ही उसकी प्रतिक्रिया होती है। यदि एक साधारण रस्सी को मनुष्य भ्रमवश साप समझ ले तो उसमे भय, क्रोध व प्रतिशोध की प्रतिक्रिया होती है। यदि कदाचित् साप को ही रस्सी समझ ले तो निर्भीकता का आचरण होता है। यही सिद्धान्त जीवन के हर पहलू पर लागू होता है। यदि किसी भी वस्तु को सम्यक् व सही रूप से समझने की दृष्टि रखें व उसी रूप से आचरण करने का प्रयत्न करें तो सामाजिक असन्तुलन, विग्रह व विषमता समाज मे हो नही सकती। यही आचार्य श्रीजी का मूल सन्देश है।

आचार्यश्री ने सिद्धान्त प्रतिपादित कर छोड दिया हो ऐसी बात नही है। सिद्धान्त को कैसे व्यवहार मे परिणत किया जाय, इस पर भी पूरा विवेचन किया है। सिद्धान्त दर्शन के अतिरिक्त जीवनदर्शन, आत्मदर्शन व परमात्मदर्शन के विविध पहलुओ मे कैसा आचरण हो, इसका पूरा निरूपण किया है।

आज की युवा-पीढी पूछती है—धर्म क्या है ? किस धर्म को मानें ? मन्दिर मे जायें या स्थानक मे—? अथवा आचरण शुद्धता लायें ? धर्म-प्ररूपित आचरण आज के वैज्ञानिक युग मे कहाँ तक ठीक है व इस का क्या महत्व है ? कतिपय धर्मानुरागियो के 'धर्माचरण' व 'व्यापाराचरण' मे विरोध को देखकर भी युवा-पीढी धर्म-विमुख होती जा रही है। धर्म ढकोसले मे नही हैं। आचरण मे है। धर्म जीवन का अग है। समता धर्म का मूल है। इस तर्कसगत विवेचन व वैज्ञानिक दृष्टिकोण से आचार्यश्री ने आधुनिक पीढ़ी को भी आकर्षित करने का प्रयत्न किया है। □

समतासिद्ध जीवन

⊛ प्रो शिवाशंकर त्रिवेदी

आचार्यश्री का जीवन समग्रत समताभिमुख है। उनके योग और प्रयोग, चिन्तन और ध्यान, साधना और वैराग्य, वाणी और कर्म, आचार और व्यवहार सबका आधार समत्व है। उनका साहित्य समताभिमुख है, सान्निध्य समत्वानुगुंजित है, वाणी मे समत्व घोष है, ध्यान समत्वग्रही जीवन के अतल से वे समत्व का ही रस ग्रहण करते हैं और व्यावहारिक जीवन मे उसी रस की वृष्टि करते है। पिछली कई शताब्दियो में समत्व का इतना गहन, जीवन्त, सुदीर्घ, अविचल और नैष्ठिक प्रयोग संभवत आचार्यश्री के अतिरिक्त अन्य किसी ने नही किया है। वे समग्रत समत्व एव चेतनानुवर्ती न्याय के मूर्त्त स्वरूप हैं। उनके जीवन को खण्डित रूप मे देखना, समत्व के खण्ड-खण्ड करने के समान है।

समता दर्शन केवल विचार-सामग्री नही, विचार-क्रान्ति भी नहीं है, यह तत्वत आचार-क्रान्ति है। अत इसके विस्फोट की पहली आवश्यकता है कि चेतन जागृत होकर अपने स्वत्व के प्रति सावधान हो जाय। इस क्रान्ति को आगे तभी बढाया जा सकता है जब हम अपनी सचेतना के प्रति आश्वस्त और निष्ठावान हो जायें। जडत्व, परिग्रह और विषमता के प्रति हम व्यामोहवश समर्पित हैं। इस व्यामोह का टूटना समत्व क्रान्ति की पहली शर्त और उसका अंतिम चरण है। समत्व सब आयामी है। इसके विकास मे जहाँ विश्व का चरम मंगल सन्निहित है, वही यह मानव-जीवन का परम पद भी है। यह एक ऐसा दर्शन है, जिसे क्रियान्वित करने के लिये संघर्ष और हिंसा की आवश्यकता नही है। हिंसक संघर्ष चेतनता का अपमान है। हिंसा का भाव हमारी मूर्च्छना का प्रमाण है। समत्व मे तो क्रमिक जागृति और विकास ही सन्निहित है। इसके पहले सोपान पर वैचारिक जागृति, दूसरे पर सदाचार और सत्साधना, तीसरे पर विश्व मंगल का उन्नयन और चौथे पर परम सत्ता का विलास है। यह वैचारिक विश्लेषण क्रम, व्यावहारिक कार्यक्रम विशेष है।

आचार्य श्री नानालालजी म सा ने समता-दर्शन को व्यापक एवं व्यावहारिक बनाकर प्रस्तुत किया है। उन्होंने कर्मासक्ति से कर्म-समृद्धि की ओर बढ़ने का आह्वान किया है। कर्मासक्ति में आसक्ति प्रधान होती है। उसमें आसक्ति का स्वामित्व होता है—कर्म परवश होता है, व्यक्ति परवश होता है, जीवन परवश होता है। व्यक्ति अपने कर्मों का स्वामी नहीं, बल्कि आसक्ति का दास होता है। आचार्य श्री नानालालजी का समता-दर्शन व्यक्ति तक उसका स्वामित्व, उसका

पौरुष, उसकी तेजस्विता पहुँचाने का प्रयास है, अभियान है। उनका विश्वास है कि व्यक्ति के आसक्ति ग्रस्त जीवन मे ही उसके स्वातन्त्र्य एव स्वामित्व बोध का बीजारोपण किया जा सकता है। परिग्रह जहाँ घोर दासता और अघ पतन का सूचक है, त्याग स्वामित्व के उदय का सकेत है। ग्रहण और सग्रह की सनक मे केवल परवशता का ही भाव है। त्याग का भाव ही परिग्रह पर स्वामित्व की एकमात्र परख है। कर्मासक्ति और परिग्रह की बुनियाद ही स्वामित्व एव स्वाधीनता की शक्तियो से अपरिचय अथवा इनका अप्रकाशन है। समत्व दशन इसी आधार पर स्वत्व का दर्शन न होकर स्वामित्व का दशन है। स्वत्व का हस्तातरण सम्भव है, स्वामित्व को हस्तातरित नही किया जा सकता। स्वत्व मूर्च्छना का प्रथम लक्षण है, स्वामित्व-बोध जागृति की पहली किरण है। ▽

ककर और गेहूँ

❀ आचार्य श्री नानेश

एक मनुष्य ने बहुत बडी गेहू की राशि देखी, जिसमे बहुत अधिक ककर मिले हुए थे। फिर उसने यह विचार किया कि इस गेहू के साथ बहुत ककर ह और यदि ये ककर के साथ खाए गए तो मेरे जीवन के लिए घातक बनेंगे। मैं इन ककरो को बीन लू तो शुद्ध गेहू मेरे जीवन के लिए हितावह हो सकते हैं। इस भावना से यदि वह गेहू को देखना चालू करे और उसमे रहने वाले ककरो को चुनना चालू करे तो आहिस्ता-आहिस्ता वह उस गेहू की राशि का ककरो से रहित कर सकता है। परन्तु यदि कोई चाहे कि गेहू की राशि को मैं एक साथ ही ककरो से रहित कर दू तो यह शक्य नही है।

इस जीवन की भव्य राशि मे ककरो के समान जो हीन-भावनाओं का सचय है, मलिन तत्त्वो की उपस्थिति है, यदि उनको चुनने का कोई अभ्यास बना ले तो वह प्रतिदिन अपने गुणो मे वृद्धि करता हुआ, अपने जीवन मे पुण्यशील बन सकता है।

आचार्य नानेश के प्रवचन-साहित्य का अनुशीलन

❀ डॉ नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम'

आजकल लोग 'प्रवचन' (Sermonizing) शब्द सुनकर चिढ मे जाते हैं । कोई यदि उन्हे 'प्रवचन' देने लगता है तो वे उस व्यक्ति को 'बोर' कहने लगते हैं । दरअसल, प्रवचनो से हम सभी ऊब से गये हैं । बहुत कम लोग प्रवचन सुनना पसन्द करते हैं । इसका क्या कारण है ? इसका कारण सभवत यह है कि प्रवचनकर्ता और श्रोताओ के बीच अपेक्षित सबध नही पनप पाता, पारस्परिक सम्प्रेषणीयता का अभाव रहता है । आदाता और प्रदाता मे समीकरण नही बैठ पाता । प्रवचनकर्ता के शब्द श्रोताओ को उज्जीवित नही कर पाते । प्रवचन, मात्र वाचिक खिलवाड बनकर रह जाते हैं और प्रवचनकर्ता एक महज मशीन । यही कारण है कि 'प्रवचन' शब्द इतना अवमूल्यित हो गया है कि लोग प्रवचन सुनने से कतराने लगे हैं । यह स्थिति इसलिए भी पैदा हुई है क्योकि प्रवचनकर्ताओ मे वह ऊर्जा और प्रेरणा नही रही जो कि आदश और तपोनिष्ठ प्रवचनकर्ताओ मे हुआ करती थी । शब्द और कर्म, चिन्तन और आचरण का अद्वैत अब बहुत कम देखा जाता है । प्रवचनकर्ता प्राय वे ही बातें दोहराते रहते हैं जो स्वय न करके, दूसरो से करने की अपेक्षा करते हैं । परिणाम यह होता है कि प्रवचनकर्ताओ के प्रवचन, मात्र शाब्दिक-व्यायाम बनकर रह जाते हैं, श्रोताओ पर उनका इच्छित प्रभाव नहीं पडता, पर दोष प्रवचनो का नही है । मानव जाति के सचित ज्ञान का कोष महान् व्यक्तियो के प्रवचनो का ही कोष है । विश्व की निखिल सस्कृति प्रधान रूप से प्रवचन प्रेरित रही है । महान् सतो के प्रवचन, उनकी आप्तवाणी, उनके आप्त वाक्य—विश्व सस्कृति के सतत प्रेरणास्रोत रहे हैं । इन प्रवचनो ने मनुष्य को अधकार से बाहर निकालकर प्रकाश की राह दिखाई है । मनुष्य को पशुत्व से देवत्व की ओर प्रेरित किया है । उसके अनुदात्त जीवन को उदात्त बनाया है, आगम, वेद, उपनिषद्, गीता, कुरान, गुरु ग्रन्थ साहब, बाइबिल मूल रूप से प्रवचन ही तो हैं । बुद्ध, महावीर, नानक, रामकृष्ण परमहस, स्वामी विवेकानन्द तथा महात्मा गाधी—इनके प्रवचनो ने ही तो मनुष्य का अमृतत्व का मार्ग दिखाया है । क्या कारण है कि इन दिव्य पुरुषो के प्रवचनो को हम बार-बार सुनना और पढ़ना पसन्द करते हैं ? कारण बिलकुल स्पष्ट है, ये प्रवचन इन महात्माओ की प्राण ऊर्जा से अभी तक प्रोद्भासित एव ऊर्ध्वमित हैं । इन महाप्राण सतो मे वाणी और व्यवहार का द्वैत नही था । जो कुछ वे कहते थे, स्वय करते थे, जो करते थे वही कहते थे । मानव सस्कृति का इतिहास वाणी और व्यवहार के स्वस्थ समीकरण का ही इतिहास है । ऐसे महात्माओ का ही लोकानुगमन होता है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन ।
स यत्प्रमाण कुरूते लोकस्तदनुवर्तते ॥

(गीता ३, २१)

श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण करता है अन्य पुरुष वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है समस्त मनुष्य-समुदाय उसी के अनुसार वरतने लग जाता है ।

इन सतो मे प्रवचनो मे इसलिए अधिक प्रभाव और सम्मोहन होता है क्योकि ये प्रवचन इन महात्माओ के स्वय के अनुभवो पर आधारित होते हैं। कुछ वे बोलते हैं वह स्वानुभूत होता है, मात्र पुस्तकीय अथवा शास्त्रीय प्रलाप नहीं। फिर, ये प्रवचन दिव्य-तत्त्व से तरगायित होते हैं और जब ये प्रवचन तपोपूत सतो के मुख से निकलते है तो ये सीधे ही श्रोताओ के कर्ण-रध्रो को लाघते हुए उनके मन-प्राणो की गहराइयो मे उतरते चले जाते हैं। अन्तत ये प्रवचन श्रोताओ की सवेदना और चेतना का मूलाधार बन जाते हैं। इस प्रकार के प्रवचन, प्रवचनकर्ता और श्रोता—दोनो के लिए ही हितकर होते हैं। इनसे न केवल श्राता ही लाभान्वित होते हैं अपितु प्रवचनकर्ता भी इनके माध्यम से लोक-मगल और 'आत्मोत्थान' गुरु-गभीर दायित्व पूरा करते हैं—

य इम परम गुह्य मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्ति मयि परा कृत्वा मामेवैष्यत्य सशय ॥

(गीता, १८, ६८)

जा पुरुष मुझ मे परम प्रेम करके इस 'परम ज्ञान' को मेरे भक्तो मे कहेगा, वह मुझको ही प्राप्त होगा, इसमे कोई सदेह नही ।

व्यष्टि और समष्टि के सम्यक् विकास मे उदारचेतसमयी प्रेरणा से समवित सतो और महात्माओ के प्रवचनो की प्रभूत भूमिका रही है। दरअसल, धर्म के सस्थापन, प्रचार-प्रसार मे प्रवचनो का अमूल्य यागदान रहा है। मानव को उदात्त जीवन की ओर प्रेरित करने वाले प्रवचन किसी धर्म, सम्प्रदाय, जाति या देश की सीमाओ मे नही बधे रहते । इन प्रवचनो का क्षितिज निस्सीम हाता है, इनका आकाश व्यापक और विराट । इसलिए वे ही प्रवचन चिरस्थायी और कालजयी हाते हैं जो सार्वभौमिक, सार्वकालिक और सार्वदेशिक होते हैं। वे ही प्रवचन प्रभावशाली और सनातन होते हैं जिनका लक्ष्य लाक-मगल होता है, व्यष्टि समष्टि का सतत क्षेम होता है। इन प्रवचनो की अपनी एक शैली होती है। प्रवचनकर्ता के भास्वर व्यक्तित्व को पूर्ण उजागर करने वाली। सरल, सहज, बोधगम्य, दृष्टात सम्पन्न, सम्प्रेष्य यह शैली प्रवचन का प्राण होती है। प्रवचन-कर्ता के अपने अनुभवो का नवनीत इन प्रवचनो मे सम्पृक्त रहता है।

जैन धर्म के प्रात स्मरणीय सत आचार्य नानेश जी के प्रवचन इसी शैली

क पुष्कल प्रमाण हैं। इनके प्रवचन-साहित्य के अनुशीलन से वही प्रेरणा प्राप्त होती है जो कि उनके मुखारविन्द से निःसृत वचनों से। सतश्री के प्रवचन मुद्रित रूप मे भी उतने ही बोधगम्य और प्रभावशाली होते हैं जितने कि उनको सुनते समय। इसका कारण सभवत यह है कि नानेश जी प्रवचनो को न केवल मुखरित ही करते हैं अपितु वे उन्हे स्वय जीते भी हैं। उनके चिन्तन और आचरण मे एक अद्भुत साम्य रहता है, विचार और क्रिया मे एक विरल अद्वैत के दर्शन मिलते हैं। आचार्य श्री के प्रवचनो को सुनना और पढना अपने आप में एक दिव्यानुभूति (Divine Experience) हैं। आध्यात्मिक वैभव (प्रवचनमाला २, श्री साधुमार्गी जैन श्रावक सघ, बीकानेर से प्रकाशित) मे प्रस्तावना-स्वरूप लिखे प विद्याधर शास्त्री के ये शब्द कितने सार्थक हैं—

'महाराज का प्रत्येक वाक्य श्रोतव्य, मन्तव्य, और निदिध्यासितव्य है। शुद्ध नैतिकता की अपेक्षा इसमे किसी विकृत राजनीति या अन्य किसी भी धर्म या वाद विशेष पर किसी तरह का आक्षेप नही है। यहा तो सर्वत्र कल्याणकारी उपदेशो का प्रकाशमान स्वरूप है जो शास्त्रीय एव ऐतिहासिक दृष्टांतो से समर्थित है। 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' वाली बात आचार्यश्री पर लागू नही होती क्योकि उनका अपना जीवन, प्रवचन और कर्म का एक मनोरम भाष्य है। उनका प्रवचन-साहित्य इतना विपुल है, इतना विस्तृत है कि उसके अनुशीलन से श्रोता या पाठक मानव जीवन के विभिन्न पक्षो को आत्मसात् करता हुआ, आत्म विकास की ओर प्रशस्त होता हुआ, 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना से ओतप्रोत हो जाता है। उसमें प्राणिमात्र का द्वैत भाव तिरोहित हो जाता है।'

आचार्य नानेश जी के प्रवचन विभिन्न जैन-सस्थाओ द्वारा प्रकाशित ग्रथो मे सकलित हैं। समय-समय पर दिये गये ये प्रवचन पुस्तकाकार रूप मे ढलकर भारतीय वाङ्मय के अग बन गये हैं। इन सग्रहो मे—प्रवचन प्रकाशन समिति, जयपुर द्वारा प्रकाशित पावस-प्रवचन (भाग १, २, ३, ४, ५, १९७२) श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर द्वारा प्रकाशित प्रवचन पीयूष (१९८०), आध्यात्मिक-वैभव (वि स २०४१), ऐसे जीए (१९८६), श्री साधुमार्गी जैन श्रावक सघ, गगाशहर-भीनासर द्वारा प्रकाशित मगलवाणी (१९८१), जीवन और धर्म (१९८२), अमृत-सरोवर (१९८२), श्रीमती वाधुदेवी दूगड़, देशनोक (राजस्थान) द्वारा प्रकाशित प्रेरणा की दिव्य रेखा मे (१९८२) आदि प्रमुख हैं।

आचार्य श्री के प्रवचनो के दिव्य स्पर्श से ये ग्रन्थ मानवजाति की प्रेरणा के चिरस्थायी दीप्ति स्तम्भ बन गये हैं। इन ग्रन्थो मे एक ही भाव प्रमुख है, एक ही स्वर मुखर है और वह है कि मनुष्य अपने आभ्यन्तर 'दिव्य तत्व' का कैसे उजागर करे? विभिन्न कषायो से धूमावृत आत्म-दीप को निर्धूम कैसे

करे ? प्राणिमात्र मे 'समता' का भाव कसे जागृत हो ? और व्यष्टि के पूणत्व से समष्टि का पूणत्व कैसे प्राप्त हो ? यह भाव एक अर्थ मे सनातन भाव है तथा सभ्यता और सस्कृति के सूर्योदयकाल से ही मनुष्य की चेतना को कुरेदता रहा है । समय-समय पर उत्पन्न होने वाले सत-महात्माओ ने अपने-अपने ढग से इन प्रश्नो के उत्तर खोजने का श्रम किया है । कभी ये उत्तर नितांत दार्शनिक, वायवी और सैद्धान्तिक बनकर रह गये है और कभी अत्यन्त व्यावहारिक । नानेश जी के प्रवचन ज्ञान-गरिमा की आभा से मण्डित होते हुए भी बोझिल नही हैं और न वे मात्र पाण्डित्यपूर्ण या अव्यावहारिक हैं । एक सुलझे, मनोविज्ञ प्रवचनकार की तरह नानेश जी श्रोता की मानसिकता को अच्छी तरह समझते हैं, उसकी सीमाओ से परिचित हैं, उसकी बोधवृत्ति का उन्हे सम्यग्ज्ञान है । यही कारण है कि उनके प्रवचन दुरुह, रुक्ष, क्लीष्ट, वायवी न होकर सुगम, सरल, सहज, व्यावहारिक और सम्प्रेष्य होते हैं । उनके प्रवचनो मे उपयुक्त, सांदर्भिक दृष्टातो और उदाहरणो का अच्छा समावेश मिलता है । कही-कही काव्यत्व के भी दशन होते हैं । प्रवचन-शैली मे कथाओ, दृष्टातो, उद्धरणो, रूपको, उपमाओ का बडा महत्त्व होता है । इसी प्रकार की शैली श्रोता को बाधे रखती है और उसके मस्तिष्क मे विषय को दीघकाल तक थामे रहती है । नानेश जी अपने प्रवचनो में श्रोताओ से सभाषण करते चलते हैं । यही कारण है कि प्रवचनकर्ता और श्रोताओ मे एक 'निकटता' का सेतु बन जाता है । श्रोता, प्रवचनकर्ता को अपना 'मित्र, दार्शनिक और पथप्रदशक' (Friend, philosopher & guide) मानकर उसके प्रति पूण रूप से समर्पित हो जाता है । उसके प्रति श्रद्धावान बनकर ज्ञान-लाभ प्राप्त करता है । नानेश जी के द्वारा प्रयुक्त उदाहरण, दृष्टात केवल धम-ग्रन्थो से नही होते अपितु हमारी रोजमर्रा की जिन्दगी से चुने हुए होते हैं । उनके दृष्टात यदि एक ओर वेद, उपनिषद्, गीता, नीति-शास्त्र एव जैन वाङ्मय से लिये होते हैं तो दूसरी ओर वे लोक-कथाओ, लोक-जीवन तथा लोक-व्यवहार से गृहीत होते हैं । उनके प्रवचनो को सुनकर या पढकर यह नहीं लगता कि वे मात्र एक ससारत्यागी सत है और उन्हे आसपास की जिन्दगी का कोई ज्ञान या अनुभव नही । प्रत्युत्, इन प्रवचना के श्रवण और अनुशीलन से आचार्य श्री की पैनी, तत्त्वाभिनिवेषी, सवग्राही जीवन-दृष्टि का सहज अनुमान लग जाता है । वे सही रूप में 'जल मे कमलवत्' रहते हुए मनुष्य-मात्र को अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाने मे सवथा समथ हैं ।

आचाय श्री के प्रवचन-साहित्य का अनुशीलन अपने मे एक आध्यात्मिक यात्रा (Spiritual Pilgrimage) है, एक दिव्य अनुभव है । इन प्रवचनो मे नानेश जी मनुष्यमात्र को सबोधित करते हुए कहते हैं कि मनुष्य अपने प्रयत्नो से ही अपना 'उद्धार' कर सकता है । 'गीता में इसी भाव का मूलरूप से कहा गया है पर 'प्रवचन' मे यह भाव ढलकर अधिक प्रभावशाली बन गया है । 'प्रेरणा की

दिव्य रेखायें' नामक सकलन मे इस भाव की सरलता एव बोधगम्यता की एक वानगी देखी जा सकती है—

'मेरा काम उपदेश देना है, मार्ग बताना है परन्तु उस पर चलना तो आपका स्वय का काम है। यह आपका दायित्व है कि अपना उद्धार स्वयमेव करें। एक व्यक्ति कमरा बद कर रजाई ओढ सो रहा है। वह आखो पर पट्टी बांध लेता है और फिर चिल्लाता है कि इस कपडे ने मेरे आखें बांध दी हैं, रजाई ने मुझे ढक लिया है, कोई आकर मुझे बचाओ। अन्दर से साकल लगी हुई है। दूसरा व्यक्ति अन्दर नही जा सकता। बाहर से कोई व्यक्ति उसे सुझाव देता है कि अरे भाई! तुमने अन्दर से सांकल लगा रखी है, रजाई तुमने ओढ़ रखी है, आखो पर पट्टी तुमने बाध रखी है। अपने हाथों से ही पट्टी ढीली कर लो, रजाई फक दो, अन्दर की साकल खोल दो, बाहर की हवा लो, स्वयमेव तुम मुक्त हो जाओगे। वह कहता है कि 'मैं तो यह सब नही कर सकता, आप ही मेरी मदद कीजिए। ऐसे व्यक्ति के विषय मे आप क्या सोचेंगे? यही न कि वह मूर्ख है। ठीक इसी तरह अपने अपने कर्मों के आवरण को स्वयमेव हटाने में समर्थ हैं, दूसरा कोई नही।' (पृ २८-२९)

उनका कहना है कि 'आत्मोद्धार' की प्रक्रिया में, मनुष्य की आत्मा पर पडी हुई भारी शिलाओं को हटाना बहुत जरूरी है। ये शिलाए बाहरी नहीं हैं। बाहरी शिलायें तो दूसरो की सहायता से भी हटाई जा सकती हैं परंतु आत्मा पर पडी हुई आठ कर्मों की भारी शिलाओं को हटाने के लिए स्वय को ही पुरुषार्थ करना पडता है। दूसरा व्यक्ति निमित्त मात्र हो सकता है, उपादान नही। इस भाव को आचार्य श्री की प्रवचन शैली के माध्यम से सुनें या पढें तो कैसा लगता है—

'मैं आपसे एक सीधा सा प्रश्न करू। यदि कोई व्यक्ति किसी दुर्घटना के कारण पत्थर की शिला के नीचे दब जाये तो वह क्या करेगा? आप चट उत्तर देंगे कि वह किसी भी तरीके से निकलने की कोशिश करेगा। यदि उसके हाथ खुले हैं तो उनसे शिला को हटाने का प्रयास करेगा। उस समय यदि कोई उसे कहे कि कलकत्ते से सोहन-हलवा आया है, अपने हाथो से उसे ग्रहण करो। क्या वह व्यक्ति उस समय अपने हाथो को हलवा ग्रहण करने मे लगायेगा? या अपने पर पडी हुई शिला को हटाने के लिए हाथो का उपयोग करेगा। स्पष्ट है कि वह पहले शिला को हटाने का प्रयास करेगा। इन आठ कर्मों की शिलाओं को हटाने का काम आसान नही है। यह एक अत्यन्त कठिन कार्य है परन्तु प्रबल पुरुषार्थ के द्वारा साध्य है।" (वही पृ ५-६)

'आत्मोत्थान' के शुभ-कर्म को बिना प्रमाद के प्रारम्भ कर देना श्रेयस्कर है क्योंकि—

परिजुरई ते सरीरय, केसा पडु रया हवन्ति ते ।
से सव्व वलेण हावई, समय, गोयम, मा पमा यए ॥

तुम्हारा शरीर जब ढल जायेगा, मुह पर भुरिया पड जायेंगी, बाल सफेद गे और अगोपाग जर्जर हो जायेंगे, तब क्या कर पाओगे ? मुहूत के भरोसे त बठे रहो । प्रमाद मत करो । आत्मोत्थान के शुभ काय को आरम्भ कर दो ।

'आत्मोत्थान' की प्रक्रिया मे जीवन को सस्कारित करना बहुत आवश्यक क्योकि असस्कारित जीवन मे आत्मोत्थान सभव नही । आचाय श्री के प्रवचन ा एक अश द्रष्टव्य है—

'असस्कारित जीवन मे किसी तत्त्व को डाल दोगे तो उसका सस्कार ही हो पायेगा, उसका दुरुपयोग होगा । अपरिक्व घडे मे यदि अमृत डाल दोगे तो घडा भी चला जायेगा और अमृत भी ।' (पावस-प्रवचन भाग १ पृ १७)

इसलिए संस्कारित जीवन बनाने के लिए सुमति जागृत करना बहुत आवश्यक है । सुमति के बिना जीवन सस्कारित नही बन सकता । कुमति का जीवन असस्कारित जीवन है, अज्ञान का जीवन है । इस भाव को कितनी सरलता से नानेश जी अपने प्रवचन मे प्रस्तुत करते हैं—

'आप देख रहे हैं, एक बच्चे के सामने बहुमूल्य रत्न रख दीजिए । आप अपनी अगूठी का तीन लाख या पाच लाख का हीरा रख दीजिए । वह बच्चा उस हीरे की कीमत क्या करेगा ? वह बच्चा उस हीरे को क्या समझेगा? वह बच्चा उस हीरे को यत्न से रखने का प्रयत्न करेगा ? नही । वह तो उसे उठाकर फेंक देगा । बच्चे के जीवन मे हीरे की पहचान का सस्कार नही है । इसलिए वह बच्चा उस ज्ञान के अभाव मे, प्रारम्भिक स्थिति मे असस्कारित होने के कारण हीरे के विषय मे कुछ नही जान पा रहा है ।' (वही पृ १७)

संस्कारित जीवन 'विमलता' का जीवन है । विमलता के अभाव मे ही, विषमता की ज्वालाए सुलग रही हैं । यदि मनुष्य का मन विमल बन जाता है, इसमे पवित्र सस्कारो का सचार हो जाता है तो तमाम कुटिलताए और मलिनताए समाप्त हो जाती हैं ।

आचाय नानेश जी के प्रवचनो मे जिस प्रमुख 'भाव' का सौरभ बिखरा रहता है वह 'समता' का भाव है । आचायजी का मानना है कि व्यक्ति से व्यक्ति तभी जुड सकता है जबकि उसमे 'समता दृष्टि हो । 'समता' के अभाव मे विषमताओ का जन्म होता है और विषमता से विघटन और बिखराव । समता की विरोधी स्थिति होती है ममता की स्थिति । ममता मे 'मम' शब्द का अर्थ होता है 'मेरा' और ममता का अर्थ है 'मेरापन । जहा 'मेरापन'—ममता है, वहा स्वार्थबुद्धि है, सग्रह वृत्ति है और पदार्थो के प्रति लोलुपता है । जहा ममता है वहा समता नही है या यो कहे कि सबको अपने तुल्य आत्मवत् समझने की समता नही । नानेश जी का यह कथन कितना युगानुकूल और सार्वभिक है—

'भातिक विपमता के कुप्रभाव से दृष्टि कितनी स्थूल बन गई है कि जब मुद्रा के अवमूल्यन का प्रसग आता है तो देश के अर्थशास्त्री और राजनेता चिन्तित होते हैं किन्तु दिन-रात जो भारतीय-जन के चारित्र का अवमूल्यन होता जा रहा है, उसके प्रति चिन्ता तो दूर उसकी तरफ नेता लोगो की कार्यकारी दृष्टि नहीं जाती। विपमता के इस सवमुखी सत्रास से विमुक्ति समता को जीवन में उतारने से ही हो सकेगी। समता की भूमिका जब तक जन-जन के मन मे स्थापित नहीं होगी, तब तक जीवन की चेतना-शक्ति के भी दशन नहीं होंगे। (जीवन और धर्म, पृ ३२)

समता की दृष्टि, व्यष्टि और समष्टि, दोनो स्तरो पर आवश्यक है। आज के विश्व की अनेकानेक समस्याओ का समाधान 'समता दृष्टि' से ही सभव है। आज के परिप्रेक्ष्य मे आचार्य श्री के ये शब्द कितने सारगर्भित हैं—

'समता-जीवन-दर्शन के बिना शाति होने वाली नहीं है। अन्य अनेक प्रयत्न चाहे किसी धरातल पर होते हो, वे किसी भी लुभावने नारे के साथ हों परन्तु जीवन मे जब तक समता-दशन नही होगा, तब तक वे सब नारे केवल नारो तक सीमित रहेंगे और उनके साथ विपमता की जडें हरी होती हुई चली जायेंगी। इसलिए समता-जीवन-दशन को मुख्यता अपने जीवन मे उतारने के लिए तत्पर हो जाते हैं तो मानव-जीवन मे एक नये आलोक और एक नई शात क्राति का प्रादुर्भाव हो सकता है। (आध्यात्मिक वैभव, पृ ६५)

'आत्मवत् सर्व भूतेपु' की ऐसी व्यापक एव सवग्राह्य व्याख्या अन्यत्र कहाँ मिल सकती है? नानेश जी मात्र स्वप्नदर्शी (arm-chair philosopher) न होकर सही अर्थो मे एक कर्मयोगी हैं। स्थित प्रज्ञ एव स्थिरधी हैं। उनके लिए समस्त मानवज्ञान 'हस्तामलकवत्' है और वे उस ज्ञान को व्यक्ति और समाज के परिष्करण मे लगाना अभीष्ट समझते हैं। शास्त्रीय ज्ञान की व्यावहारिक एव जनसवेद्य व्याख्या उनके प्रवचनो का प्राणतत्त्व है। वे गगन विहारी दार्शनिक न होकर जीवन की कठोर भूमि पर विचरण करने वाले कर्मठ तापस हैं। ऐसे तपस्वी जो कन्दरावासी न होकर समाज की धडकनो को समझते हैं, आज के तरुण-वर्ग को उद्बोधित करते हुए वे कहते हैं—

'आज का तरुण वर्ग कानो मे तेल डालकर सोया हुआ है। तरुण सोचते हैं कि धर्म करना तो वृद्धो का काम है। हमको तो राजनीति में भाग लेना है, या नौकरी अथवा व्यवसाय करना है। यह वर्ग जीवन के लक्ष्य का भूला हुआ है।' (वही पृ ७०)

'ऐसे जीए' नामक सकलन में आचाय श्री ने जीवन जीने की कला का मर्म उद्घाटित किया है—जो भी काम करें, चाहे वह छोटा से छोटा भी क्यों न हो, उसे मनोयोग पूवक सम्पन्न करने का प्रयास करें, जिससे कि आपको महा ढंग से

जीने की कला प्राप्त हो सके ।' (पृ १६-१७) 'याग कर्मेषु कौशलम्' की कितनी सरल व्याख्या !

आचार्य नानेश जी के प्रवचनो मे बुद्ध, महावीर, ईसा, नानक, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द, महात्मा गाधी प्रभृति महात्माओ के भाव और कर्मलाको का प्रतिबिम्ब दिखाई पडता है । इस दृष्टि से इन प्रवचनो मे एक विशेष प्रकार की विश्वजनीनता (Universality) है । मानव की 'समग्र चेतना' को इन प्रवचनो मे सजोना नानेश जी जैसे तपस्वी सत का ही कर्म हो सकता है । उनके प्रवचन-साहित्य का अनुशीलन, चिन्तन-मनन तथा तदनुसार आचरण व्यक्ति और समाज दोनों के हित में है । वे व्यक्ति एव सस्थायें धन्य हैं जो आचार्य श्री की वाणी को जन-जन तक पहु चाने का मगलमय कार्य कर रही हैं ।

—७ च-२ जवाहरनगर, जयपुर–३०२००४

□

समता के स्वर

❀ आचार्य श्री नानेश

वर्तमान विषमता की कर्कश ध्वनियो के बीच आज साहस करके समता के समरस स्वरो को सारी दिशाओ मे गु जायमान करने की आवश्यकता है । समस्त जीवन के सभी क्षेत्रो मे फैली विष-मता के विरुद्ध मनुष्य को सघर्ष करना होगा, क्योकि इस विषम वातावरण मे मनुष्यता का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है ।

यह ध्रु व सत्य है कि मनुष्य गिरता, उठता और बदलता रहेगा, किन्तु मनुष्यता कभी समाप्त नही होगी, उसका सूरज डूबेगा नही । वह सो सकती है, मर नही सकती । अब समय आ गया है कि जब मनुष्य की सजीवता को ले कर मनुष्य को उठना होगा—जागना होगा और क्रान्ति-पताका को उठा कर परिवर्तन का चक्र घुमाना होगा । क्रान्ति यही कि वर्तमान विषमताजन्य सामाजिक मूल्यो को हटा कर समता के नये मानवीय मूल्यो की स्थापना की जाए । इसके लिए प्रबुद्ध एव युवावर्ग को विशेष रूप से आगे आना होगा और एक व्या-पक जागरण का शख फू कना होगा ताकि समता के समरस स्वर उद्बुद्ध हो सकें ।

आचार्य श्री नानेश के उपन्यास : कथ्य और शिल्प

ॐ प्रो महेन्द्र रायजादा

आचाय श्री नानेश जैन आगमो तथा शास्त्रो के ममज्ञ विद्वान हैं। वे समता दर्शन के अध्येता, व्याख्याता तथा पुरस्सरकर्त्ता हैं। श्री नानेश, जैन धम के अनन्य साधक होने के अतिरिक्त साहित्य के साधक और सृजनात्मक प्रतिभा के धनी भी हैं। उनकी प्रतिभा बहुमुखी है। वे अपने तात्त्विक और गूढ़ विचारो को सीधी-सादी एव सरल भाषा मे अभिव्यक्त करने मे सिद्धहस्त हैं। उन्होंने प्राचीन लोक-कथाओ के द्वारा मानव जीवन के सत्य एव मम को अपनी कथा-कृतियो के माध्यम से उद्घाटित किया है।

कथा-कहानिया सुनने के प्रति मानव का आकर्षण चिरकाल से रहा है। बालक से लेकर वृद्ध तक सभी को कथा-कहानियो द्वारा जीवन के यथाथ और आदर्श को आसानी से समझाया जा सकता है। आचाय नानेश ने अपने चातुर्मास के दौरान अपने प्रवचनो मे समय समय पर अपने नैतिकतापरक मूल्यवान धार्मिक विचार कथा-कहानियो के माध्यम से रोचक ढग से व्यक्त किये हैं। उन्ही आख्यानों को विद्वानो ने सकलित सम्पादित कर उपन्यासो के रूप मे प्रस्तुत किया है। उपन्यास, साहित्य की एक ऐसी विधा है जो जीवन के गूढ विषयो को सरस और सुगम बना कर प्रस्तुत करती है। आचाय नानेश ने अपने सद्विचारो को समता दशन मे निरूपित कर अस्पृश्यता-निवारण हेतु महान् काय किया है। मध्यप्रदश के मालवा क्षेत्र के अस्पृश्य कहलाये जाने वाले बलाई आदि जातियों के लोगो को सुसस्कारी बनाने में आचाय श्री नानेश के सदुपदेशा तथा प्रवचनो ने प्रेरणादायी काय किया है। जनमानस मे सयम, नियम, समताभाव, त्याग और विवेकशीलता को जागृत करने मे इन कथाओ का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

आचाय श्री के चार उपन्यास अब तक प्रकाशित होकर सामने आये हैं, जिनका कथ्य और शिल्प इस प्रकार है—

१ ईर्ष्या की आग

यह लघु उपन्यास आचाय नानेश के प्रवचनो का अश है। आचार्य श्री द्वारा अपने प्रवचना म कही गई रोचक कहानी को श्री ज्ञान मुनिजी ने सकलित एव सम्पादित कर उपन्यास के कलेवर मे सजाया-सवारा है। आधुनिक युग मे कहानी और लघु उपन्यास अधिक लोकप्रिय हैं। इस दृष्टि से यह कथाकृति पाठकों के लिये मार्गदशन का काय करती है।

प्रस्तुत उपन्यास मे मेदनीपुर निवासी सपत सुभद्र सेठ के दो पुत्र गुणी

और अवघेश तथा पुत्र वधुएँ भामिनी और यामिनी की कथा प्रस्तुत की गई है। बडा भाई सुघेश वचपन से ही स्वार्थी और कपटी है। छोटा भाई अवघेश उसके विपरीत परमार्थी, सरल और ईमानदार है। पिता की मृत्यु के बाद घर-गृहस्थी का भार वडे भाई सुघेश पर आया। सुघेश विवाहित था और उसकी पत्नी भामिनी भी उसी की तरह स्वार्थी, कपटी और ईर्षालु थी। अवघेश अपने वड भाई सुघेश और भाभी की वहुत इज्जत करता था और आज्ञाकारी भी था। अवघेश को उसकी भाभी जो कुछ रूखा-सूखा खाने को देती, उसे वह समभाव से सतोषपूवक ग्रहण कर लेता था। अवघेश साधु और मुनियो का सत्सग करता था। अत वह निन्दा और प्रशसा मे समभाव रखता था तथा वडे भाई और भाभी द्वारा दिये गये कष्टो को सहन करता था। सुघेश ने अपने छोटे भाई अवघेश का विवाह एक गरीव घराने की कन्या यामिनी से कर दिया।

कुछ दिनो के पश्चात् सुघेश और भामिनी ने अवघेश और यामिनी को अपमानित कर अलग रहने के लिये वाध्य किया। अवघेश अपनी पत्नी यामिनी के साथ एक खण्डहर वाले टूटे-फूटे मकान मे रहकर मेहनत-मजदूरी कर जीवन-निर्वाह करने लगा। दूसरी ओर सुघेश व्यापार करने लगा और अपनी पत्नी भामिनी सहित सुख और वैभव का जीवन व्यतीत करने लगा।

एक दिन अवघेश लकडी काटने जगल मे गया। वहाँ उसे एक योगी मिले और उन्होने अवघेश को त्याग-प्रत्याख्यान की वात कही और गीली लकडी काटने का निषेध किया। कई दिनो तक अवघेश को सूखे वृक्ष दिखलाई नही दिये और उसे अपनी पत्नी सहित निराहार रहना पडा, किन्तु उस स्थिति मे भी वे सतोष पूर्वक प्रसन्न रहे। एक दिन देवालय के कपाट कुल्हाडे से तोडते समय सोमदेव प्रकट हुए और अवघेश के सयम-नियम का प्राणपन से पालन करने को देखकर उसे वरदान दिया। फलस्वरूप सूखी लकडिया चन्दन बन गई और उसे उन्हें बेचने पर बीस हजार रुपये प्राप्त हुए। बाद मे वह ईमानदारी से व्यापार कर सदाचारिणी यामिनी सहित सुखपूवक रहने लगा। भामिनी यामिनी से सारी बात जानकार अपने पति सुघेश को सोमदेव से वरदान लेने भेजती है। किन्तु वहा जाकर सुघेश को जान के लाले पड जाते हैं। और देव के समक्ष प्रतिज्ञा करने पर उसे छुटकारा मिलता है।

अन्त मे सुघेश और भामिनी को अपने किये पर पश्चाताप होता है। सुघश सोमदेव के आदेशानुसार अपने पिता की सम्पत्ति का आधा भाग व्याज सहित अवघेश को देने पर विवश होता है। अवघेश के यहा पुत्रोत्सव का आयोजन होता है। सुघेश और भामिनी अवघेश और यामिनी के साथ सद्भावना-पूवक रहने लगते हैं। अन्ततोगत्वा महायोगी के दर्शन प्राप्त कर अवघेश और यामिनी परम शाति और आनन्द की अनुभूति से सम्यक् साघना की गहराइयो मे पैठकर महामानव की दिशा की ओर अग्रसर होते हैं।

उपन्यासकार ने इसके पात्रो मे अवधेश और यामिनी को सदाचारी, सात्विक, परमार्थी और परम सतोषी दरसाया है तथा सुधेश और भामिनी को स्वार्थी, ईर्षालु, बेईमान और कपटी बतलाया है। अवधेश और यामिनी परम त्यागी, समतावान और श्रमण सस्कृति के अनुगामी हैं। इस उपन्यास का कथानक पाठक को सद्प्रवृत्तियो की ओर उत्प्रेरित कर उदात्त जीवन मूल्यों की ओर उन्मुख करता है।

२ लक्ष्य-वेध

इस उपन्यास का कथानक २५ परिच्छेदो मे विभक्त है। इसकी कथा मानसिंह और अभयसिंह के आदर्श भ्रातृ-प्रेम को लेकर लिखी गई है। इस उपन्यास की कथा वस्तु प्राचीन लोक-कथा के आधार पर बुनी गई है। कथानक का उद्देश्य अपने 'स्व' को जागृत कर सशक्त बनाना है। आज व्यक्ति का 'स्व' अस्थिर और चचल बना हुआ है। फलत वह पथभ्रष्ट और दिशाहीन हो रहा है। लेखक ने अभयसिंह के माध्यम से भीतरी लक्ष्य अर्थात् त्याग और सेवा की वृत्ति का समर्थन करते हुए मानसिंह के माध्यम से बाह्य लक्ष्य और भोगवृत्ति से विरत होने का सकेत किया है। लेखक का उद्देश्य मानव के आत्मधर्म तथा समाजधर्म के प्रति कर्तव्य पालन की भावना को जागृत करना है।

इस उपन्यास की सक्षिप्त कथा इस प्रकार है—

महाराजा प्रतापसिंह के मानसिंह और अभयसिंह दो पुत्र थे। राजा प्रतापसिंह प्रजापालक, चारित्रवान, न्यायप्रिय और आदर्श जीवन व्यतीत करने वाले लोकप्रिय शासक थे। मानसिंह और अभयसिंह दोनो भाइयो मे पारस्परिक प्रगाढ प्रेम था। मानसिंह भोग-लिप्सा और रसिकता मे विश्वास करता था, किन्तु अभयसिंह सात्विक विचारो का विवेकशील युवक था। एक दिन दोनो भाई नगर के प्रसिद्ध उद्यान मे कमलताल के निकट बैठे हुए वार्तालाप कर रहे थे। तालाब की दूसरी ओर नगर श्रेष्ठी की कन्या अन्य सखियो के साथ जल गगरी भर कर खडी थी। मानसिंह अपने तीर से लक्ष्य भेदकर नगर श्रेष्ठी की कन्या की गगरी (कलशी) का छेदन करता है। पर अभयसिंह को मानसिंह का यह कार्य अच्छा नही लगता है। अभय का विश्वास था कि अपनी कला अथवा ज्ञान का उपयोग पर-पीडन मे नही है। प्राणीमात्र का सुख पहुचाना हमारा आन्तरिक लक्ष्य होना चाहिये। अभयसिंह का जीवन इसी आन्तरिक लक्ष्य प्राप्ति हेतु समर्पित रहता है। जब महाराजा को ज्ञात होता है कि राजकुमार मानसिंह ने नगर श्रेष्ठी कन्या की जल-कलशी को छेदन करने का अपराध किया है, वह उसे राज्य से निकाल देता है। साथ ही अभयसिंह को भी राज्य से निष्कासित कर देता है क्योकि उसने मानसिंह के इस अपराध की सूचना राजा को नही दी थी।

दोनो राजकुमार इस निर्वासन-काल मे अनेक प्रकार के कष्टों का कठ

धर्य, साहस और विवेकशीलता से सामना करते हैं। दोनो भाइयो का विछोह भी होता है-। जगल मे लक्ष्मी और कालका देवियो का आगमन और उनके द्वारा मार्गदर्शन होता है। नाग की मणि लेने के बाद अभयसिह की नागिन के दश से मृत्यु, तान्त्रिक महात्मा के मत्र से अभय का विषहरण, श्रेष्ठी कन्या द्वारा परिचर्या और उससे विवाह। राजा की निसतान मृत्यु, उत्तराधिकारी के लिये हथिनी द्वारा माल्यार्पण। इधर अभयसिह वसन्तपुर के एक बडे व्यापारी धनदत्त के साथ रत्न-दीप जाता है। रत्नद्वीप की राजकुमारी रत्नावली अभयसिह का वरण करती है। अभय और रत्नावली के जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ होता है और दोनो प्रेम के पवित्र बधन मे बध जाते हैं। दोनो विशुद्ध प्रेम और आचरण की शुद्धता मे पूर्ण निष्ठा रखते हैं।

अन्त मे मानसिह और अभयसिह का राम और भरत की तरह मिलाप होता है। दुष्ट धनदत्त को फाँसी की सजा सुनाई जाती है। महाराजा प्रतापसिह विरक्त हो राज्य का भार युवराज अभयसिह को सौप देते हैं। मानसिह अपने पिता प्रतापसिह के साथ साधना के मार्ग पर चल पडते हैं। राजा अभयसिह अपनी महारानी मदन-मजरी व रत्नावली के साथ रत्नद्वीप के भी राजा बन जाते हैं। कालान्तर मे अभयसिह अपने पुत्रो को राज्य सौंप कर दोनो महारानियो सहित भगवती दीक्षा ग्रहण कर आत्म-साधना मे लीन हो जाते हैं।

'लक्ष्य-वेध' का कथानक प्रेम, सयम, न्याय और समाज-धर्म के भावो को जाग्रत करता है। इस उपन्यास का नायक अभयसिह सात्विक गुणो एव सद्-प्रवृत्तियो से युक्त है। प्राचीन लोक-कथा पर आधारित इस उपन्यास मे मानव-जीवन का यह सत्य प्रतिपादित किया गया है कि मानव का लक्ष्य 'स्व' का जाग्रत कर सशक्त बनना है। आज व्यक्ति अपने केन्द्र 'स्व' से हटकर परिधि की ओर दौड रहा है। अत वह पथभ्रष्ट होकर दिशाहीन हो रहा है। कथाकार मानसिंह के माध्यम से 'बाहरी लक्ष्य' अर्थात् भोग दृष्टि की ओर सकेत करता है तथा अभयसिह के माध्यम से भीतरी लक्ष्य अर्थात् त्याग दृष्टि तथा सेवा वृत्ति का प्रतिपादन करता है।

इस उपन्यास द्वारा विद्वान् लेखक व्यक्ति के अन्दर समाज के प्रति उत्तम कर्तव्य बोध की भावना जाग्रत करता है। नगर श्रेष्ठी जयमल धर्म की सामा-जिकता का पोषण करता है और नगरवासियो के चारित्र को बिगडने देना नहीं चाहता है। समाज धर्मिता मनुष्य मे उदात्त लोक-सेवा की भावना जाग्रत करती है। आदिवासियो को वह अपना प्यार देता है तथा उन्हे ज्ञानदान देकर सुसस्कारी बनाता है। पन्ना कुम्हार निर्लोभी है और घूस मे वह अशर्फिया लेने मे इन्कार कर देता है। कान्ता दासी सच्ची नारी है और वह अपनी स्वामिनी रत्नावली का निष्ठापूर्वक साथ देती है। धनदत्त दुष्ट है और किसी भी प्रकार से धन कमाना

उसका लक्ष्य है। उपन्यास के अन्त में दुष्ट पात्रो के लिये उचित दण्ड की व्यवस्था कर सदाचरण और मन की शुद्धि पर बल दिया गया है। अभयसिंह की दोनों पत्निया मदनमजरो और रत्नावलो शील और सदाचार का आदर्श है, उनमें सेवा और त्याग की भावना विद्यमान है। कथानक मे कम और पुरुषाथ का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है।

उपन्याम के घटना-सयोजन मे विभिन्न रूढिया का आश्रय लिया गया है। राजकुमार द्वारा जल-कलशो छेदन, राजकुमारो का निर्वासिन, वन-वन भटकना, लक्ष्मी और कालिका देवियो का आगमन, उनके द्वारा मार्गदर्शन, नर राक्षस का आतंक, मणिधर सर्प, सर्पिणी का दश, तान्त्रिक द्वारा मन्त्र से विप उपचार, ३२ लक्षणा वाले पुरुष को बलि का विधान आदि रूढिया के प्रयोग से कथा मे कौतूहल और रोचकता का समावेश किया गया है।

३ अखण्ड सौभाग्य

आचार्य श्री नानेश के प्रवचना के आधार पर प्रकाण्ड विद्वान् श्री शाति चन्द्रजी मेहता द्वारा इस उपन्यास का सम्पादन किया गया है। इस कथाकृति में महाराजा चन्द्रसेन आदि उनकी पटरानी तथा युवराज आनद सेन के माध्यम से समतावान जीवन, क्षमाशीलता, राजा के कर्तव्य तथा विनयशीलता आदि मानवीय उदात्त गुणो का प्रतिपादन किया गया है। कथानक रोचक एव कौतूहलवर्धक है।

इस उपन्यास का कथानक सक्षेप मे इस प्रकार है—

ऐतिहासिक चम्पा नगरी अपने राज्य वैभव के कारण इतिहास में प्रसिद्ध है। यहा के राजा प्रजा-हितकारी, समतावान और जनकल्याण के प्रति निष्ठावान थे। इसी परपरा मे सम्राट चन्द्रसेन चम्पा नगरी के शासक बने। उनके कोई सन्तान नही थी। अत वे इस कारण चिंतित रहते थे कि उनका उत्तराधिकारी कौन होगा। वे देवी-देवताओ की मनोतिया करते रहते, पर उनकी महारानी ज्ञानवान तथा समतावती थी, वह कर्म सिद्धान्त में विश्वास रखती थी। महाराजा को खिन्न देखकर उसने दूसरे विवाह की अनुमति दे दी। दूसरे विवाह से भी उन्हें सतान की प्राप्ति नही हुई। इस प्रकार राजा चद्रसेन ने एक के बाद एक बारह विवाह किये। बडी रानी के स्नेह एव समतामय जीवन तथा सद्व्यवहार के कारण सभी रानियां प्रेमपूर्वक रहती थीं। राजा चद्रसेन स्वय बडी रानी के श्रेष्ठ विचारो एव आदर्श जीवन से प्रभावित थे।

श्री विद्याधर की पुत्री विश्व सुन्दरी श्री चद्रसेन की बारहवीं रानी थी जो वास्तव मे अपूव सुन्दरी थी। दैवयोग से विश्व सुन्दरी गर्भवती हो जाती है। राजा चद्रसेन विश्व सुन्दरी की देखभाल का कार्य अनुभवी नाइन सलखू को सौंपते हैं, किन्तु अन्य रानियों को विश्व सुन्दरी से ईर्षा हो जाती है और वे मलखू नाइन को स्वर्णाभूषण का प्रलोभन देकर विश्व सुन्दरी की भावी संतान

को नष्ट करने हेतु षड्यन्त्र रचती हैं । सलखू नाइन प्रलोभन मे आकर वि
सुन्दरी के जुडवा शिशुओ को एक अंधे कुए मे फक देती है और महाराजा
असत्य कह देती है कि रानी ने कुत्ते के दो बच्चो का जन्म दिया है । फक्क
बाबा ब्रह्मानद द्वारा विश्व सुन्दरी के दोनो बच्चो (आनदसेन और चम्पकमाला
की रक्षा होती है ।

अन्त मे महाराजा चम्पानगरी से आनन्दपुर जाते हैं । वहा अपने पु
आनदसेन और पुत्री चम्पकमाला से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं । शीलावत
आनन्दसेन को स्वामी स्वीकारती है । राजा चन्द्रसेन षडयन्त्रकारी ग्यारह रानिय
की मृत्यु दण्ड और सलखू नाइन को राज्य निष्कासन का आदेश देते हैं । किन्
विश्व सुन्दरी और आनन्दसेन के तथा चम्पकमाला के कहने पर मृत्यु दण्ड को
देश निष्कासन मे परिवर्तित कर देते हैं । महाराजा चन्द्रसेन, बडी रानी, आनदसेन
विश्व सुन्दरी, चम्पकमाला आदि सहित चम्पानगरी लौटते हैं । वे राज सभा मे
आनन्दसेन को अपना उत्तराधिकारी घोषित करते हैं । महाराजा चन्द्रसेन, सभी
रानिया तथा राजकुमारी चम्पकमाला भागवती प्रव्रज्या ग्रहण करते हैं । आनदसेन
अपनी रानी शीलावती सहित धर्मानुसार अपना कर्तव्य पालन करते हैं ।

उपन्यास के अन्तिम अंश मे आर्य जिनसेन से उद्बोधित होकर मुमुक्षु
आत्माओ का सयम धारण करना आदि कौतूहलवर्धक है । इस कथाकृति मे सत्य,
समता भावना तथा नवकार महामत्र की महत्ता और साधना का महत्त्व प्रति-
पादित किया गया है । साथ ही समता, आस्था, शील और विनय को अखण्ड
सौभाग्य का देने वाला दरसाया गया है । कथा मे निरन्तर रोचकता बनी रहती है ।

४ कुकुम के पगलिए

आचार्य श्री नानेश ने अपने अजमेर चातुर्मास के दौरान अपने प्रवचनो
मे इस उपन्यास की कथा का उपयोग किया था । श्री शान्ति चन्द्र मेहता ने इस
कथाकृति का सुसम्पादन किया है । इस उपन्यास का कथानक ३४ परिच्छेदो
मे विभक्त है । श्रीकान्त और मजुला इस उपन्यास के नायक और नायिका हैं ।
दोनो का आदर्श चरित्र, नैतिक सदाचार से युक्त है । लौकिक प्रेम से परिपूर्ण
मजुला द्वारा नववधू के रूप मे बनाये गये कुकुम के पगलिए अनेक घटना-चक्रो
से गुजरकर तप और त्याग की अग्नि मे दहकते हुए उसे आध्यात्मिकता की ओर
अग्रसर करते हैं । कथानक का सृजन लोकभूमि के धरातल पर हुआ है । मजुला
के पगलिए लाल कुकुम के है जो अनुराग, सुख और अखण्ड सौभाग्य के प्रतीक हैं।

श्रीपुर नगर मे श्रेष्ठ वर्ग का श्रीकान्त नामक एक सस्कारशील, स्वाभि-
मानी और पुरुषार्थी युवक अपनी माता और छोटी बहन पद्मा के साथ रहता था ।
श्रीकान्त का विवाह एक सुशील सुसस्कारी मजुला नामक कन्या से हुआ था ।
मंजुला के माता-पिता भी सम्पन्न एव सद्प्रवृत्ति वाले थे । नववधू सी मजुला

के पगतलिया मे कु कुम का लेप किया गया ताकि ससुराल की हवेली में पडने वाला उसका प्रत्येक चरण कु कुम के पगलिए माडता जाए, उसका प्रत्येक चरण इस घर को कु कुम की तरह मगलमय बनावे ।

श्रीकान्त सादगी पसद एक स्वाभिमानी युवक था । धन और वभव की उसे चाहना नही थी । अपने पिता की सम्पत्ति को वह मा के दूध की तरह पवित्र मानता था और उसका उपयोग अपने लिये नही करता है । वह अपने पुरुषार्थ से अर्जित की गई सम्पत्ति को ही निजी सम्पत्ति मानता था । अत विवाह के दूसरे दिन ही वह स्वावलम्बी जीवन व्यतीत करने की कामना से अपनी जीविका के लिये पुरुषार्थ के पथ पर चल पडता है । उसे विश्वास है कि उसकी पत्नी मजुला के कु कुम के पगलिए और उसका शील-सौभाग्य बनकर उसे सदव सुखी रखेगा ।

इधर श्रीकान्त पुरुषार्थी बनकर अनजान पथ पर अग्रसर हो जाता है । उधर श्रीकात की अनुपस्थिति मे उनकी पत्नी मजुला पर उसकी मा और वहन पद्मा द्वारा मिथ्या आरोप लगाये जाते हैं और उसे घर से निकाल दिया जाता है । मजुला दर-दर भटकती हुई अनेक कठिनाइयो का सामना करती है और एक पुत्र को जन्म देती है । वाद मे उसका पुत्र भी उससे विछुड जाता है । मजुला दुर्भाग्यवश कामुक राजा जयशेखर की वदिनी वनती है । वह अपनी विषम स्थितियो मे अपने शील और धर्म की रक्षा करती है । किसी प्रकार राजा जयशेखर से छूट कर वह एक वेश्या के चगुल मे फस जाती है । अपने प्राणो की वाजी लगा कर मजुला उस वेश्या से मुक्त होती है । अन्त में दोनो का कठिनाइयो से छुटकारा मिलता है । श्रीकान्त और मंजुला अपने पुत्र कुसुम कुमार से मिलते हैं । मां और पद्मा को भी अपनी गलती का अहसास होता है । श्रीकान्त, मजुला और उनका पुत्र कुसुम कुमार विधि-विधानपूर्वक साधु धम की दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं ।

मजुला का चरित्र एक शीलवती, सदाचारिणी आदर्श नारी के रूप मे चित्रित हुआ है । उसके द्वारा बनाये गये कु कुम के पगलिए राग के प्रतीक न होकर उसके लिये विराग का अमृत वन जाते हैं । वह तेजोमयी, कर्तव्यनिष्ठ, शक्तिवती नारी है । श्रीकात एक स्वाभिमानी, उत्साही, पुरुषार्थी और साहसी युवक है । उसमें आत्मशक्ति और परोपकारी भावनाएँ हैं । वह अपने भाग्य का निर्णय करने हेतु अनजान पथ का पथिक वन जाता है । उसे अनीति से प्राप्त धन अभीष्ट नही है । वह पुरुषार्थ, न्याय और नीति से अर्जित धन पर ही अपना अधिकार समझता है । मित्र विद्याधर के सहयोग से उसके पुरुषार्थ को वेल मिलता है । अनेक कठिनाइयो को सहन करने के पश्चात् वह अपने उद्देश्य मे सफल होता है । श्रीकान्त अपने स्नेहिल सद्व्यवहार और परोपकारी वृत्ति से दूसरो को प्रभावित करता है ।

इस उपन्यास मे लेखक ने अनेक घटनाओ का समावेश किया है। उपन्यासकार उदात्त जीवन मूल्यो की स्थापना करने मे सफल रहा है। उपन्यास मे पात्रों के अन्तद्वन्द्वो का भी चित्रण किया गया है। कथा के नायक श्रीकात और नायिका मजुला को बाह्य तथा अन्तद्वन्द्व से निकाल कर लेखक निद्वन्द्व की स्थिति में पहुँचा कर उदात्तीकरण की ओर ले जाता है। वास्तव मे मनुष्य अपने जीवन को श्रम, त्याग और परमार्थ के पथ पर लेजाकर ही अपनी सार्थकता को बनाये रख सकता है।

आज मानव भौतिक सुखो की लालसा से ग्रसित है। वह भोग विलास को ही सब कुछ मान बैठा है। यह उपन्यास आज के भौतिकवादी मानव को इस भोग लिप्सा से निकल कर परमार्थ के पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा देता है। मजुला और श्रीकात के चरित्र आज की युवा-पीढी को सही दिशा मे उन्मुख होने की प्रेरणा देते हैं। यह कृति भौतिकता मे लिप्त मानव को परमार्थ और आध्यात्मिकता का सदेश देती है।

आचार्य श्री नानेशजी की उपर्युक्त विवेचित कथा-कृतिया समता-दर्शन, सयम, सेवा, क्षमाशीलता, वीतराग, अहिसा, कर्तव्य पालन और त्याग का स्फुरण करने वाली हैं। नैतिक, सदाचार की भावना से अनुप्राणित लोक-कथाओ के द्वारा इसकी कथा का ताना-बाना बुना गया है। इनकी अनेक घटनाएँ कौतूहल वर्धक हैं तथा पारस्परिक कथा रूढियो का पोषण करती है। अत उनमे अतिरजना और कहीं कही चामत्कारिकता दृष्टिगोचर होती है। ये कथाएँ आचार्य श्री के प्रवचनो के दौरान कही गई हैं, अत ज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ उपदेशपरक भी हैं। इनमे उपन्यास के सभी साहित्यिक तत्त्वों को खोजना अनुपयुक्त होगा। इनकी भाषा-शैली रोचक, प्रभावोत्पादक है एवं बोधगम्य है।

—पूर्व प्रिंसिपल, गवर्नमेंट कॉलेज, डीग
५-ख-२०, जवाहरनगर जयपुर-३०२००४

जैन योग के लिए नवीन दृष्टि

❀ डॉ० कमलचन्द सोगानी

आचारांग सूत्र आध्यात्मिक अनुभवों का सागर है। जीवन की मूल्यात्मक गहराइयाँ इसमें वर्णित हैं। आध्यात्मिक साधना के लिए उसका मार्ग-दर्शन अनोखा है। इसमें साधना एवं जीवन-विकास के सूत्र बिखरे पड़े हैं। आध्यात्मिक महापथ के पथिक आचार्य श्री नानेश ने 'आचारांग' के जिस सूत्र की व्याख्या 'क्रोध समीक्षण' नामक पुस्तक में प्रस्तुत की है वह उनकी गहन साधना का परिचायक है। वे समीक्षण ध्यान के प्रवर्तक हैं। उनकी यह पुस्तक साधकों के लिए प्रकाश स्तम्भ का कार्य करेगी। जिस दृष्टि से क्रोध कषाय को लेकर विषय का विवेचन किया गया है वह समीक्षण ध्यान के प्रयोग का एक उदाहरण है। क्रोधादि कषायों का 'दर्शी' बनना एक महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक प्रक्रिया है। वास्तव में सम्यक् अवलोकन ही समीक्षण ध्यान है। आचार्य श्री का कहना है कि "समीक्षण के लिए साधक की अवधानता तभी बन सकती है, जब वह सतत प्रयत्नपूर्वक चरम लक्ष्य की उपलब्धि के लिए जागृत रहे।"

विषय का विवेचन करते हुए आचार्य श्री नानेश ने क्रोध की तरतमता, क्रोध का स्वरूप, क्रोधोत्पत्ति के कारण, क्रोध के दुष्परिणाम, क्रोध-शमन के तात्कालिक उपाय आदि बिन्दुओं को स्पष्टतया समझाया है। इन सभी बिन्दुओं की समझ क्रोध-समीक्षण की आधार-शिला बन जाती है। आचार्य श्री के शब्दों में, "समीक्षण-ध्यान एवं समतामय आचरण के बल पर एक साधक अपनी साधना के अनुरूप क्रोध संबंधी स्कन्धों का अवलोकन कर सकेगा।" वास्तव में क्रोध-दर्शी (कोहदंसी) बन जाने से साधक मान-दर्शी (माणदंसी) भी बन जाएगा। इस तरह से समीक्षण ध्यान के प्रयोग से साधक विभिन्न कषायों के आवरण को छेदता हुआ दुःखरहित बन सकता है। आचार्य श्री का क्रोध-समीक्षण विवेचन जैन योग के लिए नवीन दृष्टि प्रदान करता है। कषायों के समीक्षण से साधक आत्मा की शुद्धावस्था तक की यात्रा कर सकता है।

—अध्यक्ष, दर्शन शास्त्र विभाग, सुखाड़िया वि० वि० उदयपुर

सौम्य भाव की यात्रा

ॐ डॉ नरेन्द्र भानावत

धर्म अन्धविश्वास, मनगढन्त कल्पना और भावोन्माद का परिणाम न होकर यथार्थ चिन्तन, उदात्त जीवनादर्शों और वृत्तियो के परिष्करण का प्रतिफलन है। चित्तवृत्तियो की शुभाशुभ परिणति से ही मनुष्य और पशु मे भेद पैदा होता है। क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषाय अशुभ वृत्ति के सूचक हैं। इन पर नियन्त्रण और सयमन करके ही चेतना को ऊर्ध्वमुखी किया जा सकता है।

लोक और शास्त्र के गूढ चिन्तक और व्याख्याता आचार्य श्री नानेश ने क्रोध कषाय की जो व्याख्या, विवेचना और समीक्षा प्रस्तुत की है वह हिन्दी साहित्य में चिन्तन की नवीन स्फुरणा और दिशा है। क्रोध जैसे विषय पर इससे पूर्व भी लिखा गया है पर वह उसके हानि-लाभ के व्यावहारिक सदर्भों के सिलसिले में ही। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने क्रोध विषयक निबन्ध मे मनोविज्ञान का धरातल अवश्य प्रस्तुत किया है पर वे उसे आत्मिक सस्पर्श नही दे सके हैं।

आचार्य श्री नानेश की यह मौलिक विशेषता है कि उन्होंने क्रोध की उत्पत्ति, स्फीती, अभिव्यक्ति, परिणति, और उसके शमन की प्रक्रिया और सिद्धि पर सद्धान्तिक और प्रायोगिक दोनो स्तरो पर शास्त्रीय और अनुभवप्रवण प्रकाश डाला है। साहित्य शास्त्र मे क्रोध को रौद्र रस का स्थायी भाव माना गया है पर आचार्य श्री ने क्रोध-त्याग द्वारा सहिष्णुता के विविध आयामी विकास की जो चर्चा की है, वह सौम्य भाव जगाने वाली है। यह सौम्य भाव ही रस अर्थात् आनद का स्रोत है। रौद्र से सौम्य की ओर हमारी यात्रा हो, यही आचार्य श्री का सन्देश है।

—एसोशियेट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

आचार्य श्री नानेश और समता दर्शन

❀ वैराग्यवती कुमुद बसा०

युगद्रष्टा युगपुरुष चिन्तन के नवीनतम आलोक मे युगीन समस्याओ का समाधान आध्यात्मिक उच्चभूमिकापरक दृष्टि से करते हैं। अपने समय में सव्याप्त कुरीतियों का वहिष्कार कर, जैन-समुदाय को नवीन दिशा-बोध देना उनका प्रमुख ध्येय रहता है। इस कडी में आचार्य श्री नानेश ने आज चहुंओर विषधर की तरह फुफकार मारती हुई विषमता के प्रतिघात मे जनता को एक नवीन आयाम दिया—समता-दर्शन।

आज का जनजीवन आसक्ति रूपी मदिरा मे आसक्त विषमता के गहन दल-दल मे फसता जा रहा है। हिंसा का ताडव नृत्य मानव-मन को भयाक्रान्त बना रहा है। विषम विभीषिका के दावानल मे प्रज्वलित सभ्यता एव संस्कृति को सुरक्षित बनाने के लिए पयोधिवत् गम्भीर, मेदिनीवत् क्षमा-शील समता की आवश्यकता है। पतन के गत मे गमनस्थ जीवन मे शाश्वत सुख की सम्प्राप्ति समता से ही सम्भव है। कहा है—

> अज्ञान कदमे मग्न जीव ससार सागरे।
> वैषम्येण समायुक्त, प्राप्नुमुर्हति नो सुखम् ॥

अर्थात्—ससार-सागर में अज्ञानरूपी कीचड मे लीन, विषमता से युक्त जीव कभी भी सुख को प्राप्त नही कर सकता। प्रत्येक प्राणि इस वैज्ञानिक युग मे सुख की सांस ले सके, एतदर्थ आचार्य श्री नानेश ने अपनी मौलिक देन प्रस्तुत की, समता-दर्शन।

समता-दर्शन की व्याख्या—दर्शन शब्द की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए कहा है—"दर्शन वह उच्च भूमिका है, जहा पर तत्त्वों का सूक्ष्म विश्लेषण किया जाता है।" समता-दर्शन मे चेतना के समत्वमय स्वरूप को जानकर उसे क्रियान्विति देने का स्वर प्रस्फुटित होता है। इसलिए यह भी दर्शन–कोटि मे समाहित है। गीता मे 'समत्व' की मूर्धन्य प्रतिष्ठा सम्थापित करते हुए, उसे मुक्ति अवाप्ति का साधन वतलाते हुए कहा है—

> "योगस्थः कुरु कर्माणि, सङ्ग त्यक्त्वा धनञ्जय।
> सिद्ध्यसिद्ध्यो समो भूत्वा समत्व योग उच्यते ॥

अर्थात् सिद्धि और असिद्धि मे समान भाव ही समत्व योग है। अत हे धनञ्जय! तू अनासक्त भाव से योग मे स्थित होकर कर्म कर। यहां समत्व को योग बतलाया है। सुख-दुःख में समत्व की अनुभूति जीवन मे सर्वश्रेष्ठ सम्पन्ना

है। यही समत्व वीतरागत्व प्राप्ति मे परम सहायक है। 'आचाराङ्ग सूत्र' मे इसी समत्व की श्रेष्ठता द्योतित करते हुए कहा है—'समियाए धम्मे आरिएहिं पवेइए।' अर्थात्—आचार्यों ने समत्व मे धर्म कहा है। अत प्राणिमात्र के प्रति समत्व की उदार भावना से समन्वित आत्मोत्थान के लिए प्रशान्त वृत्ति ही समता है। प्रभु महावीर का 'जियो और जीने दो' सिद्धान्त इसी समत्व का परिपोषक है। वस्तुत समता मानव जीवन की महान एव अनुपम उपलब्धि है।

समता-दर्शन का उद्देश्य—अन्तर्बाह्य विषमताओ का अन्त करना ही समता दर्शन का उद्देश्य है। समता का समुज्ज्वल आदर्श चिरन्तन साधना का समुपयोगी तत्त्व है। समग्र आचार दर्शन का सार समत्व की साधना मे समाहित है। मानसिक चचलता को सयम से वशीभूत कर भौतिकता की भीषण ज्वाला को आध्यात्मिकता के शीतल पय से शमित करना समता की अपेक्षित तत्त्व दृष्टि है। सहयोग, समन्वय, सयम, सद्भाव इसके महास्तम्भ हैं।

'एगे आया' के सिद्धान्त को अपनाकर 'सव्वेसिं जीवियं पियं' की सद् शिक्षा को प्रत्येक मानव के उदात्त मस्तिष्क मे भरना ही समता-दर्शन का मूल उद्देश्य है। भौतिक, राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रो मे सव्याप्त विषमता की दुष्ट प्रवृत्तिया पर प्रतिबन्ध लगाना, भावात्मक एकता की ओर अग्रसर करना ही इसका मूल प्रयोजन है। अन्य-२ दार्शनिक प्रवरो के सिद्धान्तो को सुगमता से हृदयङ्गम करने का एक मात्र उपाय है, समता-दर्शन। यह केवल दार्शनिक पृष्ठभूमि पर ही समुपयोगी नही है, प्रत्युत आज इस वैज्ञानिक युग मे जहा तृतीय विश्व युद्ध की घनघोर घटाए मडरा रही हैं, वहाँ शातिपूर्ण एव सुगम रीति से मानव-मूल्यो की सुरक्षा समता-दर्शन से ही सम्भव है।

समता-दर्शन के सोपान—सम्पूर्ण विश्व मे सुरभिमय वातावरण उपस्थित करने के लिए, समता-दर्शन के प्रचार-प्रसार का विशिष्ट कार्य आचार्य श्री नानेश ने किया है। उन्होंने इसके प्रमुख चार सोपानो का प्रतिपादन किया है। वे इस प्रकार हैं—

१ **सिद्धान्त-दर्शन**—अपनी समस्त इन्द्रियो को सयमित कर प्रत्येक कार्य में समत्व को प्रधानता देना ही सिद्धान्त-दर्शन है। समभाव की पूर्णावस्था ही समता का सत्य तथ्य सिद्धान्त है। कहा है—

> गृह्णातिहृदि भद्रेण, त्यागवैराग्य सयमम्।
> लभते सम सिद्धान्त, जीवनोन्नति कारकम्॥

अर्थात्—त्याग, वैराग्य और संयम को सरलता से जो हृदय मे धारण करता है, वही जीवन उन्नति कारक समता सिद्धान्त को प्राप्त करता है।

२ **जीवन-दर्शन**—समभाव की साधना के लिए सप्त कुव्यसनो का त्याग

करते हुए जीवनोपयोगी आत्म-साक्षात्कार कराने वाली वस्तुओं का आचरण जीवन-दशन है । 'आत्मवत् सव भूतेषु' ही समता-दर्शन का द्वितीय सोपान है । जीवन को सादा, शीलवान्, अहिंसक बनाये रखना समता जीवन-दर्शन है ।

३ आत्म-दर्शन—अपनी आत्मा को सावद्य प्रवृत्तियो से विलग कर सत्प्रवृत्तियो की तरफ सत्पथगामी बनाना ही आत्म-दर्शन है । कहा भी है—

अहिंसासत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यमकिञ्चनम् ।
यश्चपालयते नित्य स आप्नेत्यात्मदर्शनम् ॥

अर्थात्—अहिंसा, सत्य, अचौय, ब्रह्मचय और अपरिग्रह को जो सर्व-सयमित पालन करता है, वह आत्म-दर्शन को प्राप्त करता है ।

४ परमात्म-दर्शन—आत्मा का साक्षात्कार ही परमात्म-दर्शन है । सम्पूण कममल रहित निराकार पद की अवाप्ति ही परमात्म स्वरूप है । कहा है—

कमणश्च विनाशेन, सप्राप्यायोगिजीवनम् ।
ससारे लभते प्राणी, परमात्मपद फलम ॥

अर्थात्—कम के विनाश से अयोगी अवस्था को प्राप्त आत्मा-परमात्मपद को प्राप्त करती है । इस प्रकार आचार्य श्री ने समता-दशन की सुन्दर परिव्याख्या की है ।

समता-दशन की महत्ता नवीन परिप्रेक्ष्य में—युद्ध की विभीषिका आज जहा सभ्यता एव सस्कृति को विनष्ट करने मे तत्पर है, वहा समता का मगलमय स्वर उसे सुरक्षित रख सकता है । समतामय आचरण के २१ सूत्र तथा तीन चरण भी इस हेतु दृष्टव्य हैं । आचार्य श्री ने सुदीर्घ साधना एव गहन चिन्तन की वीथिकाओ में विहरण कर समता-दर्शन का अद्भुत उपहार दिया है । समता से भावी एव वतमान का नव्य भव्य निर्माण सम्भव है । यह इस युग के लिए ही नही प्रत्युत प्रत्येक युग के लिए एक प्रकाश स्तम्भ वन कर रहेगा । यह छोटी-सी विषमता से लेकर विस्तृत विषमता का दूरीकरण करने मे समर्थ है । शाति का विमल ध्वज इसी के आधार पर फहराया जा सकता है । आचाय श्री ने अनुभूति के आलोक मे जो कुछ देखा, उसे समता-दर्शन के रूप मे जन-२ तक पहुचाया है । समता ही सारभूत है । गीता मे कहा है—

'इहैव तैर्जित सर्गो येषां साम्ये स्थित मन ।'

—समता-भवन, बीकानेर

□

आचार्य श्री नानेश और समीक्षण ध्यान*

✽ श्री शान्ति मुनि

ध्यान-साधना की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए महावीर दर्शन मे कहा गया है—

> अहो ! अनन्तवीर्योऽयमात्मा विश्व प्रकाशक
> त्रैलोक्य चालयत्येव, ध्यान शक्ति प्रभावत ॥

यह आत्मा अनन्तवीर्य-शक्ति-सम्पन्न एव विश्व के अणु-अणु का प्रकाशक है। जब इसमे ध्यान-ऊर्जा का जागरण हो जाता है तो यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को चलित कर सकता है।

वास्तव मे ध्यान की शक्ति अबूझ है। क्योकि ध्यान का सामान्य अर्थ है चित्तवृत्तियो के भटकाव को अवरुद्ध करके उन्हे किसी एक तत्त्व पर केंद्रित कर देना। यह वैज्ञानिक सिद्धात है कि बिखरी हुई सूय-किरणें, सौर-ऊर्जा अकिञ्चित कर होती हैं, किन्तु वे ही किसी आइग्लास पर केंद्रित होकर, अग्नि उत्पन्न कर देती हैं। ठीक यही स्थिति चैतन्य ऊर्जा की है। जब ध्यान के द्वारा चैतय ऊर्जा का जागरण हो जाता है तो उसके लिये इस विश्व मे कोई भी असम्भव काय नही बचता है।

ध्यान-ऊर्जा का इतना अचिन्त्य प्रभाव होने पर भी ध्यान-साधना का हो पाना सुकर नही है। जीवन इतना जटिल हो गया है कि उसे सहज बनाना कठिन हो गया है। आज अधिकाश व्यक्तियो का पूरा जीवन विपरीतियो, विसगतियो एव तनावो मे जीने का अभ्यस्त बन गया है। उस अभ्यास के कारण विपरीतिया और विसगतिया वैसी लगती ही नही है। आज का आम मानव भ्रान्तियो मे जीने का अभ्यासी, आदी बन गया है। आज उसे सत्य मे जीना बडा अटपटा लगता है। पाश्चात्य दार्शनिक नीत्से ने एक जगह लिखा है—'आदमी सत्य को साथ लिये नही जी सकता है। उसे चाहिये सपने, भ्रान्तिया, उसे कई तरह के झूठ चाहिये जीने के लिये।' और नीत्से ने जो कुछ कहा वह आम मानव की दृष्टि से सत्य ही लगता है। आज इन्सान ने जीने के लिये असत्य को बहुत गहराई मे पकड़ा है। अपने इर्द-गिर्द भ्रान्तियो की वाड लगा दी है और अपनी ही लगाई उस वाड से उसका निकलना कठिन हो गया है।

● मुनि श्री की समीक्षण-ध्यान सम्बन्धी कृतियो से सकलित।

इस बात को समझना बहुत आवश्यक हो गया है क्योकि इसे समझ बिना हम आनन्द या शक्ति के द्वार तक नही पहुच सकते हैं और वहा पहुंचे बिना हमारी चेतना को कही विश्रान्ति नही मिल सकती है । किन्तु भ्रान्तियो की बाड़ या असत्य के चौखटो को समझने के लिये मन को, उसकी वृत्तियो को और उसके सूक्ष्म स्पन्दनो को समझना आवश्यक है । उसे समझने की प्रक्रिया का नाम है—'समीक्षण ध्यान-साधना ।' समीक्षण ध्यान-साधना उस जडाभिमुख तन्द्रा को तोड़ती है जिसके कारण व्यक्ति असत्य और भ्रान्तियो मे जीने का अभ्यासी हो गया है । जैसे चमारो को चमडे की गन्ध नही आती, करीब-करीब वही दशा आम व्यक्ति की बनी हुई है ।

आज का विज्ञान भी कहने लगा है—कि मनुष्य नीद के बिना तो फिर भी जी सकता है, सपनो के बिना इसका जीना मुश्किल है । पुराने युग मे समझा जाता था कि नींद एक आवश्यक प्रक्रिया है, किन्तु आज वह मान्यता बदल गई है । आज का विज्ञान मानता है कि नींद इसलिये आवश्यक है कि आदमी सपने ले सके ।

चू कि आदमी स्वप्नलोकी तन्द्रा मे जीने का अभ्यासी बन गया है और उसे वे अभ्यास आनुवशिक परम्परा के रूप मे मिलते जाते हैं । अत उसके जीने के लिये वे आवश्यक हो जात हैं, किन्तु यथाथ सत्य यह है कि इन्सान का यह विपरीतियो से भरा अभ्यास ही उसे अशान्त बनाये हुए है । आज मानव मन की अशान्ति, उसके तनाव, चरम सीमा का स्पर्श करते दिखाई देते हैं और इसी दृष्टि से समस्त बुद्धिजीवियो मे एक व्यग्रतापूण भाव भी निर्मित होता जा रहा है कि आखिर विसगतियो से भरी यह जीवन-प्रणाली हमे कहा ले जाकर डालेगी? हमारे ऐहिक और पारलौकिक दोनो जीवन कब तक असन्तुलित एव तनावपूर्ण बने रहेगे ? और इसी व्यग्रता ने अनेक साधना-पद्धतियो का आविष्कार किया है । तनाव-मुक्ति एव आत्म-शान्ति की शोध मे हजारो-हजार मानव मन विभिन्न साधना-सरिताओ मे प्रवाहित होने लगे । उन्ही साधना-सरिताओ मे से एक परम पावनी, मन-मलीन-हारिणी, जन-जन तारिणी सुपरिष्कृत साधना पद्धति है—समीक्षण-ध्यान । इस साधना पद्धति के द्वारा हम न केवल बाह्य तनावो से ही मुक्त होते हैं, अपितु कषाय-मुक्ति एव वासना-विवेचन के द्वारा आत्म साक्षात्कार एव परमात्म साक्षात्कार का चरम आनन्द भी प्राप्त करते हैं।

इस साधना पद्धति के आविष्कर्ता समतायोगी आचार्य श्री नानालालजी म सा स्वय मे एक उच्चकोटि के महान् ध्यान-साधक हैं । साधना ही उनके जीवन का सवस्व है । उनका प्रतिपल आत्म-समीक्षण को ही समर्पित है । एक बहुत विराट सघ के नायक-सचालक होते हुए वे भी उससे जल कमलवत् अलिप्त रहने के अभ्यासी हैं । अत उनकी यह आविष्कृति पूणतया अनुभूतियो से सम्पृक्त

अन्तरग चेतना की भावभूमि से नि सृत है । अनेक वर्षों की गुरु–चरण सेवा एव साधना अनुभवो का निष्कर्ष है—यह साधना पद्धति । अस्तु इसका सर्वजनोपयोगी होना स्वत' निर्विवाद हो जाता है ।

साधना के सन्दभ में एक विचारणीय विन्दु यह है कि यह केवल चर्चा, तर्क-वितर्क अथवा अध्ययन का विषय नही है । मह स्वय मे साधन कर चलने एव अनुभूतियो से गुजरने का विषय है, हम आचाय प्रवर द्वारा प्रदत्त इस साधना-पद्धति का अनुशीलन कर स्वय अनुभव करें कि यह साधना–पद्धति हमारे लिये कितनी उपयोगी एव आवश्यक सिद्ध होती है ।

समीक्षण–ध्यान आगम वर्णित ध्यान विधियो का निचोड़-निष्कष है और आचार्य प्रवर श्री नानेश की दीर्घकालीन साधनात्मक अनुभूतियो का सन्दोह है। यद्यपि अभी यह साधना विधि प्रयोगात्मक प्रणाली के आधार पर अधिक जन-प्रचारित नहीं हुई ह, किन्तु जिन आत्म–साधको ने इसकी प्रयोगात्मकता को आत्मसात किया है, उन्होने आत्मानन्द के साथ मन सन्तुलन एव मानसिक एकाग्रता के क्षेत्र मे आशातीत सफलता प्राप्त की है ।

आचाय प्रवर श्री नानेश ने अनेक वार समीक्षण ध्यान के विविध आयामी प्रयोगो को आत्मसात् ही नही किया, अपितु अपने शिष्य-परिकर को भी उन अनु-भूतिया का आस्वादन करवाया है । उनकी स्वय की जीवन-प्रणाली तो प्रतिपल ध्यान योग मे लीन एक ध्यान-योगी की प्रणाली है । उनकी चेतना के प्रत्येक प्रदश में, उनके जीवन के प्रत्येक व्यवहार मे ध्यान योग प्रतिबिम्बित ही दिखाई देता है । उनकी इस योग–मुद्रा का प्रभाव अपने परिपाश्व को भी प्रभावित करता है । इसीलिये उनके निकट का समस्त वायु मण्डल ध्यान–साधना से अनुप्राणित बना रहता है ।

आचार्य प्रवर ने अपनी सुदीघ ध्यान-साधना की अनुभूतियो के आधार पर ध्यान की इस नूतन विद्या को अभिव्यक्ति प्रदान की है। यद्यपि यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि यह समीक्षण-ध्यान विधा आगम प्रतिपादित ध्यान-विधा से भिन्न नही है, फिर भी इसकी अन्य अनेक प्रचलित ध्यान विधाओ से अलग ही विशेषता है, इसके द्वारा हम जीवन की सामान्य से सामान्यवृत्ति का समीक्षण करते हुए आत्म-समीक्षण और परमात्म-समीक्षण की स्थिति तक पहुच सकते हैं ।

ध्यान की यह अप्रतिम विधा अपने आप मे एक नूतन विधा है । यह केवल मानसिक तनाव-मुक्ति तक ही सीमित नही है । इसका प्रभाव आत्म-दशन की उस भूमिका तक जाता है जो परमात्म-दर्शन के द्वार उद्घाटित कर देती है ।

समीक्षण ध्यान-साधना मे किसी भी प्रकार की हठयोग जैसी प्रक्रियाओ

को स्थान नहीं दिया गया है । यह साधना सहज योग की साधना है। समीक्षण द्रष्टाभाव की साधना है । इस प्रक्रिया मे हम दुवृ त्तियो के निष्कासन के प्रति किसी प्रकार की जबदस्ती नही करते हैं और न शक्ति जागरण अथवा आत्मोन्नयन के प्रति भी किसी प्रकार की हठवादिता अपनाई जाती है । यहा केवल द्रष्टाभाव आत्म-समीक्षण की सूक्ष्म प्रक्रिया के द्वारा ही सहज, सरलता से अशुभत्व का बहिष्कार एव शुभत्व का सस्कार होता चला जाता है ।

समीक्षण ध्यान हस चोचवत्—वस्तु के स्वरूप का यथार्थ बोध कराता हुआ व्रतपथ के राही को ऊर्ध्वारोहण मे गति प्रदान करता है ।

'ज्ञानार्णव', 'योग दृष्टि समुच्चय' आदि ग्रन्थो मे जिन पदस्थ आदि ध्यान विधियो का उल्लेख मिलता है, वे ही आत्म-समीक्षण की भी विधिया हैं। आगमो मे आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल ध्यान का जो गहनतम विवेचन उपलब्ध होता है, वह सब समीक्षण का ही विविध रूपी विश्लेषण है। धर्म-ध्यान और शुक्ल-ध्यान की जो भावनाएँ-अनुप्रेक्षाएँ बताई गई हैं, वे समीक्षण की विविध-आयामी पद्धतिया ही हैं।

इस प्रकार मन को किंवा मनोयोग को स्वस्थ दिशा प्रदान करने वाली जितनी भी विधिया/प्रणालिया अथवा पद्धतिया हैं, वे समीक्षण-ध्यान की विधिया मानी जा सकती हैं ।

आगमिक परिप्रेक्ष्य मे चिंतन किया जाय तो ध्यान का सम्बन्ध प्रारम्भ मे मानसिक अशुभ वृत्तियो का परिमार्जन एव शुभ वृत्तियो को आत्म-स्वरूप की ओर दिशा देने मे ही अधिक है । इस प्रकार की प्रक्रिया से चलता हुआ साधक जब तेरहवें व चौदहवें गुणस्थान मे पहुचता है तो उन वीतरागी आत्माओ को ध्यान-साधना की विशेष अपेक्षा नही रहती है, क्योकि उन स्थानवर्ती आत्माओ के मन की अशुभ वृत्तिया परिमार्जित हो जाती हैं जिससे मन सम्बन्धी चचलता का आत्यन्तिक अभाव हो जाता है एव शुभ वृत्तियां आत्म-स्वरूप की ओर मोड खाती हुई अप्रमत्त भाव मे समाविष्ट हो जाती है । अत प्रारम्भिकता से लेकर कुछ ऊर्ध्वगमन तक स्थिर रखने के प्रयास की आवश्यकता नही रह जाती है । इन दोनो गुण स्थानो मे सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती एव सम्भुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति रूप दो ध्यान पाते हैं, वे भी मन, वचन, काय के योगो का व्यवस्थितिकरण एवं चरम-परिणति की अवस्था मे आत्म-प्रदेशो का स्थिरीकरण होने मे सम्बन्धित है, क्योंकि वहा ध्यान-साधना की अन्तिम मजिल प्राप्त हो जाती है ।

निष्कर्ष मे हम यह कह सकते हैं कि समीक्षण ध्यान आचार्य श्री नानेश के द्वारा उद्घाटित वह द्वार है, जिससे हम सर्व-समाधानो की मजिल प्राप्त कर सकते हैं एव आत्म-कल्याण के चरम लक्ष्य तक पहुच सकते है । ▽

समता-साधना : सामाजिक एवं नैतिक पक्ष

❀ श्री सुरेशकुमार सिसोदिया

सामाजिक शब्द ही यह स्पष्ट करता है कि जहा समाज है वहा समता .. नितान्त आवश्यकता है। वस्तुत देखा जाय तो ज्ञात होता है कि समाज के टिके रहने का आधार ही समता है क्योकि समता का अभिप्राय ही सबके प्रति समभाव रखना और मिलजुल कर भाई-चारे से रहना है। जहा यह भाव नही, वहा सामाजिकता टिक ही नही सकती।

अब यह प्रश्न उठता है कि व्यक्ति के जीवन मे समता कैसे आये ? जब हम प्राणिमात्र के जीवन को देखते हैं और उस पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि यह सब नैतिकता से आवद्ध है। नैतिकता ही जीवन की वह अमूल्य धरोहर है जो व्यक्ति को सफलता के सर्वोच्च सोपान तक पहुचाने मे समर्थ है। यदि व्यक्ति के जीवन से नैतिकता हट जाती है तो फिर उच्छृखलता और स्वच्छन्दता दोनों ही साथ-साथ आती है जो न केवल सघर्ष का कारण बनती है वरन् उसके पतन का कारण भी बनती है।

नैतिकता तो सामाजिक धरातल का आधार स्तम्भ है। इस कथन की सत्यता को प्रबुद्ध व्यक्ति किस सीमा तक स्वीकारते हैं, यह अलग बात है। किन्तु समाज का वह वग जिसे हम अनपढ, असभ्य, डाकू, चोर, लुटेरे कुछ भी कह लें, नतिकता तो उनमे भी विद्यमान है। उनमे भी पूण नैतिकता का पालन होता है। चोर और लुटेरे भी चोरी के माल को आपस मे वाटते समय ईमानदार बने रहते हैं। वे भी अपने समाज और अपने गिरोह के लिए ईमानदार हैं, विश्वसनीय हैं और एक दूसरे का विश्वासपात्र बने रहने मे अपना हित मानते हैं। नतिकता का इससे अधिक स्पष्ट प्रमाण और क्या हो सकता है ? यहा मेरे इस कथन का यह अर्थ नही लिया जाय कि मैं उनकी तथाकथित नैतिकता को आदश मान रहा हू। मेरे यह कहने का अर्थ समाज को इस ओर इंगित करना मात्र हैं कि जब समाज का निम्न स्तरीय वर्ग भी इस सीमा तक नैतिकता का पालन कर रहा है तो समाज का वह बुद्धिजीवी वर्ग जिसे हजारो वर्षों से उन सन्त महात्माओ, युग पुरुषो और ज्ञानिया के प्रवचन पढ़ने, सुनने को मिलते रहे हैं जिन्होंने जीवन पयन्त स्वय समतावान बनकर मानव समाज को नैतिकता का पाठ पढाया हो, समता का उपदेश दिया हो, लेकिन वह वर्ग उन सत महात्माओ एवं विचारको के उपदेशो को सुनने और समझने के बाद भी समाज में अमीर-गरीब, शोषक-शोषित, मालिक-मजदूर और ऊंच-नीच का भेद-भाव कम नही कर सका।

आज भौतिकता की चकाचौंध ने व्यक्ति को इस सीमा तक अपनी ओर आकर्षित कर लिया है कि उसके पडौस मे क्या कुछ हो रहा है यह सब देखने, सुनने और समझने का वह प्रयत्न ही नही करता।

प्राय सभी धर्मों ने किसी न किसी रूप मे मानव समाज को समता का उपदेश दिया है । समता का अर्थ एव उसकी सार्थकता मात्र धार्मिक क्षेत्र तक ही सीमित है, यह कहना न्यायोचित नही होगा वरन् समता तो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का अभिन्न अग है । चाहे वह सामाजिक क्षेत्र हो, राजनैतिक क्षेत्र हो या आर्थिक क्षेत्र ही क्यो न हो । समता की उपयोगिता से यो तो सभी परिचित से लगते हैं लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से देखें तो ज्ञात होता है कि हमारा सम्पूर्ण जीवन विषमता से भरा है ।

समभाव, समन्वय, साम्यदृष्टि, साम्य–विचार आदि समता में विद्यमान हैं । सामाजिक एव नैतिक मूल्य समता के अभिन्न अंग हैं । समता की विभूति आदर्श है इतना सब होते हुए भी समता का सिद्धान्त साधना के चरम शिखर को छू सके या न छू सके यह बात अलग है किन्तु यह दायित्व तो उदात्त भी बनता है कि हमारे द्वारा जन-जन में यह धारणा व्याप्त कर दी जानी चाहिए कि समता हमारी सस्कृति का जीवनप्राण है जिसमे न केवल सभ्यता के बीज निहित हैं वरन् उसमे तो सम्पूर्ण जीवन का अस्तित्व समाविष्ट है । समता वह अमोघ शस्त्र है जिसका प्रयोग करने से आक्रमणकारियो के जीवन पक्ष भी सभ्य बनकर त्याग, बलिदान एव साहस की वास्तविकता को स्वीकारेंगे ।

सादगी, सरलता एव नैतिकता आदि समता के सूत्र हैं परन्तु इस सूत्र का व्यापक स्तर पर सवर्द्धन नही हो सका है अत साधुवर्ग, श्रावकवर्ग, लेखक, समाज के प्रतिष्ठित लोग एव समाज के प्रत्येक नागरिक का यह दायित्व बनता है कि वह अब भी इस पक्ष की उपादेयता को अगीकार करे एव समाज के उत्थान एव नैतिक मूल्यो की स्थापना मे लगे । यदि हमारा लक्ष्य सर्वोपरि होगा तो भ्रान्तिया निसन्देह मिटेंगी तथा हमम एकता की शक्ति और सुरक्षा की भावना स्वत ही उत्पन्न होगी और तब एक ऐसे बीज का पुन प्रयोग होगा जो हजारो वर्षो से लुप्त मानवीयता का सम्मुख लाकर एक विशाल वृक्ष की सज्ञा का प्राप्त हो सकेगा । प्राकृत के साथ साथ दर्शन का विद्यार्थी होने के नाते विभिन्न दर्शनो का अध्ययन करने के उपरान्त मुझे तो यही लगा कि समभाव, समन्वय, साम्य–दृष्टि और साम्यविचारा के आधार स्तम्भ पर टिका आचार्य श्री नानेश का यह समता दर्शन विश्व मे अग्रणी स्थान रखता है ।

आज जब हम आचार्य श्री के ५० वें दीक्षा महोत्सव का व्यापक रूप से मनाने की ओर अग्रसर हो रहे हैं तो सर्वाधिक आवश्यकता इस बात की है कि हम और सभी बाह्य आडम्बरो को छोड कर आचार्य श्री के २६ वर्षो की तपस्या के नवनीत समता दर्शन को जैन और जनेतर लोगो में अधिकाधिक प्रचारित–प्रसारित करें ।

—आगम, अहिंसा–समता एव प्राकृत
सस्थान पद्मिनी, मार्ग, उदयपुर (राज)

समता दर्शन : उत्पत्ति से निष्पत्ति तक*

मुनि श्री ज्ञान

आज से करीब २७ वर्ष पूर्व साधुमार्गी संघ का दीप, इतर लोगो का ही नही अपितु उसके अनुयायियो को भी धुमिल होता नजर आ रहा था। स्वर्गीय गणेशाचार्य के बुझ रहे देह-दीप के साथ ही साधुमार्गी सघ का शुभ प्रकाश भी अधकार के रूप मे परिणित होने की सभावनाए करीब-करीब सबको नजर आने लगी थी, इस बुझ रहे दीप को सदव प्रज्वलित बनाये रखने के लिए सघ का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व स्वर्गीय गणेशाचार्य ने सवत् २०१६ आश्विन शुक्ला द्वितीया को अपने सुयोग्य शिष्य श्री नानालालजी म सा के सशक्त कधो पर डाल दिया। करीब साढे तीन मास के अनन्तर ही गणेशाचार्य के स्वर्गवास हो जाने से आपश्री आचार्य पद पर आसीन हुए। जैन धर्म सघ मे आचार्य पद अत्यधिक गरिमामय पद रहा है, इस पद पर आसीन साधक स्वय के उत्थान के साथ ही चतुर्विध सघ, साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका एव मानव ही नही अपितु प्राणीमात्र के कल्याण के लिए सदव तत्पर रहते हैं। आचार्य पद पर आसीन व्यक्ति पर द्वितरफा उत्तर-दायित्व होता है। क्योकि आचार्य, नवकार मत्र के तृतीय पद पर प्रतिष्ठित है, आयरियाण पद के पूर्व अरिहताण और सिद्धाण है और पश्चात उवज्झायाण और साहूण है। आचार्य पदासीन महापुरुष अरिहत सर्वज्ञ तीर्थंकरो द्वारा प्रतिपादित सिद्धातो का अक्षुण्ण रूप से प्रतिपादित करते हैं, साथ ही सिद्ध भगवतो के वास्त-विक स्वरूप को भी जनता के सामने प्रस्तुत करते हैं, इधर चतुर्विध सघ के पचम पद पर आसीन भव्यात्माओ को भी सतत निर्देशन देकर प्रगति की दिशा मे नियोजित करते हैं। इस प्रकार उन्हे द्वितरफा उत्तरदायित्व का सम्पूर्ण रूप से निवहन करना होता है। आचार्य प्रवर ने यह निवहन बहुत ही बखूबी किया है, यह वतमान के परिपेक्ष्य से एव भूत-भावी अवस्थाओ के अनुचिंतन पर स्पष्ट परिभाषित होता है।

जब आचार्य प्रवर श्रद्धेय गुरुदेव श्री नानेश अपना प्रथम चातुर्मास रत-लाम म कर रहे थे, उस समय आप श्री की सब जीव कल्याणी चेतना ने जब शैतान के आतक की भाति फैल रहे विषमता, वैमनस्य, विभेद, विघटन एव मानवता के विनाश का नग्न ताडव देखा तो वह कराह उठी और विषमता की उपशाति के लिए जिज्ञासाओ द्वारा समावित जिज्ञासुओ को समाधिवत करने के लिए चिंतन

---

* मुनि श्री का डॉ भानावत द्वारा पूछे गये प्रश्न के उत्तर के आधार पर सकलित।

की गहराइयो मे पैठ करती चली गई, जिसमे पैठ करते वक्त प्रभु महावीर का अमृतवाणी तो जीवन वेल्ट के रूप मे साथ थी ही गहराई के इन क्षणो म चेतन से चेतना का सस्पश, सवल, साहस, सहग्रस्तित्व भाव देने वाला एक शब्द प्रादुभूत हुआ और वह शब्द था 'समता ।'

यह उच्च शब्द जाति, पथ, सप्रदाय, पार्टी से अलग रहकर सम्पूण प्राणि वग से जुडा हुआ है । यद्यपि शालि (गेहू) व्यक्ति की क्षुधा तृप्त कर सकता है लेकिन जव तक वह सुसस्कृत न हो जाए तव तक यह अपनी क्षुधा उस गेहू से तृप्त नही कर सकता है (क्षुधा मिटाने की वास्तविक विधि की अनभिज्ञता के कारण स्वस्थता के साथ क्षुधा की तृप्ति कर पाना प्राय असम्भव ही है) । वह स्थिति समता के साथ रही हुई है । इसलिए यह तो निर्विवाद है कि समता शब्द किसी जाति या व्यक्ति विशेप से नही जुडा हुआ है, पर जव तक इसका यथायोग्य प्रस्तुतीकरण न हो जाए तव तक वह जनता के लिए उपयोगी कैसे वन सकता है

श्रद्धेय गुरुदेव ने समता को अपनी विशिष्ट प्रज्ञालोक मे आलोकित कर इस प्रकार से सुसस्कृत किया कि वह प्राणीमात्र की विषमता को समझ कर उन्हें शाति की अनुभूति देने मे समथ हो गया । रतलाम मे इसकी प्रादुभू ति एक वीज के रूप मे हुई थी जिसका विस्तारीकरण करीव दस वर्ष वाद जयपुर के चातुर्मास मे हुआ था, क्योकि गुरुदेव का यह स्वभाव रहा है कि वे अपने वत्तव्य पालन की दृष्टि से जनकल्याण की भावनाओ से अनुप्रेरित होकर अपने विचार जनता के समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं । ग्रहण करना या नही करना, यह जिज्ञासुओ पर निभर करता है । दस वर्ष तक तो किसी का ध्यान इस ओर नही गया पर जयपुर चातुर्मास मे एक जिज्ञासु भाई ने आचार्य देव के समक्ष अपनी एक जिज्ञासा प्रस्तुत की कि गुरुदेव यह जीवन क्या है ।

वडा मौलिक प्रश्न रहा है । यहा यह, आज से ही नही अपितु चिन्तन समय से उभरता हुआ चला आ रहा है और इसका समाधान भी विविध रूपो म दिया जाता रहा है । यही प्रश्न जव आचाय प्रवर के समक्ष आया तो आप श्री ने उस प्रश्न का प्राजल भाषा सस्कृत मे रूपातरित करते हुए उसका समाधान भी संस्कृत मे ही सूत्र शैली मे प्रस्तुत किया । वह निम्न है—

कि जीवनम् ? सम्यक् निर्णायक समतामयच्च यत् तज्जीवनम् ।

जीवन क्या है ? जो चेतना सम्यक् निर्णायक एव समता से सवधित हो, वही यथाथ मे जीवन है ।

उस इसी जिज्ञासा का समाधान आप श्री ने अपने चातुर्मास के दौरान प्रवचनो के माध्यम से जनता के सामने रखा जिसे राजस्थान की राजधानी गुलावी नगरी जयपुर की प्रवुद्ध जनता ने वहुत सराहा अत्यत उपयोगी समझकर जन-जन

तक पहुचाने के लिए तत्काल ही **'पावस-प्रवचन'** के नाम से करीब पाच भागो मे पुस्तको के माध्यम से जनता के सामने प्रस्तुत किया ।

समीक्षा का विषय यह है कि अच्छे से अच्छे विचार किसी भी विद्वान् व्यक्ति के द्वारा दिये जा सकते हैं, पर वे जनता मे तभी प्रभावी होते हैं जब स्वय प्रवचनकार, चितक उन सिद्धातो को अपने जीवन मे साकार करे, क्योंकि बिना ऊर्जा के बल्ब प्रकाशित नही हो सकता ।

आचाय देव ने समता को पहले अपने जीवन मे रमाया है। अपने जीवन की प्रयोगशाला मे उन्होने एक-दो वर्ष ही नही करीब २३ वष तक निरन्तर प्रयुक्त करने के बाद ही जनता के सामने प्रस्तुत किया है । आचाय प्रवर का जीवन समता की जलधि मे निमज्जित होकर उस पावनता को प्राप्त हो चुका है जिससे उनके सपक में आने वाला अपावन व्यक्ति भी पावन बन जाता है ।

समता का सीधा अथ यदि लिया जाए तो स्पष्ट होगा कि अपने समान ही ससार की समस्त आत्माओ के साथ एकरूप व्यवहार है । जिसकी चरम परिणति पर ही आत्मा मे परम रूप की अभिव्यक्ति होती है एव जिसे परमात्मा के नाम से अभिसज्ञित किया जा सकता है । आत्मा से परमात्मा तक पहुचने के लिए उस आत्मा को ससार की समग्र आत्माओ के साथ आत्मीय सबध कायम करना होता है, उसी सबध के विकास की क्रमिक प्रक्रिया का वणन समता दशन के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है ।

...त मे वर्तमान मे जहा कही भी दृष्टिपात किया जाता है तो यह ...है कि आज व्यक्ति मे लेकर विश्व तक अशाति या द्वन्द्व की ... और इसके मूल मे विषमता ही एक मात्र कारण है, चाहे ...चाहे राष्ट्र । लगभग सभी के मन मे यह स्वाथ ...कि दुनियां मे मैं ही रहू, मेरा ही अस्तित्व रहे, ...रता है । आज मानव अपने इस छोटे से जीवन ...हनन करने मे जरा भी नही हिचकिचाता है, ...य अशाति का साम्राज्य फैला दिया है । भाई- ...ननद-भोजाई मे, एक परिवार का दूसरे परि- ...मे, एक धर्म का दूसरे धम से, और एक ...गडा होता है तो वह सिफ इस तुच्छ भावना ..., तुम मेरे अधीनस्थ रहो, या फिर तुम्हारा ...नया में तुम्हारा कोई अस्तित्व ही नही है, ...तुच्छ भावना मे रमकर मानव न स्वय ...तया है ।

...न लगाये बैठा है, जिससे परिणाम

स्वरूप दो बार विश्वयुद्ध की भयकर बौछार हो चुकी है। फिर भी तृप्ति नहीं हुई है। आज मानव ने ऐसे परमाणु बमो का आविष्कार कर लिया है, जिनके विस्फोट से लाखो-करोडो व्यक्तियो की जिन्दगी कुछ ही क्षणो मे समाप्त हो सकती है। वैज्ञानिको द्वारा बताए गये, इस विश्व जैसे अन्य अनेक विश्व का भी यदि निर्वाण किया जाए तो भी उन सारे विश्वो के विनाश की क्षमता के अणुबम आज मानव के पास मौजूद हैं।

हिरोशिमा मे डाले गये बम से करीब ६५१५० मानव मारे गये थे। द्वितीय विश्व युद्ध मे करीब ढाई करोड आदमी मारे गये थे और बाद मे छूटकर युद्धो मे भी करीब ढाई करोड लोग मारे गये। इस प्रकार पाच करोड व्यक्ति मार गए। वैज्ञानिकी खोज ने बतलाया है कि बोट्टुलिज्म जहर का एक ग्राम ७० लाख आदमियो को मार सकता है और अशुद्ध सिटाकोसिस जहर का चौथा ग्राम ७ अरब व्यक्तियो को मार सकता है। ऐसे मारक विष के द्वारा निर्मित अणु-बमो का खजाना बड-बडे शक्तिशाली राष्ट्रो के पास विद्यमान है। ऐसी स्थिति मे यह विश्व कब किस समय प्रलयकारी रूप ले ले, यह कहा नही जा सकता। न्यूट्रॉन बम के आविष्कारक अमेरिकी वैज्ञानिक सेम्युअल कोहन ने तो तीसरे विश्व युद्ध की भी घोषणा कर दी थी। उनके अनुसार १९८५ से १९९९ के बीच कभी भी विश्व युद्ध छिड सकता है। जिसमें अरब-इजराइल, भारत-पाकिस्तान, चीन दक्षिण अफ्रीका विशेष रूप से लडेंगे। रूस और अमेरिका परोक्ष रूप मे रहेंगे। बमो का भी व्यापक स्तर पर प्रयोग होगा। यह घोषणा मानवीय चेतना को भयाक्रात बनाने वाली है।

इस स्वार्थपरता ने समुचित मानव जाति को विनाश के ऐसे कगार पर ला खडा किया है कि यदि इनमे वापस रिवस (पीछे) नही हुए तो विनाश अवश्यभावी है। ऐसी स्थिति मे यदि मानव चेतना ने नवीन अगडाई नही ली तो यह विनाश का रूप कितना उग्र रूप धारण कर लेगा, कुछ कहा नही जा सकता।

आज भारत देश की स्वय की दशा भी बडी दयनीय बनी हुई है। वोट की राजनीति मे चद व्यक्तियो के स्वार्थ के कारण हजारो हजार निर्दोष व्यक्ति पिसते चले जा रहे हैं। इस परिपेक्ष्य मे आचार्य देव द्वारा प्रतिपादित विश्व शांति का अमोघ उपाय समता दर्शन की नितात आवश्यकता है। समता दर्शन डूबते हुए जनजीवन की एक मात्र पतवार बन सकती है। यद्यपि समता का महत्व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी समझा गया है, तभी सन् १९८७ का वर्ष समता वर्ष के नाम से घोषित किया गया था यथापि उस घोषणा के साथ समता का सकारात्मक रूप न आने के कारण विषमता का उन्मूलन नही हो पा रहा है। यह सत्य है कि भोजन के उद्घोष से भूख शांत नही होगी, परन्तु उस उद्घोष के साथ ही

भोजन ग्रहण किया जाएगा और वह भोजन आतरिक रासायनिक परिवर्तन के साथ परिवर्तित होता हुआ खल भाग, रस भाग आदि मे विभाजित होकर यथा-योग्य रूप से सभी इन्द्रियो के पास पहुचेगा, तभी शरीर मे तेजस्विता आ सकती है, वसे ही समता दशन के सिद्धातो को स्वीकार करने मात्र से ही विषमताओ का उन्मूलन नही हो सकता है, उस समता को जीवन मे सकारात्मक रूप से यथा-शक्ति उतारना होगा, तभी शाति का सही स्वरूप आ सकेगा ।

समता दशन को व्यक्ति से लेकर विश्व तक सकारात्मक रूप देने के लिए आचाय देव ने चार सिद्धात प्रतिपादित किये है । १ समता सिद्धात दशन, २ समता जीवन दशन, ३ समता आत्म-दशन, ४ समता परमात्म दशन । जिनका विस्तृत वणन तो 'समता दशन एव व्यवहार' नामक ग्रथ मे किया गया है तथापि यहा आपकी जिज्ञासा का समाधान देने के लिए सक्षिप्त वणन प्रस्तुत कर देता हू ।

समता सिद्धात-दर्शन—किसी भी वस्तु को अपनाने से पहले उसकी उप-योगिता और अनुपयोगिता के बारे में चिंतन-मनन कर तदनन्तर अवधारणा आव-श्यक होता है । किसी अनुपयोगी वस्तु का ग्रहण कर भी लिया जाता है तो उसे समय के प्रवाह के साथ छोड भी दिया जाता है । अत जिस किसी वस्तु को अपनाना है तो उसकी पूर्ण समीक्षा करने के पश्चात ही अपनाना उपयुक्त रहेगा समता को जीवन मे अपनाने के पूव उसके सिद्धातो को उपयोगी माना जाए । इस बात को दृढसकल्प के साथ स्वीकार किया जाए कि समता दर्शन हमारे लिए पूण रूप से उपयोगी है एव इसे अपनाने पर ही आत्म-शाति प्राप्त हो सकती है ।

यह सत्य है कि जिसे हम अन्तर चेतना से स्वीकार कर लेते हैं, तदनुसार की गई गति, सही प्रगति मे रूपातरित होती है ।

वर्तमान मे आधुनिक युवा और युवतिया जो सिनेमा आदि देखते हैं, उनके मन मे या मस्तिष्क में वहा का गीत अच्छी प्रकार से जम जाता है और वे जहा तहा भी जाते हैं, उसे गुनगुनाते रहते हैं, जिसका भान कभी-कभी उन्ह भी नही रहता है । ठीक इसी प्रकार समता से व्यक्ति से लेकर विश्व तक की शाति तभी सम्भव है । जब समता को हम उसी रुचि के साथ माने । तभी वह व्यावहारिक स्तर पर सकारात्मक रूप से उभरेगी । समता का व्यावहारिक रूप है-सम सोचें, सम मानें, सम देखें, सम जानें और सम ही करने का प्रयास करें । जीवन के प्रत्येक कार्य मे समता का होना परम आवश्यक है दूसरो के अस्तित्व को भी हमें हमारे अस्तित्व के समान स्वीकार करना होगा ।

समता-सिद्धात दर्शन के कुछ प्रावधान—१ समग्र आत्मीय शक्तियो के सम्यक् सर्वांगीण के विकास को सवत्र सम्मुख रखना । २ समस्त दुष्ट वृत्तियो के त्यागपूवक सत्साधना मे पूण विश्वास रखना । ३ समस्त प्राणीवग का स्वतत्र अस्तित्व स्वीकार करना । ४ समस्त जीवनोपयोगी वस्तुओं के यथायोग्य सम-

वितरण पर विश्वास रखना । ५ गुण एव कर्म के आधार पर प्राणियों के श्रेणी विभाग मे विश्वास रखना । ६ द्रव्य सपत्ति व सत्ता प्रधान व्यवस्था के स्थान पर चेतना एव कर्तव्यनिष्ठा को प्रमुखता प्रदान करना ।

२ **समता जीवन दर्शन** – सिद्धात रूप से समता को ग्रहण अथवा स्वीकार कर लेने पर व्यावहारिक जीवन मे भी समता सहज ही आ लगती है, जिस प्रकार यदि मिट्टी के घट मे पानी है तो उसकी शीतलता, तरलता स्वयमेव बाहर आ जाती है । समता जीवन दर्शन व्यक्ति के व्यावहारिक जीवन को विषमता से हटाकर समता मे परिवर्तित करता है । सबके लिए एक और एक के लिए सब, जीओ और जीने दो के सिद्धान्त को जीवन मे उतारना समता जीवन दर्शन है । इसके लिए निम्न प्रावधान हैं—

१ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और सापेक्षतावाद को जीवन मे उतारना । २ जिस पद पर जीवन रहे उसी पद की मर्यादा का प्रामाणिकता के साथ जीवन में उतारना ।

समता जीवन दर्शन मे प्रवेश पाने वाला व्यक्ति जुआ, मास, चोरी, शिकार, परस्त्रीगमन, वेश्यागमन इन सात कुव्यसनों के परित्याग के साथ अपने जीवन को अधिकाधिक प्रामाणिकता, नैतिकता, मानवता व धार्मिकता से परिपूर्ण बनाने में समर्थ होता है । सापेक्षवाद से अपने मानस का स्वस्थ्य रखता हुआ अन्य की ग्रन्थियो को भी विमोचित कर देता है ।

३ **समता आत्म-दर्शन**—समता जीवन दर्शन से भी साधना की चेतना जब ऊपर उठने लगती है, तब वह समता आत्म-दर्शन की स्थिति में आती है । समता जीवन दर्शन मे तो वह परिवार, समाज, राष्ट्र एव अन्तर्राष्ट्रीय स्तर को समतामय बनाने मे सहयोगी बनती है । परन्तु आत्म-दर्शन मे वह स्वय की चेतना के अन्तर्गत अमूल्य शक्ति स्फुलिंगो को स्फुरित करने के लिए आत्मस्थ साधना में तल्लीन बनने लगती है । आत्म-साधक पुरुष जड चेतना का स्वरूप समझकर जडत्व की राग-द्वेष की परिणति से विलग रहने लगता है, क्योंकि उसे यह अन्तर-प्रज्ञा से ज्ञात हो जाता है कि इस क्षणभंगुर दुनिया मे कुछ भी स्थायी नहीं है। जब सभी परिवर्तनशील है तो राग-द्वेष उत्पन्न करके अपने आत्मपतन के साथ ही, दुनिया की दृष्टि मे अपने आपको हास्यास्पद क्या बनाया जाए । समता आत्म-दर्शन के निम्न प्रावधान हैं—

१ प्रात काल सूर्योदय से पहले कम-से-कम एक घण्टा आत्म दर्शन के लिए निर्धारित करना । २ जिन मिनटो में घण्टा नियुक्त किया जाए नित्य उसी समय हमेशा ध्यान लगाकर साधना करना । ३ साधना के समय मे पापकारी वृत्तियो से अलग हटकर सत्वृत्तियो को स्वय के आचरण में लाना । ४ समस्त प्राणीवर्ग को अपनी आत्मा के तुल्य समझना । आत्म-साधक पुरुष स्वय के लिए

अन्य किसी का भी कष्ट नही देता । वह अन्य समग्र आत्माओ को अपने तुल्य समझकर ही उनके साथ व्यवहार करता है । उसकी यह मान्यता सदा बनी रहती है कि किसी का भी हनन स्वय का हनन है ।

४ **समता परमात्म दर्शन**—जब आत्म साधक पुरुष ससार की समस्त आत्माओ के साथ अपनी आत्मा के समान ही समझकर व्यवहार करने लगता है तब उसका परमात्म स्वरूप प्रकट होने लगता है, क्योकि ऐसा साधक राग-द्वेष और तेरे-मेरे की भावना से सम्पूर्णत ऊपर उठकर वीतरागी बन जाता है। परमात्म-साधक के प्रज्ञालोक मे सम्पूर्ण विश्व आलोकित हो जाता है । परमात्म-साधक स्वय के चरम विकास के साथ ही अन्यात्माओ के विकास मे भी सहयोगी बन जाता है ।

२१ **सूत्रीय योजना**—इन चार सोपानो को मूल बनाकर आचाय प्रवर ने समता समाज सजना पर विशेष प्रकाश डाला है । विषमता से विषाक्त विश्व मे अमृत का सचार करने के लिए समता दशन को अपनाना ही होगा । जब तक हम दूसरो के अस्तित्व को सुरक्षित रखने की ओर प्रयत्नशील नही बनेंगे तब तक हमारे अस्तित्व की सुरक्षा नही हो सकती है । समता समाज रचना के लिए आचाय प्रवर ने २१ सूत्रीय योजना को भी प्रस्तुत किया है। वे २१ सूत्र निम्न हैं—

१ ग्राम धर्म, नगर धम, राष्ट्र धम आदि की सुव्यवस्था अर्थात् तत्सबधी सामाजिक नियमो का पालन करना । उसमे कोई कुव्यवस्था पदा नही करना और कुव्यवस्था पैदा करने वालो का सहयोगी नही बनना । २ अनावश्यक हिंसा का परित्याग करना, तथा आवश्यक हिंसा की अवस्था मे भी व्यक्ति, परिवार, राष्ट्र आदि की सुरक्षा की भावना रखना तथा विवशता से होने वाली हिंसा के प्रति लाचारी का भाव या अनुभव करना न कि प्रसन्नता । ३ झूठी गवाही नही देना, स्त्री-पुरुष पशु-धन, भूमि आदि के लिए झूठ नही बोलना । ४ वस्तुओ मे मिलावट करके धोखे से नहीं बेचना । ५ ताला ताड कर, चाबी लगाकर कोई वस्तु नही चुराना । ६ परस्त्री गमन का त्याग करना, स्वस्त्री के साथ भी अधिक से अधिक ब्रह्मचय का पालन करना । ७ व्यक्ति समाज व राष्ट्र आदि के प्रति दायित्व निर्वाह के आवश्यक अनुपात से अधिक धन-धान्य पर अधिकार नही रखना । आवश्यकता से अधिक धन धान्य होने की स्थिति मे जरूरतमदो को सम-भाव मे वितरण करने की भावना रखना । ८ लेन-देन एव व्यवसाय आदि की सीमा एव मात्रा को अपनी समथतानुसार मर्यादित रखना । ९ स्वय के, परिवार के, समाज के और राष्ट्र के चरित्र पर कलक लगने जैसा कोई कम नही करना । १० आध्यात्मिक जीवन के निर्माणाथ नैतिक सचेतना एव तदनुरूप सत्प्रवृत्ति का ध्यान रखना । ११ मानव जाति के गुण कम के अनुसार वर्गीकरण पर पूण श्रद्धा रखते हुए किसी भी व्यक्ति से राग और द्वेष नही रखना । १२ सयम की मर्या-

दाओ का पालन करना एव अनुशासन भग करने वालो को अहिंसक तरीके क सहयोग से सुधारना । परन्तु द्वेष की भावना नही लाना । १३ पदाधिकारों का दुरुपयोग नहीं करना । १४ कतव्य पालन का पूरा ध्यान रखना एव विभिन्न सत्ता मे आसक्त, लोलुप नही होना । १५ सत्ता व सपत्ति को मानव सेवा का साधन मानना न कि साध्य । १६ सामाजिक व राष्ट्रीयता को सद्चरित्र पूर्वक भावा त्मक एकता का महत्त्व देना। १७ जनतन्त्र का दुरुपयोग नहीं करना। १८ दहेज विंटी, तिलक, टीका आदि की मागणी, सोदेवाजी तथा प्रदशन नही करना। १६ सादगी मे विश्वास रखना एव बुरे रीति-रिवाजो का परित्याग करना। २० चरित्र निर्माण पूवक धार्मिक शिक्षण पर बल देना और नित्य प्रति कम से कम एक घण्टा धार्मिक प्रक्रियाओ द्वारा स्वाध्याय, चिंतन, मनन आदि करना । २१ समता दशन के आधार पर सुसमाज व्यवस्था पर विश्वास रखना ।

समता के इस स्वरूप को व्यक्तिगत रूप से अपने जीवन मे उतारने के लिए हमे इन बातो का विशेष रूप से ध्यान रखकर आगे बढना चाहिए। समता का सवप्रथम पक्ष यह है कि 'जीओ और जीने दो' अर्थात् तुम भी जीओ और दूसरा यदि जी रहा है तो तुम उसे भी जीने दो । उसके जीवन मे तुम किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप मत करो ।

समता का द्वितीय पक्ष होगा, जो तुम्हे जीने का अधिकार दे, उसे तुम भी जीने का अधिकार दो, यदि तुम्हें कोई नैतिक सहयोग दे रहा है तो तुम्हारा परम कतव्य हो जाता है कि तुम भी उसे सहयोग प्रदान करो ।

समता का तृतीय पक्ष होगा—जो तुम्ह सहयोग नही कर रहा है और जिसे सहयोग की अपेक्षा है और यदि तुम्हारे पास साधन उपलब्ध है तो तुम बिना किसी स्वाथ के उसका सहयोग करो । यह सहयोग तुम्हारे भीतर एक प्रकार की विशिष्ट आनन्दानुभूति कराने वाला होगा ।

समता का चतुथ पक्ष होगा—दूसरो की सुख-सुविधाओ के लिए बिना किसी अपेक्षा के अपनी सुख-सुविधाओ का विसजन कर दो। यह पक्ष आत्मा को समता मे निमज्जित करके उसे परम पावन बनाने वाला होगा । जिस प्रकार की स्वदक अणगार ने एक पक्षी की सुरक्षा के लिए स्वय की आहुति दे दी । धम रुचि अणगार ने चींटियो की सुरक्षा के लिए स्वय को होम दिया था ।

समता के इन चार पक्षो को समक्ष रखते हुए चलने पर स्वत ही समस्याओ का समाधान होता चला जाएगा ।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कुछ तो समता की आवाज बुलद हुई है तभी तो १८-१२-१९८७ के दिन रूस-अमेरिका मे परस्पर यह निणय हुआ कि मध्य एटमी प्रक्षेपास्त्रों के एक हजार राकेट और १८५० एटम बम दोनो तरफ से नष्ट कर दिये जाएगे । इस दस्तावेज पर दोनो ही देशों के शीष नेताओ ने हस्ताक्षर किये थे । निःशस्त्रीकरण की यह भावना भी समता का एक आंशिक रूप ही है।

पर इतने मात्र से शास्त्रा की भयानकता नही टाली जा सकती है । इसके लिए आवश्यक है वह जीओ और जीने दो रूप–समता का पहला पक्ष स्वीकार करें । सभी राष्ट्रो में राष्ट्रीय स्तर पर यह संधि हो जाए कि कोई भी देश किसी पर हमला नहीं करेगा, कोई भी किसी का धन, माल, जमीन आदि हड़पने की कोशिश नहीं करेगा । क्योकि दुनिया मे सभी को जीने का अधिकार है । हम भी जीयें और दूसरो को भी जीने दें । यदि यह पहला सिद्धात भी जीवन मे स्वीकार कर लिया जाता है तो मानव जाति मे एक विशिष्ट आनन्द का सचार हो जाएगा । क्योकि आज मानव को मानव से जितना डर है उतना अन्य से नही है । 'जीओ और जीने दो' के पक्ष को अपना लेने पर आज जितना भी खर्च शास्त्रो के निर्माण म मानव जाति के विनाश के लिए हो रहा है, वह सजन मे होने लगेगा । आज जो पडोसी देश एक दूसरे को शत्रु मान रहे हैं, वे मित्र समझने लग जाएगे । सारी समस्याओ का समाधान होने मे देरी नही लगेगी । इसके बाद समता के अगले पक्ष को स्वीकार करने पर तो मानव की आतरिक और बाहरी दोनो ही समस्याए विमोचित होकर परम स्वरूप की अभिव्यक्ति होने लगेगी ।

चरम तीर्थंकर भगवान महावीर ने अपनी देशना मे स्थान-स्थान पर समता की अत्यन्त सुन्दर विवेचना की है । 'आचाराग' सूत्र मे तो समता को ही धम बतलाया गया है—'समियाए धम्मे' समता ही धर्म है । यदि आपके अन्दर समता के भाव नही हैं, दीन-हीन, अभावग्रस्त जीवो के प्रति सद्भाव नही है तो आप धम को जीवन मे नही अपना सकते । धम को अपनाने के लिए पहले मानवता का आना अनिवार्य है, मानवता समता का ही एक अश है । 'सूत्रकृताङ्ग' सूत्र में समता को अधिक स्पष्ट करते हुए प्रभु महावीर ने कहा है—

पण्णासमत्ते उ सयाजए, समता धम्ममुदाहरे ।
सुहुमे उसया अलुसए णो कुज्णोमाणी माहने ।। १, २, २८

प्रज्ञा मे समता के आने पर ही साधक समता के अनुसार यत्नवान बनता हुआ समता धर्म की साधना करें । समता साधक अहिंसक भावना में रहता हुआ न क्रोध करे, न ही अभिमान करे ।

प्रभु महावीर का यह उद्घोष निश्चय ही समता के स्वरूप की सही व्याख्या करता हुआ समता प्रवक्ता की स्थिति को भी स्पष्ट करता है । समता के प्रवचन का यथार्थ मे वही अधिकारी हो सकता है जो अहिंसक और क्रोध, मान अर्थात् राग-द्वेष से रहित होने की साधना मे तल्लीन हो, आचार्य प्रवर ने समता के प्रवचन के पूर्व अपने जीवन को ठीक उसी रूप में अहिंसा और वीतराग की साधना में तल्लीन किया था और कर रहे हैं, आपके जीवन के भीतर और बाहर समता लबालब भरी है इसी का परिणाम है कि वर्तमान मे तो मानो समता दर्शन आचार्य प्रवर का पर्याय ही बन गया है ।

यह तो प्रारम्भ मे ही बताया जा चुका है कि समता दर्शन किसी व्यक्ति

जाति, समाज या राष्ट्र से जुडा हुआ नहीं है। यह शब्द तो सम्पूर्ण मानव जाति ही नही अपितु प्राणी वर्ग से जुडा हुआ हैं। यह किसी एक का धर्म नहीं अपितु समस्त आत्माओं का धर्म है। जो भी समता को अपनाता है, वह उसी से जुड जाता है। इसका तात्पर्य यह नही कि समता उसी की है। वह तो तृषातुर के लिए पानी के समान सभी की है—यद्यपि समता को हर धर्म ने, हर राष्ट्र ने अपने रूप मे स्वीकार किया है, किंतु उसका देश-काल की परिधियों या लक्ष्य मे रखने युगानुकूल प्रस्तुतीकरण नही होने से वह पूर्ण रूप से व्यावहारिक नही बन पा रहा है, इस अभाव की पूर्ति आचार्य प्रवर ने अपने दीर्घकालीन सयम साधना की अनुभूतियो के पश्चात् सब व्याधियो की उपशामक समता की सजीवनी प्रस्तुत की है। आवश्यकता है उस औषधि के व्यवस्थित रूप से आसेवन की।

जिस किसी भी सुयोग्य चिंतक ने आचार्य प्रवर के समता दर्शन को सुना, पढा, समझा है वह उससे प्रभावित हुए विना नही रहा है। एक उदाहरण यहां पर्याप्त होगा—

यह घटना करीव आज से १५ वर्ष पूर्व की है, जब आचार्य प्रवर का मारवाड मे विचरण चल रहा था। आचार्य प्रवर बीकानेर के समीप ही भीनासर में विराजमान थे, तब ई एन टी विभाग के विशेषज्ञ डॉ छगाणी किसी गृहस्थ रोगी के उपचार हेतु बीकानेर मे गगाशहर आ रहे थे। उस समय आचार्य श्री भी पास ही बांठिया पौषधशाला मे विराज रहे थे। आचार्य प्रवर के भी नाक मे कुछ वेदना थी। कुछ सज्जनों के सकेत से डॉ साहब पौषधशाला आये और उन्होंने रोग का निदान तो किया ही साथ ही गुरुदेव के व्यक्तित्व का गम्भीरता पूर्वक निरीक्षण भी किया। आचार्य प्रवर के व्यक्तित्व से ऐसे प्रभावित हुए कि कुछ समय वही बैठ गये और अपनी जिज्ञासाओ का समाधान लेकर लौटे। जाते समय सघ के किसी सदस्य ने 'समता दर्शन एव व्यवहार' नामक पुस्तक की एक प्रति उन्हे भेंट की। उन्होंने उस पुस्तक को पढा, अध्ययन किया और इतने प्रभावित हुए कि कुछ ही दिनो बाद स्वय ही गुरुदेव की सेवा मे उपस्थित हुए और निवेदन किया कि "वास्तव मे प्रस्तुत पुस्तक में विश्व की जुटिल मानी जाने वाली समस्याओ का हृदयस्पर्शी समाधान प्रस्तुत किया गया है। व्यक्ति से लेकर विश्व तक की समस्याओ का समाधान करते हुए उन्हें अपने वास्तविक कर्तव्य का बोध कराया है। विश्व मे समस्याएं इसलिए हैं कि हम दृष्टि को नहीं सृष्टि को बदलना चाहते हैं, हम इच्छाओ पर नही ईश्वर पर अपना नियन्त्रण चाहते हैं, लेकिन ऐसा कभी नही हुआ है और नहीं हो पाएगा। शांति चाहिए तो समता के धरातल पर सृजन का सूत्रपात करना होगा। हमे आपके समता दर्शन से सही प्रेरणा मिली है और मैं तो यह कहूगा कि हम वैभव की वृद्धि से अपने विनाश को आमन्त्रित कर रहे हैं। मैं स्वय भी अभी तक इसी ओर चल रहा था, लेकिन अब मार्ग बदलने का प्रयास आरम्भ कर दिया है, देखिये किस सीमा तक पहुंच सकूंगा।

उदार चरिताना
वसुधैव कुटुम्वकम्

विज्ञापन-सहयोग हेतु सभी प्रतिष्ठानों एव महानुभावों के प्रति

HEAD OFFICE

11098 B, **EAST PARK ROAD NEW DELHI 110005**

Phones 732411, 732412, 732413

Gram FLYINGBIRD Telex 031-62611 One in

ALWAR — 22612 BHARATPUR 3277

BHIWADI — 221 JAIPUR -66519, 46678, 832480

JODHPUR — 21559 KOTA -22031, 24759

आचार्य श्री के दीक्षा अर्द्धशताब्दी वर्ष के उपलक्ष मे

श्री साधुमार्गी जैन श्रावक संघ

उदयरामसर

With Best Compliments From

JABAR CHAND BOHRA

Charitable Trust

Madras 79

श्रद्धेय आचार्य-प्रवर श्री १००८ श्री श्री नानालाल जी म सा के ५०वें दीक्षा-जयन्ती के अवसर पर शुभकामाओ के साथ

Ph 71301 71745

H Premchand Bothara

3, Muthu Rama Mudali St

MADRAS 600004

दीक्षा अर्धशताब्दी वर्ष के उपलक्ष मे

कमल स्वीटस

कमल भुजिया भण्डार

पुरानी लाईन, गंगाशहर

मानमल सुराना

पुरानी लाईन, गंगाशहर

श्रीमती चम्पादेवी सचेती

स्व श्री रतनचन्द सचेती

जयपुर

श्रीमती लाडबाई ढढ्ढा

श्री उमरावमल ढढ्ढा

जयपुर

श्रीमती जतनदेवी ढढ्ढा

श्री सरदारमल ढढ्ढा

जयपुर

(वर्तमान कोषाध्यक्ष)

श्री तेजकंवर बैद

W/o **इन्द्रजीत सिंह बैद**

जयपुर

श्रीमती प्रभादेवी चोरडिया

श्री अभयकुमार चोरडिया

जयपुर

श्रीमती निर्मला सेफिला चोरडिया

जयपुर

मै फुलबाडी-पटान टी इस्टेट
कलकत्ता

श्री सम्पतलाल जयचन्दलाल साड
करीमगंज

श्री कन्हैयालाल प्रकाशचन्द पटवा
करीमगंज

श्री चम्पालाल शातिलाल भूरा
करीमगंज

श्री तोलाराम प्रकाशचन्द भूरा
करीमगंज

श्री भवरलाल नथमल तातेड
करीमगंज

श्री कुम्भराज सुलभ कुमार पटवा
करीमगंज

दीक्षा अर्द्ध शताब्दी वर्ष के उपलक्ष मे हार्दिक शुभकामनाओ के साथ -

---

बोथरा एण्ड ब्रादर्स, बोथरा एण्ड सन्स
(फेन्सी कपडे के विक्रेता)
जोशीवाडा, बीकानेर

तोलाराम जैन, मानिकचन्द सोनावत
छावजा घाट, कारबीग्र गलोंग (आसाम)

आनन्द एजेन्सी
पो मनेन्द्रगढ़ जि सरगुजा (म प्र)

प्रेम वस्त्रालय
जोशीवाडा, बीकानेर
शोभा वस्त्रालय, गगाशहर

म दुर्गा ट्रेडिंग कम्पनी
रामदेव ट्रेडिंग कम्पनी
बोथरा क्लोथ स्टोर
पो खाजुवाला, जि बीकानेर

शाह छीतरमल भैरूलाल सूर्या
(उदारमना समाजसेवी)
मु पो देवरिया, जि भीलवाडा

शाह हजारीमल मागीलाल देरासरिया
अनाज के व्यापारी
मु पो उल्लाई जि भीलवाडा (राज)

शाह कजोडीमल रतनलाल पीछोल्या
अनाज के व्यापारी
मु पो उल्लाई जि भीलवाडा (राज)

धीरजलाल सुमतिलाल बांठिया
M/s **राजस्थान टिम्बर सप्लाई कम्पनी**
कोट गेट के अन्दर, बीकानेर (राज)

दीक्षा प्रद शताब्दी वर्ष के उपलक्ष में

श्रीमती कमला देवी वैद
W/o श्री चन्द्रसिंह वैद
जयपुर

भैरूदान भागीलाल होलसेल डीलर
हवेली कटला पुरोहितजी, जोहरी बाजार
जयपुर

श्रीमती भंवर कवर वैद
W/o श्री प्रेमसिंह वैद
जयपुर

श्री नयन तारा चोरड़िया
W/o श्री शान्तिलाल चोरड़िया
जयपुर

श्रीमती भंवरी देवी वैद
W/o स्व श्री नेमसिंह वैद
जयपुर

श्रीमती मोहनी देवी नाहर
W/o श्री सतीशचन्द्रजी नाहर
जयपुर

श्री गायर देवी कोठारी
धर्मपत्नी श्री उदयचन्दजी कोठारी
जयपुर

श्रीमती सुशीला बाई पालावत
धर्मपत्नी श्री प्रतापचन्दजी पालावत
जयपुर

दीक्षा अर्धशताब्दी वर्ष के उपलक्ष मे

दीक्षा अर्द्ध शताब्दी वर्ष के उपलक्ष में

श्री घेवरचन्दजी महेन्द्रकुमार काकरिया
कलकत्ता

श्रीमती कुसुमदेवी कोठारी W/o श्री प्रकाशचन्दजी कोठारी
(सरक्षक सदस्या समिति)
जयपुर

अरूणोदय मिल्स लिमिटेड
मोरवी (गुजरात)

पारख दाल मील
(उच्च कोटि के दालों के निर्माता)
बगतपुर राजनादगाव (म प्र)

सुगनचन्द जीवनचन्द बैद
चादी व कपड़े के व्यापारी
सदर बाजार, राजनादगाव (म प्र)

मैं दुलीचन्द शिवचन्द पारख
(अनाज के व्यापारी व कमीशन एजेन्ट)
गज लाईन, राजनादगाव (म प्र)

श्री राजमलजी मिलापचन्दजी मुणोत
पाट व स्थानीय उत्पादन के प्रमुख व्यवसायी
विलासीपाडा, धुवड़ी (आसाम)

श्री तोलारामजी धर्मचन्दजी लूणावत
(कपड़े के थोक व खुदरा व्यवसायी)
विलासीपाडा, धुवड़ी (आसाम)

प्रात स्मरणीय बाल-ब्रह्मचारी, चारित्र चूडामणि, समता विभूति, धर्मपाल प्रतिबोधक, जिनशासन, प्रद्योतक समीक्षण ध्यान-योगी, आगम निधि विद्वद् शिरोमणि परम पूज्य आचार्य प्रवर श्री १००८ श्री नानालालजी म सा के दीक्षा अर्द्धशताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य मे शुभ-कामनाए प्रेषित करने वालों की ओर से

शत-शत वदन-अभिनन्दन

आसाम

सिलचर

श्री भवरलाल गुलगुलिया	श्री रतनलाल गुलगुलिया
" हडमानमल गुलगुलिया	" मानमल गुलगुलिया
" जेठमल खटोल	" सम्पतलाल सिपानी
" सुन्दरलाल सिपानी	" गुलाबचन्द सिपानी
" जीवराज सेठिया	" रोशनलाल सेठिया
" तोलाराम बरडिया	" कुभराज पटवा
श्रीमती नथमल सिपानी	

कोकडाझाड

श्री मोहनलाल छाजेड	श्री फुसराज बरडिया
" आसकरण बोथरा	" माणकचन्द सिपानी
" हडमानमल भूरा	" भवरलाल पटावरी
" भागचन्द भूरा	" तोलाराम बाठिया
" रामलाल भूरा	" किस्तूरचन्द बोथरा

श्री हजारीमल नलवानी
" महावीरचन्द मणोत
" चम्पालाल बोथरा
" नवीन ट्रेडिंग
" हालचन्द सचेती

श्री चैनरूप पींचा (जैन)
" धनराज कातेला
" रामलाल बरड़िया
" तुलछीराम भूरा
" चन्द्र कातेला

फरीमगंज

श्री विशनलाल भूरा
श्री दानमल सेठिया
" बंशीलाल भूरा
" सम्पतलाल भूरा
" सुगनचन्द साड
" हीरालाल बक्सी
" चन्दराज धाड़ीवाल

श्रीमती प्रतिमादेवी भूरा
श्री आनन्दमल भूरा
" दीपचन्द भूरा
" कल्याणचन्द भूरा
" मूलचन्द माड
" मूलचन्द पारख
" खेमरचन्द सुराणा

धुबड़ी

श्रीमती सीतादेवी सुराना
श्रीमती लक्ष्मीदेवी शाममुखा
श्रीमती पतासीदेवी लुनावत
श्री लाभचन्द सुराना
" शिखरचन्द सुराना
" ईश्वरचन्द शाममुखा
" भवरलाल बोथरा
" चान्दमल सेठिया
" मूलचन्द सिपानी
" भवरलाल पटावरी

श्रीमती मोहनीदेवी सुराना
श्रीमती चान्ददेवी बोथरा
श्री भवरलाल सुराना
" गुलाबचन्द सुराना
" जोहरीमल सुराना
" चम्पालाल छल्लाणी
" गौतमचन्द सुराना
" सुन्दरलाल मरोठी
" स्वरूपचन्द मेहता
" पाचीलाल भूरा

गौहाटी

श्री जेठमल बोथरा	श्री शान्तिलाल
" प्रशान्त टैक्सटाईल्स	" अमरचन्द
" मोहनलाल	" चन्द्र लूणावत
" मूलचन्द सिपानी	" प्रेमचन्द गाधी
" वुधमल भसाली	" चम्पालाल काकरिया
" चम्पालाल भूरा	" हसराज
" शान्तिलाल साखला	" सुमतिचन्द साखला

ग्वालपाडा

श्री जवरीमल

तिनसुखिया

श्री पन्नालाल सेठिया	श्री मागीलाल सेठिया
" सुन्दरलाल सेठिया	" सुशीलकुमार सेठिया

बिलासीपाडा

श्री केशरीचन्द बोथरा प्रवीन स्टोर, श्री कमलचन्द भूरा

बगाईगांव

श्री चम्पालाल देसवाल	श्री सोहनलाल देसवाल
" मोहनलाल देमवाल	" ताराचद देसवाल
" हनुमानमल देसवाल	" घेवरचन्द गोलछा
" हनुमानमल वैद	" पारसमल वैद
" सम्पतलाल वैद	" चम्पालाल वैद
" सोहनलाल	" प्रकाशचन्द बेताला

श्री भंवरलाल मरोठी
" जतनलाल बोथरा
" सुगनचन्द डागा
" केशरीचन्द मरोठी
" निर्मलकुमार गोलछा
" राजेन्द्रकुमार गोलछा

श्री वसन्तीमल मुथलेचा
" दीपचन्द मनेती
" राधाकृष्ण शामसुखा
" सम्पतलाल काकरिया
" पदमचन्द गोलछा
" रमेशचन्द गोलछा

हुबली

श्री नेतनमल बोथरा

श्री शान्तिलाल बोथरा

गोलकगज

श्री पृथ्वीराज सोनावत
" हनुमानमल बोथरा
" घेवरचन्द
" विजयराज चोरडिया
" मदाचन्द हीरावत

श्री रामलाल बोथरा
" डूगरमल डागा
" नेमचन्द चोरडिया
" बाबूलाल कुम्मट

आंध्रप्रदेश

हैदराबाद

श्री पारसमल पीतलिया
" माणकचन्द डागा
" नेमचन्द पीतलिया

श्री हीराचन्द पीतलिया
" थानमल पीतलिया
" उच्छबराज पीतलिया

गुजरात

अहमदाबाद

श्री मोतीलाल मालू

कर्नाटक

बंगलोर

श्रीमती मगनबाई गाधी	श्रीमती सुमनदेवी चोरडिया
श्री हस्तीमल भसाली	श्री प्रेमराज बोहरा
श्री कोनार्क ऑटो ऐजेन्सी	पवन टेक्स

हुबली

श्री धनराज गोलछा

नीलगिरी

श्री पारसमल मूथा एण्ड सस

मुडगिरी

श्री मोहनलाल बोहरा

वेहली

श्री लुणकरण हीरावत	श्री रिखबचन्द जैन
" शान्तिलाल कोठारी	" गभीरमल सेठिया
" कमलचन्द डागा	" नेमचन्द डागा
" हनुमानमल	" भवरलाल सिपानी
" शान्तिलाल बोथरा	" भवरलाल बैद
" रामलाल गुलगुलिया	" नरेशकुमार खीवसरा
" सोहनलाल पीचा	" भवरलाल लूणिया
" तुलसीराम सेठिया	" तोलाराम हीरावत
" चन्दनमल कातेला	" शान्तिलाल छल्लाणी
" फतेहचन्द चोरडिया	" निर्मलकुमार बैद

श्री घवरचन्द मुराणा
" जननलाल पीचा
" उदयचन्द मुत्राणी
" अशोककुमार कोठारी
" मागीलाल वोयरा
श्रीमती गुलावदेवी भूरा
श्रीमती तारादेवी दस्साणी
श्री किरणकुमार वोथरा
" सूरजमल पीचा
" प्रकाशचन्द मुराणा
" अमरचन्द जैन (सेठिया)
" अमरचन्द सेठिया, शक्तिनगर
श्रीमती प्रभा घोरडिया

मध्यप्रदेश

इन्दौर,

श्री प्रेमराज चौपडा
" माणकचन्द आचलिया
" जितेन्द्र दालमील
" रतनलाल जैन (स्टोनसन)
" वालकिशन चोरडिया
" पुखराज चौपडा
" वसन्तीलाल कांकरेचा
" रतनलाल पावेचा
" मागीलाल
श्री किशनलाल आचलिया
" प्रकाशचन्द जैन
" रतन फाइनेन्स कम्पनी
" जैन ऊन स्टोर्स
" विरेन्द्र एण्ड कम्पनी
" समर्थमल डूगरवाल
" गजेन्द्र सूर्या
" रतनलाल पीतलिया
श्रीमती राजकुवरबाई कोठारी

दुर्ग

श्री इन्द्रचन्द सुराना
" घेवरचन्द श्रीमाल
" मिश्रीलाल कांकरिया
" मदनमल वोथरा
" जेठमल श्रीश्रीमाल
श्री भवरलाल वोथरा
" भीखमचन्द पारख
" शिरेमल देशलहरा
" दिनेश कुमार देशलहरा

चागोटोला

श्री गेंदमल जैन

नागदा

श्री मायाचन्द काठेड श्री चन्द्रशेखर जैन

बवनावर

श्री झमकलाल दसेडा

मुंगेली

श्री सौभाग्यमल कोटडयिा श्री पुखराज कोटडिया

गीदम

श्री कोजमल बुरड

राजनांदगाव

श्री अगरचन्द कोटडिया श्री इन्द्रचन्द सुराना
" कन्हैयालाल गोलछा

रायपुर

श्रीमती विजयादेवी सुराना

महाराष्ट्र

बम्बई

श्रीमती सरलादेवी भूरा श्रीमती मधुदेवी बैद

नागपुर

श्री डागा सुपारी सेन्टर श्री चन्दनमल बोथरा
" सुवानी स्पाईसेस " सरदारमल पुगलिया

अलीबाग

मेसर्स प्यारेलाल एण्ड को

मद्रास

श्रीमती लीलादेवी चोरड़िया श्री सुगनचन्द धोका

साचरोद

श्री भूपेन्द्र कुमार नादेचा श्रीमती सुशीलादेवी नादेचा

शाहबाद

श्री रिखबचन्द पीतलिया

तमिलनाडू

चिंगलपेठ

श्री केशरीमल जैन

उड़ीसा

झाड सुगडा

श्री जयचन्द भूरा

राजस्थान

अलाय

श्रीमती भंवरीदेवी सुराना श्री रेखचन्द सुराना
" चम्पादेवी सुराना

उदयपुर

श्री विजयसिंह सिसेसरा श्री मनोहरसिंह चिंगेसरा
" डूंगरसिंह बाबेल " सुन्दरलाल बाबेल
" गणेशलाल वया " अमृतलाल मासला

श्री भवरलाल कटारिया
" राजेन्द्र मशीनरी मार्ट
" सौभाग्यसिह बापना
" जोधसिह गहलोडिया
" शिवसिह बापना

श्री मनोहरसिह गुलूडिया
" तेजसिह मोदी
" सुरेन्द्रसिह बापना
" डो एस हरकावत
श्रीमती कान्ता बापना

जयपुर

श्रीमती कमलाबाई बैद
" सिरह कवर बाई बैद
" सुशीलाबाई बैद
" विद्याबाई मूथा
" लाडबाई ढड्ढा
" सुनीता ढड्ढा
" कमलादेवी पारख
" प्रेमलता गोलछा
" सूरजदेवी मोदी
" रामीदेवी साड़
" गुलाबबाई राका
" सोहनबाई सेठिया
" शान्ताबाई सुखलेचा
" ज्ञानचन्द सुखलेचा
" अजु चोरडिया
" मीनादेवी राका
" विजयादेवी मेहता

श्रीमती सुशीलाबाई बैद
" सम्पतबाई बैद
" गुलाबबाई मूथा
" जीवनीदेवी बावेला
" विजय लक्ष्मी ढड्ढा
" उमरावबाई पालावत
" पारुल
" सरदारबाई सिंघि
" रतनदेवी कर्नावट
" पानबाई बोथरा
" चन्द्रकला जैन
" पुष्पा सेठिया
" चेतनबाला सुखलेचा
" हेमलता चोरडिया
" पारसदेवी चोरडिया
" डॉ शान्ता भानावत

जांगलू

श्री हजारीमल भूरा

जोधपुर

श्री गौतममल भण्डारी	श्री भागीचन्द भण्डारी
" विजयराज सागला	" विजयचन्द सावला
" उगमराज गिवेसरा	" मम्पतराज खिवेसरा
" भरुण चोरडिया	" मगलचन्द लोढा
" सतोद्य मिन्नी	" लूणकरण कोटडिया
" उम्मेदमल गाधी	श्रीमती उच्छवकवर गाधी
कुमारी वर्षा गाधी	कुमारी प्रीति गाधी

देशनोक

श्री प्रकाशचन्द दुगड	श्री आनन्दमल साड
" कल्याणचन्द भूरा	" हुलासमल भूरा
" डालचन्द भूरा	" निमलकुमार भूरा
" जयन्तकुमार भूरा	" गोपालचन्द भूरा
" राजेन्द्रकुमार भूरा	" मनोजकुमार भूरा
" ईश्वरचन्द भूरा	" टीकमचन्द सचेती
" आनन्दमल भूरा	" चम्पालाल देसयाल
" धनराज कल्लाणी	" रामलाल सामसुखा
" बशीलाल भूरा	" भवरलाल भूरा
" सुरेन्द्र कुमार दुगड	" लूणकरण हीरावत
" तोलाराम हीरावत	" हडमानमल चोपरा
" धूडचन्द भूरा	" जोगराज भांचलिया

श्री रिधकरण कातेला — श्री गुप्तदाता
" दीपचन्द बोथरा — " पन्नालाल छाजेड
श्री चम्पालाल भूरा — श्री चतुरभुज वैद
" जतनमल हीरावत — " मदनचन्द हीरावत
" दीपचन्द भूरा — " रतनलाल मरोटी
" तोलाराम डोसी — " घेवरचन्द बोथरा
" भवरलाल भूरा — " शुभकरण भूरा
" प्रकाशचन्द्र भूरा — " रामलाल भूरा
" महावीर प्रसाद भूरा — " तुलसीराम भूरा
" मोतीलाल दुगड — " भीखमचन्द दुगड
" राजेन्द्र कुमार दुगड

श्रीमती पानादेवी गुलगुलिया — श्रीमती घूडीदेवी बरडिया
" सम्पतदेवी गुलगुलिया — " भीखीदेवी गुलगुलिया
" मोहनीदेवी गुलगुलिया — " भवरीदेवी हीरावत
" सूरजदेवी दुगड — " सूवादेवी डोसी
श्रीमती लीलादेवी दुगड — श्रीमती अमानीदेवी सुराना
" दोपादेवी नाहटा — " सुगनीदेवी दुगड

नोखा गाव

श्री भवरलाल लूणावत — श्री रेवन्तमल लूणावत
" जेठमल लूणावत — " मेघराज लूणावत
" चिमनीराम सुराणा — " दीपचन्द सुराणा
" मेघराज लूणावत

नोखा मडी

श्री मागीलाल नाहर — श्री जेठमल बाफना

श्री भैरूदान डागा मुरघुरावाला	मैं सुभाष स्टोर
" भरनीदान जोरावरपुरा	श्री हजारीमल बैद
" भूगलाल सचेनी	" फूमराज बैद
डा गुन्दरलाल मुराना	मैं वुन्चा आदर्श
श्री गणेशमल मरोठी	श्री तोलाराम लुनावत
" भैरूदान डागा किशनासरवाला	" तुलसीराम पींचा
" इन्द्रचन्द बैद	" देवचन्द सुराणा
" फूमराज सुराणा	

गंगाशहर

श्री ताराचन्द सोनावत	श्री खूबचन्द सोनावत
" प्रेमचन्द सोनावत	" मूलचन्द सोनावत
" कन्हैयालाल सोनावत	" धूडमल डागा
" करणीदान बोथरा	मैं प्रिन्स आईसक्रिम
" भवरलाल डागा	श्री चम्पालाल बोथरा
" अर्जुनदास साड	" किस्तूरचन्द सुराणा
" नथमल डागा	

भीनासर

श्री भवरलाल दफ्तरी

बीकानेर

श्री केशरीचन्द भूरा	श्री निखिल पारख
" अवनि पारख	" मनीषा पारख
" कुनाल पारख	" मीना पारख
" देवेन्द्रकुमार पारख	" पारुल पारख
" धर्मेन्द्रकुमार पारख	" पूर्वी पारख
" श्वेता पारख	" समीर पारख

गगानगर

श्री उत्तमकुमार भूरा

वाडमेर

श्री नवलचद सेठी

श्री बाडमल चौपडा

श्री ईश्वरदास माडोतर

श्री भीखमचन्द गोलछा

श्री दाती केवलचद गोलछा

श्री वच्छराज श्रीश्रीमाल

श्री चदनमल बाठिया

श्री भवरलाल चौपडा

श्री शिवलाल वागरेचा

छोटीसादडी

श्री प्रेमचद मोगरा (एडवोकेट)

बिरला ग्राम

श्री चद्रकात जैन प्राचार्य

फलौदी

श्री रतनलाल बैद

बिहार

पटना

श्री नथमल लूणिया (जैन)

पजाब

चडीगढ

श्री रामलाल सेठिया

बंगाल

कलकत्ता

श्रीमती सूरज कुमारी काकरिया

श्री सुभाषचन्द काकरिया

ीमती कनककुमारी कांकरिया
" सुलेखा कांकरिया
ी चन्द्रपाल कांकरिया
ुमारी श्रद्धा कांकरिया
ीमती फूल कुमारी कांकरिया
" प्रमिला कांकरिया
" शशि कांकरिया
ौरव कांकरिया
दिव्या कांकरिया
ी भवरलाल वैद
" रिखबचन्द जैन (वैद)
ार्मेश कुमार वैद
ीमती विमलादेवी वैद
" कोकिलादेवी वैद
ुमारी मधु वैद
ी भवरलाल सेठिया
" जतनलाल सेठिया
" पुखराज सेठिया
" प्रवीरचन्द सेठिया
राजीव सेठिया
ीशु सेठिया
र्वी सेठिया
ीमती मैनादेवी
" उषा

श्री विनोदचन्द कांकरिया
" सन्दीप कांकरिया
" आदित्य कांकरिया
" सरदारमल कांकरिया
" मनोहर कांकरिया
" ललित कांकरिया
हर्ष कांकरिया
सौरभ कांकरिया
तृप्ती कांकरिया
श्री भंवरलाल वैद
" प्रेमप्रकाश वैद
पुष्पेश कुमार वैद
श्रीमती कमलादेवी वैद
" कलादेवी जैन (वैद)
कुमारी जीवन ज्योति वैद
श्री मालचन्द सेठिया
" अभयराज सेठिया
" अनूपचन्द सेठिया
राकेश सेठिया
रीतेश सेठिया
सीमा सेठिया
हीना सेठिया
श्रीमती रतनदेवी
" शशिकला

श्री भीखमचन्द भसाली
" कमलसिंह भसाली
" राजकुमार भसाली
" ललितकुमार भसाली
श्रीमती कमलादेवी भसाली
" प्रभादेवी भसाली
" कुसुम भसाली
श्री आलोक बोथरा
" सजय बोथरा
" ऋषि बोथरा
" सुदर्शन बोथरा
" सौरभ बोथरा
" अनुज बोथरा
" रिखबदास भसाली
" राजेन्द्र कुमार भसाली
श्रीमती भवरीदेवी भसाली
" मीना भसाली
कुमारी सुमित्रा भसाली
" कीर्ति भसाली
कुमार राहुल भसाली
श्री प्रदीप कुमार कोठारी
" दिलीप कोठारी
" राजेश कोठारी
" अभिजीत कोठारी

श्री मोहनलाल भसाली
" विमलसिंह भसाली
" हेमन्तकुमार भसाली
श्रीमती चेतनदेवी भसाली
" पुष्पादेवी भसाली
" मजु भसाली
" सगीता भसाली
श्री अजय बोथरा
" गौतम बोथरा
" आनन्द बोथरा
" सिद्धार्थ बोथरा
" तुषार बोथरा
" नथमल भसाली
" राजेश कुमार भसाली
" अशोक कुमार भसाली
श्रीमती ज्योत्स्ना भसाली
कुमारी ममता
" नमिता भसाली
कुमार गौरव भसाली
श्री भवरलाल कोठारी
" हेमन्त कोठारी
" कमल कोठारी
" धर्मेन्द्र कोठारी
" आनन्द ज्योति कोठारी

श्रीमती इचरजदेवी कोठारी	श्रीमती कुसुमदेवी कोठारी
" ललिता कोठारी	" सरिता कोठारी
" सुनिता कोठारी	कुमारी मधु कोठारी
श्री तोलाराम बोथरा	श्री जसकरण बोथरा
" पूनमचन्द बोथरा	" किशनलाल बोथरा
" रिधकरण बोथरा	" कन्हैयालाल बोथरा
" मेघराज बोथरा	" वीरेन्द्र कुमार बोथरा
" जयकुमार बोथरा	" मनोज कुमार बोथरा
" पूरणमल काकरिया	श्रीमती केशरदेवी काकरिया
श्रीमती उमरावबाई काकरिया	श्री निश्चल मेहता
श्री शिखरचन्द मिन्नी	" प्रकाश मिन्नी
श्रीमती शान्तादेवी मिन्नी	श्रीमती मधु मिन्नी
कुमार मोहित मिन्नी	कुमारी नयना मिन्नी
श्री जयचन्दलाल मिन्नी	श्री विनोद मिन्नी
" सुबोध मिन्नी	श्रीमती गिरियादेवी मिन्नी
श्रीमती सरला मिन्नी	" सुजाता मिन्नी
कुमारी मीना मिन्नी	कुमारी सध्या मिन्नी
कुमार अजय मिन्नी	कुमार आशीष मिन्नी
" अनिमेष मिन्नी	श्री माणकचन्द मिन्नी
श्रीमती भगनबाई मिन्नी	" मोतीचन्द मिन्नी
श्री पन्नेचन्द मिन्नी	" नरेश कुमार मिन्नी
" राजेश कुमार मिन्नी	" अरविन्द मिन्नी
" बालचन्द भूरा	" अभय कुमार भूरा
" दौलत कुमार भूरा	श्रीमती उगमादेवी भूरा

श्रीमती कुमुदश्री भूरा
कुमार श्रेणिक भूरा
" रोहित भूरा
श्री विमल कुमार भूरा
श्रीमती कमलादेवी भूरा
" फूल भूरा
श्री नवरतन भूरा
श्रीमती मृगा कोठारी
कुमारी श्रुति कोठारी
श्री कमल कुमार बच्छावत
श्रीमती सरला बच्छावत
श्री रणजीतमल काकरिया
" कल्याणचन्द काकरिया
" शान्ति कुमार लूणिया
श्रीमती कमलादेवी लूणिया
श्री जतनलाल लूणिया
श्रीमती मोहिनीदेवी लूणिया
श्री शान्तिलाल गोलछा
श्रीमती ममोलदेवी गोलछा
" जयश्री गोलछा
एव परिवार के अन्य ३ सदस्य
श्री पानमल हीरावत
" गौतमचन्द काकरिया
" राजेश काकरिया

श्रीमती कुसुम भूरा
कुमार भरत भूरा
श्री डालचन्द भूरा
" सुरेन्द्र कुमार भूरा
श्रीमती करुणा भूरा
श्री श्रीपाल भूरा
" प्रकाशचन्द कोठारी
श्रीमती छगनीदेवी कोठारी
श्री शिखरचन्द बच्छावत
श्रीमती जतनदेवी बच्छावत
" माणकदेवी काकरिया
" सरला काकरिया
श्री अमरचन्द लूणिया
श्रीमती मग्गादेवी लूणिया
श्री सजय कुमार लूणिया
" विजय कुमार लूणिया
श्रीमती सरलादेवी लूणिया
श्री हीरालाल गोलछा
श्रीमती चन्द्रकान्ता गोलछा
श्री केशरीचन्द ललवाणी
" श्री भवरलाल बाठिया
" केवलचन्द काकरिया
" प्रेमचन्द काकरिया
" अशोक काकरिया

श्रीमती शान्तादेवी पाकरिया	श्रीमती कुसुम पाकरिया
श्री गु[illegible] मालू	श्री विजयलाल मालू
" गजानाल मालू	" माणकलाल मालू
" ज्ञानचन्द मुकीम	श्रीमती कमलादेवी मुकीम
" राजेन्द्र मुकीम	श्री रवीन्द्र मुकीम
" गौतम मुकीम	" आदित्य मुकीम
" हनुमानमल लूणावत	" शिखरचन्द लूणावत
" गौरव कुमार लूणावत	" बुलाकीचन्द डागा
श्रीमती उमरावदेवी डागा	" अजय कुमार डागा-
श्री विनय कुमार डागा	" शांतिलाल डागा
श्रीमती सुशीलादेवी डागा	" राजेश कुमार डागा
श्री सुरेश कुमार डागा	" दीपचन्द डागा
श्रीमती धुडीदेवी डागा	" जेठमल डागा
श्री माणकचन्द डागा	" चन्द्रप्रकाश डागा -
" मागीचन्द डागा	श्रीमती फतीदेवी रामपुरिया
श्रीमती कमलादेवी रामपुरिया	श्री कन्हैयालाल रामपुरिया
श्रीमती रितुदेवी भूरा	श्रीमती मैनादेवी नाहटा
श्रीमती विजयश्री भूरा	

अलीपुरद्वार

श्री चन्दराज डागा	श्री मोहनलाल सुराणा
श्री उदयचन्द डागा	" मोहनलाल
प्रयोनियर इन्टरपराईसेस	

कूचबिहार (पूर्व बंगाल)

श्री कन्हैयालाल भूरा